वायु-पुराण

(प्रथम खण्ड)

(सरल भाषानुवाद स

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन, २० स्मृतियाँ

"और १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान, बरेली

(उत्तर-प्रदेश)

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान,
बरेली (उ० प्र०)

★

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

★

★

प्रथम संस्करण
१९६७

★

मुद्रक :
बम्बई भूषण प्रेस,
मथुरा

★

मूल्य :
७) रुपया

भूमिका

भारतीय पुराण-साहित्य अपने ढङ्ग की अनोखी रचना है। संसार के अन्य प्राचीन देशों—जैसे यूनान, ईरान आदि में भी कुछ ग्रन्थ ऐसे पाये जाते हैं, जिनको वहाँ का पुराण कहा जाता है, पर वे प्रायः वीर लोगों के अद्भुत साहस तथा भयंकर संकटों का सामना करके कोई महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध करने ... हैं। पर भारतीय पुराणों का मुख्य उद्देश्य साधारण जन- ... में धार्मिक भावों का संचार करना है। यद्यपि उनमें भी सत्य, अर्द्ध सत्य और काल्पनिक कथायें हैं, रूपक, अलंकार और अतिशयोक्तियों का भी बाहुल्य है, पर लेखकों का लक्ष्य लोगों को सदैव धर्म-प्रेरणा देने का ही रहा है। यह ठीक है कि उनकी अतिशयोक्तियाँ अनेक स्थानों पर सीमा को पार कर जाती हैं, उन्होंने असम्भव कल्पनायें भी की हैं, अनेक जगह परस्पर विरोधी बातें भी लिख दी हैं, पर इस सबका उद्देश्य यही है कि मनुष्यों के हृदय में धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न हो और चाहे सांसारिक सुखों के लालच से ही सही, वे धर्माचरण को अपनावें। उनका सिद्धान्त है कि जो धर्म का पा... करेगा उसकी रक्षा भी धर्म करेगा। संसार में जितनी उन्नति, उत्कर्ष, ...ण है वह सब धर्म पर ही आधारित है। इसलिए लोगों को किसी भी ...र से धर्म की प्रेरणा देना शुभ कर्म ही माना जायगा।

जन-साधारण को धर्म-प्रेरणा—

पुराणों के मुख्य विषय सर्ग (सृष्टि रचना) प्रलय, म... और युगों का वर्णन, देव, ऋषि तथा राजाओं के वंशों का वर्णन ... गया है। पर इनका विस्तार करते हुए मोक्ष-निरूपण, भगवत भ... ...पासना को भी उनमें सम्मिलित किया और प्रत्येक कथा, आख्यान, ...ण, गाथामें एक यही दृष्टि-बिन्दु रक्खा है कि लोगों को धर्म के प्र... हो और वे अपनी बुद्धि, शक्ति, रुचि के अनुसार न्यूनाधिक अंशों ...कता की तरफ अग्रसर हों। हो सकता है कि जिन लोगों ने अ... ...पयक विचार बहुत ऊँचे तथा तर्क और बुद्धिवाद की कसौटी ... ...उतरने वाले बना रक्खे हैं,

उनको पुराणो के धर्म-सम्बन्धी विवेचन से निराशा हो, उनमे त्रुटियाँ नजर आवें, पर जो लोग समाज के विभिन्न स्तर के व्यक्तियो के लिये उत्तम मध्यम धर्माचरण की आवश्यकता को व्यवहारिक समझते हैं, वे पुराणो के मत को ठीक ही बतलावेंगे, एक धर्मशास्त्र मे कहा गया है—

"अप्सु देवता बालानाम, दिव देवता मनीषिणाम् ।"

"बालको का अथवा बाल-बुद्धि वाली अशिक्षित जनता का देवता गङ्गा-यमुना आदि तीर्थ स्थान हैं। विद्वानो के देवता, भगवान की दैवी शक्तियाँ जैसे—सूर्य, इन्द्र, रुद्र, विष्णु आदि हैं और जो सच्चे ज्ञानी हैं उनका देवता केवल 'आत्मा' ही होता है ।"

समाज मे सभी श्रेणियो के व्यक्ति पाये जाते हैं। उसमे वेद और उपनिषदो के अध्यात्म ज्ञान को समझने वाले आत्मज्ञानी और योगी भी होते हैं, यज्ञ और अन्य कर्मकाण्डो मे मलग्न पण्डितजन भी होते हैं और केवल जीवन निर्वाह के कार्यों मे ही लगे रहने वाले व्यापारी, किसान मजदूर आदि भी होते हैं। यद्यपि पहली दो श्रेणियाँ समाज मे अधिक प्रभावशाली और प्रतिष्ठित मानी जाती है, पर अधिकता सदैव तीसरी श्रेणी की ही होती है। तो अब प्रश्न होता है कि इन अर्द्धशिक्षित अथवा अशिक्षित जन-साधारणके लिये धर्मिक नैतिक, चारित्रिक नियमो की जानकारी कराने और उन पर आचरण कराने की क्या व्यवस्था की जाय ? पुराण ऐसे ही लोगो को धार्मिक शिक्षा देने के साधन हैं। इन लोगो को यदि उपनिषदा के निराकार ब्रह्म का ध्यान करने का उपदेश दिया जाय अथवा किसी बडे कर्मकाण्ड की शिक्षा दी जाय तो वे उसे क्या समझ सकते हैं और कहाँ तक उस पर आचरण कर सकते हैं ? पर पुराणो की सरल कथाओ और रोचक दृष्टान्तो को वे भी कौतूहलपूर्वक सुनते रहते हैं और अन्त मे इतना निष्कर्ष निकाल ही लेते हैं कि धर्म, पुण्य, सत्कर्म करने से मनुष्य को इहलोक और परलोक मे सुख मिलता है, इसलिये जहाँ तक बन पडे मनुष्य को वैसा करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

पुराणों का प्रक्षिप्त भाग—

यह ठीक है कि मध्यकाल मे पुराणों की कथा बाँचने वाले 'पुराणी' और 'व्यासो' ने उनमे बहुत मिलावट की है। इसके कई कारण हो सकते हैं।

अनेक परिवर्तन और परिवर्द्धन देश-काल के प्रभाव से हुये हैं। राज्यों में, शासन-संस्था में जैसे-जैसे परिवर्तन होते गए उसके प्रभाव से लोगों के रहन-सहन और विचारों में परिवर्तन हुये और कथा वाचकों ने उनके अनुकूल बातें बढ़ादीं। भिन्न-भिन्न प्रदेशों की परिस्थितियों के प्रभाव से जिन पुराणों का जहाँ अधिक प्रचार था उनमें वहाँ की बातों को विशेष स्थान दे दिया गया। साम्प्रदायिकता के बढ़ने पर उनके आचार्यों और विद्वानों ने अपने सिद्धान्तों की पुष्टि करने वाले उपाख्यान और विवरण पुराणों में सम्मिलित कर दिये। अन्तिम पर एक बड़ा कारण कथावाचकों की स्वार्थपरता का भी हुआ जिससे उन्होंने व्रत, तीर्थ, श्राद्ध, दान के प्रकरणों को खूब बढ़ाया और अधिक से अधिक दान देने की महिमा का प्रतिपादन किया। इस श्रेणी की मिलावट क्रमशः इतनी अधिक बढ़ गई और विभिन्न प्रकार के दानों के परिमाण तथा उनके पुण्य फल को इतना बढ़ा-चढ़ा कर कहा गया कि श्रोताओं को उससे विरक्ति होने लगी। पुराणों में जिन ब्रह्मांडदान, मेरु-दान, धरा-दान, सप्त-सागर दान, रत्नमयी धेनुदान आदि का जो वर्णन किया गया उनकी सामग्री की लागत कई लाख रुपये तक पहुँचती है। हर दान में सोने की मूर्तियों और रत्नों का विधान बतलाया गया है। एक लेखक के कथनानुसार "इन दानों के वर्णनों को पढ़कर कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई आधुनिक काल का घटिया विज्ञापनदाता अपनी किसी वस्तु की तारीफों का पुल बाँध रहा हो।"

इस मिलावट तथा हीन मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ है कि वर्तमान समय में अधिकांश शिक्षित व्यक्तियों ने पुराण-साहित्य को कोरी गप्पों का खजाना मान लिया है और वे बिना देखे सुने ही एक सिरे से समस्त पुराणों को और उनकी तमाम बातों को निरर्थक और बेकार घोषित कर देते हैं। यह अवस्था समाज तथा धर्म के लिये अवांछनीय ही कही जायगी। इसके फल-स्वरूप हम उस लाभकारी और जन-कल्याणकारी साहित्य वंचित रह जायेंगे जो पुराणों में पर्याप्त परिमाण में सन्निहित है। इस समस्या के समस्त पहलुओं पर विचार करके एक पुराणों के ज्ञाता विद्वान ने निम्न उद्गार व्यक्त किये हैं—

'पुराणो मे इन अनेक गुणो के होते हुये भी अनेक लोकोपकारियों ने, जिन्हें वास्तव मे देश और जाति के कल्याण करने की सच्ची लगन थी, पुराणो को सर्वथा त्याज्य माना है, उनकी भरपेट निन्दा की है, मार्मिक दुष्ट स्थलो को तर्क के चाकू से चीरफाड कर जनता के सामने खोलकर रख दिया है। हम मानते हैं कि उन्होने यह कार्य किसी द्वेषवश नहीं किया है वरन् 'त्याज्यः दुष्टः प्रियोऽप्यासीदगुली वोरगदक्षता' (अर्थात् साँप की काटी हुई उङ्गली की तरह दोषपूर्ण वस्तु अत्यन्त प्रिय होने पर भी त्याज्य है)

इस सूक्ति के अनुसार पुराणो को सर्वथा वहिष्कृत बतलाया है। उनकी धारणा थी कि ये पुराण सार्वजनिक उपयोग के लायक नही रह गये हैं, सामान्य जनता इन मे वर्णित आदर्शों पर चलकर सुखी नही हो सकेगी, अपना वास्तविक कर्तव्य भूल जायगी। उनकी धारणा कुछ अंश मे सत्य है, पर यदि औषधि करने से सर्वथा विष उतर जाय तो अँगुली को काटकर फेंक देना समीचीन नही लगता। सभी औषधियो के अभाव और एक विशेष परिस्थिति मे अँगुली का काट देना भी एक अन्तिम कर्तव्य है, पर जिस अँगुली ने इतने जीवन तक अनेक दुःखो एव सुखो मे साथ दिया है यथासभव उसकी रक्षा करनी ही चाहिये। पुराणो ने चिरकाल से हिन्दू समाज का बहुत उपकार किया है। हमारी वश परम्परागत पवित्र भावनायें उनके साथ जुडी हुई है, इन सब बातो को देखते हुये उनको एक दम वहिष्कृत कर देना नितान्त अनुचित है, जब कि थोडी सी सावधानी ही उन्हें पूर्ववत् पवित्र बना देती हैं। नितान्त अनर्गल कथाओ तथा स्वार्थपूर्ण उपदेशों को पुराणो से अलग करके आप उनकी उपादेयता से इनकार नही कर सकते। सुनारो की दुकानो की मिट्टी को वटोरकर धोने वालो को भी जीवन-यापन के लिये पर्याप्त सोना-चाँदी मिल जाता है फिर पुराण तो अनेक रत्नो के भण्डार हैं, दृष्टि फैलाइये, विवेक के जल से उन मृत्तिका मिश्रित अनपेक्षित प्रसङ्गो को, जिनमे निन्दा-कुत्सा आदि के सिवा दूसरी चीज नही है स्वच्छ कीजिये, सहानुभूति एव विश्वास का सम्बल रखिये, उनसे आपको अनमोल रत्न मिलेंगे।"

हमने इसी नीति का अनुसरण करके पुराणो की बहुमूल्य सामग्री को

परिमार्जित संस्करण के रूप में प्रकाशित करना आरम्भ किया है। उपर्युक्त प्रक्षिप्त अंशों के अतिरिक्त पुराणों के अनावश्यक रूप से बड़े हो जाने का एक कारण यह भी है कि कितने ही विषयों की उनमें पुनरुक्ति की गई है। जो पाठक को खटकती है जैसे श्राद्ध, नर्क, चारों वर्णों और चारों आश्रमों के आचार-विचार, पुराण सुनने का फल आदि अनेक विषय सब में एक से ही दिये गये हैं। कहीं-कहीं तो उनकी शब्दावली भी एक ही है और अध्याय के अध्याय एक दूसरे मिलते हुये हैं। बार-बार एक ही विषय को मिलते-जुलते शब्दों में पढ़ने से पाठक को सन्देह होने लगता है कि यह विषय तो पहले भी पढ़ा था, फिर ज्यों का त्यों कैसे आ गया ? ऐसे विषयों को एक जगह पूरे रूप में दिया जाय तो यह पुनरुक्ति दोष कम खटकने वाला हो सकता है। निस्सन्देह पुराणों में बहुसंख्यक जीवनोपयोगी और उच्चकोटि के धार्मिक विषयों की शिक्षा दी गई है, पर इस मिलावट और नकलखोरी की भीड़भाड़ में वे खो जाते हैं और सामान्य पाठक या श्रोता की दृष्टि उन पर नहीं पड़ती। इसलिए जैसा उपर्युक्त उद्धरण में संकेत किया गया है यदि पुराणों में पक्षपात या स्वार्थवश जो अनुचित मिलावट कर दी गई है उसे पृथक करके और अनावश्यक रूप से बढ़ाये गये अंशों को सूक्ष्म करके पुराणों को प्रकाशित और प्रचारित किया जाय तो यह हिन्दू धर्म तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी सेवा होगी।

'वायु-पुराण' सम्बन्धी विवाद—

पौराणिक-साहित्य की दृष्टि से 'वायु पुराण' में वर्णित पाठ्य-सामग्री पर विचार करने से पूर्व, हमको अनेक विद्वानों द्वारा उठाई इस शंका पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि 'वायु-पुराण' की गणना '१८ महापुराणों' में है या नहीं ? इस सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों में भी मतभेद पाया जाता है। कुछ आलोचकों ने इसे 'शिव महापुराण' में 'वायवीय संहिता' नामक एक खण्ड होने से इसे उक्त पुराण का एक अंश बतलाया है, जब कि अन्य विद्वानों ने दोनों पुराणों की विषय-सूची तथा पाठ्य-सामग्री के महान् अन्तर के आधार इसको स्वतन्त्र 'महापुराण' ही स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध

मे हमने विविध पुराणो के अन्तर्गत पाई जाने वाली १८ पुराणो की सूचियो का जब मिलान किया तो उनसे हमको यही प्रतीत हुआ कि 'वायु-पुराण' को अधिकाश ने १८ पुराणो मे ही माना है। पाठको की जानकारी के लिये हम उन सूचियो को नीचे देते हैं—

(१) नारद पुराण की पुराण सूची सबसे बडी है। उसमे प्रत्येक पुराण के लिए एक दो पृष्ठ का स्वतन्त्र अध्याय दिया है और प्रत्येक पुराण के मुख्य-मुख्य विषयो की सूची के साथ उनकी दान करने की विधि भी बतलाई है। उसमे दिये गये अठारह पुराणो की नामावली इस प्रकार है—

(१) ब्रह्मपुराण १०००० श्लोक, (२) पद्मपुराण ५५००० (३) विष्णु-पुराण २३०००, (४) वायु पुराण २४००० (५) भागवत पुराण १८०००, (६) नारदपुराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ९०००, (८) अग्निपुराण १२०००, (९) भविष्यपुराण १४०००, (१०) ब्रह्मवैवर्त पुराण १८००० (११) लिङ्गपुराण ११०००, (१२) वाराह पुराण २४०००, (१३) स्कन्द पुराण ८१०००, (१४) वामन पुराण १००००, (१५) कूर्म पुराण १७०००, (१६) मत्स्य पुराण १४०००, (१७) गरुड पुराण १९०००, (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२०००।

(२) मत्स्य पुराण मे भी पुराण सूची काफी विस्तार से दी गई है। उसमे विभिन्न पुराणो के श्लोको की जो सख्या दी गई है वह कई स्थाना पर नारद पुराण की अपेक्षा कम या ज्यादा है। इसमे भी पुराणो के दान की विधि सक्षेप म दी गई है—

(१) ब्रह्म पुराण १३०००, (२) पद्मपुराण ५५०००, (३) वैष्णव [विष्णु] पुराण २३०००, (४) वायवीय पुराण २४००० (५) भागवत पुराण १८०००, (६) नारद पुराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ९००० (८) अग्निपुराण १२०००, (९) भविष्य पुराण, १४५०००, (१०) ब्रह्मवैवर्तपुराण १८०००, (११) लिङ्ग पुराण ११०००, (१२) वाराह पुराण २४०००, (१३) स्कन्द पुराण ८१०००, (१४) वामन पुराण १००००, (१५) कूर्म-पुराण १८००० (१६) मत्स्य पुराण १४०००, (१७) गरुड पुराण १९०००, (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२२००।

(३) स्वयं वायु पुराण के अध्याय १०४ में पुराण-सूची दी गई है। पर उसमें अठारह पुराणों का उल्लेख करने पर भी वास्तव में १६ पुराणों के ही नाम मिलते हैं। इसलिये यह अनुमान किया जाता है कि एक श्लोक किसी तरह लिखने से रह गया है। इसकी क्रम संख्या भी अन्य पुराणों से बहुत भिन्न है—

(१) मत्स्य पुराण १४०००,(२)भविष्य पुराण १४५००, (३)मार्कण्डेय पुराण ९०००, (६) ब्रह्मवैवर्त पुराण १२०००, (७) ब्रह्म पुराण १००००, (८) वामनपुराण १००००, (९) आदि पुराण १०६००, (१०) वायु पुराण २३००० (११) नारदीय पुराण २३०००, (१२) गरुड़ पुराण १९०००, (१३) पद्म पुराण ५५०००, (१४) कूर्म पुराण १७०००, (१५) सौकर (बाराह) पुराण २४०००, (१६) स्कन्द पुराण ८१०००।

इस सूची में विष्णु, अग्नि और लिङ्ग पुराणों के नाम नहीं हैं। लेखक की भूल मानकर हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि एक श्लोक के छूट जाने से दो पुराणों का नाम रह गया है। तो भी इस सूची में आदि पुराण को शामिल किया गया है, इससे यह स्पष्ट है, वायु-पुराण के रचयिता ने प्रचलित १८ पुराणों में से किसी एक को अवश्य ही हटा दिया है।

(४) अग्नि-पुराण की सूची की क्रम-संख्या अन्य पुराणों से मिलती है, पर इसमें जो श्लोक संख्या दी है उसमें अन्य पुराणों से बहुत अधिक अन्तर है। पाठक स्वयं मिलान करके देखें—

(१) ब्रह्म पुराण २५०००, (२) पद्मपुराण १२०००, (३) विष्णु-पुराण २३०००, (४) वायु पुराण १४०००, (५) भागवत पुराण १८००० (६) नारदपराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ९०००, (८) अग्नि पुराण १२०००, (९) भविष्य पुराण १४००० (१०) ब्रह्मवैवर्त १८०००, (११) लिंग पुराण ११०००, (१२) बाराह पुराण २४०००, (१३) स्कन्द पुराण ८४०००, (१४) वामनपुराण १००००, (१५) कूर्म पुराण १८००० (१६) मत्स्य पुराण १३०००, (१७) गरुड़ पुराण १८०००, (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२०००।

(५) वामन पुराण में पुराण-सूची केवल एक श्लोक में दे दी है और

वह भी बडे अद्भुत ढग से, अन्यथा अठारह पुराणो का नाम एक श्लोक में किसी प्रकार आना सभव न था—

मद्वयं भद्वय चैव ब्रत्रय वचतुष्ठय ।
अनापलिगकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक् ॥

"अर्थात् १८ पुराणो मे से दो के नाम 'म' से आरम्भ होते हैं (मत्स्य और मार्कण्डेय), दो भ' से आरम्भ होते है (भागवत और भविष्य), तीन 'ब्र' से हैं (ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्त), चार 'व' से हैं (वाराह, वायु, वामन और विष्णु)' शेष सात पुराणो के प्रथम अक्षर इस प्रकार हैं—अ=अग्नि, ना=नारद, प=पद्म लि=लिङ्ग, ग=गरुड, कू=कूर्म, स्क=स्कन्द ।

(६) विष्णु पुराण मे यह सूची सक्षेप मे दी गई है, पर उसने क्रम—सख्या का निर्देश बहुत स्पष्ट रूप से किया है—

ब्राह्म पाद्म, वैष्णव च शैव भागवतं तथा ।
तथा न्यन्नारदीय[ं]च मार्कण्डेय च सप्तमम् ॥
आग्नेय मष्टमं चव भविष्यन्नवमं स्मृतम् ।
दशम चैव ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ॥
वाराहं द्वादश चैव स्कान्द चात्र त्रयोदशम् ।
चतुर्दश वामन च कौर्मं पचदश तथा ॥
मात्स्यच गारुडं चैव ब्रह्माड च तत परम ।
महापुराण न्येतानि ह्यष्टादश महामुने ॥

(वि०पु० ३—६—२१से२४)

कुछ विद्वानो का मत है कि विष्णु पुराण मे जो क्रम सख्या दी गई है वह प्राचीनता की दृष्टि से है । इस तथ्य को स्वीकार कर लेने पर ब्रह्म पुराण सबसे प्राचीन और ब्रह्माण्ड सब से अंतिम समय का रचित कहा जायगा ।

(७) मार्कण्डेय पुराण के १४४ वें अध्याय मे ८ से ११ तक विष्णु पुराण के ये चारों श्लोक ज्यो के त्यो उद्धृत करके पुराण-सूची दे दी गई है और मार्कण्डेय पुराण का सातवा स्थान स्वयं स्वीकृत किया है ।

(८) स्कन्द पुराण के केदार खण्ड मे १८ पुराणो की उपर्युक्त सूची

को देकर साम्प्रदायिक दृष्टि से उनका वर्गीकरण भी किया गया है। उसमें कहा गया है कि "१८ पुराणों में से दस शैव, चार वैष्णव, दो ब्राह्म और दो अन्यों के हैं। शैव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिंग, वाराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन और ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण शैव हैं। वैष्णव, भागवत, नारद और गरुड़—ये चार वैष्णव हैं, ब्राह्म और पद्म—ये दो ब्रह्मा के हैं। अग्नि पुराण अग्नि की तथा ब्रह्मवैवर्त सूर्य की महिमा से पूर्ण हैं।"

पुराणों की इन विभिन्न सूचियों में 'वायु-पुराण' को स्पष्टतः १८ पुराणों में माना गया है और उसकी श्लोक संख्या २३ या २४ हजार बतलाई गई है जो कि इस समय लगभग ११ हजार श्लोकों का ही मिलता है। 'मत्स्य पुराण' के मतानुसार इस पुराण में 'वायु देव ने श्वेत कल्प के प्रसंग में अनेकानेक धर्म प्रसंगों के साथ रुद्र महात्म्य भी विस्तार से सुनाया है।'

सबसे मुख्य ध्यान देने का विषय तो वायुपुराण तथा शिवपुराण के अन्त में दी गई 'वायवीय संहिता' की विषय सूचियाँ हैं। जब कि वायवीय संहिता के अधिकांश में वही दक्ष, सती, पार्वती की कथा अथवा शिव-दीक्षा, पाशुपत व्रत, भस्म महिमा, शिव लिंग पूजा से महापापों का नाश, शैवावरण पूजा, योग मार्ग आदि फुटकर विषय ही अधिक पाये जाते हैं, वायुपुराण में पुराणों के लक्षणों के उपयुक्त सृष्टि रचना, कल्प और युग वर्णन, मन्वन्तरों का वर्णन सृष्टि का भूगोल, देवता, सृष्टि, राजाओं के वंशों आदि विषयों का विद्वतापूर्वक वर्णन किया गया है। हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं कि वायुपुराण के रचयिता ने सृष्टि रचना और उसके क्रम-विकास का जो वर्णन किया है वह अन्य कई पुराणों के तत्सम्बन्धी वर्णन की अपेक्षा अधिक बुद्धिसंगत है और यदि उसकी रूपक तथा अलंकारयुक्त शैली की जाँच वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक दृष्टिकोण से की जाय तो उसमें कितने ही वैदिक सृष्टि-विज्ञान के तत्वों का पता लग सकता है। पुराणों की सबसे बड़ी विशेषता और उपयोगिता यही मानी गई है कि वे वेदों के गूढ़ तत्वों और रहस्यवादी वर्णनों को विशद व्याख्या के साथ रोचक कथाशैली में उपस्थित करते हैं जिससे सामान्य स्तर के पाठक भी उनको समझ सकते हैं। 'वायु पुराण' इस दृष्टि से निस्सन्देह अन्य कितने

ही पुराणों की अपेक्षा उच्च—श्रेणी में रखे जाने योग्य है।

वायुपुराण की तर्क संगतता—

यद्यपि परम्परागत शैली का अनुसरण करते हुए वायुपुराण के आरम्भ मे उसे भी ब्रह्माजी, वायुदेव, व्यास जी, सूत जी, आदि का रचा हुआ कहा है, पर आगे चलकर जब वास्तविक विवेचन आरम्भ हुआ है तो रचयिता ने जगह-जगह ऐसे भाव प्रकट किये हैं जिनसे प्रकट होता है कि यह पुराण अन्य ग्रंथो की तरह किसी विशेष व्यक्ति की रचना है। सृष्टि रचना का विषय आरम्भ करते ही तीसरे अध्याय के अंतिम श्लोक मे उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया है—

प्रकृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्याच पुनः प्रवृत्तिः ॥
तच्छास्त्र युक्तया स्वमतिप्रयुक्तात् समस्तमविकृत धी धृतिम्यः ॥
विप्रा ऋषिभ्यः समुदाहृतम् यद्यथातथ तच्छ्रुतोच्यमानम् ॥

अर्थात् "प्रकृति की मूल अवस्था में कारणो की कैसी स्थिति रहती है, तथा फिर कैसे रचना की प्रवृत्ति होती है ये सब बातें हर शास्त्र के मतानुसार और अपनी बुद्धि के अनुसार बुद्धिमानो के लिये प्रकाशित कर रहे हैं। हे विप्रो! पूर्वकाल मे ऋषियो ने जैसे कहा है मैं भी उसी प्रकार कह रहा हूं, आप लोग ध्यान से सुनिये ॥"

जगत के निर्माण और इतिहास की घटनाओ के सम्बन्ध मे कोई लेखक यह तो कह नही सकता कि मैं इनको अपने मन या बुद्धि से विचार कर या गढ कर कह रहा हूं। उनका तो कोई न कोई आधार ढूंढना और बतलाना पड़ेगा। लेखक का काम तो यह है कि वह उन तथ्यो को अपनी विशेष शैली मे अपने दृष्टिकोण के अनुसार विवेचना करता हुआ पाठको या श्रोताओ के सम्मुख उपस्थित करे। इस लिये वायुपुराणकार का यह कथन सर्वथा स्वाभाविक और आवश्यक है कि मैंने जो कुछ लिखा है वह अपनी कल्पना से नहीं लिख दिया है वरन् उसकी सामग्री विभिन्न माननीय शास्त्रो और प्राचीन विद्वानो द्वारा रची गाथाओ आदि से एकत्रित की गई है। इस बात को प्रकट करके तथ्यो की जिम्मेदारी प्राचीन शास्त्रों पर और वर्णनशैली तथा विवेचन-प्रणाली की अपने ऊपर ले ली है।

आगे जहाँ राजवंशों का वर्णन आया है वहाँ भी लेखक ने इस पुराण की रचना का समय साफ तौर पर दे दिया है। 'अनुषङ्गपाद समाप्ति' शीर्षक अध्याय में पाण्डवों की आगामी पीढ़ियों का जिक्र करते हुये वे कहते हैं—

"राजा जनमेजय का पुत्र शतानीक था, जो परम बलशाली, सत्यवादी तथा विक्रमशील था। शतानीक का पुत्र परम बलशाली अश्वमेधदत्त हुआ। अश्वमेधदत्त से शत्रुओं के किलों को जीतने वाले अधिसामकृष्ण नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। ऋषिवृन्द! यही परम धर्मात्मा राजा इस समय राज्य कर रहा है। उसी के राज्य काल में आपने इस परम दुर्लभ तीन वर्ष चलने वाले दीर्घ-सत्र (यज्ञ) का अनुष्ठान प्रारम्भ किया है, इसके अतिरिक्त दृषद्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र में भी दो वर्ष व्यापी एक दीर्घसत्र चल रहा है।"

यों जनता की धार्मिक मान्यता तथा श्रद्धा को सुदृढ़ रखने के उद्देश्य से सभी धार्मिक ग्रन्थों को किसी देवता या दैवी व्यक्ति के मुख से निकला हुआ बतलाया गया है, पर 'वायु-पुराणकार' ने उस परम्परा का पालन करते हुये भी अपनी रचना को अन्य ग्रन्थों की तरह मानवीय घोषित कर दिया है, यह उनका एक प्रशंसनीय गुण ही माना जायगा।

विकास-सिद्धान्त का प्रतिपादन—

प्राचीन ग्रन्थों में से अधिकांश का यह मत प्रकट होता है कि 'सतयुग' अर्थात् सृष्टि का आदिम-काल सभ्यता, संस्कृति, विद्या-बुद्धि, आचार-विचार आदि की दृष्टि से सर्वोत्तम समय था और उसके पश्चात् सब विषयों में हीनता आती चली गई। पर 'वायु-पुराण' का सतयुग वर्णन पढ़ने से ऐसा भाव उत्पन्न नहीं होता। प्रकट में उन्होंने भी उसे श्रेष्ठ बतलाया है, पर उस समय के प्राणियों का जो कुछ चित्रण किया है, उसे एक विचारशील पाठक इसी नतीजे पर पहुँचेगा कि उस समय के प्राणी एक वनमानुष से भी कम विकसित अवस्था में थे और उस समय वे मनुष्य न होकर किसी और ही जाति के प्राणी हों तो भी आश्चर्य नहीं। प्रकर्ण ८ (मानव सभ्यता का आरम्भ) के ४५वें श्लोक से आगे कहा गया है—

"उस समय कृतयुग के आरम्भ काल में वे प्राणी नदी, सरोवर, समुद्र और पर्वतों के समीप रहते थे। उनको अधिक शीत और गर्मी से पीड़ा नहीं

होती थी। वे इच्छानुसार इधर-उधर घूमते रहते थे। पृथ्वी से स्वयमेव उत्पन्न होने वाले पदार्थों को खाते थे। उस समय मूल, फल, पुष्प का अभाव था, पर उनको पृथ्वी के रसमय पदार्थ मिल जाते थे। उनको धर्म-अधर्म का विचार न था, कोई भेदभाव भी न था। वे सब आयु, रूप और अनुभूति में समान थे। उनमे किसी प्रकार का सघर्ष, प्रतिद्वन्दिता और क्रम का प्रश्न नही था। वे समुद्रो और पर्वतो के निकट रहा करते थे। उनका कोई स्थायी घर नही था। उस समय अधर्म करने वाले कोई नारकीय जीव न थे न कोई उद्भिज पदार्थ था। यद्यपि वे अपने शरीर का सस्कार (स्नान आदि) नही करते थे तो भी स्थिर-यौवन थे। वे जन्म और आकृति मे समान थे, मृत्यु भी साथ ही होती थी। उनके सब व्यवहार स्वाभाविक होते थे, बुद्धि-पूर्वक नही। उनकी प्रवृत्ति शुभ और अशुभ कर्मों मे नही होती थी, क्योकि उस समय शुभ और अशुभ का विभाजन था ही नहीं। उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था न थी, न सङ्कर-दोष ही था। वे परस्पर अकाम और अनिच्छापूर्वक व्यवहार करते थे। उनमे लाभ-अलाभ, मित्र-अमित्र, प्रिय-अप्रिय न थे, वे निरीह थे और मन की प्राकृतिक प्रेरणा से ही विषयो मे प्रवृत्त होते थे। एक दूसरे के प्रति किसी की कोई इच्छा या स्वार्थ न था, न तो परस्पर के अनुग्रह की आवश्यकता थी।"

यो कल्पना और भावुकता का सयोग करके इन प्राणियो को देवता और योगियों के समान बतलाया जा सकता है, पर यदि प्रकृति के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से विचार किया जाय तो बुद्धि-तत्व का, जिसके द्वारा मनुष्य वास्तव मे मनुष्य बन सका है, उनमें सर्वथा अभाव था और वे उसी अवस्था म रहते थे जिसमें इस समय छोटे पशुओ या कीडे-मकोडो को रहते देखते हैं। जीव सृष्टि के आरम्भ मे इससे अधिक की आशा भी नही की जा सकती।

त्रेतायुग का वर्णन करते हुये पुराणकार ने लिखा है कि "उसमे स्थूल जल-वृष्टि के आरम्भ हो जाने से वृक्ष उत्पन्न हो गये और उन्ही से प्राणी अपना निर्वाह करने लगे। उन पेडो मे एक प्रकार का रस या मधु निकलता था उसी को खाकर वे जीवित रहते थे। अब उनमे राग-द्वेष, लोभ के भाव भी उत्पन्न होने लगे और उन्होने जबर्दस्ती उन वृक्षो पर अधिकार जमाना आरम्भ किया। इससे अनेक स्थानो पर वे वृक्ष नष्ट हो गये और लोग भूख-प्यास का कष्ट पाने

लगे। अब उनको शीत और गर्मी से भी कष्ट होने लगा, इससे उन्होंने घर बनाने आरम्भ किये। वृक्ष की शाखायें जिस प्रकार आगे-पीछे, ऊपर-नीचे और इधर-उधर फैली रहती हैं उसी प्रकार काठ फैलाकर उन लोगों ने घर बनाये। वृक्ष-शाखाओं की तरह बनाये जाने के कारण ही उनका नाम 'शाला' पड़ गया। जब वृष्टि से नदी, नाले, गड्ढे भर गये तो पृथ्वी रसवती होकर शस्य-शालिनी हो गई। बिना जोते बोये चौदह प्रकारकी वनस्पतियाँ गाँवों के समीप और जङ्गलों में उग आई। उन्हीं का उपयोग करके उस समय के लोग निर्वाह करने लगे। पर जब उनमें भेदभाव और स्वार्थपरता का भाव बढ़ा तो लोग फल लेते समय पुष्प और पुष्प लेते समय पत्ते भी तोड़ लेते थे। इससे वे सब वनस्पतियाँ भी क्रमशः नष्ट हो गई और लोग फिर भूख-प्यास से व्याकुल होने लगे। तब लोगों ने प्रयत्न करके वनस्पतियों के बीजों का पता लगाया और स्वयम् उनको जोत-बोकर उत्पन्न करने लगे। फिर उनमें कर्म-विभाग भी होने लगा और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि विभिन्न वर्णों की स्थापना की गई।"

वैदिक तत्वों और पौराणिक उपाख्यानों का समन्वय—

पुराणों में देवताओं, ऋषियों, राजाओं के सम्बन्ध में जो घटनायें और कथानक दिए गये हैं, वे एक निष्पक्ष पाठक को बहुत ही अतिरंजित और अनेक बार असम्भव से ही प्रतीत होते हैं। इसका कारण अन्वेषण करने वाले विद्वानों ने यही बतलाया है कि पुराणकारों ने अलौकिक वैदिक तत्वों को रूपक तथा अलंकार की शैली में ढालकर लौकिक-कथाओं का रूप दे दिया है। देवासुर-संग्राम की कथायें इसका स्पष्ट प्रमाण है। इन्द्र और वृत्रासुर के संघर्ष को वेदों में भी कुछ अंशों में घटनात्मक ढङ्ग से लिया है, पर उनके विभिन्न स्थलों का मिलान करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका आशय सूर्य की शक्ति द्वारा बादलों से वर्षा कराने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। 'शतपथ ब्राह्मण' में एक स्थान पर इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया गया है—

न त्वं युयुत्से कतमच्चनाहर्न तेऽमित्रो मघवन कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं न नु पुरा युयुत्सः॥

है। लोकतत्व और लोक-जीवन की जैसी सुरक्षा इसमें है वैसी अन्यत्र नहीं है।

योग द्वारा शारीरिक और आत्मिक कल्याण—

वायु-पुराण में योग का महत्व और उसकी आवश्यकता पर बहुत जोर दिया है और सभी श्रेणियों के मनुष्यों को उसकी प्रेरणा दी है। उसमें कहा गया है— जितनी तरह की तपस्याएँ, व्रत, नियम और यज्ञफल आदि हैं, प्राणायाम का फल भी उनमें से किसी से कम नहीं है। सौ सम्वत्सर तक प्रत्येक मास कुश के अग्रभाग से जलबिन्दु पान करने का जो फल होता है, वही फल प्राणायाम करने से प्राप्त हो जाता है। प्राणायाम से दोषों का नाश होता है, धारणा से पापों का, प्रत्याहार से विषय समूह का और ध्यान से अनीश्वर गुणों का नाश होता है।"

आगे चलकर कहा है—"शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद इन चारों को प्राणायाम का उद्देश्य समझिये। शान्ति का आशय है इस काल अथवा परकाल में देहधारियों द्वारा स्वयं किये हुए अथवा पिता-माता द्वारा, किंवा भाइयों द्वारा किये हुये भयंकर अकल्याणकारक कर्म से उत्पन्न कुत्सित पाप समूह का नाश होना। प्रशान्ति उस तपस्या को कहते हैं जिससे इस लोक और परलोक में हित के लिये लोभ और अश्रेयस्कर अभिमानादि पापवृत्तियों का संयम हो। जब प्रतिबुद्ध योगी को ज्ञान-विज्ञान युक्त प्रसिद्ध ऋषियों की तरह चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारकादि और भूत, भविष्य, वर्तमान का विषय प्रत्यक्ष हो जाय उसे दीप्ति कहते हैं। इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ, मन और पंच-वायु जिससे प्रसन्न हो उसे प्रसाद कहते हैं। यह चार प्रकार का पहला प्राणायाम-धर्म हुआ। यह तुरन्त फलदायक और काल-भय का निवारक है।"

इस प्रकार पुराणकार ने प्राणायाम को बहुत महत्व दिया है और यथा-संभव उसकी व्यवहारिक विधि का ज्ञान कराने की चेष्टा की है। इसके लिए उन्होंने साधक को स्पष्ट चेतावनी दे दी है कि उसे खूब सोच-समझकर और पूर्ण जानकारी प्राप्त करके समस्त नियमों का पालन करते हुये प्राणायाम करना चाहिये। जो अनियम से अथवा गलत तरीके से प्राणायाम करेगा उसे जड़ता, बहिरापन, मूकत्व, अन्धापन, स्मृति-लोप, वृद्धता आदि अनेक प्रकार के रोग

उत्पन्न हो जाते हैं। ये सब दुष्परिणाम अज्ञानपूर्वक योग कर्म में प्रवृत्त होने से होते हैं। इस प्रकार की चेतावनी अन्य कई ग्रन्थों में भी देखने में आती है, पर इस पुराण में इन रोगों की जो चिकित्सा दी गई है, वह सर्वत्र देखने में नहीं आती। कोई अनुभवी योगी ही उसका विधान कर सकता है। प्राणायाम जनित दोषों की चिकित्सा बतलाते हुये कहा है—

"प्राणायाम से उत्पन्न होने वाले दोषों को शान्त करने के लिये स्निग्ध पदार्थ मिश्रित गर्म यवागू (जौ की पतली लपसी बिना नमक या मीठे की) कुछ काल तक पीड़ित स्थान पर धारण करे। इससे वात गुल्म नष्ट होता है। गुदावर्त को दूर करने को यह चिकित्सा करे कि दही अथवा यवागू का भोजन करे और वायु ग्रन्थि का भेदन करके उसे ऊपर की तरफ चलावे। अगर इससे कष्ट न मिटे तो मस्तक में धारणा करे। जिस योगी के सर्वाङ्ग में कँपकँपी हो जाय, वह शरीर को आसन द्वारा स्थिर कर मन में किसी पर्वत की धारणा करे। छाती का दर्द होने पर उस स्थान या कण्ठ देश में वैसी ही धारणा करे। बोली रुक जाने पर वचन में और बहरापन हो तो कानों में धारणा करे। प्यास का कष्ट होने से स्नेहाक्त प्रज्ज्वलित अग्नि की धारणा करे। इन चिकित्साओं के फल की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करे। क्षय, कुष्ठ, कीलसादि राजस रोगों में सात्विकी धारणा करे। जिस-जिस स्थान में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो, वहाँ-वहाँ सात्विकी धारणा करे। जो भयभीत हो जाय उसके मस्तक पर लकड़ी की कील रखकर धीरे-धीरे खटखटावे। इससे उसकी संज्ञा लौट आती है। अगर साँप ने काट लिया हो तो हृदय और उदर में धारणा करे। अगर विषाक्त पदार्थ सेवन करने में आ गया हो, तो हृदय में विशल्या धारणा करे। मन में पर्वतमय पृथ्वी की धारणा कर हृदय में देवता और समुद्र की धारणा करे। योगी ऐसी चिकित्सा के लिये हजार घड़े तक से स्नान करते हैं। कण्ठ तक जल में घुसकर मस्तक में धारणा करे। आक (मदार) के सूखे पत्ते की दोनियाँ बनाकर दीमक की मिट्टी को घोलकर पी जाय। योग सम्बन्धी दोषों की चिकित्सा ऐसी ही आन्तरिक क्रिया द्वारा की जाय।"

यह तो हुई योगाभ्यास में भूल के कारण उत्पन्न हो जाने वाले विकारों और दोषों की बात। योग में शारीरिक क्रियाओं की अपेक्षा मानसिक भाव-

नाओ का महत्व अधिक है, इसलिये उसके दोषो की चिकित्सा भी मानसिक ढग की होनी चाहिये। योगी की धारणा शक्ति निरसन्देह प्रभावशाली होती है और वह शरीर की आरोग्यप्रदायक शक्ति को किसी स्थान पर सलग्न कर सकता है। इसलिये योगी के शारीरिक कष्ट सामान्य उपायो से ही दूर हो जाते हैं।

मानसिक विकारों का प्रतिकार—

शारीरिक व्याधियो की अपेक्षा भी मानसिक विकार बडे अनिष्टकारी और मनुष्य का पतन करा देने वाले होते हैं। शरीर के कष्टो को सहते हुए जीवन के आवश्यक कार्यक्रमो को किसी प्रकार पूरा किया जा सकता है, पर मनोविकारो मे ग्रस्त प्राणी का तो अपने ऊपर से नियत्रण ही हट जाता है और वह शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होते हुये भी निकम्मा या हानिकर हो जाता है। इस सम्बन्ध मे विवेचन करते हुये पुराणकार लिखते हैं—

"*तत्व दृष्टि से योगियो के उपसर्गों (व्याधियो)* पर विचार करने से विदित होता है कि यदि मनुष्योचित विविध कामना, स्त्री-प्रसग की अभिलाषा, पुत्रोत्पादन इच्छा, विद्यादान, अग्निहोत्र, हविर्यज्ञ आदि तपस्याएँ, कपट, धनार्जन, स्वर्ग की स्पृहा आदि वस्तुओ मे योगी आसक्त हो गया तो वह अविद्या के वशीभूत हो जायगा। इसलिए इनको उपसर्ग समझ कर निरन्तर इनसे बचने का उपाय करना चाहिए। दूर की ध्वनि सुनने की शक्ति, देवताओ का दर्शन सिद्ध का लक्षण कहा गया है। विद्या, कवित्व, शिल्प नैपुण्य, सब भाषाओ का बोध, विद्या का तत्वज्ञान, सुनने योग्य शब्दो को सौ योजन दूर से भी सुन लेना, यक्ष, राक्षस गन्धर्व आदि का दिव्य दर्शन आदि योगियो के लिये विघ्नस्वरूप हैं। योगी जब सब दिशाओ मे देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, पितरो को देखने लगते हैं, तब वे उन्मत्त हो जाते हैं।

आगे चलकर फिर कहा गया है कि योगियों की आठ प्रकार की सिद्धियाँ कही गई हैं जिन को योग के आठ ऐश्वर्य समझना चाहिये। यह तीन प्रकार का होता है—सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म। सावद्य नामक तत्व पचभूतात्मक है, निरवद्य भी पचभूतात्मक है। स्थूल इन्द्रिय, मन और अहकार एव सूक्ष्म इन्द्रिय, मन और अहकार तथा सम्पूर्ण आत्मख्याति-अष्ट ऐश्वर्यो की यह

त्रिविधि प्रवृत्ति है। त्रैलोक्य में जितने जीव-जन्तु हैं वे सब ऐसे योगी के वश में होते हैं। वे तीनों लोकों के पदार्थ को पा सकते हैं, इच्छानुरूप विषय भोग कर सकते हैं। यहाँ तक कि शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और मन आदि प्राकृतिक इन्द्रियों के विषय भी योगी की इच्छानुसार प्रवर्तित होते रहते हैं। ऐसे योगी को जन्म, मृत्यु, छेद, भेद, दाह, मोह, संयोग क्षय, क्षरण, खेद आदि कुछ भी नहीं होते, "पर इतना सब होने पर भी यदि वे ब्रह्मज्ञान का अवलम्बन करके अपवर्ग नामक परम पद की साधना नहीं करते तो वे रागवश राजस-तामस कर्मों के आचरण से फिर उन्हीं में लिप्त हो जाते हैं। उनमें से जो सुकृत करते हैं वे उसके फलस्वरूप स्वर्गलाभ करते हैं। वे फलभोग करने की उपरान्त पुन: भ्रष्ट होकर मानव-जन्म प्राप्त करते हैं। इस कारण अत्यन्त सूक्ष्म जो परब्रह्म है वही सर्वकालीन है और उस ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिये।"

वास्तविकता यही है कि मनुष्य ज्ञान, योग, कर्म, भक्ति किसी भी मार्ग पर चले जब तक उसके विचारों में शुद्धता, पवित्रता, निस्वार्थता और सात्विकता नहीं आयेगी, उसे किसी चिरस्थायी फल की आशा नहीं हो सकती। थोड़े समय तक हठपूर्वक इन्द्रियों को रोक कर कोई साधन करके विशेष शक्ति प्राप्त कर लेना और बात है तथा मन और अन्तःकरण को क्रमशः बिल्कुल निर्मल और शुद्ध बनाकर ईश्वरीय आदेश के अनुकूल मार्ग को ही पूरी तरह ग्रहण करना दूसरी बात है। पहली श्रेणी के व्यक्ति थोड़े समय के लिये कोई चमत्कार-सा दिखलाकर दुनियाँ को प्रभावित कर सकते हैं, नामवरी, यश और प्रशंसा भी प्राप्त कर सकते हैं, पर उनकी ये चीजें ज्यादा समय तक टिक नहीं सकतीं। इतना ही नहीं ऐसे व्यक्तियों में से कितने ही बाद में स्वार्थ और विषयों की लालसा में फँसकर पतित भी हो जाते हैं। उनकी वही गति होती है जैसा कि गीता में कहा है—

कर्मेन्द्रिय संयम्य य आस्ते मनसास्मरन।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचार स उच्यते॥

जीवन के उत्थान और अध्यात्म क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त करने का मार्ग शुद्ध और सत्य भावों से धर्मानुष्ठान करना है। जो व्यक्ति मन के भीतर

कामनाएँ रखकर साधन-भजन करते हैं उनको सिद्धियाँ और चमत्कार की शक्ति प्राप्त कर लेने पर भी अन्त मे गिरना ही पडता है।

अहिंसा का प्रतिपादन—

धार्मिक-जीवन मे हिंसा और अहिंसा का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। यों तो हिंसा प्राणी जगत का एक सामान्य नियम है और "जीवो जीवस्य भोजनम्" की लोकोक्ति प्रचलित हो गई है। पर यह नियम उन विवेकशून्य प्राणियों के लिये है जिनको ईश्वर ने ज्ञान रूपी महान तत्व प्रदान नहीं किया है। पर जिस 'मनुष्य' प्राणी के लिये भगवान ने ज्ञान-विज्ञान-अध्यात्म के सब रास्ते खोल दिये हैं उसके लिये सर्वोच्च आदर्श 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का ही हो सकता है। जब समस्त ससार मे एक ही आत्म-तत्व व्याप्त है और प्राणीमात्र एक ही विश्व व्यापी चैतन्य तत्व से उद्भूत हुआ है तब कोई ज्ञानी व्यक्ति किस प्रकार जीव हिंसा का समर्थन कर सकता है। इस देश के कुछ धर्माचार्यो ने "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" लोकोक्ति का सहारा लेकर यज्ञादि मे हिंसा का प्रतिपादन किया है, पर उनकी इस अनीतिमूलक प्रणाली के फलस्वरूप यज्ञ-कर्म का विरोध होने लगा और अन्त मे ऐसा समय आया जब इस देश से यज्ञ-प्रथा का लोप ही हो गया। 'वायुपुराण' मे इस समस्या की गम्भीरपूर्वक विवेचना की है और स्पष्ट शब्दो मे यह निर्णय किया है कि यज्ञादि मे जीव हिंसा कदापि धर्मकार्य नही हो सकती। त्रेता युग मे यज्ञ का प्रचलन होने का वर्णन करते हुये पशुबलि के सम्बन्ध मे उसमे यह कथानक मिलता है—

"जब त्रेता मे वृष्टि के उपरान्त सभी प्रकार की औषधियाँ पृथ्वी पर पैदा हो गईं, लोग घर द्वार, आश्रम और नगर बनाकर रहने लगे, तो विश्व-भावता देवराज इन्द्र ने वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था कर ऐहिक एव पारलौकिक कल्याण के लिये वेद सहिताओ और मत्रो का प्रचार कर यज्ञ की प्रथा प्रचलित की। उस समय अश्वमेध यज्ञ का कार्य जब आरम्भ हुआ तो सभी महर्षिगण आकर उसमे सम्मिलित हो गये, और मेध्य पशुओ के द्वारा यज्ञ का आरम्भ सुनकर सभी लोग दर्शनार्थ उपस्थित हुये। जब सभी पुरोहितगण उस निरन्तर चलने वाले यज्ञ-कर्म मे व्यस्त हो गये, यज्ञ मे भाग लेने वाले देवता और महात्मागण आवाहित होने लगे, ठीक उसी समय यज्ञ मडल मे समागत महर्षिगण

अध्वर्युगण को पशुओं के स्नानादि में समुद्यत देखकर उन पशुओं की दीनता पर करुणार्द्र होकर इन्द्र से बोले कि 'यह तुम्हारे यज्ञ की कैसी विधि है ? हिंसामय धर्म कार्य करने के इच्छुक तुम यह महान अधर्म कार्य कर रहे हो। हे सुरोत्तम ! तुम्हारे जैसे देवराज के यज्ञ में यह पशुवध कल्याणकारी नहीं है। इन दीन पशुओं की हिंसा से तुम अपने संचित धर्म का विनाश कर रहे हो। यह पशु हिंसा कदापि धर्म नहीं है, हिंसा कभी भी धर्म नहीं कहा जा सकता। यदि तुम्हें यज्ञ करने की अभिलाषा है तो वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करो। हे सुरश्रेष्ठ ! वेदानुमत विधि से किया गया यज्ञ अक्षय फलदायी होगा। उन यज्ञ-बीजों से तुम यज्ञ आरम्भ करो जिनमें हिंसा का नाम नहीं है। हे इन्द्र ! प्राचीनकाल में बीस वर्ष पुराने रखे हुये बीजों द्वारा ब्रह्मा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था। वह महान धर्ममय यज्ञाराधन हैं।

इस प्रकार उन तत्वदर्शी समागत मुनियों के कहने पर विश्वभोक्ता इन्द्र को यह संशय उत्पन्न हो गया कि अब हमें स्थावर तथा जंगम इन दो प्रकार के उपकरणों में से किसके द्वारा यज्ञाराधन करना चाहिये। इन्द्र के साथ विवाद में पड़े उन मुनियों ने यह समझौता किया कि इस विषय में राजा वसु की सम्मति ग्रहण की जाय।

उन सबने राजा वसु के पास जाकर कहा—हे परम बुद्धिमान राजन् ! आप परम धार्मिक राजा उत्तानपाद के पुत्र और स्वयं महामहिमशाली हैं, अतः हम लोगों के इस संशय को दूर करें। कृपया यह बतावें कि आपने यज्ञों की विधि किस प्रकार की देखी है ? इस बात को सुनकर राजा ने उचित-अनुचित का विचार न करके केवल ग्रन्थों के यज्ञ विषयक वचनों को स्मरण करके यह कहा कि शास्त्रीय उपदेशों के अनुसार यज्ञाराधन करना चाहिये। शास्त्रों का कथन है कि मेध्य पशुओं द्वारा अथवा बीजों और फलों द्वारा यज्ञ करना चाहिये। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है, ऐसा मुझे वेद वाक्यों से मालूम हुआ है। परम तपस्वी योगी, महर्षियों के द्वारा अविष्कृत मंत्र-समूह हिंसा के द्योतक हैं और तारकादि दर्शनों द्वारा भी यज्ञों का हिंसामूलक होना अनुमित है। राजा वसु की ऐसी बातों से निरुत्तर होकर उन योगयुक्त तपस्वी ऋषियों ने कहा—'हे राजन् ! तू राजा होकर भी ऐसी मिथ्या बात कह रहा है, अतः चुप रह।'

ऐसा कहने के बाद उन्होने नीचे की ओर बने एक भवन की ओर देखा और कहा 'अब तू रसातल में प्रवेश कर।' मुनियो के ऐसा कहते ही राजा वसु, जो आकाशचारी था वसुधा तल पर आ गया। अत पण्डित व्यक्ति को भी धर्म का निर्णय करने में बहुत सतर्क रहना चाहिये। क्योंकि धर्म के अनेक द्वार होते हैं, इसकी सूक्ष्म गति का वास्तविक ज्ञान अतिशय गूढ है। महर्षियो ने जीव हिंसा को धर्म का द्वार नही माना है।"

यद्यपि अधोगति मे पडे जीवो के लिये हिंसा का सर्वथा त्याग और अहिंसा के उच्च आदर्श का पालन बडा कठिन है, तोभी धर्म कार्यों मे हिंसा का प्रवेश कदापि वाछनीय नही कहा जा सकता। किसी एक व्यक्ति के हिंसा करने से उसका प्रभाव आस-पास के थोडे लोगों पर ही पडता है और उसे कोई महत्व नही दिया जाता, पर धर्म-कार्य में हिंसा होने से उसे एक प्रमाण की तरह मान लिया जाता है और समस्त समाज के लिये ही एक दुष्प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होने का मार्ग खुल जाता है। अत यज्ञों के रूप में जीव हिंसा का विधान निस्सन्देह, क्रूरता और अधार्मिकता का परिचायक है और इससे मनुष्य की निम्न वृत्तियो को प्रोत्साहन मिलकर उसका पतन ही होता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण—

प्राचीन समय मे ज्ञान विज्ञान के सम्बन्ध मे जितनी खोज की गई थी वह पर्याप्त महत्वपूर्ण है। उसी के आधार पर आज का विज्ञान चमत्कारी अविष्कार कर रहा है। अग्नि और जल द्वारा भाप का इजिन बनाकर रेल चलाना निस्सन्देह बुद्धिमत्ता का प्रमाण है, पर जिन मनुष्यों ने दावानल के भयकर अग्निकाण्ड मे से थोडी अग्नि लेकर उसे गृहोपयोगी रूप में प्रयोग किया वह भी कम प्रशसा के पात्र नही है। इसी प्रकार वर्तमान-युग मे अणु-बम एक युग परिवर्तनकारी अविष्कार है, पर जिन भारतीय मनीषियो ने कई हजार वर्ष पहले यह घोषित कर दिया था कि ससार के प्रत्येक पदार्थ का आदि कारण परमाणु हैं और वही सृष्टि-प्रक्रिया का मूल आधार है वे ही परमाणु-विज्ञान के आदि पुरुष माने जायेंगे। वायु-पुराणकार की दृष्टि भी सृष्टि-प्रक्रिया और उससे निर्मित विभिन्न प्रकार के पदार्थों के मूल कारण पर रही है। यद्यपि उन्होंने पौराणिक परम्परा के अनुसार सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्रो को

देवता मानकर उनके रथों, घोड़ों, महलों और दरबारियों का मनोरंजक वर्णन किया है, जिससे जन समूह उनकी ओर आकर्षित हों, पर साथ ही बीच-बीच में विशुद्ध वैज्ञानिक तथ्यों का परिचय भी दे दिया है। यद्यपि सूर्य को उन्होंने सर्वसाधारण के ज्ञानानुसार पृथ्वी से बहुत छोटा और चन्द्रमा से आधा प्रकट किया है और लोकरंजन के निमित्त उसमें मुनि, ऋषि गन्धर्व, अप्सरा यातुधान, सर्प आदि का दरबार लगता भी बतलाया है, पर साथ ही अन्य स्थान पर यह भी प्रकट कर दिया है संसार का एकमात्र और आदि कारण सूर्य ही है। उसमें कहा गया है—

"तीनों लोकों का मूलकारण सूर्य ही है इसमें सन्देह नहीं। देवता, असुर और मनुष्यों से पूर्ण यह सम्पूर्ण जगत सूर्य का ही है। रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र और चन्द्रादि देवों का जो तेज है, वह सूर्य का ही तेज है। ये ही सर्वात्मा, सर्वलोकेश और मूलभूत परम देवता है। सूर्य से ही सब उत्पन्न होते हैं और सूर्य में ही सब लीन होते हैं। पूर्वकाल में लोकों की उत्पत्ति और विनाश सूर्य से ही हुआ है। जहाँ से बारम्बार क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतु, वर्ष, युग आदि उत्पन्न होकर जिसमें लय को प्राप्त होते हैं, वह सूर्य ही है। सूर्य को छोड़कर और किसी साधन से काल की गणना नहीं की जा सकती। और बिना काल तथा समय के न शास्त्र, न दीक्षा, न दैनिक कृत्य हो सकते हैं। तब न ऋतुओं का विभाग होगा, न पुष्प खिलेंगे न फल-फूल की उत्पत्ति होगी, न सस्य होगा न औषधियाँ बढ़ेंगी। संसार को प्रतप्त करने वाले और जल का आहरण करने वाले सूर्य के बिना यहाँ क्या, स्वर्ग में भी देवों का व्यवहारिक कार्य रुक जायगा। विप्रो! सूर्य ही काल है, अग्नि है और द्वादशात्म प्रजापति है। ये ही तीनों लोकों के चराचर को प्रतप्त किया करते हैं। सूर्य देव परम तेजस्वी और लोक पालों के आत्मा है ये उत्तम वायु-मार्ग का अवलम्बन करके किरणों द्वारा ऊपर-नीचे, अगल-बगल और सभी जगहों में ताप-दान करते हैं।"

वायु पुराण ने सूर्य के विषय में जो लिखा है वही आधुनिक विज्ञान की खोज से प्रकट हुआ है। सूर्य से ही समस्त ग्रहों और उपग्रहों की उत्पत्ति होती है, वही इनमें जीवन और प्राणतत्व की उत्पत्ति का मुख्य हेतु है, वही

जगत के सब व्यवहारों को स्थिर रखने का आधार है और अन्त मे वही इन सब की प्रलय भी करता है, यही विज्ञान का आधुनिकतम सिद्धान्त है। धर्म शास्त्रों के मतानुसार भी अव्यक्त परब्रह्म का प्रकट रूप सूर्य ही है। वही उत्पत्ति पालन, और प्रलय के कर्ता के रूप मे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के कार्यों की पूर्ति करता है। इस प्रकार धर्मशास्त्र तथा विज्ञान इस सम्बन्ध में एक मत है कि सृष्टि का मूल आधार सूर्य ही है और यही बात उपरोक्त उद्धरण मे वायपुराणकार ने स्पष्ट शब्दों मे कह दी है।

यह भी स्पष्ट है कि उस युग मे यन्त्र-विद्या का इतना अधिक प्रचार नही था कि आजकल की तरह भीमकाय दूरबीनो तथा अन्य ताप-मापक यन्त्रों द्वारा दूरवर्ती ग्रहों, ताराओ का आन्तरिक रहस्य जान सकें। स्वय वायुपुराण ने ज्योतिष सम्बन्धी बातो का पता लगाने के लिये जिन साधनो का वर्णन किया है उनमे यन्त्रो का जिक्र नही किया है 'ज्योतिमण्डल का विस्तार' शीर्षक प्रकर्ण के अन्त मे उन्होंने स्वय लिखा है—

"ज्योतिर्मण्डल का ठीक-ठीक वर्णन कोई भी मनुष्य चर्म-चक्षुओं से देखकर नही कर सकता। बुद्धिमान मनुष्य शास्त्र, अनुमान, प्रत्यक्ष एव उपपत्ति (युक्ति) द्वारा निपुणतापूर्वक परीक्षा कर इनमे भक्ति और श्रद्धा करे। बुद्धिमान विप्रो ! ज्योति तत्व के निर्णय मे चक्षु, व शास्त्र, जल, लिखित ग्रन्थादि और गणित वे ही पाँच कारण कहे गये हैं।" इससे यह सिद्ध होता है कि पुराण के रचयिता अपनी तर्क बुद्धि और योग शक्ति (एकाग्रता और ध्यान) से सृष्टि मूल रहस्यों को अधिकांश में समझ सके थे। यदि उन्होंने इन विषयों को रूपक, उपमा, दृष्टान्त के आवरण मे छिपाकर प्रकट किया है, तो इसका कारण यही है कि वे जनसाधारण को सामने गहन तत्वों अधिक रूप में रखना निरर्थक समझते थे। सामान्य बुद्धि वालों को अत्यन्त सरल रूप मे इन तत्वों से परिचित करा देने का काम जैसा युक्ति और चतुरता से इन पुराणकारो ने सम्पन्न किया उस प्रशंसनीय ही कहा जायगा। इनके द्वारा सर्वसाधारण मे सैकड़ों वर्षों तक आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक शिक्षा का प्रचार होता रहा और लोगो मे धर्म-कर्त्तव्य-बुद्धि जागृत रही।

यह बात दूसरी है कि काल क्रम से इस क्षेत्र मे भी स्वार्थी और कम

योग्यता वाले लोगों ने प्रवेश किया और अपने स्वार्थ की पूर्ति की निगाह से तरह-तरह की मिलावट करके पुराणों की निर्मल धारा को गंदला बना दिया। स्वार्थीजन सदैव अपना दाव-घात ढूंढ़ते रहते हैं और जहां कहीं लाभ का मौका देखते हैं वहीं तरह-तरह के छल-बल, धूर्तता से भीतर घुस कर दोष उत्पन्न करते हैं और अपना मतलब पूरा करने की चेष्टा करते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी इस बात की भी चिन्ता नहीं करते कि हमारी इस सामयिक स्वार्थपरता के कारण जन-जीवन बहुत समय के लिये पतित और गर्हित हो जायगा वर्तमान समय की राजनीतिक संस्थाओं में इसका उदाहरण भलीभांति देखा जा सकता है कि किस प्रकार लोग देशभक्त और जन नायक का वेश धर कर भीतर घुस जाते हैं और सच्चे कार्यकर्ताओं को हटाकर भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं। यही बात पुराणों के सम्बन्ध में भी हुई है और इसी से हमको उनका विकृत रूप दिखलाई पड़ता है।

साम्प्रदायिकता के दोष का शमन—

पुराणों पर प्रायः साम्प्रदायिक विद्वेष की बातें फैलाने का दोषारोपण किया जाता है। कई शैव पुराणों में ब्रह्मा और विष्णु के सम्बन्ध में बहुत-सी हीनता द्योतक बातें लिखी हैं और एकाध वैष्णव पुराण में उसी तरह शिव को नीचा सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। किसी शैव लेखक ने लिखमारा कि 'विष्णु को प्रणाम करने वाला व्यक्ति नरकगामी होता है' तो उसी के मुकाबले के किसी वैष्णव नामधारी ने शिव-पूजा को घोर पाप कर्म घोषित कर दिया। इस दृष्टि से 'वायु पुराण' का दर्जा काफी ऊँचा माना जायगा कि जिसमें 'शैव-पुराण' कहलाने पर भी विष्णु के सम्बन्ध में कोई निन्दात्मक बात नहीं है, वरन् तीन अध्यायों में विष्णु-वंश का वर्णन करते हुये जगह-जगह उनकी प्रशंसा ही की गई है। 'वायु पुराण' में भी दक्ष और शिव के विरोध तथा संघर्ष की कथा दी गई हैं पर उसमें विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि की वैसी दुर्गति तथा हीनता का एक शब्द भी नहीं मिलता जैसा कि 'शिवपुराण' आदि में दिखाया गया है। 'वायु पुराण' में शिव को ही सृष्टि का मूल और सर्व शक्तिमान बतलाया गया है पर विष्णु के सम्बन्ध में भी उसने जब कभी

उनकी चर्चा आई है, सम्मान युक्त भाषा का प्रयोग किया है। विष्णु के विभिन्न अवतारो के रहस्य को जानने की इच्छा रखने वाले ऋषियों ने उनकी महिमा का जिस प्रकार वर्णन किया उससे प्रकट होता है कि इस पुराण के रचयिता के विचारानुसार विष्णु का सम्मान महादेव के समान ही है। ऋषियो ने सूतजी से विष्णु भगवान की कथा सुनने की अभिलाषा करते हुये कहा—

''सूतजी! भगवान विष्णु किस लिये पृथ्वी पर प्रादुर्भूत होते हैं? उनके कितने अवतार कहे जाते हैं? भविष्य में अन्य कितने अवतार होंगे? युगान्त के अवसर पर ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जाति में वे किस लिये उत्पन्न होते हैं? वे इस प्रकार बारम्बार मानव-योनि मे किस लिये जन्म धारण करते हैं? इसे हम लोग जानना चाहते हैं, कृपया कहिये। उन परम बुद्धिमान शत्रु सहारकारी भगवान कृष्ण के शरीर से जो-जो कर्म सम्पन्न होते हैं, उन सबको हम भली भाँति सुनकर चाहते हैं। उनके ऐसे कार्यों को क्रमपूर्वक हमे बताइये, उसी प्रकार उनके अवतारो के विषय मे भी वर्णन कीजिये। उन सर्वव्यापी भगवान की प्रवृत्ति के विषय मे भी हमें जिज्ञासा है। महा महिमामय वे भगवान विष्णु किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए वसुदेव के कुल मे उत्पन्न होकर वासुदेव (वसुदेव के पुत्र) की पदवी प्राप्त करते हैं? देवताओ और मनुष्यो को उचित मार्ग पर लगाने वाले, भूर्भुव आदि लोको के उत्पत्तिकर्त्ता भगवान हरि किसलिए दिव्यगुण सम्पन्न अपनी आत्मा को मानव-योनि मे समाविष्ट करते हैं? चक्र धारण करने वालो मे श्रेष्ठ जो भगवान अकेले ही ससार के मानवमात्र के मनरूपी चक्र को सर्वदा परिचालित करते रहते हैं, उन्हें मानव-योनि मे उत्पन्न होने की इच्छा क्यों हुई? सर्वत्र व्याप्त रहने वाले जो भगवान विष्णु इस समस्त चराचर जगत को सर्वत्र रक्षा करने वाले हैं, वे किसलिये इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं और किसलिए गौओ का पालन करते हैं।

"जो भूतात्मा भगवान ससार के समस्त भूतो (पृथ्वी, जल, अग्नि आदि) को धारण करने वाले तथा उत्पन्न करने वाले हैं, जो लक्ष्मी द्वारा धारण किये जाने वाले हैं, वे एक मर्त्यलोक निवासिनी सामान्य गृहिणी के गर्भ मे कैसे लिये आते हैं। जिन्होंने देवताओं को यज्ञभोक्ता तथा पितरो को श्राद्धभोक्ता बनाया, जो स्वयं यज्ञादि शुभ कार्यों मे विधि के अनुसार भोग के लिए

यज्ञ रूप में प्रतिष्ठित होते हैं, जिन्होंने युग के अनुसार तीन लोकों की क्रमानुसार रचना कर क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, भूत, भविष्यत्, वर्तमान, ये तीन काल, मुहूर्त, तिथि, मास संवत्सर, ऋतु, काल, योग आदि की रचना की है, जिन्होंने सर्व जीव समूहों में व्याप्त रहकर सब जीवों की सृष्टि की है, जो मानव की इन्द्रियों में योग द्वारा रमण करते हैं, जो गत-आगत सबके नेता हैं, जो सर्वत्र विराजमान एवं जगत के विस्तृत विविध विधानों के अधीश्वर हैं, जो धर्मात्मा लोगों की एकमात्र गति हैं, जो पापात्माओं के लिये दुर्गतिस्वरूप हैं, जो चारों वर्णों, के उत्पत्तिकर्ता एवं रक्षक हैं, उनका वर्णन हमें सुनाइये।

"इन समस्त लोकों की सृष्टि करने वाला जो सनातन पुरुष है, वह इस मर्त्यलोक में किस लिये आगमन करता है ? परम बुद्धिमान सूतजी ! इस बात का हमें बड़ा ही सन्देह है और महान विस्मय तो यह है कि जो स्वयमेव सद्‌गति प्राप्त करने वालों की गति है, वह मनुष्य शरीर धारण ही क्यों करता है ? भगवान विष्णु के इन आश्चर्य में डालने वाले कर्मों के विषय में हम लोग क्रमानुसार सुनना चाहते हैं। वेद एवं देवगण उन भगवान विष्णु को परम आश्चर्यमय बतलाते हैं। हे महामते ! भगवान विष्णु की उस आश्चर्यमयी सम्भूति को आप बतलाइये। उनका आख्यान कहने और सुनने वालों को परम सुख देने वाला है। उनके बल एवं पराक्रम की विशेष ख्याति है। वे परम ऐश्वर्यशाली एवं महान हैं। उनके कर्म आश्चर्य से भरे हैं, उनके पराक्रम के सम्बन्ध में भी हम लोगों को बतलाइये।"

किसी अन्य शैव-पुराण में विष्णु का इस प्रकार गुणगान नहीं पाया जाता। उल्टा अनेक लेखकों ने उनके लिये अनुचित, अपमानजनक शब्द और घटनाक्रमों का प्रयोग किया है। यह शैली ठीक नहीं है और इस प्रकार की ओछी बातें पढ़ने से पाठक के हृदय में कहने वालों के प्रति सम्मान की भावना कम हो जाती है। इस दृष्टि से 'वायु पुराण' के वर्णन सर्वत्र सभ्यता और शिष्टता की रक्षा करने वाले हैं। जिस प्रकार भगवान विष्णु शिवजी की स्तुति करते हैं उसी प्रकार शिवजी भी उनकी सदैव प्रशंसा ही करते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व जब ब्रह्माजी विष्णु की नाभि कमल से उत्पन्न हुए तब भगवान शंकर वहाँ आये और विष्णु द्वारा स्तुति किये जाने पर प्रसन्न

होकर बोले—"विष्णो ! देव ! शाश्वत ! सुनो, मेरी तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रीति है । प्रकाश-अप्रकाश, जङ्गम-स्थावर, अथवा यह सारा विश्व ही रुद्र और नारायणमय है। मैं अग्नि हूँ तुम सोम हो, तुम रात्रि और मैं दिन हूँ। तुम ऋत हो मैं सत्य हूँ। तुम यज्ञ हो मैं उसका फल हूँ। तुम ज्ञान हो मैं ज्ञेय हूँ। सुकृत करने वाले जन तुम्हारा जप कर, तुमको प्रसन्न कर मुझमे प्रविष्ट हो जाते हैं। युगक्षय काल मे हम दोनो को छोडकर दूसरी कोई गति नही है। तुम अपने को प्रकृति समझो और मुझको पुरुष। तुम जिस प्रकार मेरे आधे शरीर हो उसी प्रकार मैं भी तुम्हारा आधा शरीर हूँ। तुम हमारे महान श्रीवत्स पद लक्षण श्यामल वाम पार्श्व हो और मैं नील लोहित दक्षिण पार्श्व हूँ। हे विष्णो तुम मेरे हृदय हो और मैं तुम्हारे हृदय मे स्थित हूँ। तुम सभी कार्यों के कर्ता और मैं कार्याधिष्ठित देवता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो।"

वायु पुराणकार ने जो इस प्रकार की सदाशयता, शालीनता का परिचय दिया है वह धर्म के लिये परम हितकारी हैं। यदि अन्य पुराणकार भी ऐसी ही मनोवृत्ति का परिचय देते तो आज यह देश साम्प्रदायिक विद्वेष और पारस्परिक विरोध-भावना से बहुत कुछ मुक्त होता। यदि कोई किसी अन्य के उपास्य देव पर कटाक्ष करेगा तो वह भी वैसी ही भावना प्रकट करेगा और इससे समाज मे कलह तथा विशृङ्खलता फैलेगी और धर्म की अप्रतिष्ठा होगी । इसलिए इस विषय मे 'वायुपुराण' की नीति सर्वथा सराहनीय है।

'वायु पुराण' के वर्णनों की स्पष्टता—

जैसा पहले बतलाया जा चुका है पुराणकारो ने अनेक वैदिक-तत्वो से रूपक, अलकारयुक्त बडी-बडी कथायें बनाकर मनोरजन के साथ धर्म-शिक्षण की विधि से काम लिया है। उदाहरण के लिए 'वामनावतार' का कथानक प्रसिद्ध है। वेदो में विष्णु की प्रशसा करते हुए दो चार स्थानो पर यह कहा गया है कि "यह समस्त विश्व आपकी पैरो की धूल मे समाया हुआ है।" यह वचन ब्राह्मण ग्रन्थो मे व्याख्या द्वारा बलि-वामन की सक्षेप कथा के रूप मे बदल दिया गया और पुराणो मे इसे क्रमश: बढाते हुए अन्त मे 'वामन पुराण' जैसे स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप मे प्रस्तुत कर दिया गया।

यही बात देवी या दुर्गा की कथा कथा के सम्बन्ध में है। 'मार्कण्डेय पुराण' में दी गई 'दुर्गा सप्तशती' की कथा में दुर्गा और असुरों के संग्राम का वर्णन बड़े वीररसापूर्ण और रोचक ढङ्ग से किया गया है। 'देवी भागवत' में तो उसे एक 'महापुराण' के समान विस्तृत रूप दे दिया गया है। इनमें पूर्व चरित्र में मधु-कैटभ का वध है, मध्यम चरित्र में महिषासुर का वध है और उत्तर चरित्र में शुम्भ-निशुम्भ आदि के वध का वर्णन किया गया है।

देवी का उल्लेख वेदों में भी आया है पर वहाँ विश्व की मूलभूत चिति-शक्ति ही 'देवी' है। उसका एक मुख्य रूप वाक् या वाणी भी बताया गया है। वह 'वाग्देवी' अपनी महिमा और शक्ति का वर्णन करती हुई कहती है—

"मित्र और वरुण, इन्द्र और अग्नि, दोनों अश्विनीकुमार इनको मैं ही धारण करती हूँ। वसु, रुद्र, आदित्य इस 'त्रिक' का संचरण मेरे ही द्वारा होता है। ब्रह्माणस्पति, सोम, त्वष्टा, पूषा, भग इनका भरण करने वाली मैं ही हूँ। राष्ट्र की नायिका मुझे ही समझो। मैं ही वस्तुओं का संचय करने वाली वसु पत्नी हूँ। जितने यज्ञीय अनुष्ठान हैं सबमें प्रथम मेरा स्थान है। देवों ने मुझे अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित किया है। जो देखता, सुनता और साँस लेता है वह मेरी ही शक्ति से अन्न खाता है। मैं जिसका वरण करती हूँ उसे ही उग्र, ब्रह्मा, ऋषि और मेधावी बना देती हूँ। रुद्र के धनुष में मेरी ही शक्ति प्रविष्ट है। मेरा अपना जन्मस्थान जलों के भीतर पारमेष्ठी समुद्र में है। वहाँ से जन्म लेकर मैं सब लोकों में व्याप्त हो जाती हूँ। मेरी ऊँचाई द्युलोक को स्पर्श करती है। झंझावात की तरह साँस लेती हुई मैं सब भुवनों का उपादान हूँ। द्युलोक (स्वर्ग) और पृथ्वी से भी परे मेरी महिमा है।

(ऋग्वेद १०।१२५)

पर पुराणों में देवी के वर्णन को अत्यन्त विस्तारयुक्त कथा का रूप देकर एक भिन्न प्रकार की उपासना पद्धति तथा सम्प्रदाय का स्रोत बना दिया गया। उनमें मधु-कैटभ वध के अवसर पर देवी का विष्णु की 'महामाया' के रूप में वर्णन किया गया, जिसने ब्रह्माजी द्वारा स्तुति किये जाने पर विष्णुको जगाया और मधु-कैटभ को मोहित करके विष्णु द्वारा उनका वध कराया।

महिषासुर के उपाख्यान मे उसके पूरे शरीर का वर्णन किया गया है कि महा-देव जी के मुख से जो तेज निकला उससे उसका मुख बना, यम के तेज से केश और विष्णु के तेज से उसकी दोनो बाहु बनी। चन्द्रमा के तेज से दोनो स्तन, इन्द्र के तेज से मध्यदेश, वरुण के तेज से जघा और उरु, पृथ्वी के तेज से नितम्ब, ब्रह्मा के तेज से दोनो चरण, सूर्य के तेज से पैरो की अगुली और वसुगणो के तेज से हाथो की अगुली बनी। कुवेर से नासिका, प्रजापति से दांत, पावक के तेज से तीनो नेत्र, वायु के तेज से दोनो कान बने।" इस प्रकार वह मगलमयी देवी उत्पन्न हुई। सब देवताओ ने उसे अपने-अपने मुख्य अस्त्र-शस्त्र भी दिये जिनके द्वारा सग्राम करके उसने महिषासुर को मार दिया।

'वायु पुराण' मे भी मधु कैटभ के वध का वर्णन आया है। यह वर्णन बडे सरल ढङ्ग से किया गया है। उसमे कहा गया है—

"भगवान शकर के चले जाने पर प्रसन्न होकर विष्णु भगवान फिर शयन करने जल म घुस गये। तब पद्म जन्मा ब्रह्माजी भी प्रसन्न होकर उस पद्मासन पर जा बैठे। उसके बहुत दिन बाद वहाँ मधु कैटभ नामक दो अतुल वीय बलशाली भ्राताओ ने तरुण सूर्य की तरह चमकने वाले उस पद्म को हिलाना प्रारम्भ कर दिया। उन दोनो की आखें अन्धकार मे चमक रही थीं और वे दोनों ही वीर हँस-हँस निर्भयभाव से पद्म पत्रो को तोड रहे थे। उन दोनो ने ब्रह्मा से कहा तुम हमारे भक्ष्य बनो। यह कहकर वे दोनो अन्तर्द्धान हो गये। पद्मयोनि ब्रह्मा ने उनके कठोर भाव को और अपने पराक्रम को जानकर तात्कालिक रहस्य को जानना चाहा। वे उस कमल नाल के सहारे सीधे रसातल मे उतर गये। वहाँ उन्होंने कृष्णाजिन और उत्तरीय धारी विष्णु को देखा। उन्होने उनको जगाया और जगने पर कहा—'देव! हमें भूतो से भय हो रहा है, उठिये, हमे बचाइये हमारा कल्याण कीजिये।'

'शत्रु को दमन करने वाले स्वय भगवान विष्णु हँसते हुये बोले—'कुछ चिन्ता नहीं, डरने की कोई बात नहीं।' ब्रह्मा जी के चले जाने पर उन अनन्त भगवान ने अपने मुख से विष्णु और जिष्णु नामक दो भ्राताओं को उत्पन्न करके कहा—तुम दोनो ब्रह्मा की रक्षा करो। इधर मधु-कैटभ ने विष्णु जिष्णु के आयागमन की वार्ता जान कर उनकी ही तरह अपना रूप बनालिया। उन्होंने

जल को अपनी माया से स्तम्भित कर दिया और विष्णु-जिष्णु से संग्राम करने लगे। उनको युद्ध करते हुये सौ दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये पर रणमद से मत्त उनमें से कोई भी युद्ध से विरत नहीं हुआ। उनका आकार-प्रकार और संस्थानादि एक प्रकार का था और गति, स्थिति भी उनकी समान ही थी तथा दोनों का स्वरूप भी एक प्रकार का ही था, इससे ब्रह्मा व्याकुल हो ध्यान करने लगे। तब उन्होंने दिव्य-दृष्टि से उनके रहस्य को समझा और विष्णु-जिष्णु के ऊपर के शरीर को कमल केसर के सूक्ष्म कवच द्वारा बाँध दिया और मन्त्रों का पाठ करने लगे। मन्त्र जपते हुए ब्रम्ह को एक इन्दुवदना, पद्म-सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। ब्रह्मा ने पूछा—तुम कौन हो ? कन्या ने कहा आप मुझे विष्णु की आज्ञानुवर्तिनी मोहिनी माया समझें। इधर युद्ध करते-करते मधु-कैटभ थक गये और विष्णु-जिष्णु ने उनको मार डाला।"

दक्ष-यज्ञ का विचित्र कथानक—

वायु-पुराणमें दक्ष-यज्ञके विध्वंस का जो वर्णन किया है वह अन्य समस्त पुराणों से भिन्न है। अभी तक सब जगह यही पढ़ने में आया था कि शिव-पत्नी सती ने दक्ष-यज्ञ में शंकर का भाग न देखकर योगाग्नि में जल कर आत्म-बलिदान कर दिया, तब शिवजी ने वीरभद्र को भेजकर यज्ञ का विध्वंस करा दिया। इसके बहुत काल पश्चात् देवताओं की अपार चेष्टा करने पर उन्होंने पार्वती से विवाह किया था। पर 'वायुपुराण' का कथन है कि किसी समय सती दक्ष के घर परिवार वालों से मिलने गई थी पर दक्ष ने उसका सम्मान नहीं किया जिससे उसने स्वतः आत्मघात कर लिया। तब शिव ने दक्ष को श्राप दिया कि तुम अगले जन्म में एक वृक्ष-कन्या के गर्भ से उत्पन्न होंगे और तब भी तुम्हारा नाम दक्ष ही रखा जायगा। ऐसा ही हुआ है और उस जन्म में भी दक्ष ने एक यज्ञ किया और महादेव को उसमें नहीं बुलाया। उस अवसर पर देवताओं को आकाश मार्ग से जाते देखकर पार्वतीजी ने इसका कारण पूछा। जब उनको शिव के अपमान की बात मालूम हुई तो वे बहुत रुष्ट हुईं और शिवजी को प्रेरित करके वीरभद्र द्वारा यज्ञ को नष्ट करवा दिया। उसी समय उमा के क्रोध से भद्रकाली की उत्पत्ति हुई जिसने इस कार्य में पूर्ण सहयोग दिया।

इस प्रकार 'वायुपुराण' में वर्णित दक्ष-यज्ञ के नष्ट किये जाने का वर्णन 'शिव पुराण' 'रामायण' आदि के वर्णन से बहुत भिन्नता रखता है।

सम्भवत पुराण-प्रेमी इसका उत्तर 'कल्प-भेद' बतलायें, पर जब और सब कथायें इसी समय की हो और अन्य ग्रन्थो से मिलती हो तो किसी एक को ही पूर्वकल्प की कहना कोई सारयुक्त तर्क नही है।

ज्योतिर्मय लिङ्ग की कथा—

पुराणों मे अनेक स्थलों पर सृष्टि आरम्भ होने से पूर्व ब्रह्मा और विष्णु के पारस्परिक विवाद के अवसर पर ज्योतिर्लिङ्ग के उद्भव की कथा दी गई है और एकाध पुराण मे इस प्रसग मे ब्रह्माजी को बहुत नीचा दिखाया गया है और विष्णु को भी शिव की अपेक्षा बहुत हीन प्रकट किया गया है। पर 'वायु-पुराण' में इस कथा को भी बहुत स्वाभाविक रूप मे दिया गया है और शिवजी द्वारा यही कहलाया गया है कि—"देवताओ में श्रेष्ठ ! मैं तुम दोनो पर प्रसन्न हूँ। पूर्वकाल मे तुम दोनों सनातन पुरुष मेरे शरीर से ही उत्पन्न हुये हो। यह लोक पितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने हाथ हैं और यह नित्य युद्ध मे स्थित रहने वाले विष्णु मेरे बाँये हाथ हैं।" इस कथानक मे और अन्य पुराणों में ब्रह्मा को झूँठा बनाने और उनका एक मस्तक काट दिए जाने के अत्युक्तिपूर्ण वर्णनो मे जमीन आसमान का भेद है।

अध्यात्म ज्ञान की प्रधानता—

ग्रन्थ के अन्त मे पुराणकार ने व्यासजी के हृदय में निराकार और साकार ब्रह्म का प्रश्न उठने की बात कह कर इस विषय पर विचार किया है कि परब्रह्म का स्वरूप वेदो के कथनानुसार अक्षर, अव्यय, अतीन्द्रिय और चिन्मात्र है, अथवा जैसा भक्ति प्रधान कथाओं के प्रणेता बतलाते हैं वह नाना प्रकार के आभरण धारण करके, वेणु वादन करते हुए गोपियो सङ्ग रासलीला, हास-विलास, रतिक्रीडा आदि के प्रेमी, गौओं की रक्षार्थ इधर-उधर दौड़ते हुये राधा विलासी के रूप मे है। भक्तगणो ने उन परम पुरुष श्रीकृष्ण को गोलोक धाम के वासी बताया है और कहा है कि वे अक्षर, अव्यय ब्रह्म से भी परे हैं।

सत्यवती नन्दन व्यास जी जब बहुत सोच विचार करने पर भी इस समस्या का निराकरण नहीं कर सके तो उन्होंने एकान्त में बैठकर आहार, चित्त एवं आसन पर अधिकार प्राप्त करके एकाग्र मनसे चारों वेदों का आवाहन किया। दीर्घ काल तक इस प्रकार स्मरण और ध्यान करने के पश्चात् मूर्तिमान वेद उनके समक्ष उपस्थित हुये तो व्यास जी ने उनसे जिज्ञासा की कि—"अपने शब्द ब्रह्मय शरीरों से आप लोगों ने अधिकारियों में भेद बनाकर कर्म और ज्ञान का उपदेश दिया है। उसके अनुसार कामनाओं से घिरे हुये चित्त वाले मनुष्यों के जो कुछ सत्कर्म होते हैं, उसका फल स्वर्ग कहा गया है। और ईश्वर में ही अपनी चित्त वृत्ति लगाने वाले पुरुषों के कर्मों का फल चित्त शुद्धि मानी गई है। चित्त शुद्धि से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है। वही मोक्ष ही ब्रह्म के साथ एकता है, वह सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप हैं। यह सब जान लेने पर भी मेरे हृदय में एक जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है कि उस परब्रह्म से भी बढ़ कर कोई अन्य सत्ता है अथवा नहीं ?"

वेदों के कथन से व्यास जी को जो कुछ भान पड़ा उसका निष्कर्ष यही निकला कि 'वह परब्रह्म अक्षर, परम और कारणों का कारण स्वरूप है, अर्थात् उससे परे कोई नहीं है। पुष्प के रस एवं गन्ध की भांति वह आत्मस्वरूप का भी आत्मस्वरूप हैं, उसी को सबसे परम समझो। वह अक्षर ब्रह्म शब्दों द्वारा गम्य नहीं है।"

अधिकांश पुराणों में जिस प्रकार अवतारों के वर्णन को प्रधानता देकर भगवान के साकार स्वरूप की उपासना पर अधिक जोर दिया है, वह बात 'वायु पुराण' में देखने में नहीं आती। इसमें ज्ञान और योग पर आधारित अध्यात्म-मार्ग की श्रेष्ठता स्वीकार की गई है और अन्त में व्यास के सन्देह की कथा के रूप में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से प्रकट भी कर दिया है।

'वायु-पुराण' की इस प्रकार की अनेक विशेषताओं पर ध्यान देने पर उसे 'महा-पुराणों' की सूची में स्थान देना सब प्रकार से समीचीन मालूम देता है। वास्तव में पौराणिक-साहित्य एक विशेष क्षेत्र और वर्ग से सम्बन्धित है

और मध्यकाल मे उसका बहुत अधिक विस्तार किया गया है। उसमे केवल १८ महापुराणों का ही समावेश नहीं है, वरन् १८ उप-पुराण, १८ अति-पुराण और १८ लघु-पुराणो का समावेश भी उनमें कर दिया गया है। इन सब ग्रन्थों की विषय-सूची और वर्णन शैली पर जब दृष्टिपात करते हैं तो 'वायु पुराण' का दर्जा बहुत ऊँचा जान पड़ता है। उसमें सृष्टि रचना, जीव-जगत का विस्तार, मानवीय-सभ्यता का विकास, समाज व्यवस्था, शासन व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था का क्रमश. उद्भव आदि विषयो का अन्य कितनेही पुराणो की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक तथा बुद्धिसगत ढग से वर्णन किया है। हमारा विश्वास है कि पाठकगण इस पुराण का अध्ययन करके अनेक प्राचीन युग सम्बन्धी तथ्यो को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे। धर्म के स्वरूप और उपासना का भी इसने जिस रूप में वर्णन किया गया है उससे विवादग्रस्त प्रश्न उपस्थित करने के बजाय धर्म के उन मूल तत्वो पर प्रकाश पड़ता है जो मानव जीवन की सार्थकता के लिये मार्गदर्शक सिद्ध होंगे।

—श्रीराम शर्मा, आचार्य

—•×•—

विषय-सूची

१.	मुनियों द्वारा पुराण जिज्ञासा	...	४१
२.	द्वादश वर्षीय सत्र निरूपण	—	४६
३.	प्रजापति सृष्टि-कथन	...	५६
४.	हिरण्य-गर्भ के रूप में विभिन्न तत्वों की उत्पत्ति तथा आदि सृष्टि वर्णन	—	६०
५.	सृष्टि-रचना और दैवी शक्तियाँ	—	७४
६.	सृष्टि रचना के विभिन्न सर्ग, वाराह रूप से पृथ्वी की स्थापना	...	८२
७.	वर्तमान कल्प में मानुषी-सृष्टि, दो कल्पों के बीच की प्रति सन्धि का वर्णन, प्रलय-वर्णन	...	६४
८.	मानव सभ्यता का आरम्भ, विभिन्न युगों में मनुष्य का विकास क्रम	—	१०६
९.	देव-सृष्टि, देव, पितर, असुर, दानव, आदि की उत्पत्ति	·—	१३७
१०.	मन्वन्तर वर्णन—स्वायम्भुव मनु तथा दक्षप्रजापति की सन्तति	...	१५५
११.	पाशुपत योग—प्राणायाम आदि योग के अङ्गों का वर्णन	...	१६८

१२. योगमार्ग में विघ्न—सिद्धियों के कारण पतन की सम्भावना — १७८
१३. योगमार्ग के ऐश्वर्य — १८४
१४. पाशुपतयोग का स्वरूप ... १८७
१५. पाशुपत-योग महिमा ... १९४
१६. शौचाचार द्वारा मनुष्य की सद्गति ... १९७
१७. परमाश्रय प्राप्ति — २०१
१८. प्रायश्चित विधि — २०२
१९. अरिष्ट वर्णन—मृत्यु का समय जानने के लक्षण ... २०५
२०. ओङ्कार प्राप्ति के लक्षण — २१२
२१. कल्प निरूपण ... २१८
२२. कल्प-सख्या निरूपण ... २२६
२३. महेश्वरावतार-योग ... २३४
२४. शार्वस्तोत्र ... २४३
२५. मधुकैटभ उत्पत्ति, चक्रद्वारा उनका वध और सृष्टि रचना — २६६
२६. स्वरोत्पत्ति, ओङ्कार और वेदो का आविर्भाव ... २८४
२७. ऋषिवंश कीर्तन—भृगु मरीचि, अग्नि आदि की संतति ... २९१
२८. अग्नि-वंश वर्णन ... २९७
२९. देव वंश वर्णन — ३०५
३०. युग-धर्म निरूपण ... ३१६
३१. स्वायम्भुव वंश कीर्तन—सात द्वीप के अधिपतियों का वर्णन ... ३२६

३२.	भुवन-विन्यास—भारत के विभिन्न प्रदेशों का वर्णन	....	३३७
३३.	ज्योतिष प्रचार (१) चौदह लोक, सप्तद्वीप, सूर्य, चन्द्र ग्रह, नक्षत्रों का स्वरूप वर्णन	...	३४८
३४.	ज्योतिष प्रचार (२) सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र, ग्रह, आदि की गति, वर्षा करने वाले मेघों का वर्णन	...	३८१
३५.	ध्रुव-चर्या—सूर्य के रथ के देव, गन्धर्व आदि, समस्त ग्रहों के रथ व घोड़ों का वर्णन, ध्रुव द्वारा सबका धारण किया जाना	...	३९३
३५.	(क) ज्योतिष मण्डल का विस्तार—त्रिविधि अग्नि, मंगल आदि ग्रहों की सूर्य से उत्पत्ति, ज्योतिष शास्त्र का आधार	...	४०८
३६.	नीलकण्ठ स्तुति, समुद्र मन्थन में विष के निकलने पर ब्रह्मा द्वारा भगवान शिव की स्तुति और उनका गरल-पान	...	४२७
३७.	लिंगोद्भव स्तुति, ब्रह्मा और विष्णु के सम्मुख ज्योतिर्लिंग का प्रकट होना और दोनों के द्वारा उसकी स्तुति	...	४३८
३८.	पितर-वर्णन—पुरवा द्वारा पितरों का तर्पण, विभिन्न प्रकार के पितरों और उनकी श्राद्ध विधि का वर्णन	...	४४८
३९,	यज्ञ-प्रथा का वर्णन—चारों युगों के धर्म कथन में यज्ञ का महत्व, हिंसारूप यज्ञ का निषेध, राजा वसु का पतन	...	४६२

४०. चारो युगो का आख्यान—चारो युगो का परिमाण, युगभेद, युगधर्म, युगसन्धि, युगाश और युग-सधान का तत्व, राज्य तथा समाज की दशा — ४८१

४१, ऋषि-लक्षण—साधुओ के लक्षण, तपस्या का रूप, युगानुरूप व्यवहार, महर्षि, ऋषि, ऋषीक के भेद, प्राचीनकाल के मुख्य ऋषिवशो की गणना ... ५००

४२ महास्थान तीर्थ वर्णन—वेदो की शाखाओ का विभाजन और उनके प्रवर्तक ऋषियो का परिचय राजा जनक के यज्ञ मे शाकल्य का विनाश ... ५१७

—०—०—

वायु-महापुराण

॥ मुनियों द्वारा पुराण-जिज्ञासा ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।
जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्‌मयममृतं जगत् पिबति ।

प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।
महादेवं महात्मानं सर्वस्य जगतः पतिम् ॥१
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं सर्वज्ञमपराजितम् ।
प्रभुं भूतभविष्यस्य साम्प्रतस्य च सत्पतिम् ॥२

ज्ञानमप्रतिमं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ।
ऐश्वर्यञ्चैव धर्मश्च सहसिद्धिचतुष्टयः ॥३
य इमान् पश्यते भावान्नित्यं सदसदात्मकान् ।
आविशन्ति पुनस्तं वै क्रियाभावार्थमीश्वरम् ॥४

लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय तत्त्ववित् ।
असृजत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥५
तमजं विश्वकर्माणं चित्पतिं लोकसाक्षिणम् ।
पुराणाख्यानजिज्ञासुर्व्रजामि शरणं प्रभुम् ॥६

श्री मन्नारायण को नमस्कार करके और नरों में उत्तम नर को नमस्कार करे । इसी प्रकार देवी सरस्वती को नमस्कार करके इसके पश्चात् 'जय' शब्द का उच्चारण करना चाहिए । सत्यवती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले पराशर ऋषि के पुत्र व्यास मुनि की जय हो, जिनके मुख रूपी कमल से निःसृत

अमृत का यह समस्त जगत् पान करता है। निश्चल, अविनाशी, शाश्वत, महान् आत्मा वाले, समस्त जगत् के पति देव-ईशान महादेव की शरणागति में जाता हूँ ॥१॥ इस लोक की रचना करने वाले, सर्व विषयों के ज्ञाता, पराजित न होने वाले, भूत-काल और भविष्य-काल के पति तथा वर्तमान समय के सत्पति ब्रह्माजी की शरण में जाता हूँ ॥२॥ जिस जगत् के पति का अनुपम ज्ञान और वैराग्य है तथा चारों सिद्धियों के साथ धर्म और ऐश्वर्य भी अद्भुत है ॥ ३ ॥ जो इस सत् और असत् स्वरूप वाले भावों को नित्य देखते हैं वे क्रिया-भाव के अर्थ रूप ईश्वर में फिर प्रवेश कर जाते हैं ॥ ४ ॥ लोकों का सृजन करने वाले और लोकों के तत्व को जानने वाले तत्त्व-वेत्ता ने योग में स्थिर होकर स्थावर और चर समस्त प्राणियों की सृष्टि की है ॥ ५ ॥ पुराण के आख्यानों को जानने की इच्छा रखने वाला मैं उस अजन्मा, विश्वकर्मा अर्थात् सम्पूर्ण विश्व की रचना वाले, ज्ञान के पति लोकों के साक्षी प्रभु की शरण में जाता हूँ ॥६॥

ब्रह्मवायुमहेन्द्रेभ्यो नमस्कृत्य समाहितः ।
ऋषीणाञ्च वरिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने ॥७
तन्नप्त्रे चानियशसे जातूकर्णाय चर्षये ।
वसिष्ठाय च शुचये कृष्णद्वैपायनाय च ॥८
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसम्मितम् ।
धर्मार्थन्यायसयुक्तं रागमैः सुविभूषितम् ॥९
असीमकृष्णे विक्रान्ते राजन्येऽनुपमत्विषि ।
प्रशासतीमां धर्मेण भूमिं भूमिपसत्तमे ॥१०
ऋषयः सशितात्मानः सत्यव्रत परायणाः ।
ऋजवो नष्टरजसः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥११
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रन्तु ईजिरे ।
नद्यास्तीरे दृषद्वत्याः पुण्यायाः शुचिरोधसः ।
दीक्षितास्ते यथाशास्त्रं नैमिषारण्यगोचराः ॥१२
दृष्टुं तान् स महाबुद्धिः सूतः पौराणिकोत्तमः ।
लोमानि हर्षयाञ्चक्रे श्रोतॄणां यत् सुभाषितैः ।

कर्मणा प्रथितस्तेन लोकेऽस्मिंल्लोमहर्षणः ॥१३
तपः श्रुताचारनिधेर्वेदव्यासस्य धीमतः ।
शिष्यो वभूव मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥१४

समाहित अर्थात् सावधान होकर ब्रह्म, वायु और महेन्द्र के लिये नमस्कार करके, ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ महात्मा वसिष्ठ के लिये, अत्यन्त यशस्वी उनके नाती जातूकर्ण ऋषि के लिये, परम पवित्र वसिष्ठ के लिये तथा कृष्णद्वैपायन के लिये नमस्कार करके धर्म, अर्थ और न्याय से सङ्गत अर्थात् संयुक्त आगमों से सुशोभित-वेदों की सम्मति से युक्त ब्रह्मोक्त पुराण को भली-भाँति कहता हूँ ॥७–८–९॥ अनुपम कान्ति वाले, परम विक्रमशाली, समस्त नृप मण्डल में अति श्रेष्ठ असीमकृष्ण नामक राजा के द्वारा इस भू-मण्डल पर शासन करने के समय में सत्य के व्रत में तत्पर, परम सरल रजोगुण से हीन, शान्त प्रकृति वाले दमनशील और इन्द्रियों को जीतने वाले ऋषि लोग संशित आत्मा वाले होकर धर्म के धाम कुरुक्षेत्र में पवित्र तट वाली परम पवित्र दृषद्वती नदी के तट पर दीर्घ-सत्र का यजन करने लगे। सभी ऋषि लोग शास्त्र की विधि के अनुसार दीक्षा प्राप्त करने वाले और नैमिषारण्य के भ्रमण करने वाले थे ॥१०–११–१०॥ महान् तीव्र बुद्धि वाले, पुराणों के ज्ञाता तथा वक्ताओं में परमश्रेष्ठ सूतजी ने उन ऋषियों को देखने के लिये वहाँ आकर अपनी सुन्दर उक्तियों के द्वारा लोगों को हर्षित कर दिया अर्थात् सबको पुलकित बना दिया। इसी सत्कर्म से अर्थात् पुलकायमान बना देने के काम से संसार में वे 'लोम-हर्षण' इस नाम से प्रसिद्ध हो गये थे ॥१३॥ वे तपस्या, शास्त्रों का श्रवण और आचार की निधि अत्यन्त बुद्धिमान् व्यास मुनि के श्रेष्ठ बुद्धि वाले सूतजी शिष्य थे और लोकों में बहुत ही प्रसिद्ध थे ॥ १४ ॥

पुराण वेदो ह्यखिलो यस्मिन् सम्यक् प्रतिष्ठितः ।
भारती चैव विपुला महाभारतवर्द्धिनी ॥१५
धर्मार्थकाममोक्षार्थाः कथा यस्मिन् प्रतिष्ठिताः ।
सूक्ताः सुपरिभाषाश्च भूमावोषधयो यथा ॥१६
स तान् न्यायेन सुधियो न्यायविन्मुनिपुङ्गवान् ।

अभिगम्योपसमृत्य नमस्कृत्य कृताञ्जलि. ।
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन् ॥१७
ते चापि सत्रिण. प्रीता ससदस्या महौजसः ।
तस्मै साम च पूजाञ्च यथावत् प्रतिपेदिरे ॥१८

अथ तेषा पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत ।
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्त विद्वास लोमहर्षणम् ॥१९
तस्मिन् सत्रे गृहपति. सर्वशास्त्रविशारदः ।
इङ्गितैर्भावमालक्ष्य तेषा सूतमनोदयत् ॥२०

त्वया सूत महाबुद्धिर्भगवान् ब्रह्मवित्तम ।
इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासित. ।
दुदोह वै मति तस्य त्व पुराणा श्रया कथाम् ॥२१

समस्त पुराण और सम्पूर्ण वेद जिसमे भली-भाँति प्रतिष्ठित थे और महाभारत के बढाने वाली प्रचुर सरस्वती विराजमान थी ॥ १५ ॥ धर्म अर्थ, काम और मोक्ष के प्रयोजन वाली अनेक कथाएँ जिसमे प्रतिष्ठित थी । सूक्त और अच्छी परिभाषाएँ भूमि मे औषधियों के तुल्य जिसमे विद्यमान थीं ॥ १६ ॥ ऐसे न्याय के ज्ञाता उन सूतजी ने न्याय से अच्छी बुद्धि वाले उन श्रेष्ठ मुनियों के समीप आकर और निकट मे पहुँच कर हाथ जोड़कर उन्हे नमस्कार किया और उन समस्त ऋषियों को अपने प्रणिपात तथा विनम्र व्यवहार से सन्तुष्ट किया ॥१७॥ सत्र का यजन करने वाले महान् ओज वाले सदस्यो के सहित वे सब भी उस समय बहुत ही प्रसन्न हुए और वे भी उन सूतजी का अभ्यार्चन यथा-विधि करने मे तत्पर हुए ॥१८॥ इसके अनन्तर उन समस्त ऋषियो के हृदय मे पुराण के श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न हुई क्योकि उन्होने अत्यन्त विश्वास के पात्र और महान् विद्वान् लोमहर्षण मुनि का दर्शन प्राप्त कर लिया था ॥१९॥ उस सत्र मे समस्त शास्त्रो के पण्डित गृहपति ने उन सब ऋषियो के हार्दिक भाव को इङ्गितो के द्वारा लक्ष्य करके श्री सूतजी को प्रेरित किया ॥ २० ॥ गृहपति ने कहा—हे सूतजी ! आपने ब्रह्म के ज्ञाताओं मे अति श्रेष्ठ महान् बुद्धि शाली भगवान् व्यासजी की इतिहास और पुराणो के ज्ञान प्राप्त करने के लि

भली-भाँति उपासना की है और आपने पुराणों में आश्रित कथा वालों उनकी बुद्धि का अच्छी तरह दोहन किया है अर्थात् आपने अच्छा पौराणिक ज्ञान उनसे प्राप्त किया है ॥ २१ ॥

एषाञ्च ऋषिमुख्यानां पुराणं प्रति धीमताम् ।
शुश्रूषाशित महाबुद्धे तच्छ्रावयितुमर्हसि ॥२२
सर्वे हीमे महात्मानो नाना गोत्राः समागताः ।
स्वान् स्वान् वंशान् पुराणैस्तु शृणुयुर्ब्रह्मवादिनः ॥२३
सपुत्रान् दीर्घसत्रेऽस्मिञ्छ्रावयेथा मुनीनथ ।
दीक्षिष्यमाणैरस्माभि स्तेन प्रागसि संस्मृतः ॥२४
इति सञ्चोदितः सूतस्तैरेव मुनिभिः पुरा ।
पुराणार्थ पुराणज्ञैः सत्यव्रतपरायणैः ॥२५
स्वधर्म एष सूतस्य सद्भिर्दृष्टः पुरातनैः ।
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञाञ्चामिततेजसाम् ॥२६
वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानाञ्च महात्मनाम् ।
इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभिः ॥२७
न हि वेदेष्वधीकार कश्चित् सूतस्य दृश्यते ।
वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्त्तमाने महात्मनः ।
सुत्यायामभवत् सूतः प्रथमं वर्णवैकृतः ॥२८

हे महाबुद्धे ! इन बुद्धिमान् मुख्य ऋषियों की पुराण के प्रति श्रवण करने की अत्यन्त हार्दिक इच्छा है सो आप इन्हें वह सुनाने को योग्य होते हैं ॥ २२ ॥ ये सब महान् आत्मा वाले हैं और अनेक गोत्र वाले यहाँ एकत्रित हुए है। ये सब ब्रह्मवादी लोग पुराणों के द्वारा अपने-अपने वंशों का श्रवण करें ॥ २३ ॥ इस दीर्घ-सत्र में पुत्रों के सहित इन मुनियों को श्रवण कराइये। उनके द्वारा दीक्षिष्यमान हम सबके द्वारा आप पहिले ही संस्मृत हुए हो ॥२४॥ इस प्रकार से सत्यव्रत में परायण पुराणों के ज्ञाता उन्हीं मुनियों के द्वारा पहिले पुराण के लिये सूतजी से सत् नहीं कहा गया ॥ २५ ॥ प्राचीन सत्पुरुषों ने यह सूत का अपना धर्म देखा है कि देवताओं का ऋषियों का और अपरिमित तेज

वाले राजाओ का तथा महात्माओं के श्रुत वशों का धारण करना चाहिए जो कि ब्रह्म वादियो ने इतिहास और पुराणो मे दिष्ट किये है ।। २६-२७ ।। किन्तु सूत का वेदो म कहीं भी कोई अधिकार नहीं दिखाई देता है क्योंकि महात्मा राजा वेन के पुत्र पृथु के वर्तमान यज्ञ मे सूत्या में प्रथम विकृत वर्ण वाले सूत की उत्पत्ति हुई थी ।। २८ ।।

ऐन्द्रेण हविषा तत्र हवि पृक्तं बृहस्पते ।
जुहावेन्द्राय देवाय तत सूतो व्यजायत ।
प्रमादात्तत्र सञ्जज्ञे प्रायश्चितश्च कर्मसु ।।२९
शिष्यहव्येन यत् पृक्तमभिभूत गुरोर्हविः ।
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृत ।।३०
यच्च क्षत्रात सममवद्ब्राह्मणाऽवरयोनित ।
तत पूर्वेण साधर्म्यात्तुल्यधर्मा प्रकीर्तित. ।।३१
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्म. क्षत्रोपजीवनम् ।
रथनागाश्वचरित जघन्यश्च चिकित्सितम् ।।३२
तत स्वधर्ममह पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ।
कस्मात् सम्यङ् न विब्रूया पुराणमृषिपूजितम् ।।३३
पितॄणा मानसी कन्या वासवी समपद्यत ।
अपध्याता च पितृभिर्मत्स्ययोनौ बभूव सा ।।३४
अरणीव हुताशस्य निमित्त यस्य जन्मन ।
तस्या जातो महायोगी व्यासो वेदविदा वर· ।।३५

वहाँ पर इन्द्र सम्बन्धी हवि से पृक्त बृहस्पति की हवि को इन्द्र देव के लिये के लिये हुत किया था । इससे सत की उत्पत्ति हुई । वहाँ प्रमाद से कर्मों मे प्रायश्चित्त किया ।। २९ ।। जो शिष्य के हव्य से गुरु का हवि पृक्त होकर अभिभूत हो गया और इस अधरोत्तर चार से ही यह वर्ण वैकृत उत्पन्न हुए ।। ३० ।। और जो क्षत्रिय से ब्राह्मण की अवर योनि से हुआ वह पहिले के साथ साधर्म्य होने के कारण तुल्य धर्म वाला कहा गया है ।। ३१ ।। रथ, नाग और अश्व का चरित्र क्षत्रियों का उपजीवन यह सूत का मध्यम श्रेणी का धर्म होता

है तथा चिकित्सा करना जघन्य श्रेणी का धर्म है ।। ३२ ।। सो ब्रह्म-वादी आप लोगों ने मुझसे मेरे धर्म के अनुकूल ही पूछा है। मैं ऋषियों के द्वारा समर्चित पुराण को भली-भाँति क्यों नहीं कहूँगा अर्थात् अवश्य ही कहूँगा ।।३३।। पितरों की वासवी नामक मानसी कन्या हुई थी वह पितरों के द्वारा अपध्यात होकर मत्स्य योनि में हुई थी ।। ३४ ।। जिस तरह अग्नि की उत्पत्ति का निमित्त अरनी होती है उसी भाँति वेदों के ज्ञाताओं में सर्वश्रेष्ठ महान् योगी व्यास मुनि उसमें उत्पन्न हुए ।। ३५ ।।

तस्मै भगवते कृत्वा नमो व्यासाय वेधसे ।
पुरुषाय पुराणाया भृगुवाक्यप्रवर्त्तिने ।
मानुषच्छद्मरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।।३६
जातमात्रश्च यं वेद उपतस्थे ससङ्ग्रहः ।
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्णादवाप तम् ।।३७
मतिं मन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात् ।
प्रकाशं जनितो लोके महाभारतचन्द्रमाः ।।३८
वेदद्रुमश्च यं प्राप्य सशाखः समपद्यत ।
भूमिकालगुणान् प्राप्य बाहुशाखो यथा द्रुमः ।।३९
तस्मादहमुप श्रुत्य पुराणं ब्रह्मवादिनः ।
सर्वज्ञात्सर्ववेदेषु पूजिताद्दीप्ततेजसः ।।४०
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना ।
पृष्टेन मुनिभिः पूर्वं नैमिषीयैर्महात्मभिः ।।४१

उन पुराण पुरुष, भृगु के वाक्य प्रवृत्तों, विद्वान्, छद्म से मनुष्य का रूप धारण करने वाले, होनहार विष्णु भगवान् व्यासजी के लिये नमस्कार करके जिनके उत्पन्न होते ही संग्रह सहित सम्पूर्ण वेद उपस्थित हो गये थे, किन्तु धर्म की ही मर्यादा का पालन कर जातूकर्ण से उनको प्राप्त किया था ।। ३६-३७ ।। जिसने श्रुति रूपी सागर से बुद्धि रूपी मन्थन करने वाले से मथ कर संसार में महाभारत रूपी चन्द्रमा को प्रकट कर दिखलाया है ।। ३८ ।। जिस तरह भूमि के तथा काल के गुणों को प्राप्त कर वृक्ष बहुत-सी शाखाओं से युक्त

हो जाता है उसी तरह वेद रूपी वृक्ष भी वेद व्यास मुनि को प्राप्त कर अनेक धाराओं से युक्त हो गया ॥ ३६ ॥ उन ही दीप्त तेज वाले, समस्त वेदों में पूजित, सर्वज्ञ और ब्रह्म के वक्ता से मैंने उप श्रवण करके पहिले महात्मा और नैमिषारण्य में निवास करने वाले मुनियों के द्वारा पूछे गये वायु देव ने जो पुराण कहा था उस वायु पुराण को मैं अब आप लोगों के समक्ष में कहता हूँ ॥ ४०-४१ ॥

कथ्यते यत्र विप्राणां वायुना ब्रह्मवादिना ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं पापप्रणाशनम् ।
कीर्त्तनं श्रवणं चास्य धारणञ्च विशेषतः ॥४२
अनेन हि क्रमेणेदं पुराणं सम्प्रचक्ष्यते ।
सुखमर्थं समासेन महानप्युपलभ्यते ।
तस्मात् किञ्चित्समुद्दिश्य पश्चाद्वक्ष्यामि विस्तरम् ॥४३
पादमाद्यमिदं सम्यक् योऽधीयीत जितेन्द्रियः ।
तेनाधीतं पुराणं तत् सर्वं नास्त्यत्र संशयः ॥४४
यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥४५
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥४६
अध्यसन्निममध्यायं साक्षात् प्रोक्तं स्वयम्भुवा ।
आपदं प्राप्य मुच्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥४७
यस्मात् पुरा ह्यनि तीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४८
नारायणः सर्वमिदं विश्वं व्याप्य प्रवर्त्तते ।
तस्यापि जगतः स्रष्टुः स्रष्टा देवो महेश्वरः ॥४९
अतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं महेश्वरः सर्वमिदं पुराणम् ।
स सर्गकाले च करोति सर्गान् संहारकाले पुनराददीत ॥५०

सूतजी ने कहा—जिस वायु पुराण में ब्रह्मवादी वायु देव के द्वारा विप्रों

का धन, यश और आयु के देने वाला, पापों का नाश करने वाला परम पुण्यमय कीर्त्तन और इसका श्रवण तथा विशेष रूप से धारण करना कहा जाता है ॥ ४२ ॥ इसी क्रम से यह पुराण कहा जाता है। संक्षेप से सुखपूर्वक महान् अर्थ उपलब्ध होता है इससे कुछ समुद्दिष्ट करके पीछे विस्तारपूर्वक इसका वर्णन करूँगा ॥ ४३ ॥ जो कोई अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाला पुरुष इसके प्रथम पाद का अध्ययन करता है उसने इस समस्त पुराण का अध्ययन कर लिया है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ ४४ ॥ जो द्विज चारों वेदों को उनके समस्त षडङ्गों तथा उपनिषदों के सहित जानता है और यदि पुराण का ज्ञान नहीं रखता है तो वह विलक्षण नहीं होता है ॥ ४५ ॥ इसलिये इतिहास और पुराण इन दोनों से वेद को अच्छी तरह उपवृंहित करना चाहिए। जो अल्पश्रुत द्विज होता है उससे वेद भी भयभीत होता है कि मुझे अल्पज्ञ यह ब्राह्मण प्रतारित कर देगा ॥ ४६ ॥ इस अध्याय का अभ्यास करने वाले स्वयम्भू भगवान् ने साक्षात् स्वयं कहा है कि इसका अध्ययन करने वाला पुरुष आपत्ति में फँस कर भी मुक्त हो जायगा और यथेष्ट अच्छी गति को प्राप्त करेगा ॥ ४७ ॥ पहिले जिसने यह पुराण पूर्ण किया उसने इसका स्मरण किया है। जो इसके निरुक्त को जानता है वह समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है ॥ ४८ ॥ इस समस्त विश्व में नारायण व्याप्त होकर प्रवृत्त होते हैं उस जगत् के स्रष्टा का भी सृजन करने वाले महेश्वर देव हैं ॥ ४९ ॥ इसलिये आप लोग संक्षेप से इस पुराण का श्रवण करें। वह सर्ग के समय में सर्गों को बनाते हैं और संहार करने के समय आने पर पुनः इसका आदान कर लिया करते हैं ॥ ५० ॥

॥ द्वादशवर्षीय सत्र निरूपण ॥

प्रत्यब्रुवन् पुनः सूतमृषयस्ते तपोधनाः ।
कुत्र सत्रं समभवत् तेषामद्भुतकर्मणाम् ॥१
कियन्तं चैव तत्कालं कथं च समवर्त्तत ।
आचचक्ष पुराणं च कथं तेभ्यः प्रभञ्जनः ॥२
आचक्ष्व विस्तरेणेदं परं कौतूहलं हि नः ।
इति सञ्चोदितः सूतः प्रत्युवाच शुभं वचः ॥३

शृणुध्व यत्र ते धीरा ईजिरे सत्रमुत्तमम् ।
यावन्त चाभवत् काल यथा च समवर्तत ॥४
सिसृक्षमाणा विश्व हि यत्र विश्वसृज पुरा ।
सत्र हि ईजिरे पुण्य सहस्र परिवत्सरान् ॥५
तपो गृहपतिर्यत्र ब्रह्मा ब्रह्माऽभवत् स्वयम ।
इलाया यत्र पत्नीत्व शामित्र यत्र बुद्धिमान् ।
मृत्युश्चक्रे महातेजास्तस्मिन् सत्रे महात्मनाम् ॥६
विबुधा ईजिरे तत्र सहस्र प्रतिवत्सरान् ।
भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत ।
कर्मणा तेन विख्यात नैमिष मुनिपूजितम् ॥७

श्री शुकदेवजी ने कहा—तपश्चर्या के ही धन वाले उन ऋषियो ने सूतजी से फिर कहा कि यह सत्र कहाँ पर हुआ जो कि अद्भुत कर्म करने वाले उन ऋषियो ने किया था ? ॥ १ ॥ इस सत्र को कितने समय तक और किस प्रकार से किया था और प्रभञ्जन (वायु) ने उनको किस तरह यह पुराण कहा, यह सब आप कृपा करके विस्तारपूर्वक वर्णन करें, क्योकि हम सबको इस बात का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हृदय में अत्यधिक कौतूहल हो रहा है । इस तरह से ऋषियों के द्वारा पूछे गये सूतजी यह शुभ वचन बोले ॥ २-३ ॥ सूतजी ने कहा—हे ऋषियो ! आप लोग श्रवण करें, मैं बतलाता हूँ, जहाँ पर उन परम धीर ऋषियो ने इस उत्तम सत्र का यजन किया था, जिस प्रकार से और जितने समय तक किया था ॥ ४ ॥ पहिले जहाँ पर इस विश्व के सृजन करने वालो ने विश्व का सृजन करते हुए एक सहस्र वर्ष पर्यन्त इस परम पवित्र सत्र का यजन किया था ॥ ५ ॥ जिस स्थान पर तपगृह का पति ब्रह्मा स्वय ब्रह्मा हुआ जिस स्थान पर इला का पत्नीत्व हुआ और महान् तेज वाले मृत्यु ने जहाँ पर शामित्र (पशु बाँधने का स्थान) किया था उन महात्माओ के सत्र म देवो ने एक सहस्र प्रति वत्सर वहाँ यजन किया था । जहाँ पर धर्म चक्र के भ्रमण करते हुए नेमि विशीर्ण हो गई थी इस कर्म के कारण वह मुनियो के द्वारा परम पूजित यह स्थान 'नैमिष'—इस नाम से विख्यात हुआ है ॥ ६-७ ॥

यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारण सेविता ।
रोहिणी सुषुवे तत्र ततः सौम्योऽभवन् सुतः ॥८
शक्तिर्ज्येष्ठः समभवद्वसिष्ठस्य महात्मनः ।
अरुन्धत्याः सुता यत्र शतमुत्तमतेजसः ॥९
कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शप्तश्च शक्तिना ।
यत्र वैरं समभवद्विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥१०
अदृश्यन्त्यां समभवन्मुनिर्यत्र पराशरः ।
पराभवो वसिष्ठस्य यस्मिन् जातेऽप्यवर्त्तत ॥११
तत्र ते ईजिरे सत्रं नैमिषे ब्रह्मवादिनः ।
नैमिषे ईजिरे यत्र नैमिषेयास्ततः स्मृताः ॥१२
तत्सत्रमभवत्तेषां समा द्वादश धीमताम् ।
पुरूरवसि विक्रान्ते प्रशासति वसुन्धराम् ॥१३
अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवाः ।
तुतोष नैव रत्नानां लोभादिति हि नः श्रुतम् ॥१४

जिस स्थान पर बड़े-बड़े सिद्धों तथा चारणों के द्वारा सेवित परम पवित्र गोमती है वहाँ पर रोहिणी ने पुत्र का प्रसव किया जोकि परम सौम्य हुआ ॥८॥ जहाँ पर महात्मा वसिष्ठ के अरुन्धती से अत्युत्तम तेज वाले सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें शक्ति नाम वाला सबसे बड़ा पुत्र था ॥ ९ ॥ उस वसिष्ठ के पुत्र शक्ति के द्वारा कल्माषपाद नामक राजा को शाप दिया गया था और जिस स्थान में विश्वामित्र और वसिष्ठ का पारस्परिक वैर हो गया था ॥ १० ॥ जहाँ पर दृश्यमान न होती हुई में पराशर मुनि हुए जिनके उत्पन्न होने पर भी वसिष्ठजी का पराभव हुआ था ॥ ११ ॥ वहाँ पर नैमिष नामक स्थान में ब्रह्मवादी उन ऋषियों ने सत्र का यजन किया था क्योंकि वह सत्र उन्होंने नैमिष नाम वाले स्थान में किया था अतएव तभी से वे सब नैमिषेय इस नाम से कहे गये हैं ॥१२॥ उन धीमान् ऋषियों का वह सत्र बारह वर्ष पर्यन्त हुआ जबकि विक्रमशील पुरुरवा राजा इस भू-मण्डल का शासन करता था ॥ १३ ॥ पुरुरवा राजा को समुद्र के अठारह द्वीपों को अपने अधिकार में रखते हुए भी रत्नों के लोभ की अधिकता होने के कारण सन्तोष नहीं हुआ था, ऐसा हमने सुना है ॥ १४ ॥

उर्वशी चक्रमे य च देवहूतिप्रणोदिता ।
आजहार च तत्सत्र स्वर्वेश्यासहसङ्गनः ॥१५
तस्मिन्नरपतौ सत्रं नैमिषेया प्रचक्रिरे ।
य गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकाद्दीप्ततेजसम् ।
तदुल्व पर्वते न्यस्त हिरण्य प्रत्यपद्यत ॥१६
हिरण्मय ततश्चक्रे यज्ञवाट महात्मनाम् ।
विश्वभर्ता स्वय देवो भावयन् लोकभावनम् ॥१७
बृहस्पतिस्ततस्तत्र तेपाममिततेजसाम ।
ऐल पुरूरवा भेजे त देश मृगया चरन् ॥१८
त दृष्ट्वा महदाश्चर्यं यज्ञवाट हिरण्मयम् ।
लोभेन हतविज्ञानस्तदादातु प्रचक्रमे ॥१९
नैमिषेयास्ततस्तस्य चुक्रुधुर्नृपतेर्भृशम् ।
निजघ्नुश्चापि सक्रुद्धा कुशवज्रैर्मनीषिणः ।
ततो निशान्ते राजान मुनयो दैवनोदिताः ॥२०
कुशवज्रैर्विनिष्पिष्टः स राजा व्यजहात्तनुम् ।
और्वशेय ततस्तस्य पुत्रश्चक्रुर्नृपं भुवि ॥२१

देवहूति के द्वारा प्रेरित की हुई उर्वशी उसके समीप मे गई और उस स्वर्ग की वेश्या के साथ मे सङ्गति करने वाले अपने उस सत्र का आहरण कर लिया था ॥१५॥ उस राजा के होने के समय मे नैमिषेय ऋषियों ने इस सत्र को किया था, जिस उद्दीप्त तेज वाले को अग्नि से गङ्गा ने गर्भ मे प्रसूत किया था, वह गर्भ पर्वत पर रख दिया गया, जोकि सुवर्ण हो गया था ॥१६॥ लोकों की भावना को हृदय मे विचारते हुए देव विश्वकर्मा ने स्वयं महात्माओं के उस यज्ञवाट को उससे हिरण्मय कर दिया था ॥१७॥ इसके अनन्तर अपरिमित तेज के धारण करने वाले उनमे बृहस्पति हुए। एक बार शिकार करते हुए पुरूरवा ऐल वहाँ पर उस देश मे पहुँच गया था ॥१८॥ उसने उस यज्ञ-वाट को हिरण्मय देखकर बहुत अधिक आश्चर्य किया और लालच के कारण ज्ञान-हीन होकर उसे ग्रहण करने की इच्छा की ॥१९॥ इसके अनन्तर नैमिषेय

ऋषियों ने उस राजा पर अत्यन्त क्रोध किया और दैव से प्रेरित उन मनीषी ऋषियों ने विशेष क्रोधित होकर प्रातःकाल में कुशा रूपी वज्रों से उस राजा का हनन भी किया था ॥२०॥ डाभ के वज्रों से विशेष रूप से पिसे हुए उस राजा ने अपने शरीर का त्याग कर दिया। इसके पश्चात् भूमि पर उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न उसके पुत्र को राजा बना दिया गया ॥२१॥

नहुषस्य महात्मानं पितरं यं प्रचक्षते ।
स तेषु वर्त्तते सम्यग् धर्मशीलो महीपतिः ।
आयुरारोग्यमत्युग्र तस्मिन् स नरसत्तमः ॥२२
सान्त्वयित्वा च राजानं ततो ब्रह्मविदां वराः ।
सत्रमारेभिरे कर्त्तुं यथावद्धर्मभूतये ॥२३
बभूव सत्रं तत्तेषां बह्वाश्चर्यं महात्मनाम् ।
विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव ॥२४
वैखानसैः प्रियसखैर्वालखिल्यर्मरीचिभिः ।
अन्यैश्च मुनिभिर्जुष्टं सूर्यवैश्वानरप्रभैः ॥२५
पितृदेवाप्सरः सिद्धैर्गन्धर्वोरगचारणैः ।
सम्भारैस्तु शुभैर्जुष्टं तैरेवेन्द्रसदो यथा ॥२६
स्तोत्रसत्रग्रहैर्देवान् पितृन् पित्र्यैश्च कर्मभिः ।
आनर्चुश्च यथाजाति गन्धर्वादीन् यथाविधि ॥२७
आराधयितु मिच्छन्तस्ततः कर्मान्तिरेष्वथ ।
जगुः सामानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२८

जिस महान् आत्मा वाले को नहुष का पिता कहते हैं, वह धर्मशील राजा उन सबके साथ बहुत ही अच्छा बरताव करता था। वह एक परमश्रेष्ठ नृप था, इसलिये उसमें अत्युग्र आरोग्य और आयु सभी कुछ था ॥२२॥ ब्रह्मवादियों में परमश्रेष्ठ ऋषियों ने फिर उस राजा की सान्त्वना करके यथारीति धर्म की विभूति की वृद्धि के लिये अपने सत्र के करने का आरम्भ कर दिया ॥२३॥ पहिले समय में इस विश्व की सृष्टि करने की इच्छा वाले विश्व स्रष्टाओं की भाँति उन महान् आत्मा वाले ऋषियों का वह सत्र अत्यन्त आश्चर्य से पूर्ण

हुआ था ।।२४।। प्यारे सदा वैखानसों के द्वारा वाल खिल्यों के, मरीचियों के और सूर्य तथा अग्नि के समान प्रभा वाले अन्य अनेक मुनियों के द्वारा उस सत्र का सेवन किया गया था ।।२५। पितर, देव, अप्सरागण, सिद्ध गन्धर्व उरग और चारणों के द्वारा अनेकानेक शुभ सम्भारों से युक्त होकर इन्द्रदेव के निवास-स्थान (स्वर्ग) की भाँति इस सत्र का सेवन किया गया था ।।२६।। स्तोत्र सत्र ग्रहों से देवताओं का तथा पित्र्य-कर्मों के द्वारा पितृगण का और अन्य समस्त गन्धर्व आदि का उनकी जाति एवं स्वभाव के अनुसार विधि विधान के साथ वहाँ अर्चन किया था ।।२७।। इसके अनन्तर अन्य कर्मों में आराधना की इच्छा करते हुए गन्धर्वों ने साम का गायन किया और अप्सरागणों ने वहाँ नृत्य किया ।।२८।।

व्याजह्रुर्मुनयो वाचं चित्राक्षरपदां शुभाम् ।
मन्त्रादितत्त्वविद्वांसो जगदुश्च परस्परम् ।।२९
वितण्डावचनाश्चैके निजघ्नुः प्रतिवादिनः ।
ऋषयस्तत्र विद्वांसः साङ्ख्यार्थन्यायकोविदाः ।।३०
न तत्र दुरितं किञ्चिद्विदधुर्ब्रह्मराक्षसाः ।
न च यज्ञहनो दैत्या न च यज्ञमुपोऽसुराः ।।३१
प्रायश्चित्तं दुरिष्टं वा न तत्र समजायत ।
शक्तिप्रज्ञा क्रियायोगैर्विधिरासीत् स्वनुष्ठितः ।।३२
एवं वितेनिरे सत्रं द्वादशाब्दं मनीषिणः ।
भृग्वाद्या ऋषयो धीरा ज्योतिष्टोमान् पृथक् पृथक् ।
चक्रिरे पृष्ठगमनान् सर्वानयुतदक्षिणान् ।।३३
समाप्तयज्ञास्ते सर्वे वायुमेव महाधिपम् ।
पप्रच्छुरमितात्मानं भवद्भिर्यदिह द्विजाः ।
प्रणोदितश्च वंशार्थं स च तानब्रवीत्प्रभुः ।।३४
शिष्यः स्वयम्भुवो देवः सर्वप्रत्यक्षदृग्वशी ।
अणिमादिभिरष्टाभिरैश्वर्यैः समन्वितः ।।३५

मन्त्र आदि के तत्त्व के ज्ञाता परम विद्वान् मुनिगण अति विचित्र पदा-

वलि वाली शुभ कल्याणकारिणी वाणी का उच्चारण करने लगे और परस्पर में बोलने लगे ॥२९॥ वहाँ पर सांख्य-दर्शन के अर्थ तथा न्याय-दर्शन-शास्त्र के अर्थ के जानने वाले परम विद्वान् कुछ ऋषि लोग वितण्डायुक्त वचन बोलते हुए अपने प्रतिवादियों पर वाक्प्रहार करने लगे ॥३०॥ वहाँ उस दीर्घ सत्र में ब्रह्मराक्षसों ने कोई दुरित (पाप) कर्म नहीं किया था। दैत्य लोगों ने भी यज्ञ का हनन करने का कोई कर्म नहीं किया और वहाँ यज्ञीय वस्तुओं का हरण करने वाले असुर भी नहीं थे ॥३१॥ वहाँ उस समय कोई भी अनभीष्ट एवं प्रायश्चित्त के योग्य कर्म नहीं हुआ था। शक्ति, बुद्धि और क्रिया के सद्योगों के द्वारा बहुत ही अच्छी तरह से की गई विधि का अनुष्ठान हो रहा था ॥३२॥ परम धीर भृगु आदि मनीषी ऋषियों ने इस प्रकार से वहाँ पृथक्-पृथक् ज्योतिष्टोम किये और बारह वर्ष पर्यन्त उस सत्र को करते रहे और सभी पृष्ठ गमनों को अयुत दक्षिणा वाले किया था ॥३३॥ यज्ञ समाप्त करने वाले उन सब ने अमित आत्मा वाले महान् स्वामी वायु से ही पूछा और वायुदेव ने कहा—हे ब्राह्मणो ! यदि आप लोगों ने मुझे ही वंश कथन करने के लिये प्रेरित किया है तो सुनो—ऐसा प्रभु वायुदेव ने उनसे कहा ॥३४॥ वे स्वयम्भू के शिष्य, सत्र को प्रत्यक्ष रूप से देखने वाले, अपने ही वश में रहने वाले देव हैं, जो आठ अणिमादि ऐश्वर्यों से युक्त हैं ॥३५॥

तिर्यग्योन्यः दिभिर्धर्मैः सर्वलोकान्बिभर्त्ति यः।
सप्तस्कन्धादिकं शश्वद् प्लवते योजनाद्वरः ॥३६
विषये नियता यस्य संस्थिताः सप्तका गणाः।
व्यूहांश्च याणां भूतानां कुर्वन् यश्च महाबलः।
तेजसश्चात्युपध्यानन्दधातीमं शरीरिणम् ॥३७
प्राणाद्या वृत्तयः पञ्च करणानां च वृत्तिभिः।
प्रेर्यमाणाः शरीराणां कुर्वते यास्तु धारणम् ॥३८
आकाशयोनिर्हि गुणः शब्दस्पर्शसमन्वितः।
तैजसप्रकृतिश्चोक्तोऽप्ययं भावो मनीषिभिः ॥३९
तत्राभि मानी भगवान् वायुश्चातिक्रियात्मकः।

वातारणि समाम्यात शब्दशास्त्र विशारदः ॥४०
भारत्या श्लक्ष्णया सर्वान् मुनीन् प्रह्लादयन्निव ।
पुराणज्ञः सुमनसः पुराणाश्रययुक्तया ॥४१

जो तिर्यग्योनि आदि धर्मों से समस्त लोकों का भरण करते हैं और श्रेष्ठ जो निरन्तर योजन में रत स्कन्ध आदि का प्लवन करते हैं ॥३६॥ जिसके विषय में नियत सतगण संस्थित रहते हैं और जो महान् बल वाला तीन भूतों व व्यूहों को करता हुआ तेज के उपघात को खाता है और इस शरीर को धारण करता है ॥३७॥ प्राणाद्या पाच वृत्तियाँ होती हैं और जो इन्द्रियों की वृत्तियों से प्रेर्यमाण होती हुई शरीरों को धारण करती हैं ॥३८॥ आकाश-योनि वाला गुण, शब्द और स्पर्श से समन्वित होता है। मनीषियों के द्वारा यह भाव तैजस प्रकृति वाला भी कहा गया है ॥३९॥ मान वाला भगवान् वायु-देव अत्यधिक क्रिया के स्वरूप वाला होता है। यह शब्द शास्त्र के पण्डित तथा पुराणों के ज्ञाता ने पुराणों के आश्रय से युक्त, परम मधुर वाणी के द्वारा अच्छे मन वाले समस्त मुनियों को परमाह्लाद से पूर्ण करते हुए वातारणि का वर्णन किया ॥४०॥४१॥

॥ प्रजापति सृष्टि कथन ॥

महेश्वरायोत्तमवार्यकर्मणे सुरर्षभायामितबुद्धितेजसे ।
सहस्रसूर्यानलवर्चसे नमस्त्रिलोकसंहारविसृष्टये नमः ॥१
प्रजापतीन् लोकनमस्कृता स्तथा स्वयम्भुरुद्रप्रभृतीन् महेश्वरान् ।
भृगुं मरीचिं परमेष्ठिनं मनुं रजस्तमोधर्ममथापि कश्यपम् ॥२
वसिष्ठदक्षात्रिपुलस्त्यकर्दमान् रुचिं विवस्वन्तमथापि च क्रतुम् ।
मुनिं तथैवाङ्गिरसं प्रजापतिं प्रणम्य मूर्ध्ना पुलहं च भावतः ॥३
तथैव चुक्रोधनमेकविंशतिं प्रजा विवृद्धयार्पितकार्यशासनम् ।
पुरातनानप्यपरांश्च शाश्वतांस्तथैव चान्यान् सगणानवस्थितान् ॥४
तथैव चान्यानपि धैर्यशोभिनो मुनीन् बृहस्पत्युशनः पुरोगमान् ।
तपःशुभाचारकृपीन् दयान्वितान् प्रणम्य वक्ष्ये कलिपापनाशिनीम् ॥५

प्रजापतेः सृष्टिमिमामनुत्तमां सुरेश देवर्षिगणैरलंकृताम् ।
शुभामतुल्यामनघामृषिप्रियां प्रजापतीनामपि चोल्वणाङ्घिषाम् ॥६
तपोभृतां ब्रह्मदिनादिकालिकीं प्रभूतमाविष्कृतपौरुषश्रियम् ।
श्रुतौ स्मृतौ च प्रसृतामुदाहृतां परां पराणामनिलप्रकीर्त्तिताम् ॥७

सूतजी ने कहा—समस्त देवों में परम श्रेष्ठ, अपरिमित बुद्धि के तेज वाले, सहस्रों सूर्यों के अनल के तुल्य वर्चस वाले, उत्तम वीर्य के कर्म करने वाले महेश्वर भगवान के लिये नमस्कार है और तीनों लोकों के संहार की विसृष्टि करने वालों के लिये नमस्कार है ॥१॥ समस्त लोकों के वन्दनीय प्रजापतियों को तथा स्वयम्भू (ब्रह्मा) और रुद्र प्रभृति महान् ईश्वरों को एवं भृगु, मरीचि, परमेष्ठी और रज तथा तम के धर्म वाले मनु को और कश्यप को भी नमस्कार है ॥२॥ वशिष्ठ, दक्ष, अत्रि, पुलस्त्य और कर्दम को और रुचि, विवस्वान् तथा क्रतु एवं आंगिरस मुनि तथा प्रजापति को नत-मस्तक से प्रणाम करके पुलह को भाव सहित नमस्कार है ॥३॥ उसी भाँति प्रजा की विशेष वृद्धि के लिये कार्य-शासन को अर्पित कर देने वाले इक्कीस चुक्रोश धन को नमस्कार है और दूसरे पुरातनों को, नित्य निवास करने वालों को तथा गणों के सहित अवस्थित अन्यों को नमस्कार है ॥४॥ इसी प्रकार से धैर्य की शोभा वाले बृहस्पति एवं उशना जिनके अग्रेसर हैं, ऐसे अन्य मुनियों को, दया से युक्त तपश्चर्या एवं शुभ आचार वाले ऋषियों को प्रणाम करके कलियुग के पापों के नाश करने वाली प्रजापति की सृष्टि को कहता हूँ ॥५॥ यह प्रजापति की सृष्टि सर्वोत्तम है और सुरेश तथा देवर्षियों के समूह से अलंकृत है । यह सृष्टि परम शुभ, अनुपम, निष्पाप और ऋषियों की अति प्रिय है एवं अत्यन्त तीव्र कान्ति वाले प्रजापतियों की भी प्यारी है ॥६॥ जो तपस्वी लोग है,उनकी भी प्रिय है । ब्रह्मा के दिन से भी अधिक काल वाली है । यह सृष्टि ऐसी है, जिसने अत्यधिक पुरुषार्थ की श्री का आविष्कार किया है तथा श्रुति एवं स्मृति में प्रसृत एवं उदाहृत है । यह परे से भी परे है और वायु के द्वारा प्रकीर्तित है ॥७॥

समासवन्धैर्नियतैर्यथातथं विशब्दनेनापि मनःप्रहर्षिणीम् ।
यस्याञ्च ब्रह्मा प्रथमा प्रवृत्तिः प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ॥८

यत्तत् स्मृतं कारणमप्रमेयं ब्रह्म प्रधानं प्रकृतिप्रसूतिः।
आत्मा गुहा योनिरथापि चक्षुः क्षेत्रं तथैवामृतमक्षरञ्च ॥९
शुक्रं तपः सत्त्वमतिप्रकाशं तद्व्यष्टि नित्यं पुरुषं द्वितीयम्।
तमप्रमेयं पुरुषेण युक्तं स्वयम्भुवा लोकपितामहेन ॥१०
उत्पादकत्वाद्रजसोऽतिरेकात् कालस्य योगान्निगमावधेश्च।
क्षेत्रज्ञयुक्तात् नियतान्विकारात् लोकस्य सन्तानविवृद्धिहेतून्॥
प्रकृत्यवस्था सुषुवे तथाष्टौ सङ्कल्पमात्रेण महेश्वरस्य ॥११
देवासुराद्रिद्रुमसागराणां मनुप्रजेशर्षिपितृद्विजानाम्।
पिशाचयक्षोरगराक्षसानां ताराग्रहार्कर्क्षनिशाचराणाम् ॥१२
मासर्त्तुसंवत्सररात्र्यहानां दिक्कालयोगादियुगायनानाम्।
वनौषधीनामपि वीरुधाञ्च जलौकसामप्सरसां पशूनाम् ॥१३
विद्युत्सरिन्मेघविहङ्गमानां यत्सूक्ष्मगं यद्भुवि यद्वियत्स्थम्।
यत् स्थावरं यत्र यदस्ति किञ्चित् सर्वस्य तस्यास्ति गतिर्विभक्तिः ॥१४

यथातथ अर्थात् समुचित रूप से नियत समास बन्धों के द्वारा बिना ध्वनि के भी मन को परम प्रहर्ष देने वाली है। जिसमें प्रधान की प्रथम प्रवृत्ति और ईश्वरवादिता बद्ध हो रही है ॥८॥ जो ब्रह्मा का अविषय कारण कहा गया है, वह ब्रह्म तथा प्रकृति की प्रसूति प्रधान है। गुहा की योनि वाला आत्मा, चक्षु, क्षेत्र, अमृत और अक्षर, शुक्र, तप और अति प्रकाश वाला सत्व एवं वह पृथक् नित्य द्वितीय पुरुष को, पुरुष के द्वारा अप्रमेय लोकों के पितामह स्वयम्भू से युक्त उस पुरुष को, उत्पादक होने से, रजोगुण के अतिरेक से, काल के योग से और निगम की अवधि से लोक की सन्तान की विशेष वृद्धि के हेतु स्वरूप क्षेत्रज्ञ से युक्त नियत विकारों को महेश्वर के सङ्कल्प मात्र से आठ प्रकृति की अवस्था को उत्पन्न किया ॥९॥१०॥११॥ देव, असुर, अद्रि, द्रुम सागरों की—मनु, प्रजा, ईश, ऋषि, पितृगण और द्विजों की—पिशाच, राक्षस, उरग और यक्षों की—तारा, ग्रह, अर्क, ऋक्ष और निशाचरों के मास, ऋतु, सम्वत्सर, रात्रि और दिवसों की—दिशा, काल, योगादि, और अयनों की—वन की ओषधियों की—वीरुधों की—जल में घर वालों के

अप्सराओं की—पशुओं की—विद्युत, सरित (नदी), मेघ और विहंगमों की स्थिति में जो सूक्ष्म गमन करने वाला है, जो भूमि में है और जो नभ में स्थित है तथा जो स्थावर है, जहाँ भी जो कुछ है उस सब की गति विभक्ति ही है ॥१२॥१३॥१४॥

छन्दांसि वेदाः सऋचो यजूंसि सामानि सोमश्च तथैव यज्ञ. ।
आजीव्यमेषां यदभीप्सितञ्च देवस्य तस्यैव च वै प्रजापतेः ॥१५
वैवस्वतस्यास्य मनोः पुरस्तात् सम्भूतिरुक्ता प्रसवश्च तेषाम् ।
येषामिदं पुण्यकृतां प्रसूत्या लोकत्रयं लोकनमस्कृतानाम् ।
सुरेशदेवर्षिमनुप्रधीनामापूरितञ्चोपरिभूषितञ्च ॥१६
रुद्रस्य शापात् पुनरुद्भवश्च दक्षस्य चाप्यत्र मनुष्यलोके ।
वासः क्षितौ वा नियमाद्भवस्य दक्षस्य चात्र प्रतिशापलाभः ॥१७
मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि युगेषु सम्भूतिविकल्पनञ्च ।
ऋषित्वमार्षस्य च संप्रवृद्धिर्यथा युगादिष्वपि चेत्तदत्र ॥१८
ये द्वापरेषु प्रथयन्ति वेदान् व्यासाश्च तेऽत्रक्रमशो निबद्धाः ।
कल्पस्य संख्या भुवनस्य संख्या ब्राह्मस्य चाप्यत्र दिनस्य संख्या ।१९
अण्डोद्भिजस्वेदजरायुजानां धर्मात्मनां स्वर्गनिवासिनां वा ।
ये यातनास्थानगताश्च जीवास्तर्केण तेषामपि च प्रमाणम् ॥२०
आत्यन्तिकः प्राकृतिकश्च योऽयं नैमित्तिकश्च प्रतिसर्गहेतुः ।
बन्धश्च मोक्षश्च विशिष्य तत्र प्रोक्ता च संसारगतिः परा च ॥२१
प्रकृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्तिः ।
तच्छास्त्रयुक्त्या स्वमतिप्रयत्नात् समस्तमाविष्कृतधीधृतिभ्यः ।
विप्रा ऋषिभ्यः समुदाहृतं यद्यथातथं तच्छृणुतोच्यमानम् ॥२२

छन्द, वेद, ऋचाओं के सहित यजुः, साम और सोम तथा यज्ञ इन सबका आजीव्य और जो भी इनका अभीप्सित है, वह सब उसी प्रजापति देव का निश्चित रूप से होता है ॥१५॥ पहिले इस वैवस्वत मनु की सम्भूति कही गई है और उनका प्रसव अर्थात् जन्म भी कहा गया है। ये तीनों लोक लोकों के द्वारा वन्दनीय सुरेश, देवर्षि, मनु आदिकों की प्रसूति से अर्थात् परम पुण्य-

शालियो के जन्म से समस्त तीनो लोक परिपूरित हैं और भूषित भी हैं ।।१६।। इस मनुष्य लोक मे रुद्र के शाप से दक्ष का पुनर्जन्म अथवा भूमण्डल मे निवास हुआ और नियम से यहाँ पर दक्ष का और भव का प्रतिशाप लाभ हुआ ।।१७।। मन्वन्तरो का परिवर्तन युगो में उनकी सम्भूति (उत्पत्ति) और विकल्पन तथा युगादि मे ऋषित्व और आर्ष की सप्रवृद्धि हुई वैसी ही यहाँ पर भी हुई ।।१८।। जिन व्यासदेव ने द्वापर मे वेदों का विस्तार किया, वे यहाँ पर भी क्रमश निबद्ध हैं । कल्प की सख्या है, भुवन की सख्या है और ब्रह्मा के दिन की भी सख्या होती है ।।१६।। जीवो की जो अण्डज हैं, उद्भिज हैं, स्वेदज हैं और जरायुज है, धर्मात्मा हैं या स्वर्ग के निवास करने वाले जीव हैं और जो यातना सहने के लिये यातना स्थान (नरक) में पडे हुए हैं, तक से उन सबका भी प्रमाण है ।।२०।। आत्यन्तिक, प्राकृतिक और नमितिक जो यह प्रतिसग का हेतु है तथा बन्ध और विशेष कर मोक्ष इनमे यहाँ पर परा, ससार की गति बताई गई है ।।२१।। प्रकृति मे, अवस्थित कारणों मे जो स्थिति होती है, अथवा जो प्रवृत्ति होती है, हे विप्रो ! वह शास्त्र की युक्ति से अपनी बुद्धि के प्रयत्न से समस्त धैर्य और बुद्धि को आविष्कृत करने वाले ऋषियों के लिये जो भली भाँति समझा कर कहा गया है, अब आप लोग कहे जाने वाले उस सबको श्रवण करो ।।२२।

।। हिरण्यगर्भ के रूप में विभिन्न तत्वों की उत्पत्ति ।।

ऋषयस्तु तत श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिन ।
प्रत्यूचुस्ते तत सर्वे सूत पर्याकुलेक्षणा ।।१
भवान् वै वंशकुशलो व्यासात् प्रत्यक्षदर्शवान् ।
तस्मात्त्व भवन कृत्स्न लोकस्यामुष्य वर्णय । २
यस्य यस्यान्वया ये ये तास्तानिच्छाम वेदितुम् ।
तेषा पूर्वविसृष्टि च विचित्रा ता प्रजापते ।।३
असकृत्परिपृष्टस्तैर्महात्मा लोमहर्षण ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास सत्तम ।।४

पृष्टां चैतां कथां दिव्यां श्लक्ष्णां पापप्रणाशिनीम् ।
कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिसम्मताम् ॥५
यश्चेमांधारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।
श्रावयेच्चापि विप्रेभ्यो यतिभ्यश्च विशेषतः ॥६
शुचिः पर्वसु युक्तात्मा तीर्थेष्वायतनेषु च ।
दीर्घमायुरवाप्नोति स पुराणानुकीर्त्तनात् ।
स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥७

नैमिषारण्य के निवास करने वाले ऋषियों ने यह सुनकर इसके अनन्तर पर्याकुल नेत्रों वाले उन सबने सूतजी से कहा ॥ १ ॥ महा महर्षि व्यास जी से प्रत्यक्ष दर्शन करने के कारण से आप निश्चय हो वंश कुशल महापुरुष हैं, इसलिये आप इस लोक का सम्पूर्ण भवन का हमारे सामने वर्णन करें ॥ २ ॥ जिस जिसके जो जो अन्वय (वंश) हैं और उनकी प्रजापति की विचित्र पूर्व-कालीन ऋषियों की सृष्टि को तथा अन्वयों को हम जानना चाहते हैं ॥ ३ ॥ ऋषियों के द्वारा इस प्रकार बार-बार पूछे जाने पर महात्मा लोमहर्षणजी, जो कि सत्पुरुषों में परमश्रेष्ठ हैं उसे विस्तार से तथा आनुपूर्वी से कहने लगे ॥ ४ ॥ लोमहर्षण जी ने कहा—मुझ से पूछी गयी यह कथा अत्यन्त दिव्य-मधुर और पापों के नाश करने वाली है और अब मेरे द्वारा कही जाने वाली यह कथा सर्वथा श्रुति (वेद) से सम्मत, गहरे अर्थ से परिपूर्ण और अति विचित्र है । जो पुरुष इस कथा को नित्य धारण करेगा अथवा कई बार श्रवण करेगा और ब्राह्मणों को श्रवण करायेगा तथा विशेष रूप से यतियों को सुनायेगा और देवायतनों में, पर्व दिनों में पवित्र तथा समाहित होकर श्रवण करायेगा वह इस पुराण के अनुकीर्त्तन करने से दीर्घ आयु को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है और अपने वंश को धारण करके स्वर्गलोक में जाकर अन्त में प्रतिष्ठित होता है ॥ ५—६—७ ॥

विस्तारावयवं तेषां यथाशब्दं यथाश्रुतम् ।
कीर्त्यमानं निबोधध्वं सर्वेषां कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥८
धन्यं यशस्यं शत्रुघ्नं स्वर्ग्यमायुर्विवर्धनम् ।
कीर्त्तनं स्थिरकीर्त्तीनां सर्वेषां पुण्यकारिणाम् ॥९

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितश्चेति पुराणं पंचलक्षणम् ॥१०
कल्पेभ्योऽपि हि यः कल्पः शुचिभ्यो नियतं शुचिः ।
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि भारतं वेदसम्मितम् ॥११
प्रबोधः प्रलयश्चैव स्थितिरुत्पत्तिरेव च ।
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथ्यवस्तुपरिग्रहः ॥१२
उपोद्घातोऽनुषङ्गश्च उपसंहार एव च ।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१३
एवं हि पादाश्चत्वारः समासात् कीर्तिता मया ।
वक्ष्याम्येतान् पुनस्तांस्तु विस्तरेण यथाक्रमम् ॥१४

उनके विस्तार के अङ्ग को जिन शब्दों में जैसा भी मैंने सुना है वह अब मेरे द्वारा कीर्तन किया जा रहा है आप उसे समझ लेवें, यह सबकी कीर्ति का बढ़ाने वाला है ॥ ८ ॥ परम पुण्यकारी और स्थिर कीर्ति वाले सबको यह कीर्तन धन यश के बढ़ाने वाला है शत्रुओं का नाशक, स्वर्ग प्रदान कराने वाला और आयु की वृद्धि कराने वाला है ॥ ९ ॥ पुराण में सर्ग-प्रतिसर्ग वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित ये पाँचों होते हैं, पुराण के पाँच लक्षण होते तभी वह पूर्ण लक्षण सम्पन्न पुराण कहा जाता है ॥ १० ॥ कल्पों के भी जो कल्प है और शुचियों का भी जो नियत शुचि है ऐसा वेद से सम्मत यह भारत पुराण मैं कहता हूँ ॥ ११ ॥ प्रबोध-प्रलय स्थिति और उत्पत्ति ये प्रक्रिया प्रथम पाद है। कथन के योग्य वस्तु का परिग्रहण-उपोद्घात-अनुषङ्ग और उपसंहार होता है। यह धर्म से युक्त या धर्म देने वाला यश दाता, आयु वर्द्धक और सब प्रकार के पापों का नाशक होता है ॥१२—१३ ॥ इस प्रकार से मैंने संक्षेप में चार पादों को बतला दिया है पुनः इनको क्रमानुसार विस्तार के साथ कहूँगा ॥ १४ ॥

तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च ।
अजाय प्रथमायैव विशिष्टाय प्रजात्मने ।
ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ॥१५

महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् ।
पञ्चप्रमाणं षट्श्येतं पुरुषाधिष्ठितं नुतम् ।
असंशयात् प्रवक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् ॥१६
अव्यक्तं कारणं यत्तु नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिं चैव यमाहुस्तत्त्व चिन्तकाः ॥१७
गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ।
अजातं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम् ॥१८
जगद्योनिं महद्भूतं परं ब्रह्म सनातनम् ।
विग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभवत् किल ॥१९
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मन्त्रिगुणं प्रभवाव्ययम् ।
असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥२०
तस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तमासीत्तमोमयम् ।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन् गुणभावे तमोमये ॥२१
सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै ।
गुणभावाद्वाच्यमानो महान् प्रादुर्बभूव ह ॥२२

उस हिरण्यगर्भ पुरुष और ईश्वर के लिये—अन्त रूप और प्रथम स्वरूप वाले के लिये - विशेषताओं से युक्त और प्रजाजन के लिये—लोकतन्त्र, स्वयम्भू ब्रह्मा जी के लिये नमस्कार करके ॥ १५ ॥ मैं ऐसे सर्वश्रेष्ठ इस भूत सर्ग को बिना किसी संशय के कहता हूँ जिसके आदि में महत् है, अन्त में विशेष है, वैरूप्य से युक्त है और लक्षण के सहित है तथा पाँच प्रमाण वाला है, षट्श्वेत युक्त है एवं पुरुष से अधिष्ठित है और वन्दित है ॥ १६ ॥ और जो इसका अव्यक्त कारण है वह नित्य और सत् तथा असत् स्वरूप वाला होता है। तत्वों के चिन्तन करने वाले पुरुष उसे प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं ॥ १७ ॥ अब उस अव्यक्त का वर्णन किया जाता है, वह अव्यक्त गन्ध-वर्ण और रस से रहित है तथा शब्द और स्पर्श से भी हीन होता है। वह अजात, ध्रुव, अक्षय्य, नित्य और अपनी ही आत्मा में अर्थात् स्वरूप में अवस्थित है ॥ १८ ॥ वह अव्यक्त इस जगत् का योनि, महद्भूत, सनातन, पर और ब्रह्म है। समस्त

जाता है ॥ ३१ ॥ ख्याति और प्रत्युपभोग जिससे होते हैं तथा ज्ञान की निम्नता होने से भोग होता है इसीलिये यह "ख्याति" कहा जाता है ॥ ३२ ॥ उसके गुणों के द्वारा अनेक नामादि से यह ख्यात होता है इसीलिये इस महत् की 'ख्याति' यह संज्ञा कही जाती है ॥ ३३ ॥ यह सभी कुछ को साक्षात् रूप से जानता है इसीलिये इस महात्मा का 'ईश्वर' नाम होता है। और इससे समस्त ग्रहों की उत्पत्ति हुई है अतएव वह 'प्रज्ञा'—इस नाम से कहा जाता है ॥ ३४॥ ज्ञान आदि के रूप और क्रतु कर्म के फल को तथा भोगार्थों को जो चयन करता है इसीलिये वह "चिति"—इस नाम से कहा जाता है ॥ ३५ ॥

वर्त्तमानान्यतीतानि तथा चानागतान्यपि ।
स्मरत सर्वकार्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते ॥३६
कृत्स्न च विन्दते ज्ञान तस्मान्माहात्म्यमुच्यते ।
तस्माद्विदेर्विदेश्चैव सविदित्यभिधीयते ॥३७
विद्यते स च सर्वस्मिन् सर्व तस्मिश्च विद्यते ।
तस्मात्सविदिति प्रोक्तो महान्वै बुद्धिमत्तरैः ॥३८
ज्ञानात्तु ज्ञानमित्याहु भगवान् ज्ञानसन्निधिः ।
द्वन्द्वाना विपुरीभावाद्विपुर प्रोच्यते बुधै ॥३९
सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्य च तथेश्वर' ।
बृहत्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भव उच्यते ॥४०
क्षेत्रक्षेत्रज्ञविज्ञानादेकत्वाच्च स क स्मृत. ।
यस्मात् पुर्यनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
नोत्पादितत्वात् पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति चोच्यते ॥४१
पर्यायवाचकै शब्देस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम् ।
व्याख्यात तत्त्वभावज्ञैरेव सद्भावचिन्तकै. ॥४२

वर्त्तमान, भूत और अनागत समस्त कार्यों का स्मरण इसके द्वारा किया जाता है इसलिये यह 'स्मृति'—इस नाम वाला कहा गया है ॥ ३६ ॥ यह सम्पूर्ण ज्ञान का लाभ करता है इससे 'माहात्म्य' कहा जाता है और पूर्ण ज्ञान का ज्ञाता होने से इसका नाम 'संवित्' कहा जाता है ॥ ३७ ॥ यह सभी में

विद्यमान रहता है और सभी कुछ इसमें विद्यमान है इसीलिये श्रेष्ठ बुद्धि वालों के द्वारा यह महान् 'संविद' कहा जाता है ॥ ३८ ॥ ज्ञान होने से इसे 'ज्ञान' यह कहा जाता है और ज्ञान की अच्छी निधि होने के कारण 'भगवान्' कहा जाता है। समस्त द्वन्द्वों के विपुरीभाव होने के कारण बुधों के द्वारा इसका नाम 'विपुर'—यह कहा जाता है ॥ ३९ ॥ लोकों का सबसे बड़ा ईश होने के कारणवश ही इस महत् का नाम 'ईश्वर'—यह हुआ है। बृहत् होने से 'ब्रह्मा'—यह कहा गया है और भूतत्व भाव इसमें रहने से इसे 'भव'—यह कहा जाता है ॥ ४० ॥ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के विशेष ज्ञान होने से और एकत्व होने से उसे 'कः'—यह कहा जाता है। क्योंकि वह पुरी में अनुगमन किया करता है अतएव उसका नाम 'पुरुष'—यह कहा जाता है। वह किसी के द्वारा उत्पादित नहीं हुआ है और पूर्ववर्ती है इसीलिये 'स्वयम्भू'—इस नाम वाला है ॥४१॥ तत्वभाव के ज्ञाता तथा सद्भाव के चिन्तन करने वालों के द्वारा पर्यायवाचक अर्थात् समानार्थक द्योतक तत्वं-आद्य और उत्तमम्—इन शब्दों से व्याख्या की गई है ॥ ४२ ॥

महान् सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया ।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम् ॥४३
धर्मादीनि च रूपाणि लोकतत्वार्थहेतवः ।
त्रिगुणस्तु स विज्ञेयः सत्वराजसतामसः ॥४४
त्रिगुणाद्रजसोद्रिक्तादहङ्कारस्ततोऽभवत् ।
महता चावृतः सर्गो भूतादिविकृतस्तु सः ॥४५
तस्माच्च तमसोद्रिक्तादहङ्कारादजायत ।
भूततन्मात्रसर्गस्तु भूतादिस्तामसस्तु सः ॥४६
आकाशं शुषिरं तस्मादुद्रिक्तं शब्दलक्षणम् ।
आकाशं शब्दमात्रन्तु भूतादिश्चावृणोत् पुनः ॥४७
शब्दमात्रन्तदाकाशं स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ।
भूतादिस्तु विकुर्व्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज्ज ह ॥४८
बलवान् जायते वायुः स वै स्पर्शगुणोमतः ।
आकाशं शब्दमात्रन्तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥४९

सृजन करने की इच्छा से जब इस महान् को प्रेरणा दी जाती है तो यह इस जगत् की सृष्टि किया करता है। उसकी सङ्कल्प और अध्यवसाय ये दो प्रकार की वृत्ति कही गई है। मानसिक कर्म का नाम सङ्कल्प और लगातार श्रम से कार्य करने को अध्यवसाय कहते हैं ॥ ४३ ॥ धर्म आदि के रूप लोक के तत्वार्थ के हेतु होते हैं। वह सात्विक-राजस और तामस प्रकार से तीन गुणों वाला समझना चाहिये ॥ ४४ ॥ उस त्रिगुण स्वरूप मे जब रजोगुण का उद्रेक होता है तो उसमे अहङ्कार हुआ है। वह सर्ग महत् से आवृत है और भूतादि मे विकृत स्वरूप वाला होता है ॥ ४५ ॥ तमोगुण के उद्रेक वाले उस अहङ्कार से भूतो की तन्मात्राओ का सर्ग होता है। वह भूतादि वाला उसका तामस स्वरूप है। ४६ ॥ उससे शब्द लक्षण वाला आकाश शुषिर उद्रिक्त हुआ। शब्द मात्र आकाश को फिर भूतादि ने आवृत कर लिया ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर शब्द मात्र आकाश को स्पर्श मात्र सृजन किया। विकृत रूप वाले होते हुये भूतादि ने शब्द मात्र का सृजन किया ॥ ४८ ॥ फिर बल वाला वायु उत्पन्न होता है जिसका एक मात्र गुण स्पर्श ही कहा गया है। शब्द मात्र आकाश ने स्पर्श मात्र वायु को समावृत कर लिया था ॥ ४९ ॥

रसमात्रास्तु ता ह्यापो रूपमात्राभिरावृणोत् ।
आपो रसान् विकुर्वन्त्यो गन्धमान ससर्जिरे ॥५०
सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुण: स्मृत. ।
रसमात्रन्तु ततोय गन्धमात्र समावृणोत् ॥५१
तस्मिस्तस्मिन्तु तन्मात्रा तेन तन्मात्रता स्मृता ।
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्तत: स्मृता. ।
अशान्तघोरमूढत्वादविशेषास्तत: पुन ॥५२
भूततन्मात्रसर्गोऽय विज्ञेयस्तु परस्परात् ।
वैकारिकादहङ्कारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्विकात् ।
वैकारिक स सर्गस्तु युगपत्सम्प्रवर्तते ॥५३
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यपि ।
साधकानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश ।
एकादश मनस्तत्र देवा वैकारिका. स्मृता. ॥५४

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते ।।५५
पादौ पायुरुपस्थञ्च हस्तौ वाग्दशमी भवेत् ।
गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पं वाक्यञ्च कर्म च ।।५६

जल केवल रस मात्र होता है जो कि रूप मात्राओं से आवृत हुआ था। जल ने रसों का विकार करते हुये गन्धमाला का सृजन किया ।। ५० ।। उससे सङ्घात की उत्पत्ति होती है जिसका गुण गन्ध होता है। रस मात्रा वाले जल ने गन्ध मात्रा वाले को समावृत कर लिया था ।। ५१ ।। उस-उसमें जो तन्मात्रा है उससे उसकी तन्मात्रता कही गयी है। अविशेष वाचक होने से तब ये अविशेष कहे गये हैं। अशान्त, घोर और मूढ़ होने से फिर अविशेष कहे गये हैं ।। ५२ ।। इस प्रकार परस्पर से यह भूत तन्मात्र का सर्ग जनना चाहिये। वैकारिक अर्थात् विकारयुक्त अहङ्कार से और सत्व के उद्रेक वाले सात्विक से वह वैकारिक सर्ग एक साथ सम्प्रवृत्त होता है ।। ५३ ।। पाँच बुद्धीन्द्रियाँ अर्थात् ज्ञानार्जन करने वाली ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच साधक कर्मेन्द्रियाँ अर्थात् केवल कर्म करके ज्ञानार्जन करने वाली इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इनके दश के दश ही अधिष्ठाता देव होते हैं जो वैकारिक कहे जाते हैं। उन दश उपर्युक्त इन्द्रियों के अतिरिक्त ग्यारहवाँ मन होता है। वहाँ वैकारिक देव होते हैं ।।५४। अब उन समस्त उक्त इन्द्रियों के विषय में बतलाते हैं। श्रोत, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और पाँचवीं इन्द्रिय नासिका है। ये सब शब्दादि विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये होती हैं इसीलिये बुद्धीन्द्रिय कहा जाता है ।। ५५ ।। दोनों चरण, पायु अर्थात् गुदा-उपस्थ अर्थात् मूत्रेन्द्रिय दोनों, हाथ और दशवीं वाक् ये इन्द्रियाँ इस तरह हैं। इनका क्रम से कर्मगति-विसर्ग अर्थात् मल का त्याग, आनन्द अर्थात् रमण सुख, शिल्प अर्थात् दस्तकारी और वाक्य कथन होता है ।।५६।।

आकाशं शब्दमात्रञ्च स्पर्शमात्रं समाविशत् ।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्द स्पर्शात्मकोऽभवत् ।।५७
रूपन्तथैव विशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ ।
त्रिगुणस्तु ततश्चाग्निः स शब्दस्पर्शरूपवान् ।।५८

सशब्दस्पर्शरूपाश्च रसमात्र समाविशत् ।
तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापो विज्ञेयास्ता रसात्मिका ॥५९
सशब्दस्पर्शरूपेषु गन्धस्तेषु समाविशत् ।
संयुता गन्धमात्रेण आचिन्वन्ति महीमिमाम् ।
तस्मात्पञ्चगुणा भूमि स्थूलभूतेषु दृश्यते ॥६०
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृता ।
परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् ॥६१
भूमेरन्तस्त्विदं सर्व लोकालोकघनावृतम् ।
विशेषा इन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृता ॥६२
गुणं पूर्वस्य पूर्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ।
तेषां यावच्च यच्चैव तत्तावद्गुणं स्मृतम् ॥६३
उपलभ्य शुचिर्गन्धं केचिद्वायोरनैपुणात् ।
पृथिव्यामेव तद्विद्यादपां वायोश्च संश्रयात् ॥६४

शब्द मात्र आकाश स्पर्श मात्रा वाले वायु में समावेश करता है। अतः एव वायु स्पर्श और शब्द इन दो गुणों वाला हो गया ॥ ५७ ॥ शब्द और स्पर्श ये दोनों गुण उसी प्रकार से रूप में समावेश करते हैं। इसलिये अग्नि शब्द-स्पर्श और रूप इन तीन गुणों वाला हो गया ॥ ५८ ॥ इसी रीति से शब्द स्पर्श और रूप रस तन्मात्रा वाले जल में समाविष्ट हो गये। इसलिये जल शब्द स्पर्श रूप और रस इन चार गुणों वाला हो गया ॥ ५९ ॥ शब्द स्पर्श रूप रस इनमें गन्ध का समावेश हो गया। किन्तु मही को केवल गन्ध से ही निर्धारित किया करते हैं। वस्तुतः यह भूमि पाँच गुणों वाली स्थूल भूतों में दिखाई देती है ॥ ६० ॥ शान्त घोर और मूढ हैं अतएव ये विशेष कहे गये हैं। ये परस्पर में अनुप्रवेश करने से परस्पर को धारण किया करते हैं ॥६१॥ लोकालोक घन के आवृत यह सब भूमि के अन्दर है। विशेष इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य हैं नियत होने से वे कहे गये हैं ॥ ६२ ॥ पूर्व पूर्व के गुण उत्तर से उत्तर को प्राप्त होते हैं। उनका जितना और जो है वह उतना ही गुण कहा गया है ॥ ६३ ॥ कुछ लोग वायु के गन्ध को प्राप्त कर निपुणता के

अभाव से उसे वायु का ही गुण मान लेते हैं किन्तु ऐसा नहीं है। इसे पृथिवी का ही समझना चाहिये और वायु में तो केवल उसका संश्रय ही जाता है ॥ ६४ ॥

एते सप्त महावीर्या नानाभूताः पृथक् पृथक्।
नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः।
ते समेत्य महात्मानो ह्यन्योन्यस्यैव संश्रयात् ॥६५
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।
महदाद्या विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते ॥६६
एककालं समुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत्।
विशेषेभ्योऽण्डमभवद् बृहत्तदुदकं च यत्।
तत्तस्मिन् कार्यकरणं संसिद्धं ब्रह्मणस्तदा ॥६७
प्राकृतेऽण्डे विबुद्धे सन् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः।
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ॥६८
आदिकर्त्ता च भूतानां ब्रह्माऽग्रे समवर्त्तत।
हिरण्यगर्भः सोऽग्रेऽस्मिन् प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः।
सर्गे च प्रति सर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥६९
करणैः सह सृज्यन्ते प्रत्याहारे त्यजन्ति च।
भजन्ते च पुनर्देहानसमाहारसन्धिषु ॥७०
हिरण्मयस्तुयो मेरुस्तस्योल्बं तन्महात्मनः।
गर्भोदकं समुद्राश्च जराद्यस्थीनि पर्वताः ॥७१

ये सात महान् वीर्य वाले हैं और पृथक् पृथक् अनेक भांति के होते हैं। पूर्णरूप से न मिलकर प्रजा की सृष्टि करने में समर्थ नहीं हुए ये सब महान् आत्मा वाले अन्योन्य के अर्थात् एक दूसरे के संश्रय से मिलकर पुरुष के अधिष्ठित होने से और अव्यक्त के अनुग्रह से महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त तक वे सब अण्ड को उत्पादित किया करते हैं ॥६५-६६॥ एक ही काल में वह जल के बुदबुदे की भाँति समुत्पन्न हुआ और विशेषों से अण्ड के स्वरूप में हुआ। फिर वह और उदक बृहत् हुआ और उसमें उस समय ब्रह्मा

की कार्य करणता रासिद्ध हुई ॥६७॥ प्राकृत अण्ड के विबुद्ध होने पर क्षेत्रज्ञ ब्रह्म संज्ञा वाला हुआ। वही सर्वप्रथम शरीरधारी है और वही पुरुष'—इस नाम से कहा जाता है ॥६८॥ भूतो का अर्थात् प्राणियों का आदिकर्त्ता अर्थात् सर्वप्रथम सृजन करने वाला पहिले ब्रह्मा हुए। वह हिरण्यगर्भ इसमे आगे चार मुखो वाला प्रादुर्भूत अर्थात् प्रकट हुआ। और सर्ग, प्रति-सर्ग मे क्षेत्रज्ञ ब्रह्म संज्ञा वाला होता है ॥६९। इन्द्रियो के साथ सृजन किये जाते हैं और प्रत्याहार मे त्याग देते हैं तथा फिर समाहार सन्धियो मे देहो को धारण कर लेते हैं। ॥७०॥ उस महान् आत्मा की उल्वता हिरण्मय मेरु की है समुद्र गर्भ का जल है और जरादि अस्थियाँ पर्वत हैं ॥७१॥

तस्मिन्नण्डे त्विमे लोका अन्तर्भूतास्तु सप्त वै।
सप्तद्वीपा च पृथ्वीयं समुद्रैः सह सप्तभि ॥७२
पर्वतैः सुमहद्‌भिश्च नदीभिश्च सहस्रश.।
अन्तस्तस्मिंस्त्विमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत् ॥७३
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना।
लोकालोकं च यत् किंचिच्चाण्डे तस्मिन् समर्पितम् ॥७४
अद्‌भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोऽण्डं समावृतम्।
आपो दशगुणा ह्येवन्तेजसा बाह्यतो वृताः ॥७५
तेजोदशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम्।
वायोर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतम् ॥७६
आकाशेन वृतो वायु ख च भूतादिना वृतम्।
भूतादिर्महता चापि अव्यक्तेन वृतो महान्।
एतैरावरणैरण्ड सप्तभि प्राकृतैर्वृतम् ॥७७
एताश्चावृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतय. स्थिता.।
प्रसर्गकाले स्थिरता च ग्रसन्त्येताः परस्परम् ॥७८

उस अण्ड मे ये सातों लोक अन्तर्भूत है अर्थात् उस के अन्दर रहते हैं। सात द्वीप और सातों समुद्रो के सहित यह भूमण्डल, बड़े विशाल पर्वत, सहस्रो की संख्या वाली नदियाँ—ये सब उसी के अन्तर्भाग में हैं। ये सब लोक और

यह सम्पूर्ण जगत् तथा समस्त विश्व उसके ही अन्दर होते हैं ।।७२-७३।। चन्द्रमा और सूर्य समस्त नक्षत्रों के साथ तथा सम्पूर्ण ग्रहों के सहित उसमें हैं और वायु के साथ लोकालोक जो कुछ भी है उसी अण्ड में समर्पित है ।।७४।। यह अण्ड बाहिर से दश गुने जल से समावृत है और फिर जल से दश गुने तेज से इसी प्रकार बाहिर से आवृत है ।।७५।। इसी भाँति तेज जितना है उससे दश गुना वायु से आवृत होता है और वायु से दश गुना उसके बाद आकाश से आवृत होता है ।।७६।। वायु से आकाश से आवृत है और नभ भूतादि से आवृत है। भूतादि सब महान् से तथा यह महत् अव्यक्त से आवृत होता है। इस प्रकार से यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणों से आवृत होता है ।। ७।। इन सब को अन्योन्य को आवृत करके आठ प्रकृतियाँ स्थित होती हैं। प्रसर्ग के काल में ये स्थित होकर परस्पर में ग्रसती हैं ।।७८।।

एवं परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ।
आधाराधेयभावेन विकारस्य विकारिषु ।।७६
अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ।
इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः ।
अबुद्धिपूर्वं प्रागासीत् प्रादुर्भूता तडिद्यथा ।।८०
एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेद तत्त्वतः ।
आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्यः प्रजावांश्च भवत्युत ।।८१
निवृत्तिकामोऽपि नरः शुद्धात्मा लभते गतिम् ।
पुराणश्रवणान्नित्यं सुखं च क्षेममाप्नुयात् ।।८२

इस रीति से परस्पर में उत्पन्न होती हुई परस्पर में ही ये धारण किया करती हैं। विकार वालों में विकार का आधार-आधेय भाव होता है ।।७६।। यहाँ इस अव्यक्त को क्षेत्र बताया गया है, ब्रह्मा इसका क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। यही प्राकृत-सर्ग होता है जो कि क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित होता है। यह पहिले अबुद्धि पूर्व वाला था और जिस तरह अचानक बिजली चमक कर दिखलाई दिया करती है उसी तरह यह प्रादुर्भूत हुआ ।।८०।। इस हिरण्यगर्भ के जन्म को तत्त्व बुद्धि पूर्वक ठीक-ठीक जो जानता है वह आयु वाला-कीर्त्ति वाला-धन्य

और प्रजा वाला होता है ॥८१॥ जो मानव निवृत्ति की ही कामना रखता है वह भी शुद्ध आत्मा वाला अच्छी गति को प्राप्त करता है। पुराण के नित्य श्रवण करने से सुख और क्षेम की प्राप्ति होती है ॥८२॥

॥ सृष्टि रचना और दैवी शक्तियाँ ॥

यद्धि सृष्टेस्तु सख्यात मया कालान्तरन्द्विजाः ।
एतत् कालान्तर ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम् ॥१
रात्रिस्त्वेतावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नश. ।
अहस्तस्य तु या सृष्टि प्रलयो रात्रिरुच्यते ॥२
अहश्च विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारणा ।
उपचार प्रक्रियते लोकाना हितकाम्यया ॥३
प्रजा. प्रजानाम्पतय ऋषयो मुनिभिः सह ।
ऋषीन् सनत्कुमाराद्यान् ब्रह्मसायुज्यगं सह ॥४
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च ।
तन्मात्रा इन्द्रियगणो बुद्धिश्च मनसा सह ॥५
अहस्तिष्ठन्ति ते सर्वे परमेशस्य धीमत ।
अहरन्ते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसंभवः ॥६
स्वात्मन्यवस्थिते सत्त्वे विकारे प्रतिसहृते ।
साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ ॥७

श्रीलोमहर्षणजी ने कहा—हे द्विजवृन्द ! यह मैंने जो सृष्टि के कालान्तर की सख्या की है यह कालान्तर परमेश्वर का दिन समझना चाहिए ॥१॥ परमेश्वर की रात्रि भी इतनी ही जाननी चाहिए उसका जो दिन होता है वही सृष्टि का काल होता है और जो रात्रि होती है वह प्रलय कहा जाता है ॥२॥ उसका दिन तो होता है किन्तु रात्रि नहीं होती है—यह धारणा लोकों के हित की कामना से उपचार किया जाता है ॥३॥ प्रजा-प्रजाओं के पति—ऋषिवृन्द मुनियों के सहित—सनत्कुमारादि नाम वाले ब्रह्म सायुज्य को जाने वालों के सहित समस्त इन्द्रियाँ और इन इन्द्रियों के सब अर्थ अर्थात् विषय—पञ्चमहाभूत-पाँच तन्मात्रा, इन्द्रियों का समुदाय और मन के साथ बुद्धि ये सब परमेश्वर के

दिन के समय में रहा करते हैं और उस धीमान् परमेश्वर के दिन के अन्त समय में ये सब प्रलीन हो जाते है फिर जब रात्रि का अवसान होता है तो इस विश्व की उत्पत्ति हो जाती है ।।४-५-६।। अपनी आत्मा में सत्त्व के अवस्थित होने पर और विकार प्रतिसंहृत हो जाने पर प्रधान और पुरुष दोनों साधर्म्य से अवस्थित रहा करते हैं ।।७।।

तमः सत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ।
अनोद्रिक्तौ प्रसूतौ च तौ तथा च परस्परम् ।
गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते ।।८
तिलेषु वा यथा तैलं घृतं पयसि वा स्थितम् ।
तथा तमसि सत्त्वे च रजोऽव्यक्ताश्रितं स्थितम् ।।९
उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं तदा ।
अहर्मुखे प्रवृत्ते च पुरः प्रकृतिसम्भवः ।।१०
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ।
प्रधानं पुरुषञ्चैव प्रविश्याण्डं महेश्वरः ।।११
प्रधानात् क्षोभ्यमाणात्तु रजो वै समवर्त्तत ।
रजः प्रवर्त्तकं तत्र बीजेष्वपि यथा जलम् ।।१२
गुणवैषम्यमासाद्य प्रसूयन्ते ह्यधिष्ठिताः ।
गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे ।
आश्रिताः परमा गुह्याः सर्वात्मानः शरीरिणः ।।१३
रजो ब्रह्मा तमो ह्यग्निः सत्त्वं विष्णुरजायत ।
रजःप्रकाशको ब्रह्मा स्रष्टृत्वेन व्यवस्थितः ।।१४

तमोगुण और सत्त्वगुण ये दोनों समत्व रूप से व्यवस्थित हैं । यहाँ पर ये दोनों उद्रेक वाले होते हैं और परस्पर में प्रसूत होते हैं । जब गुणों का साम्य हो अर्थात् दोनों गुण समान स्वरूप में स्थिति रखने वाले होते हैं तो सृष्टि का लय समझ लेना चाहिए । जब इनकी विषमता का भाव होता है तो उसे ही सृष्टि कहा जाता है ।।८।। वस्तुतः स्पष्ट दर्शन में ये दो ही गुण आते हैं सत्त्वगुण और तमोगुण किन्तु तृतीय जो रजोगुण होता है वह जिस तरह तिलों में तैल

रहता है और दूध मे घृत रहा करता है किन्तु वह तैल और घृत स्पष्ट दिखलाई नही दिया करता है उसी तरह तमोगुण मे और सत्त्वगुण में रजोगुण अव्यक्त रूप से आश्रित होकर स्थित रहता है जो कि प्रत्यक्ष दिखाई नही देता है ॥९॥ महेश्वर प्रभु की परा सम्पूर्ण रजनी की उपासना करके जब दिन के आरम्भ प्रवृत्त हो जाने पर आगे प्रकृति का सम्भव (उत्पत्ति) हुआ। १०॥ महेश्वर ने अण्ड में प्रवेश करके उस योग से प्रधान और पुरुष को क्षुब्ध कर दिया ॥११॥ उस समय जब प्रधान क्षोभ्यमाण हुआ तो उससे रजोगुण हुआ वहाँ पर बीजों मे जल के सदृश वह रजोगुण ही प्रवर्त्तक हो गया ॥१२॥ उस समय गुणों की विषमता को प्राप्त कर जो अण्ड मे अधिष्ठित थे वे प्रसूत होते हैं। क्षोभ को प्राप्त हुए गुणो से तीन देव समुत्पन्न हुए जो वहाँ आश्रित थे-परम गुह्य थे-सब की आत्मा स्वरूप थे और शरीर धारण करने वाले थे ॥१३॥ रजोगुण तो ब्रह्मा हैं—तमोगुण अग्नि हैं और सत्त्वगुण विष्णु उत्पन्न हुए। ब्रह्मा सृष्टा होने से रजोगुण के प्रकाशक व्यवस्थित हुए ॥१४॥

तम प्रकाशकोऽग्निस्तु कालत्वेन व्यवस्थितः ।
सत्त्वप्रकाशको विष्णुरौदासीन्ये व्यवस्थितः ॥१५
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः ।
परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रताः ॥१६
परस्परेण वर्त्तन्ते धारयन्ति परस्परम् ।
अन्योन्यमिथुना ह्येते ह्यन्योन्यमुपजीविनः ।
क्षणं वियोगो न ह्येषान्न त्यजन्ति परस्परम् ॥१७
ईश्वरो हि परो देवो विष्णुस्तु महतः परः ।
ब्रह्मा तु रजसोद्रिक्तः सर्गायेह प्रवर्त्तते ।
परश्च पुरुषो ज्ञेयः प्रकृतिश्च परा स्मृता ॥१८
अधिष्ठितोऽसौ हि महेश्वरेण प्रवर्त्तते चोद्यमानः समन्तात् ।
अनुप्रवर्त्तन्ति महान्त एव चिरस्थिताः स्वे विषये प्रियत्वात् ॥१९
प्रधानं गुणवैषम्यात्सर्गकाले प्रवर्त्तते ।
ईश्वराधिष्ठितात् पूर्वन्तस्मात्सदसदात्मकात् ।

ब्रह्मा बुद्धिश्च मिथुनं युगपत्सम्बभूवतुः ॥२०
तस्मात्तमोऽव्यक्तमयः क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः।
संसिद्धः कार्यकरणैर्ब्रह्माऽग्रे समवर्त्तत ॥२१

अग्नि तमोगुण का प्रकाश करने वाला है अतः वह काल के स्वरूप से व्यवस्थित हुए। सत्वगुण के प्रकाशक विष्णु हैं अतः उदासीनता की स्थिति में व्यवस्थित हुए हैं ॥१५॥ ये ही तीन वेद हैं, ये ही तीन अग्नियाँ हैं। ये परस्पर में एक-दूसरे के आश्रित हैं और परस्पर में अनुव्रत वाले भी होते हैं ॥१६॥ ये तीनों परस्पर में बरताव करते हैं और परस्पर में धारण किया करते हैं। ये अन्योन्य मिथुन अर्थात् जोड़े वाले हैं और अन्योन्य के उपजीवी होते हैं। इनका आपस में एक दूसरे से एक क्षण मात्र का भी वियोग नहीं होता है और ये एक दूसरे को आपस में कभी त्याग नहीं करते हैं ॥१७॥ ईश्वर सबसे पर देव हैं और विष्णु महान् से भी पर हैं। ब्रह्मा तो रजोगुण के उद्रेक वाले हैं जो यहाँ सर्ग के लिये ही प्रवृत्त होते हैं। पुरुष को पर समझना चाहिए और प्रकृति परा कही गई है ॥१८॥ महेश्वर के द्वारा अधिष्ठित यह चारों ओर से उद्यम युक्त होता हुआ प्रवृत्त होता है। अपने विषय में प्रिय होने के कारण चिर स्थित महान् ही फिर अनुप्रवृत्त किया करते हैं ॥१९॥ प्रधान गुणों की विषमता होने के कारण से सर्ग काल में अर्थात् सृजन के समय में प्रवृत्त होता है। पहिले ईश्वर से अधिष्ठित उस सदसदात्मक से ब्रह्मा और बुद्धि का जोड़ा एक ही समय में उत्पन्न हुआ ॥२०॥ इस कारण से तम अव्यक्तमय और क्षेत्रज्ञ ब्रह्म संज्ञा वाला होता है तथा कार्य कारणों से संसिद्ध होता हुआ ब्रह्मा आगे हुआ ॥२१॥

तेजसा प्रथमो धीमानव्यक्तः संप्रकाशते।
स वै शरीरी प्रथमः कारणत्वे व्यवस्थितः ॥२२
अप्रतीघेन ज्ञानेन ऐश्वर्येण च सोऽन्वितः।
धर्मेण चाप्रतीघेन वैराग्येण समन्वितः ॥२३
तस्येश्वरस्याप्रतिघं ज्ञानं वैराग्यलक्षणम्।
धर्मैश्वर्यकृता बुद्धिर्ब्राह्मी जज्ञेऽभिमानिनः ॥२४
अव्यक्ताज्जायते चास्य मनसा च यदिच्छति।

वशीकृत त्वाद्वै गुण्यात् सुरेशत्वास्स्वभावतः ॥२५
चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकोऽभवत् ।
सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्था स्वयम्भुवः ॥२६
सत्त्व रजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तम ।
सात्त्विक पुरुषत्वे च गुणवृत्ति स्वयम्भुव ॥२७
लोकान् सृजति ब्रह्मेति कालत्वे संक्षिपत्यपि ।
पुरुषत्वे ह्युदासीनस्तिस्रोऽवस्था प्रजापते ॥२८

प्रथम धीमान् अव्यक्त तेज से भली-भाँति प्रकाशित होता है। वह प्रथम शरीर धारण करने वाला है, जो कि कारण रूप से व्यवस्थित हुआ है ॥२२॥ वह अनुपम धर्म और वैराग्य से समन्वित तथा अप्रतीघ ज्ञान एव ऐश्वर्य से अन्वित था ॥२३॥ उस ईश्वर का वैराग्य के लक्षण वाला अप्रतिघ ज्ञान था और अभिमान वाले उसको धर्म तथा ऐश्वर्य से भी हुई ब्राह्मी बुद्धि उत्पन्न हुई ॥२४॥ इसने मन से जो भी वह चाहता है वही अव्यक्त से हो जाता है क्योंकि स्वभाव से वशीकृत त्रैगुण्य और सुरेशता थी ॥२५॥ चतुर्मुख तो ब्रह्मत्व और कालत्व मे अन्तक हुआ। और सहस्र मूर्धा वाला पुरुष हुआ। इस प्रकार स्वयम्भु की तीन अवस्थाएं हुईं ॥२६॥ ब्रह्मत्व मे सत्त्व और रजोगुण की वृत्ति थी, कालत्व की अवस्था मे रजोगुण और तमोगुण की वृत्ति थी तथा पुरुषत्व की दशा मे स्वयम्भू की केवल सात्त्विकी गुण वृत्ति थी ॥२७॥ वही स्वयम्भू ब्रह्मत्व के स्वरूप से लोकों का सृजन करता है और कालत्व की दशा में अवस्थित होकर संहार किया करता है तथा पुरुषत्व के स्वरूप वह उदासीन भाव से स्थित रहता है। ये प्रजापति की तीन अवस्थाएं होती हैं ॥२८॥

ब्रह्मा कमलगर्भाभ कालो जात्याञ्जनप्रभ ।
पुरुष पुण्डरीकाक्षो रूप तत्परमात्मनः ॥२९
योगेश्वर शरीराणि करोति विकरोति च ।
नानाकृतिक्रियारूपनामवृत्ति स्वलीलया ॥३०
त्रिधा यद्वर्त्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते ।
चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूह प्रकीर्तित ॥३१

यदाप्नोति यदादत्ते यच्चास्ति विषयं प्रति ।
तच्चास्य सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते ॥३२
ऋषिः सर्वगतत्वाच्च शरीराद्यात्स्वयं प्रभुः ।
स्वामित्वमस्य तत्सर्वं विष्णुः सर्वप्रवेशनात् ॥३३
भगवान् भगसद्भावाद्रागो रागस्य शासनात् ।
परश्च तु प्रकृतत्वादवनादोमितिः स्मृतः ॥३४
सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात् सर्वः सर्वं यतस्ततः ।
नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः ॥३५

अपनी अवस्था के अनुसार उस परमात्मा के तीन प्रकार के रूप होते हैं। जब वही ब्रह्मा होता है तो उसका रूप कमल के गर्भ की आभा के समान हुआ करता है, काल का स्वरूप होता है उस समय अञ्जन के सदृश रूप होता है और जब पुरुष के स्वरूप में होता है तब पुण्डरीकाक्ष अर्थात् कमल के तुल्य नेत्रों वाला होता है ॥२६॥ वह योग का स्वामी अपनी लीला से अनेक आकृति-विविध क्रिया-प्रचुर रूप, नाम तथा वृत्ति वाला है तथा शरीरों को धारण करता है और त्याग किया करता है ॥३०॥ वह लोक में तीन स्वरूपों से रहता है इसी लिये वह त्रिगुण अर्थात् तीन गुण वाला कहा जाता है। चार प्रकार से प्रविभक्त होने से वह चतुर्व्यूह कहा गया है ॥३१॥ जो प्राप्त करता है—जो भी ग्रहण करता है और विषय के प्रति जो भी कुछ है वह सदा इसी का भाव होता है इसी कारण से यह आत्मा कहा जाया करता है ।.३२॥ सब में गत होने वाला है इसी कारण से ऋषि है, शरीर से भी आद्य होने से स्वयं प्रभु है और सब में प्रवेश होने से विष्णु कहा जाता है, समस्त वस्तु जात पर इसका स्वामित्व होता है ॥३३॥ भग नाम षट् ऐश्वर्य का होता है उसके सद्भाव होने से यही भगवान् इस नाम से कहा जाता है। राग के शासन करने से 'राग' कहते हैं, प्रकृत होने से पर तथा रक्षण करने से 'ओम्' यह नाम इसका कहा गया है ॥३४॥ समस्त प्रकार का विशेष ज्ञान होने से 'सर्वज्ञ'—यह नाम हुआ । उसके जहाँ-तहाँ सभी कुछ रहता है अतएव 'सर्व' यह नाम है । समस्त नरों का यह अयन अर्थात् आधार स्थान होता है इसी कारण से इस 'नारायण'—इस नाम से पुकारा गया है ॥३५॥

त्रिधा विभज्य स्वात्मानं त्रैलोक्ये सम्प्रवर्त्तते ।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्तु यत् ।
अग्रे हिरण्यगर्भं स प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ॥३६
आदित्वाच्चादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः ।
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः जापतिरत स्मृतः ॥३७
देवेषु च महान् देवो महादेवस्ततः स्मृतः ।
सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यत्वात्तथेश्वरः ॥३८
बृहत्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भूत उच्यते ।
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानाद्विभु सर्वगतो यतः ॥३९
यस्मात् पुर्यनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
नोत्पादितत्वात् पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति स स्मृत ॥४०
इज्यत्वादुच्यते यज्ञ कविर्विक्रान्तदर्शनात् ।
क्रमणः क्रमणीय चाद्वर्णकस्याभिपालनात् ॥४१
आदित्यसंज्ञः कपिलस्त्वग्रजोऽग्निरिति स्मृतः ।
हिरण्यमस्य गर्भोऽभूद्धिरण्यस्यापि गर्भज ।
तस्माद्धिरण्यगर्भं स पुराणेऽस्मिन्निरुच्यते ॥४२

अपनी आत्मा को तीन प्रकार से विभक्त करके इस त्रैलोक्य में सम्प्रवृत्त होता है। तीन तरह की दशा से ही लोकों का सृजन करता है, संहार करता है और वीक्षण किया करता है। वह पहिले चार मुखों वाला हिरण्यगर्भ के स्वरूप से प्रकट हुए ॥३६॥ सबके आदि में होने से 'आदिदेव' तथा अजन्मा होने के कारण से 'अज' कहा गया है। समस्त प्रजाओं का पालन-पोषण करता है, अतएव 'प्रजापति' कहा गया है ॥३७॥ समस्त देवताओं में सबसे बड़ा देव है, इसीलिये इसका 'महादेव' यह नाम पड गया है। समस्त लोकों का आवश्यक रूप से ईश होने के कारण से ही 'ईश्वर' इस नाम से यह पुकारा जाया करता है ॥३८॥ सबसे बृहत् होने से 'ब्रह्मा' तथा भूत होने के कारण से 'भूत' इस नाम से यह कहा जाता है। क्षेत्र के विशेष ज्ञान होने से 'क्षेत्रज्ञ' और क्योंकि यह सब में गत होकर रहा करता है, इसलिये इसे 'विभु' इस नाम से

कहा गया है ॥३६॥ चूंकि यह पुर में अनुशयन किया करता है, इसी कारण से इसे 'पुरुष' कहा गया है। किसी के द्वारा उत्पादित नहीं किया गया है और सबके पहिले होने वाला है, इससे इसका 'स्वयम्भू' यह नाम कहा गया है ॥४०॥ यह इज्य अर्थात् सृजन करने के योग्य है इसीलिए इसका नाम यज्ञ' यह होता है। विक्रान्ति के देखने से 'कवि' नाम होता है। क्रमण करने के योग्य होने से 'क्रमण' तथा अभिपालन करने से 'वर्णक' ये नाम हुए हैं ॥४१॥ कपिल, आदित्य संज्ञा वाला, अग्रज और अग्नि ये नाम कहे गये हैं। इसका गर्भ हिरण्य हुआ था और हिरण्य के ही गर्भ से जन्म लेने वाला है, इसलिये इस पुराण में उसे 'हिरण्यगर्भ' इस नाम से कहा जाता है ॥४२॥

स्वयम्भुवो निवृत्तस्य कालो वर्षाग्रजस्तु यः ।
न शक्यः परिसंख्यातुमपि वर्षशतैरपि ॥४३
कल्पसंख्यानिवृत्तेस्तु पराख्यो ब्रह्मणः स्मृतः ।
तावच्छेषोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यान्ते प्रतिसृज्यते ॥४४
कोटिकोटिसहस्राणि अन्तर्भूतानि यानि वै ।
समतीतानि कल्पानान्तावच्छेषाः परास्तु ये ॥४५
यस्त्वयं प्रर्त्तते कल्पो वाराहन्तं निबोधत ।
प्रथमः साम्प्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्त्तते द्विजाः ॥४६
तस्मिन् स्वायम्भुवाद्यास्तु मनवः स्युश्चतुर्दश ।
अतीता वर्त्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुनः ॥४७
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा समन्ततः ।
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः ।
प्रजाभिस्तपसा चैव तेषां शृणुत विस्तरम् ॥४८
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
भविष्याणि भविष्यैश्च कल्पः कल्पेन चैव ह ॥४९
अतीतानि च कल्पानि सोदकानि सहान्वयैः ।
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ॥५०

निवृत्त स्वयम्भू के वर्षों पहिले उत्पन्न होने वाला जो काल है, वह

सैकडो वर्षो मे भी नही गिना जा सकता है ॥४०॥ कल्प की संख्या के निवृत्त होने वाले ब्रह्मा का 'परार्द्ध' कहा जाता है। उसका उतना अन्य शेष-काल होना है उनके अन्त में प्रतिसृजन किया जाता है ॥४४॥ करोडो-करोडो सहस्र जो अन्तर्भूत अतीत हुए है, अर्थात् अन्दर मे रहने वाले गुजर चुके है वे उतने शेष पर कहे जाते है ॥४५॥ जो यह वर्तमान कल्प है, उसका नाम वाराह समझ लेना चाहिए। हे द्विजवृन्द। उन अन्य समस्त कल्पो मे यह इस समय वरतने वाला प्रथम ही कल्प है ॥४६॥ इस वाराह कल्प मे स्वायम्भुव आदि चौदह मनु हुए है, जो कुछ तो अतीत हो चुके है, कुछ वर्तमान है और कुछ आगे होवे ॥४७॥ उन सब के द्वारा चारो ओर यह भूमण्डल सात द्वीपो वाला है, जोकि पूरे एक सहस्र युग पर्यंत मन्वन्तरो के द्वारा परिपालन करने के योग्य है। प्रजाओ के द्वारा और तप से युक्त है, उसका पूर्ण विस्तार मैं बतलाता हूँ, उसका आप लोग अब श्रवण करें ॥४८॥ एक मन्वन्तर के द्वारा सब ही अन्तर्गत होते है। जो आगे होंगे वे आगे होने वालो के द्वारा और कल्प, कल्प के द्वारा अन्तर्गत होते है ॥४९॥ विशेष रूप से जानने वाले के द्वारा अन्वयो के सहित और छोड़कर जो कल्प व्यतीत हो गये हैं तथा उसी प्रकार से जो अनागत है अर्थात् अर्थात् आगे आने वाले है उनका तर्क करना चाहिए ॥५०॥

॥ सृष्टि रचना के विभिन्न सर्ग ॥

आपो ह्यग्रे समभवन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले।
सान्तरालैकलीनेऽस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥१
एकार्णवे तदा तस्मिन्न प्राज्ञायत किंचन।
तदा स भगवान् ब्रह्मा सहस्राक्ष सहस्रपात् ॥२
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णोऽह्यतीन्द्रिय।
ब्रह्मा नारायणाख्य स सुष्वाप सलिले तदा ॥३
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्य लोकमुदीक्ष्य स।
इम चोदाहरन्त्यत्र श्लोक नारायण प्रति ॥४
आपो नारा वै तनव इत्येवं नाम शुश्रुम।
अप्सु शेते च तस्मात्तेन नारायण स्मृत ॥५

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः ।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥६
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरत् ।
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अग्नि से जल हुए और पृथिवी तल में अग्नि के नष्ट हो जाने पर तथा अन्तराल के सहित लीन होने पर स्थावर और जङ्गम नष्ट हो गये ॥१॥ उस समय उस एक अर्णव में कुछ भी नहीं जाना गया था। तब सहस्र नेत्रों वाला और सहस्र चरण वाला भगवान् ब्रह्मा तथा सहस्र मूर्धा वाला रुक्म (सुवर्ण) के समान वर्ण से युक्त, इन्द्रियों से अगोचर पुरुष जो 'नारायण' इस नाम से कहा जाता है, वह ब्रह्मा उस समय में जल में शयन करता था ॥२॥३॥ उस समय सत्व के उद्रेक होने से वह प्रबुद्ध हुए और उन्होने इस लोक को पूर्णतया शून्य देखा। यहाँ नारायण के प्रति इस श्लोक को उदाहृत करते हैं ॥४॥ आप नार ये तनु है, ऐसा जलों का नाम सुनते हैं। क्योंकि जलों में शयन किया करते हैं, इसी कारण से 'नारायण' यह नाम कहा गया है ॥५॥ एक युगों के सहस्र के तुल्य निशा का समय पर्यन्त उसने वहाँ उसी तरह उपासना की और फिर रात्रि के अन्त में सर्ग (सृजन) के कारण होने से ब्रह्मत्व को प्राप्त करते हैं ॥६॥ उस जल में ब्रह्मा उस समय वायु होकर विचरण करता था, जैसे कोई खद्योत (जुगनू) वर्षा-काल की रात्रि में इधर-उधर घूमा करता है ॥७॥

ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम् ।
अनुमाना दसंमूढो भूमेरुद्धरणं प्रति ॥८
अकरोत् स तनुं त्वन्यां कल्पादिषु यथा पुरा ।
ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ॥९
सलिलेनाप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स तु समन्ततः ।
किन्नु रूपं महत् कृत्वा उद्धरेयमहं महीम् ॥१०
जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमस्मरत् ।

अप्रूप्य सर्वभूतानां वाङ्मयं धर्मसंज्ञितम् ॥११
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमुच्छ्रितम् ।
नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥१२
महापर्वतवर्ष्माणं श्वेतं तीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम् ।
विद्युदग्निप्रकाशाक्षमादित्यसमतेजसम् ॥१३
पीनवृत्तायतस्कन्धं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
पीनोन्नतकटीदेशं सुरलक्षं शुभलक्षणम् ॥१४
रूपमास्थाय विपुलं वाराहममितं हरिः ।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥१५

इसके अनन्तर उस जल में अन्तर्गत भूमि का ज्ञान प्राप्त करके भी भूमि के उद्धार के प्रति वह अनुमान से असमूढ़ था अर्थात् अनुमान के ज्ञान से युक्त था ॥८॥ इसके अनन्तर उसने अन्य तनु किया, जैसा कि पहिले कल्प आदि में बनाया था और फिर उस महान् आत्मा ने मन से उस दिव्य रूप का चिन्तन किया था ।९॥ उसने उस समय चारों ओर जल में आप्लुत इस भूमि को देखकर विचार किया कि क्या मैं अपना महान् रूप बनाकर इस भूमि का उद्धार करूँ ? ॥१०॥ जल की क्रीड़ाओं में अत्यन्त सुन्दर वाराह के रूप का स्मरण किया, जो कि समस्त प्राणियों के द्वारा धर्षित न करने के योग्य होता है तथा वाङ्मय और धर्म की संज्ञा वाला है ॥११॥ अब उस वाराह के रूप का विस्तृत वर्णन किया जाता है—वह वाराह जोकि भगवान् ने उस समय अपना रूप बनाया था दश योजन विस्तीर्ण अर्थात् लम्बा था, एक सौ योजन ऊँचा था, नीले मेघ के समान कान्ति वाला था और मेघ की घोर गर्जना के सदृश शब्द करने वाला था ॥१२॥ एक बहुत ही विशाल पर्वत के समान आकार वाला, श्वेत था और उसके अत्यन्त तीक्ष्ण तथा बहुत ही उग्र दाढ़ें । बिजली एवं अग्नि के तुल्य प्रकाश (चमक) वाले उसके नेत्र थे और सूर्य के समान तेज वाला था ॥१३॥ मोटे और चौड़े कन्धों वाला था, सिंह के विक्रम से युक्त गमन के समान गमन करने वाला था । मोटे और ऊँचे बहुत ही सुन्दर एवं शुभ लक्षण वाले कटि देश से युक्त था ॥१४॥ ऐसे आकार-

प्रकार वाला अत्यन्त विशाल अपना अभिमत वाराह का रूप हरि भगवान् ने धारण कर पृथिवी के उद्धार करने के लिये रसातल में प्रवेश किया था। १५।।

स वेदवाद्य पद्रष्टा क्रतुवक्षाश्चितीमुखः ।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ।।१६
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ।
आज्यनासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनो महान् ।।१७
सत्यधर्ममयः श्रीमान् धर्म्मविक्रमसंस्थितः ।
प्रायश्चित्तरतो घोरः पशुजानुर्महाकृतिः ।।१८
ऊर्द्धगात्रो होमलिङ्गः स्थानबीजो महौषधिः ।
वेद्यान्तरात्मा मन्त्रस्फिगाज्यस्पृक् सोमशोणितः ।।१९
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वितः ।।२०
दक्षिणाहृदयो गोपी महासत्रमयो विभुः ।
उपाकर्मेष्टिरुचिरः प्रवर्ग्यवित्तभूषणः ।।२१
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ।
छायापत्नीसहायो वै मणिश्रृङ्ग इवोच्छ्रितः ।
भूत्वा यज्ञवाराहो वै अपः स प्राविशत् प्रभुः ।।२२

अब उस वाराह के स्वरूप में प्रभु के प्रवेश करने का विस्तृत शोभा समन्वित वर्णन किया जाता है—वह हरि का वाराह स्वरूप वेदवादियों का उपद्रष्टा था, क्रतु ही जिसका वक्षःस्थल था और चिति के मुख वाला था। उस वाराह की जिह्वा साक्षात् अग्निदेव थे, दर्भ रोम रूप थे, ब्रह्म जिसका शीर्ष (मस्तक) था, महान् तप वाला था ।।१६।। दिन और रात्रि रूपी नेत्रों को धारण करने वाला, वेद और षट् वेदों के अंगों के आभरण वाला, घृत ही जिसकी नासिका थी और स्रुवा जिसका मुख था तथा सामवेद का गान ही उसकी महान् ध्वनि थी ।।१७।। सत्य और धर्म से परिपूर्ण श्री से युक्त तथा धर्म रूपी विक्रम में संस्थिति करने वाला था। प्रायश्चित्त में अनुराग रखने

वाला, पशु की जानु वाला, परम घोर और महान् आकृति वाला उस वाराह का स्वरूप था ॥१८॥ ऊर्ध्व गात्र वाला तथा होम के उपस्थ वाला, स्पन्द के बीज वाला, महान् औषधि स्वरूप था। वह जानने के योग्य अन्तरात्मा वाला, मन्त्र ही जिसके स्फिक थे तथा पुन स्पृक् वाला और सोम के रक्त वाला उस वाराह का स्वरूप था ॥१९॥ वेद जिस वाराह के स्कन्ध थे, हवि जिसकी गन्ध थी और हव्य तथा कव्य ही उसके वेग थे जिनसे वह युक्त था। प्राग्वंश के काया वाला, द्युति वाला और विविध भाँति की दीक्षाओं से समन्वित स्वरूप वाला वह वाराह था ॥२०॥ दक्षिणा हृदय, योगी, महासत्रमय और विभु तथा उपाकर्म की दृष्टि से सुन्दर एवं प्रवर्ग्य चित्त और भूषण वाला वाराह स्वरूप था ॥२१॥ अनेक छन्दों की गति के मार्ग वाला, गुह्य उपनिषदों के आसन वाला छाया रूपिणी अपनी पत्नी की सहायता से युक्त अत्युन्नत मणिश्रृङ्ग की भाँति होकर उस प्रभु यज्ञ वाराह ने जल में प्रवेश किया था ॥२२॥

उद्भिः सञ्छादितामुर्वीं स तामरनन् प्रजापतिः।
उपगम्योज्जहाराशु अपस्ताश्च स विन्यसत् ॥२३

सामुद्रीवं समुद्रेषु नादेयीश्च नदीष्वथ।
रसातलतले मग्ना रसानन्तले गताम् ।
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्रयाभ्युज्जहार गाम् ॥२४

ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः।
मुमोच पूर्वं मनसा धारयित्वा धराधरः ॥२५

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता।
विततत्वाच्च देवस्य न मही याति विप्लवम् ॥२६

ततोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया।
पृथिव्याः प्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः।
पृथिवीं तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ॥२७

प्राक् सर्गे दह्यमानास्तु तदा संवर्तकाग्निना।
तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वता भुवि सर्वशः ॥२८

शैत्यादेकार्णवे तस्मिन्वायुनापस्तु संहृताः ।
निषिक्ता यत्र यत्रासंस्तत्रतत्राचलोऽभवत् ।।२६

प्रजापति ने जलों से भली भाँति ढकी हुई उस पृथ्वी को खोजते हुए वहाँ जाकर शीघ्र ही उसका उद्धार किया और उन जलों का विन्यास कर दिया ।।२३।। समुद्रों में सामुद्री तथा नदियों में नदी सम्बन्धी जलों का विन्यास किया । इसके अनन्तर रसातल में निमग्न तथा रसातल में गई हुई भूमि को प्रभु ने लोकों के हित के लिये अपनी दंष्ट्रा से (दाढ़ से) ऊपर लाकर उद्धार किया ।।२४।। इसके अनन्तर पृथ्वी की रचना करने वाले प्रभु उस पृथ्वी को अपने स्थान पर लाकर धरा के धारण करने के पहिले मन से धारण करके फिर त्याग किया था ।।२५।। उस जल के समूह के ऊपर स्थित पृथ्वी एक बड़ी विशाल नौका की तरह थी, किन्तु वह मही देव के द्वारा लाने के कारण से फिर विप्लव को प्राप्त नहीं होती है ।।२६।। इसके उपरान्त देव ने भूमि को ऊपर लाकर जगत के स्थापन करने की इच्छा की और उसी इच्छा से कमल के समान नेत्रों वाले पृथ्वी प्रविभाग करने के लिये मन किया । पृथ्वी को समान करके उस पृथ्वी पर उस देव ने पर्वतों को चुन दिया ।।२७।। पहिले उस समय वे सब संवर्त्ताग्नि से दह्यमान थे और भूमि पर सब ओर से उस अग्नि के द्वारा वे सब पर्वत विशीर्ण हो गये थे ।।२८।। शैत्य से उस एकार्णव में वायु के द्वारा जल संहृत किये गये और जहाँ-जहाँ पर वे निषिक्त थे, वहाँ-वहाँ पर अचल हो गये ।।२९।।

स्कन्नाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः ।
गिरयोऽन्तर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्च शिलोच्चयाः ।।३०
ततस्तेषु विशीर्णेषु लोकोदधिगिरिष्वथ ।
विश्वकर्म्मा विभजते कल्पादिषु पुनः पुनः ।।३१
ससमुद्रामिमां पृथ्वीं सप्तद्वीपां सपर्वताम् ।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान् पुनः सोऽथ प्रकल्पयत् ।
लोकान् प्रकल्पयित्वा च प्रजासर्गं ससर्ज्ज ह ।।३२
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।

ससर्ज्ज सृष्टिन्तद्रूपा कल्पादिषु यथा पुरा ॥३३
तस्याभिध्यायत सर्ग तदा वै बुद्धिपूर्वकम् ।
प्रधानसमकाल वै प्रादुर्भूतस्तमोमय ॥३४
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञित ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मन ॥३५

इनका और अचल होने स ये अचल कहे गय तथा पर्वों से पर्वत कहे गये हैं। अन्तर्भिर्णीर्ण होने से इनका नाम गिरि पड गया है। इनकी शिलाओं का चयन किये जाने से इनका नाम शिलोच्चय हुआ है ॥३०॥ इसके अनन्तर उन लोक-उदधि और पवनो के विशीण हो जाने पर विश्वकर्मा बार-बार कल्पादि में विभाग करते हैं ॥३१॥ समुद्रो के सहित इस पृथ्वी को, सात द्वीपों को, समस्त पर्वतो को और भूमण्डल से आदि चार लोको को उसने पुन प्रकल्पित किया था। इस तरह लोकों का प्रकल्पन करके फिर प्रजा के सर्ग की रचना की ॥३२॥ स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी ने अनेक प्रकार की प्रजा के सृजन की इच्छा करने वाला होकर जिस प्रकार पहिले कल्पादि म थी, उसी रूप वाला सृष्टि की रचना की थी। ३३॥ सर्ग की करने की भावना से अभिध्यान् करते हुए उनके समक्ष म उस समय बुद्धिपूर्वक एक ही समय मे प्रधान तथा तमोमय प्रादुर्भूत हुआ ॥३४॥ तम मोह, महामोह तामिस्र और अन्ध सज्ञा वाला तथा महात्मा से पाँच पर्व वाली यह अविद्या प्रादुर्भूत हुई ॥३५॥

पञ्चधा चाथित सर्गा ध्यायत सोऽभिमानिन ।
सर्वतस्तमसा चैव दीप कुम्भवदावृत ।
बहिरन्त प्रकाशश्च शुद्धो नि सज्ञ एव च ॥३६
यस्मात्तो संवृता बुद्धिर्मुख्यानि करणानि च ।
तस्मात्ते सवृतात्मानो नगा मुख्या प्रकीर्तिता ॥३७
मुख्यसर्गं तथाभूत ब्रह्मा दृष्ट्वा ह्यसाधकम् ।
अप्रसन्नमना साऽथ ततो न्यासोऽप्यमन्यत ॥३८
तस्याभिध्यायतस्तत्र तिर्य्यक् स्रोतोऽभ्यवर्त्तत ।
यस्मात्तिर्यग् व्यवर्त्तत तिर्य्यक्स्रोतस्तत स्मृतम् ॥३९

तमोबहुत्वात्ते सर्वे ह्यज्ञानबहुलाः स्मृताः ।
उत्पथग्राहिणश्चापि ध्यानाद्ध्यानमानिनः ॥४०
तिर्य्यक्स्रोतस्तु दृष्ट्वा वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः ।
अहंकृता अहंमना अष्टाविंशद्विधात्मकाः ॥४१
एकादशेन्द्रियविधा नवधा चोदयस्तथा ।
अष्टौ च तारकाद्याश्च तेषां शक्तिविधाः स्मृताः ॥४२

ध्यान करते हुए अभिमानी का वह सर्ग पाँच प्रकार से आश्रित हुआ । वह सर्ग कुम्भ से दीप की भाँति सब ओर से तम से आवृत था । बाहिर और अन्दर शुद्ध प्रकाश था, जिसकी कोई संज्ञा नहीं थी ॥३६॥ जिससे उनके द्वारा बुद्धि संवृत थी और मुख्य कारण संवृत थे, उससे वे संवृत आत्मा वाले नग मुख्य कहे गये हैं ॥३७॥ मुख्य सर्ग में ब्रह्माजी ने उस प्रकार के असाधक को देखकर अपने मन में बहुत ही अप्रसन्नता की और इसके अनन्तर उसने फिर न्यास करने को मन में माना ॥३८॥ इस प्रकार सर्ग करने के लिये उसके ध्यान करते हुए वहाँ पर तिर्यक् स्रोत हुआ । क्योंकि वह तिर्यक् व्यवहार करता है, इसीलिये वह 'तिर्यक् स्रोत' इस नाम से कहा गया है ॥३६॥ उन सब में तमोगुण की अधिकता होने से वे सब अधिक अज्ञान वाले कहे गये हैं । ध्यान के मानी के ध्यान से वे सभी उत्पथ के ग्रहण करने वाले भी थे ॥४०॥ तिर्यक् स्रोत वाले ईश्वर ने इस द्वितीय विश्व को देखा, जोकि कर्म में और मन में अहं भाव वाला तथा अट्ठाईस प्रकार के स्वरूप वाला है ॥४१॥ एकादश इन्द्रियों के प्रकार हैं तथा नौ उदय के प्रकार हैं, आठ तारक आदि के तथा उनकी शक्ति के प्रकार कहे गये हैं ॥४२॥

अतः प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च बहिः पुनः ।
यस्मात्तिर्यक् प्रवर्त्तेत तिर्य्यक्स्रोताः स उच्यते ॥४३
तिर्यक्स्रोताश्च दृष्ट्वा वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः ।
अभिप्रायमथोद्भूतं दृष्ट्वा सर्वन्तथाभिधम् ।
तस्याभिध्यायतो नित्यं सात्त्विकः समवर्त्तत ॥४४
ऊर्द्धस्रोतास्तृतीयस्तु स चैवोर्द्धव्यवस्थितः ।

यस्माद्वचवर्त्ततोर्द्ध न्तु ऊर्द्ध स्रोतास्तत स्मृतः ॥४५
ते मुखप्रीतिबहुला वहिरन्तश्च सवृताः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्द्धस्रोतोद्भवा. स्मृताः ॥४६
तेन वा तादयो ज्ञेया सृष्टात्मानो व्यवस्थिता ।
ऊर्द्धस्रोतास्तृतीयो वै तेन सर्गस्तु स स्मृतः ॥४७
ऊर्द्ध स्रोतःसु सृष्टेषु देवेषु स तदा प्रभुः ।
प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्य सोऽभ्यमन्यत ।
ससर्ज्ज सर्गमन्य स साधक प्रभुरीश्वर. ॥४८
अथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।
प्रादुर्बभूव चाव्यक्तादर्वाक्स्रोतः सुसाधकम् ।
यस्मादर्वाक् व्यवर्त्तत ततोऽर्वाक्स्रोत उच्यते ॥४९
ते च प्रकाशबहुलास्तम सन्चरजोधिका ।
तस्मात्ते दु खबहुला भूयो भूयश्च कारिण. ॥५०

इसलिये वे सब प्रकाश हैं और फिर बाहिर वे सब आवृत हैं। जिस कारण से उनकी तिर्यक् प्रवृत्ति होती है, इसीलिये वह सर्ग तिर्यक् स्रोत वाला कहा जाता है ॥४३॥ ईश्वर ने जो कि तिर्यक् स्रोत वाला है, इस द्वितीय विश्व को देखा और उस प्रकार वाले समस्त उद्भूत अभिप्राय को देखा। इस तरह नित्य ही सर्ग-रचना के ध्यान करने वाले से समस्त सात्विक हुआ ॥४४॥ यह तृतीय सर्ग ऊर्ध्व स्रोत वाला था और ऊर्ध्व की ओर ही व्यवस्थित भी था। यह ऊर्ध्व की ओर प्रवृत्त था, इसी कारण से इसका नाम ऊर्ध्व स्रोता कहा गया है ॥४५॥ वे सब सुख और प्रीति की प्रचुरता वाले थे, बाहिर और अन्दर संवृत थे, बाहिर और अन्तर्भाग में प्रकाशमय थे। वे सब ऊर्ध्व स्रोतोद्भव कहे गये हैं ॥४६॥ इससे वात आदि जानने चाहिए, जोकि सृष्ट स्वरूप वाले व्यवस्थित हैं। यह तृतीय सर्ग ऊर्ध्व स्रोत वाला है, अत. वह इसी नाम से कहा भी गया है ॥४७॥ इन ऊर्ध्व स्रोतों में देवों के सृष्ट होने पर वह प्रभु ब्रह्मा उस समय बहुत ही प्रीति वाले हुए अर्थात् ब्रह्माजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इसके अनन्तर उन्होंने अन्य सर्ग करने का मन में विचार किया और

ईश्वर प्रभु ने अन्य साधक सर्ग की सृष्टि की ॥४८॥ इसके अनन्तर अभिध्यान करते हुए जब सत्य का अभिध्यायी वे हुए तब उसका अव्यक्त से सुसाधक अर्वाक् स्रोत का प्रादुर्भाव हुआ। वह अर्वाक् की ओर बरताया करता है, इसी कारण से वह अर्वाक् स्रोत इस नाम से कहा जाता है ॥४६॥ और बहुल प्रकाश वाले वे होते हैं, जिनमें तम, सत्व और रजोगुण अधिक होता है। इससे वे पुनः-पुनः करने वाले तथा अधिक दुःख वाले होते हैं ॥५०॥

प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते ।
लक्षणैस्तारकाद्यैस्ते अष्टधा च व्यवस्थिताः ॥५१
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धर्वसहधर्म्मिणः ।
इत्येष तेजसः सर्गो ह्यर्वाक्स्रोताः प्रकीर्तितः ॥५२
पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्द्धा स व्यवस्थितः ।
विपर्य्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव च ।
विवृतं वर्तमानञ्च तेऽर्थं जानन्ति तत्वतः ॥५३
भूतादिकानां सत्वानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ।
विपर्य्ययेण भूतादिरशक्त्या च व्यवस्थितः ॥५४
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो महतस्तु सः ।
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ॥५५
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ।
इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ॥५६
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ।
तिर्य्यक्स्रोताश्च यः सर्गस्तिर्य्यग्योनिः स पञ्चमः ॥५७

बाहिर और अन्दर प्रकाशयुक्त हैं। वे मनुष्य और साधक हैं। तारकाद्य लक्षणों से वे आठ प्रकार से व्यवस्थित होते हैं ॥५१॥ सिद्धात्मा वे मनुष्य, जो गन्धर्वों के सहधर्मी होते हैं। यह तेजस सर्ग होता है और अर्वाक् स्रोता कहा गया है ॥५२॥ पाँचवाँ अनुग्रह सर्ग होता है और वह चार प्रकार से व्यवस्थित होता है। विपर्य्यय से, शक्ति से, तुष्टि से और चतुर्थ प्रकार में सिद्धि से व्यवस्थित है। वे विवृत्त और वर्तमान अर्थ को तत्वतः अर्थात् तात्त्विक रूप से

जानते हैं ॥५३॥ भूतादि का जो सर्ग होता है, वह छठवाँ सर्ग कहा जाता है। भूतादि विपर्यय से तथा अशक्ति से व्यवस्थित होता है ॥५४॥ प्रथम सर्ग महत् का होता है, जो वह महत् का ही सर्ग जानना चाहिए। तन्मात्राओं का दूसरा सर्ग होता है वह भूत सर्ग कहा जाया करता है ॥५५॥ तृतीय सर्ग वैकारिक सर्ग होता है, जो इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाला ऐन्द्रिक ही कहा गया है। इतना यह प्राकृत सर्ग है, जो बुद्धिपूर्वक हुआ है ॥५६॥ चतुर्थ सर्ग मुख्य सर्ग होता है। स्थावर मुख्य कहे जाते हैं। तिर्यक् स्रोता जो सर्ग होता है, वह पाँचवाँ तिर्यग्योनि होता है ॥५७॥

तथोर्द्ध्वसानसा षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृत ।
तथावार्क्स्रोतसा सर्ग सप्तम स तु मानुष ॥५८
अष्टमोऽनुग्रह सर्ग सात्विकस्तामसस्तु स ।
पचैते वैकृता सर्गा प्राकृतास्तु त्रय स्मृता ॥५९
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवम स्मृत ।
प्राकृतास्तु त्रय सर्गा कृतास्ते बुद्धिपूर्वका ॥६०
बुद्धिपूर्व प्रवतन्ते षट्सर्गा ब्रह्मणस्तु ते ।
विस्तरानुग्रह सर्गं कीर्त्यमान निबोधत ॥६१
चतुर्द्धावस्थित सोऽय सर्वभूतेषु कृत्स्नश ।
विपर्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्धया तथैव च ॥६२
स्थावरेषु विपर्यासस्तिर्यग्योनिषु शक्तिता ।
सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु तुष्टिर्द्देवेषु कृत्स्नश ॥६३
इत्येते प्राकृताश्चैव वैकृताश्च नव स्मृता ।
सर्गा परस्परस्याय प्रकारा बहव स्मृता ॥६४

इसी प्रकार से ऊर्ध्व स्रोत वालों का जो छठवाँ सर्ग होता है, वह 'देव-सर्ग' कहा गया है। इस प्रकार से अर्वाक् स्रोत वालों का सातवाँ सर्ग होता है और वह मनुष्य सर्ग कहा गया है ॥५७॥ आठवाँ अनुग्रह सर्ग है, जो सात्विक और तामस है। ये पाँच वैकृत सर्ग होते हैं और तीन सर्ग प्राकृत सर्ग कहे गये हैं ॥५८॥ प्राकृत और वैकृत कौमार नवम कहा गया है। प्राकृत सर्ग तो

तीन हैं, जोकि वे बुद्धिपूर्वक किये गये हैं ।।६०।। ब्रह्मा के वे छै सर्ग बुद्धिपूर्वक प्रवृत्त होते है। विस्तरानुग्रह सर्ग अब कहा जाता है,उसे जान लो ।।६१।। वह सर्ग समस्त प्राणियों में पूर्णरूप से चार प्रकार से व्यवस्थित हुआ है। विपर्यय, शक्ति, तुष्टि और उसी भाँति सिद्धि से व्यवस्था की गई है ।।६२।। स्थावरों में तो विपर्यास होता है। तिर्यग्योनियों में शक्तिता होती है। मनुष्य सिद्धात्मा होते हैं, अर्थात् मनुष्यों में सिद्धि होती है और देवों में तुष्टि होती है ।।६३।। ये सब प्राकृत हैं और वैकृत नौ कहे गये हैं। ये परस्पर के सर्ग हैं और इनके बहुत से प्रकार बताये गये हैं ।।६४।।

अग्रे ससर्ज्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।
सनन्दनञ्च सनकं विद्वांसं च सनातनम् ।।६५
विज्ञानेन निवृत्तास्ते वैवर्तेन महौजसः ।
संबुद्धाश्चैव नानात्वादपविद्धास्त्रयोऽपि ते ।
असृष्ट्वैव प्रजासर्गं प्रतिसर्गं गताः पुनः ।।६६
तदा तेषु व्यतीतेषु तदान्यान् साधकांश्च तान् ।
मानसानसृजद्ब्रह्मा पुनः स्थानाभिमानिनः ।
आभूतसंप्लवावस्थान्नामतस्तान्निबोधत ।।६७
आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ।
स्वर्गं दिवः समुद्रांश्च नदान् शैलान् वनस्पतीन् ।।६८
ओषधीनां तथात्मानो ह्यात्मानो वृक्षवीरुधाम् ।
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्त्ताः सन्धिरात्र्यहाः ।।६९
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगानि च ।
स्थानाभिमानिनः सर्वे स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः ।।७०
वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणाः संप्रसूताः तद्वक्षसतः क्षत्रियाः पूर्वभागैः ।
वैश्याश्चोर्वोर्यस्य पद्भ्यचाञ्च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूताः ।।७१
नारायणः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम् ।
अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा लोकास्तेन कृताः स्वयम् ।।७२
एष वः कथितः पादः समासान्न तु विस्तरात् ।
अनेनाद्येन पादेन पुराणं संप्रकीर्तितम् ।।७३

सबसे आगे अर्थात् पहिले ब्रह्माजी ने अपने ही समान मानसों का सृजन किया अर्थात् मन से समुत्पन्न होने वालों की रचना की। उन मानसों में सनन्दन, सनक और विद्वान् सनातन हैं। वे महान् ओज वाले वैवर्त्त विशेष ज्ञान होने से निवृत्त हो गये अर्थात् निवृत्त मार्ग के अनुगामी बन गये। वे सम्बुद्ध होते हुए तीनों ही इस नानात्व स्वरूप सृजन से अपविद्ध हो गये। प्रजा की सृष्टि को न करके ही वे फिर प्रतिसर्ग को चले गये ॥६६॥ उस समय उन सनकादि के चले जाने पर ब्रह्माजी ने तब फिर स्थानाभिमानी अन्य मानस साधकों का सृजन किया। अब भूत से लेकर सप्लवावस्था वालों के नामों को जान लो ॥६७॥ जल, अग्नि, पृथिवी, वायु अन्तरिक्ष, दिशा, स्वर्ग, दिव, समुद्र, नद, शैल, वनस्पति, ओषधियों की आत्मा तथा वीरुध और वृक्षों की आत्मा, लव, काष्ठ, कला मुहूर्त्त, सन्धि, रात्रि, दिवस, अर्ध मास मास, अयन, शब्द, युग ये सब स्थानाभिमानी हैं,अत वे स्थान के नाम वाले कहे गये हैं ॥६८-६९-७०॥ जिसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए उनके वक्ष स्थल से क्षत्रिय उद्भूत हुए, ऊरुओं से वैश्यों की उत्पत्ति हुई और पैरों से शूद्र वर्ण वाले उत्पन्न हुए। इस तरह ये सभी वर्ण ब्रह्माजी के शरीर के विभिन्न भागों से ही उत्पन्न हुए हैं ॥७१॥ नारायण अव्यक्त से परे है और अण्ड अव्यक्त से उत्पन्न हुआ है। उस अण्ड से ब्रह्माजी ने जन्म ग्रहण किया और फिर उन ब्रह्माजी ने स्वयं इन समस्त लोकों की रचना की है ॥७२॥ यह पाद संक्षेप से कह दिया गया है। इसमें विस्तार नहीं किया है। इस आद्य पाद पुराण का भली भाँति कीर्तन किया गया है ॥७३॥

॥ वर्तमान कल्प में मानुषी सृष्टि ॥

इत्येष प्रथम पादः प्रक्रियार्थः प्रकीर्तितः।
श्रुत्वा तु सहृष्टमना काश्यपेय सनातन ॥१
सम्बोध्य सूत वचसा प्रपच्छाथोत्तरां कथाम्।
अत.प्रभृति कल्पज्ञ प्रतिसन्धि प्रचक्ष्व न ॥२
समतीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्य चोभयो।
कल्पयोरन्तर यश्च प्रतिसन्धिर्यतस्तयो।

एतद्वेदितुमिच्छामः अत्यन्तकुशलो ह्यसि ॥३
अत्र वोऽहं प्रवक्ष्यामि प्रतिसंधिञ्च यस्तयोः ।
समतीतस्य कल्पस्य वर्त्तमानस्य चोभयोः ॥४
मन्वन्तराणि कल्पेषु येषु यानि च सुव्रताः ।
यश्चायं वर्तते कल्पो वाराहः साम्प्रतः शुभः ॥५
अस्मात् कल्पाच्च यः कल्पः पूर्वोऽतीतः सनातनः ।
तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थान्निबोधत ॥६
प्रत्याहृते पूर्वकल्पे प्रतिसंधि च तत्र वै ।
अन्यः प्रवर्त्तते कल्पो जनाल्लोकात् पुनः पुनः ॥७

इस प्रकार यह प्रथम पाद प्रक्रिया के लिये ही कहा गया है । इसका श्रवण करके सनातन काश्यपेय बहुत ही मन में प्रसन्न हुए ॥१॥ इसके अनन्तर वाणी से सूतजी का सम्बोधन करके उन्होने इससे आगे की कथा पूछी—उन्होंने कहा—हे कलज्ञ ! इससे आगे आप हमको प्रति-सन्धि का वर्णन कर समझावें ॥२॥ जो कल्प व्यतीत हो गया और इस समय वर्त्तमान है इन दोनों कल्पों की जो प्रति-सन्धि है उसे हम जानना चाहते है क्योंकि आप अत्यन्त कुशल हैं आप सभी कुछ जानते हैं । यह हमें सुनाइये ॥ ३ ॥ लोमहर्षणजी ने कहा—मैं अब आपको समतीत कल्प और वर्त्तमान कल्प इन दोनों की जो प्रति-सन्धि होती है उसे बतलाता हूँ ॥४॥ हे सुव्रत वालो ! जिन कल्पों में जो मन्वन्तर होते हैं और जो यह कल्प होता है वही बतलाता हूँ । वर्त्तमान समय के कल्प का शुभ नाम वाराह है ॥५॥ इस कल्प से पहिले जो सनातन कल्प व्यतीत हुआ है उस कल्प की और इस कल्प की मध्यावस्था को जान लो ॥६॥ पूर्व कल्प के प्रत्याहृत हो जाने पर वहाँ प्रति-सन्धि होती है और बार-बार जन-लोक से अन्य कल्प हुआ प्रवृत्त होता है ॥७॥

व्युच्छिन्नात् प्रतिसंधेस्तु कल्पात् कल्पः परस्परम् ।
व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वाः कल्पान्ते सर्वं शस्तदा ।
तस्मात् कल्पान्त् कल्पस्य प्रतिसंधिर्निगद्यते ॥८
मन्वन्तरयुगाख्यानामव्युच्छिन्नाश्च सन्धयः ।

परस्परा प्रवर्तन्ते मन्वन्तरयुगैः सह ॥९
उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्वकल्पाः समासतः ।
तेषां परार्द्धकल्पानां पूर्वो ह्यस्मात्तु यः परः ।
आसीत् कल्पो व्यतीतो वै परार्द्धेन परस्तु सः ॥१०
अन्ये भविष्या ये कल्पा अपरार्द्धाद्गुणीकृताः ।
प्रथमः साम्प्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्तते द्विजाः ॥११
यस्मिन् पूर्वं परार्द्धे तु द्वितीये परं उच्यते ।
एतावान् स्थितिकालश्च प्रत्याहारस्ततः स्मृतः ॥१२
अस्मात् कल्पात्तु यः पूर्वं कल्पोऽतीतः सनातनः ।
चतुर्युगसहस्रान्ते सहो मन्वन्तरैः पुरा ॥१३
क्षीणे कल्पे तदा तस्मिन् दाहकाले ह्युपस्थिते ।
तस्मिन् कल्पे तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये ॥१४

प्रति सन्धि के व्युच्छिन्न होने स परस्पर में कल्प से कल्प के अन्त में समस्त क्रियाएँ उस समय सभी ओर से व्युच्छिन्न हो जाया करती है। इसी से कल्प से कल्प की प्रति सन्धि कही जाती है ॥८॥ कल्प की भाँति ही मन्वन्तर और युगो के नाम वालो की सन्धियाँ भी उच्छिन्न हुआ करती है और वे सब परस्पर मे मन्वन्तर और युगो के साथ प्रवृत्त होते है ॥ ९ ॥ जो संक्षेप से प्रक्रियार्थ के द्वारा पूर्व कल्प कहे गये है अब उन कल्पो के परार्द्ध स्वरूपो मे इससे जो पहिला था और जो पर था इसमे परार्द्ध से जो कल्प व्यतीत हो गया वह पर था ॥१०॥ हे द्विजो ! अपरार्द्ध स गुणीकृत अन्य जो कल्प भविष्य मे होंगे उनमें इस समय रहन वाला यह प्रथम कल्प है जो अब वर्तमान मे चल रहा है ॥११॥ जिस द्वितीय परार्द्ध म पूर्व पर कहा जाता है इतना ही स्थिति का काल प्रत्याहार कहा गया है ॥१२॥ इस वर्तमान कल्प से जो पहिला सनातन कल्प व्यतीत हो गया है वह पहिले मन्वन्तरो के साथ सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इन चारो युगों के एक सहस्र बार हो जाने के अन्त मे समाप्त हुआ है ॥१३॥ उस समय कल्प के क्षीण हो जाने पर दाह का काल उपस्थित हुआ और उसमे अर्थात् कल्प में उस समय देवता लोग जो थे वे विमानो मे संस्थित हो गये थे ॥१४॥

नक्षत्रग्रहतारास्तु चन्द्रसूर्यग्रहाश्च ये ।
अष्टाविंशतिरेवैताः कोट्यस्तु सुकृतात्मनाम् ॥१५
मन्वन्तरे तथैकस्मिन् चतुर्दशसु वै तथा ।
त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोट्याद्विनवतिस्तथा ।
अष्टाधिकाः सप्तशताः सहस्राणां स्मृताः पुरा ॥१६
वैमानिकानां देवानां कल्पेऽतीते तु येऽभवन् ।
एकैकस्मिंस्तु कल्पे वै देवा वैमानिकाः स्मृताः ॥१७
अथ मन्वन्तरेष्वासंश्चतुर्दशसु वै दिवि ।
देवाश्च पितरश्चैव मुनयो मनवस्तथा ॥१८
तेषामनुचरा ये च मनुपुत्रास्तथैव च ।
वर्णाश्रमिभिरीड्याश्च तस्मिन् काले तु ये सुराः ।
मन्वन्तरेषु ये ह्यासन् देवलोके दिवौकसः ॥१९
ते तैः संयोजकैः सार्द्धं प्राप्ते सङ्कलने तथा ।
तुल्यनिष्ठास्तु ते सर्वे प्राप्ते ह्याभूतसंप्लवे ॥२०
ततस्तेऽत्र श्यभावित्वाद्बुद्ध्वा पर्यायमात्मनः ।
त्रैलोक्यवासिनो देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे ॥२१
तेऽनौत्सुक्यविषादेन त्यक्त्वा स्थानानि भावतः ।
महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मतिम् ॥२२

और जो नक्षत्र, ग्रह और तारा थे तथा चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह थे वे सब सुकृतात्माओं की अठ्ठाईस करोड़ ही संख्या थी ॥ १५ ॥ इसी प्रकार एक मन्वन्तर में तथा चौदह मन्वन्तरों में तीन सौ करोड़ थे और पहिले अठ्ठानवें करोड़ सात सौ सहस्र कहे गये हैं ॥ १६ ॥ कल्प के व्यतीत हो जाने पर विमानों में संस्थित देवताओं में जो हुये वे एक-एक कल्प में विमानों में बैठने वाले देवता कहे गये हैं ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर दिव में चौदह मन्वन्तरों में इसी भाँति देवता, पितर, मुनि लोग और मनुगण थे ॥ १८ ॥ और उनके अनुगामी जो मनु पुत्र थे और इसी प्रकार वर्णों तथा आश्रमों में रहने वालों के द्वारा वन्दित हुये जो उस समय में सुरगण थे और मन्वन्तरों में जो दिव में रहने

वाले देवलोक मे थे व सब सङ्कलन के प्राप्त होने पर उन सयोजको के साथ भूत सम्प्लव के प्राप्त होने के समय मे तुल्यनिष्ठा वाले थे ॥ १९–२० ॥ इसके पश्चात् उन शैलोवर के निवासी देवो न अवश्यम्भावी होने से अपनी पारी को जानकर उस उपप्लव के प्राप्त होने पर उत्सुकता और विषाद न रखते हुये भाव से स्थानो का त्याग करके फिर महर्लोक के लिये सविम्न होते हुये उन्होने अपनी बुद्धि धारण की ॥ २१—२२ ॥

ते युक्ता उपपद्यन्ते महर्मिस्थै शरीरकै ।
विशुद्धिबहुला सर्वे मानसी सिद्धिमास्थिता ॥२३
ते कल्प वासिभि सार्द्धं महानासादितस्तु यैः ।
ब्राह्मणै क्षत्रियैर्वैश्यैस्तद्भक्तैश्चापरैर्जनै ॥२४
मत्वा तु ते महर्लोक देवसङ्घाश्चतुर्दश ।
ततस्ते जनलोकाय सा द्वेगा दधिरे मतिम् ॥२५
विशुद्धिबहुला सर्वे मानसी सिद्धिमास्थिता ।
तै कल्पवासिभि सार्द्धं महानासादितस्तु यै ॥२६
दशकृत्व इवावृत्या तस्माद्गच्छन्ति स्वस्तप ।
तत्र कल्पान् दश स्थित्वा सत्य गच्छन्ति वै पुन ।
एतेन क्रमयोगेन यान्ति कल्पनिवासिन ॥२७
एव देवयुगानान्तु सहस्राणि परस्परात् ।
गतानि ब्रह्मलोक वै अपरावर्तिनी गतिम् ॥२८

वे सब अधिक विशुद्धि वाले और मानसी सिद्धि में आस्थित होते हुए महर्लोक म स्थित शरीरो स युक्त होकर उत्पन्न होते हैं ॥ २३ ॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और उनके भक्त दूसरे लोग हैं उन कल्पवासियों के साथ उन्होंने मह त् को प्राप्त कर लिया था ॥ २४ ॥ वे चौदह देव सङ्घ महर्लोक को मान कर फिर उन्होंने जन लोक के लिये उद्वेग के साथ अपना विचार किया ॥२५॥ विशुद्धि की प्रचुरता वाले वे सब मानसी सिद्धि मे आस्थित हो गए और उन कल्पवासियों के साथ जिन्होंने महान् को प्राप्त किया था ॥ २६ ॥ आवृत्ति से दश बार की तरह उससे स्वर्लोक और तपलोक को जाते हैं वहाँ दश कल्प पर्यन्त

रहकर फिर वे सत्य लोक को जाते हैं। इसी क्रम के योग्य से कल्प निवासी जाते हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार से देव युगों के सहस्र अर्थात् सहस्रों देवयुग परस्पर से व्यतीत हुये फिर ब्रह्मलोक की अपरावर्त्तिनी गति को प्राप्त हुये ॥ २८ ॥

आधिपत्यं विना ते वै ऐश्वर्येण तु तत्समाः ।
भवन्ति ब्रह्मणस्तुल्या रूपेण विषयेण च ॥२६
तत्र ते ह्यवतिष्ठन्ति प्रीतियुक्ताः प्रसङ्गमात् ।
आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्य मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥३०
अवश्यम्भाविनाऽर्थेन प्राकृतेनैव ते स्वयम् ।
नाना त्वेनाभिसम्बद्धास्तदा तत्कालभाविनः ॥३१
स्वरूपतो बुद्धिपूर्वं यथा भवति जाग्रतः ।
तत्कालभावि तेषां तु तथा ज्ञानं प्रवर्त्तते ॥३२
प्रत्याहारे तु भेदानां येषां भिन्नाभिसूक्ष्मणाम् ।
तैः सार्द्धं प्रतिसृज्यन्ते कार्याणि करणानि च ॥३३
नानात्वदर्शनात्तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ।
विनष्टस्वाधिकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ॥३४
ते तुल्यलक्षणाः सिद्धाः शुद्धात्मानो निरञ्जनाः ।
प्रकृतौ कारणातीताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ॥३५

वहाँ वे आधिपत्य के बिना वैभव में उन्हीं के समान रूप और विषम में ब्रह्मा के ही तुल्य होते हैं ॥ २६ ॥ वहाँ पर सुन्दर सङ्गम होने से बड़ी ही प्रीति से युक्त होकर वे रहते हैं। ब्रह्मा के आनन्द को प्राप्त कर ब्रह्मा के साथ ही मुक्त किये जाते हैं ॥ ३० ॥ वे स्वयं अवश्यम्भावी प्राकृत अर्थ से ही नानात्व से अभिसम्बद्ध होते हुये उस समय उस काल में होने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार जाग्रत स्वरूप से बुद्धिपूर्वक होता है उस काल में होने वाला उनका वैसा ही ज्ञान प्रवृत्त होता है ॥ ३२ ॥ भिन्न अभिसूक्ष्म जिनके भेदों के प्रत्याहार में ही उनके साथ कार्य और करण प्रतिसृष्टि किये जाते हैं ॥ ३३ ॥ अपने अधिकारों के विनाश हो जाने वाले, अपने धर्म से स्थित रहने वाले और ब्रह्मलोक के निवास करने वाले उनके नानात्व के दर्शन से वे तुल्य

लक्षण वाले, निरञ्जन, शुद्ध आत्मा वाले सिद्ध प्रकृति मे कारण से अतीव रहने वाले अपनी आत्मा मे ही व्यवस्थित होते हैं ॥ ३४—३५ ॥

प्रख्यापयि वा ह्यात्मानं प्रकृतिस्तेषु सर्वशः ।
पुरुषाव्यवहृतत्वेन प्रतीता न प्रवर्त्तते ॥३६
प्रवर्तिते पुनः सर्गे तेषां वा कारणं पुनः ।
संयोगे प्राकृते तेषां युक्तानां तत्त्वदर्शिनाम् ॥३७
अनापवर्गिणां तेषामपुनर्मार्गगामिनाम् ।
अभावः पुनरुत्पत्तौ शान्तानामर्चिषामिव ॥३८
ततस्तेषु गतेषूर्द्ध्वं त्रैलोक्यात्सुमहात्मसु ।
तैः सार्द्धं ये महर्ल्लोकात्तदा नासादिता जनाः ।
तच्छिष्टाश्चेह तिष्ठन्ति कल्पाद्दहमुपासते ॥३९
गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ता मानुषा ब्राह्मणादयः ।
पशवः पक्षिणश्चैव स्थावराः ससरीसृपाः ॥४०
तिष्ठन्सु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु ।
सहस्रं यत्तु रश्मीनां सूर्यस्येह विभासते ।
ते सप्तरश्मयो भूत्वा ह्येकैको जायते रविः ॥४१
क्रमेणोत्तिष्ठमानास्ते त्रीन् लोकान् प्रदहन्त्युत ।
जङ्गमं स्थावरं चैव नदीः सर्वांश्च पर्वतान् ।
पूर्वं शुष्का ह्यनावृष्ट्या सूर्यैस्तैश्च प्रतापिता ॥४२

उनमे सब ओर से प्रकृति अपने आपको प्रकाशित करके पुरुष के साथ अव्यवहृत होने से प्रतीत होकर प्रवृत्त नहीं होती है ॥ ३६ ॥ उनका फिर सर्ग प्रवर्त्तित होने पर अथवा तत्त्वदर्शी युक्त उनके प्राकृत सयोग मे पुनः कारण होता है ॥ ३७ ॥ यहाँ पर पुनः मार्गगामी न होने वाले उन अपवर्ग वालों का पुनर्जन्म मे शान्त होने वाली अग्नि की ज्वालाओ के समान अभाव होता है अर्थात् अपवर्ग वालों की पुनः उत्पत्ति नहीं होती है ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर अच्छी एव महान् आत्मा वाले उनके त्रैलोक्य से ऊपर जाने पर उनके साथ जो महर्लोक से उस समय वहाँ जन आसादित नहीं होते हैं। उनमे शेष मे रहने

वाले यहाँ रहते हैं और कल्प से देह को धारण किया करते हैं ।। ३९ ।। गन्धर्वों से आदि लेकर पिशाचों के अन्त पर्यन्त मानुप और ब्राह्मण प्रभृति, पशु पक्षीगण, सरीसृपों के सहित स्थावर उस समय उन पृथिवी तल में निवास करने वालों के रहने पर वहाँ पर सूर्य की एक सहस्र किरणों की विभासमानता होती है। वे फिर सात रश्मियाँ होकर उनमें से एक-एक रवि हो जाता है ।। ४०—४१ ।। क्रम से वे उत्तिष्ठमान होकर इन तीनों लोकों को प्रदग्ध कर देते हैं जिनमें चर प्राणी अर्थात् जंगम सृष्टि स्थावर अर्थात् अचर सृष्टि—नदी और पर्वत ये सभी प्रदग्ध हो जाते हैं। पहिले वे वृष्टि के न होने शुष्क हो जाते हैं और फिर उन तीव्रतम सूर्यों से प्रधूपित अर्थात् प्रतप्त किये जाते हैं ।। ४२ ।।

तदा ते विविशुः सर्वे निर्दग्धाः सूर्यरश्मिभिः ।
जङ्गमाः स्थावराः सर्वे धर्माधर्मात्मकास्तु वै ।।४३
दग्धदेहास्ततस्ते वै गताः पापयुगात्यये ।
योन्या तया ह्यनिर्मुक्ताः शुभपापानुबन्धया ।।४४
ततस्ते ह्युपपद्यन्ते तुल्यरूपा जने जनाः ।
विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।।४५
उषित्वा रजनीं तत्र ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
पुनः सर्गे भवन्तीह ब्रह्मणो मानसीप्रजाः ।।४६
ततस्तेषु प्रवृत्तेषु जने त्रैलोक्यवासिषु ।
निर्दग्धेषु च लोकेषु तेषु सूर्यैस्तु सप्तभिः ।
वृष्ट्या क्षितौ प्लावितायां विशीर्णेष्वालयेषु च ।।४७
समुद्राश्चैव मेघाश्च आपः सर्वाश्च पार्थिवाः ।
व्रजन्त्येकार्णवत्वं हि सलिलाख्यास्तदाश्रिताः ।।४८
आगतागतिकं तद्वै यदा तु सलिलं बहु ।
संछाद्येमां स्थितां भूमिमर्णवाख्या तदा च सा ।।४९

उस समय वे सब जङ्गम और स्थावर चाहे वे धर्मात्मा हों या अधर्म-स्वरूप वाले हों, विशेष रूप में सूर्य की किरणों से जले हुये होते हुए विवश हो जाया करते हैं ।। ४३ ।। दग्ध देहों वाले वे वहाँ से फिर पाप-युग के अत्यय

मे चले जाते हैं और शुभ तथा पाप के अनुबन्ध वाली उस भूमि से निर्मुक्त नहीं होते हैं ॥ ४४ ॥ इसके अन तर वे मनुष्य जन लोक मे तुल्य रूप वाले होते हैं। उस समय वे सब प्रचुर विशुद्धि वाले होते हुये मानसी सिद्धि मे आस्थित हुआ करते हैं ॥ ४५ ॥ वहाँ पर अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा की एक रात निवास कर फिर वहाँ सर्ग मे ब्रह्मा की मानसी अर्थात् मन से उद्भव वाली प्रजा होते हैं ॥ ४६ ॥ इसके पश्चात् उन त्रैलोक्य-वासियो के इस जन-लोक मे प्रवृत्त होने पर और सात प्रखरतर सूर्यों के द्वारा उन लोकों के दग्ध हो जाने पर उन परम विशीर्ण घरो मे वृष्टि से समस्त भूमण्डल के प्लावित हो जाने पर सब समुद्र मेघ और पार्थिव जल तदाश्रित होते हुये सलिल नाम वाले एकार्णवता को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४७-४८ ॥ आया हुआ और विना गति वाला वह सलिल जब अत्यधिक मात्रा मे हो जाता है तब वह इस संस्थित भूमि को ढककर वह अर्णव नाम वाली हो जाती है ॥ ४६ ॥

आभाति यस्मान्नाभान्ति भारान्तो व्याप्तिदीप्तिषु ।
सर्वत समनुप्लाव्य तासाश्चाम्भो विभाव्यते ॥५०
तदम्भस्तनुते यस्मात् सर्वां पृथ्वीं समन्तत ।
धातुस्तनोतिर्विस्तारे तेनाम्भस्तनव स्मृता ॥५१
अरमित्येप शीघ्रन्तु निपात कविभि स्मृत ।
एकार्णव भवन्त्यापो न शीघ्रास्तेन ते नरा ॥५२
तस्मिन् युगसहस्रान्ते सस्थिते ब्रह्मणोऽहनि ।
रात्र्या वर्त्तमानायान्तावत्तत् सलिलात्मना ॥५३
ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले ।
प्रशान्तवातेऽन्धकारे निरालोके समन्तत ॥५४
येनैवाधिष्ठित ह्यद ब्रह्मा स पुरुष प्रभु ।
विभागमस्य लोकस्य पुनर्वै कर्तु मिच्छति ॥५५
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्ष सहस्रपात् ॥५६

जिसके कारण से व्याप्त दीप्तियों मे जो भासमान होते हैं वे भी उस

समय भासित नहीं होते हैं । सब ओर से भली भाँति प्लावन कर अर्थात् निमग्न करके उस समय केवल उनके जल ही विभावित होता था ॥५०॥ क्योंकि वह जल पूर्णतया विस्तार वाला होता है और इस समस्त पृथ्वी को सब ओर से घेर लेता है । विधाता के विस्तार के फैलाने पर वे इससे जल के तनु कहे गये हैं ॥५१॥ अरं – यह कवियों के द्वारा शीघ्र निपात कहा गया है । एकार्णव में जल ही होते हैं और इससे वे नर शीघ्र नहीं होते हैं । ५२। ब्रह्माजी के दिन के संस्थित होने पर उस एक सहस्र युग के अन्त में तब तक केवल जल के स्वरूप से ही इस पृथ्वी के वर्त्तमान रहने पर इसके पश्चात् उस जल के पृथ्वी तल में रहने वाली अग्नि में नष्ट हो जाने पर चारों ओर निरालोक अर्थात् प्रकाश से हीन अन्धकार छाया हुआ था और वात प्रशान्त हो गया था ऐसे समय में जिसके द्वारा यह अधिष्ठित था वह ब्रह्मा पर पुरुष प्रभु था और उसने फिर इस लोक के विभाग करने की इच्छा की अथवा इच्छा करता है ।।५३-५४-५५।। उस एक अर्णव अर्थात् समुद्र में समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर उस समय वह ब्रह्मा सहस्र नेत्र और सहस्र चरण वाला हो जाता है ॥५६॥

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥५७
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमवेक्ष्य च ।
इमञ्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥५८
आपो नाराख्यास्तनव इत्यपान्नाम शुश्रुमः ।
आपूर्यं नाभिं तत्रास्ते तेन नारायणः स्मृतः ॥५९
सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रभुक् ।
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजा पतिस्त्रयीपथे य. पुरुषो निरुच्यते ॥६०
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एको ह्यपूर्वः प्रथमं तुराषाट् ।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा स पठ्यते वै तमसः परस्तात् ॥६१
कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूत्वाऽसृजत् प्रजाः ।
कल्पान्ते तमसोद्रिक्तो कालो भूत्वाऽग्रसत् पुनः ॥६२

स वै नारायणाख्यस्तु सत्त्वोद्रिक्तोऽर्णवे स्वपन् ।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये समवर्त्तत ॥६३

सहस्र शीर्षों वाला हेम के तुल्य देदीप्यमान वर्ण वाला, समस्त इन्द्रियों से अगोचर अर्थात् परे वह पुरुष ब्रह्मा नारायण—इस नाम वाला उस समय में जल में शयन करता था ॥५७॥ सत्त्व की अधिकता के होने से वह प्रबुद्ध अर्थात् जाग्रत हुआ और उसने चेतना युक्त होकर इस लोक को शून्य देखा। वहीं पर उस नारायण के प्रति इस निम्न श्लोक को उदाहृत करते हैं ॥५८॥ आप अर्थात् जल नार-इस नाम वाले तनु हैं यही जलों के नाम को सुनते हैं। वहाँ पर नाभि को आपूरित कर वह होता है इसलिये 'नारायण' यह कहा गया है ॥५९॥ सहस्र शीर्ष (मस्तक) वाला, अच्छे मन वाला, सहस्र चरणों वाला, सहस्र नेत्रों वाला, सहस्र मुख वाला, सहस्र को भोग करने वाला, सहस्र बाहुओं वाला प्रथम प्रजापति है जो त्रयीपथ में पुरुष कहा जाता है ॥६०॥ सूर्य के तुल्य वर्ण वाला, भुवन की रक्षा करने वाला, एक ही प्रथम तुराषट्, हिरण्यगर्भ महात्मा और पुरुष है जो उस तम से पर पढ़ा जाता है ॥६१॥ वही कल्प के आदि में रजोगुण के उद्रेक से युक्त होकर ब्रह्मा बनकर प्रजाओं का सृजन करता था और जब कल्प का अन्त होता तो उस समय में काल होकर फिर उस सृष्टि का ग्रसन कर लेता था ॥६२॥ वही नारायण नाम वाला सत्त्वगुण से उद्रिक्त होता हुआ समुद्र में शयन करता है तथा वह इस प्रकार अपने स्वरूप को तीन रूपों में विभक्त करके त्रैलोक्य में बरताव किया करता है ॥६३॥

सृजते ग्रसते चैव वीक्षन्ते च त्रिभिस्तु तान् ।
एकार्णवे तदा लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥६४
चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलावृते ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु अप्रकाशार्णवे स्वपन् ॥६५
चतुर्विधा प्रजा ग्रस्त्वा ब्राह्मया रात्र्या महार्णवे ।
पश्यन्ति तं महर्ल्लोकात् सुप्तं कालं महर्षयः ॥६६
भृग्वादयो यथा मम कल्पे ह्यस्मिन् महर्षयः ।
ततो विवर्त्तमानैस्तैर्महान् परिगतः परः ॥६७

गत्यर्थाद् ऋषयो धातोर्नामनिर्वृत्तिरादितः ।
तस्माद्दृषिपरत्वेन महांस्तस्मान्महर्षयः ॥६८
महर्ल्लोकस्थितैर्दृष्टः कालः सुप्तस्तदा च तैः ।
सत्याद्याः सप्त ये ह्यासन् कल्पेऽतीते महर्षयः ॥६९
एवं ब्राह्मीषु रात्रीषु ह्यतीतासु सहस्रशः ।
दृष्टवन्तस्तथा ह्यन्ये सुप्तं कालं महर्षयः ॥७०

इन तीन रूपों से उन लोकों का सृजन करता है, ग्रसन करता है और इनका वीक्षण करता है। जब एकार्णव में स्थावर और जङ्गम लोक के नष्ट हो जाने पर इस लोक ग्रसन का कार्य भी नहीं किया करता है किन्तु प्रत्येक कार्य के स्वरूप भिन्न हैं ॥६४॥ सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगों की चौकड़ी के एक सहस्र संख्या समाप्त हो जाती हैं तब उसके अन्त में सब ओर जल से आवृत होने पर प्रकाश रहित अर्थात् अन्धकारमय सागर में नारायण नाम वाले ब्रह्मा शयन करते हुए चारों प्रकार की प्रजा का ग्रास करके ब्राह्मी रात्रि में महार्णव में स्थित रहते हैं और महर्षिगण महर्लोक से उस सुप्तकाल को देखते हैं ॥६५-६६॥ इस कल्प में भृगु आदि सात महर्षि कहे गये हैं। उनके द्वारा विशेष रूप से वहाँ उपस्थित होकर वह पर महान् चारों ओर से परिगत होगया ॥६७॥ गति के अर्थ वाली धातु से 'ऋषि'—इस नाम की निर्वृत्ति होती है। उससे महान् यह भी ऋषि परत्व है अतएव महर्षय, ऐसा कहा गया है ॥६८॥ महर्लोक में स्थित उनके द्वारा उस समय काल सुप्त होता हुआ देखा गया। अतीत कल्प में सत्य आद्य ये सात महर्षि थे ॥६९॥ इस प्रकार से सहस्रों ही ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्मा से सम्बन्ध रखने वाली रात्रियाँ व्यतीत हो जाने पर उसी प्रकार से उस समय अन्य महर्षियों ने भी काल को सोया हुआ देखा ॥७०॥

कल्पस्यादौ तु बहुशो यस्मात् संस्थाश्चतुर्दश ।
कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात् कालो निरुच्यते ॥७१
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ।
व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥७२
इत्येष प्रतिसन्धिर्वः कीर्त्तितः कल्पयोर्द्वयोः ।

साम्प्रतातीतयोर्मध्ये प्रागवस्था बभूव या ॥७३
कीर्तिता तु समासेन कल्पे कल्पे यथा तथा ।
साम्प्रतं ते प्रवक्ष्यामि कल्पमेतं निबोधत ॥७४

कल्प के आदि में ब्रह्मा ने बहुत सी चौदह सृष्टियों की कल्पना की थी इसीलिये वह काल ऐसा कहा जाता है ॥७१॥ कल्पों के आदि कालों में समस्त प्राणियों का सृजन करने वाला वह महादेव बार-बार व्यक्त और अव्यक्त होता है और उसी का यह समस्त जगत् है ॥७२॥ यही दोनों कल्पों की प्रतिसन्धि होती है जो आपके समक्ष में वर्णित करदी गई है । अब के समय वाले और व्यतीत हुए इन दोनों के मध्य में जो प्रागवस्था हुई थी वह संक्षेप से वर्णन करदी गई है जो जैसी कल्प कल्प में थी । अब आपके सामने इस कल्प का वर्णन करता हूँ उसे आप लोग श्रवण करें या समझ लेवें ॥७३-७४॥

॥ मानव सभ्यता का आरम्भ ॥

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः ।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥१
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरत् ।
अन्धकारे तदा तस्मिन् नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥२
जलेन समनुव्याप्ते सर्वतः पृथिवीतले ।
अविभागेन भूतेषु समन्तात्सुस्थितेषु च ॥३
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ।
तदाकाशे चरन् सोऽथ वीक्ष्यमाणः स्वयम्भुवः ॥४
प्रतिष्ठाया ह्युपायन्तु मार्गमाणस्तदा प्रभुः ।
ततस्तु सलिले तस्मिन् ज्ञात्वा ह्यन्तर्गतां महीम् ॥५
अनुमानात्तु सम्बुद्धो भूमेरुद्धरणं प्रति ।
चकारान्यां तनुं स च पूर्वकल्पादिषु स्मृताम् ॥६
स तु रूपं वराहस्य कृत्वाऽपः प्राविशत् प्रभुः ।
अद्भिः सञ्छादितामुर्वीं समीक्ष्याथ प्रजापतिः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—वह एक सहस्र युगों के तुल्य रात्रि के समय की

उपासना कर फिर रात्रि के अन्त में सर्ग करने के कारण से ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है ॥१॥ उस जल में वायु के स्वरूप में होकर विचरण करता था क्योंकि उस समय स्थावर और जङ्गम सब के नष्ट हो जाने पर वहाँ केवल अन्धकार ही अन्धकार था ॥२॥ समस्त यह पृथ्वीतल चारों ओर से जल से ही समनुव्याप्त हो रहा था और वहाँ समग्र प्राणी विभाग रहित होते हुए सुस्थित थे ॥३॥ जिस तरह वर्षा ऋतु में रात्रि के समय में खद्योत इधर से उधर विचरण करता हुआ दिखाई दे जाता है इस तरह वह भी उस समय आकाश में इधर-उधर घूमता हुआ दिखाई देता था ॥४॥ उस समय प्रभु ने पुनः प्रतिष्ठा के उपाय की खोज करते हुए उस जल के अन्दर गई हुई भूमि का ज्ञान प्राप्त किया ॥५॥ उस समय अनुमान से भली-भाँति ज्ञान प्राप्त करने ने भूमण्डल के उद्धार करने के कार्य की ओर पूर्ण चेतना प्राप्त की और पहिले कल्प आदि में धारण किया हुआ शरीर का स्मरण किया ॥६॥ उस समय प्रजापति ने जल द्वारा सम्यक् प्रकार से आच्छादित इस भूमि को देखकर उन्होंने तब बाराह का स्वरूप धारण कर जल के अन्दर प्रवेश किया था ॥७॥

उद्धृत्योर्वीमथाद्भ्यस्तु अपस्तास्तु स विन्यसत् ।
सामुद्रीस्तु समुद्रेषु नादेयीर्निम्नगास्वपि ।
पार्थिवीस्तु स विन्यस्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ॥८
प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्त्तकाग्निना ।
तेनाग्निना प्रलीनास्ते पर्वता भुवि सर्वशः ॥९
शैत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुनापस्तु संहृताः ।
निषक्ता यत्र यत्रासंस्तत्रतत्राऽचलोऽभवत् ॥१०
स्कन्नाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः ।
गिरयोऽद्भिर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्च शिलोच्चयाः ॥११
ततस्तु तां समुद्धृत्य क्षितिमन्तर्ज्जलात् प्रभुः ।
स्वस्थाने स्थापयित्वा च विभागमकरोत् पुनः ॥१२
सप्त सप्त तु वर्षाणि तस्या द्वीपेषु सप्तसु ।
विषमाणि समीकृत्य शिलाभिरचिनोद्गिरीन् ॥१३

द्वीपेषु तेषु वर्षाणि चत्वारिंशत्तथैव च ।
तावन्त' पर्वताश्चैव वर्षान्ते समवस्थिता: ।
सर्गादौ सन्निविष्टास्ते स्वभावेनैव नान्यथा ॥१४

इसके अनन्तर जल में निमग्न भूमण्डल का उद्धार किया और उस जल का वही विन्यास किया था। जो समुद्र से सम्बन्ध रखने वाला जल था उसका समुद्रों मे और जो नदियो से सम्बद्ध था उसका नदियों मे विन्यास किया। जो पृथ्वी से सम्बन्धित था उसे पृथ्वी मे ही विन्यास किया तथा उसने पृथ्वी में पर्वतों को चुन दिया था ॥८॥ पहिले सर्ग में उस समय सवर्त्ताग्नि के द्वारा चारों ओर मे दाह के होने से भूमि मे उस अग्नि से समस्त पर्वत प्रलीन हो गये थे ॥९॥ शैत्य के कारण से उस एकार्णव मे वायु के द्वारा सहृत जल जहाँ-जहाँ पर निषिक्त हुए वहाँ वहाँ वह अचल हो गये थे ॥१०॥ वे स्वग्न होकर अचल होने से अचल और इनमे 'पर्वों' के होने के कारण से ये 'पर्वत' कहलाये गये हैं। जल के द्वारा पूर्णतया निगीर्ण हो जाने से 'गिरि' और शिलाओं के बहुत मे चयन होने के कारण से इन्हें 'शिलोच्चय' कहा जाता है ॥११॥ इसके अनन्तर प्रभु ने उस भूमि को अन्तर्जल से उद्धृत करके पुन उसी अपने ही स्थान पर स्थापित कर दिया था और फिर उसका विभाग भी किया था ॥१२॥ उस भूमि मण्डल के सात सात द्वीपो में सात सात वर्षों की रचना की और जो विषम स्वरूप मे थ उनको समान बनाकर पर्वतो को शिलाओ से चुन दिया था ॥१३॥ उन द्वीपो मे चालीस वर्ष और उतने ही पर्वत वर्ष के अन्त मे समवस्थित थे। सर्ग के आदि मे वे स्वभाव से ही सन्निविष्ट हो गये थे अन्यथा कुछ भी नहीं किया गया था ॥१४॥

सप्तद्वीपा. समुद्राश्च अन्योन्यस्य तु मण्डलम् ।
सन्निकृष्टा: स्वभावेन समावृत्य परस्परम् ॥१५
भूरास्याश्चतुरो लोकाश्चन्द्रादित्यौ ग्रहै' सह ।
पूर्वं तु निर्म्ममे ब्रह्मा स्थानानीमानि सर्वश: ॥१६
कल्पस्य चास्य ब्रह्मा वै ह्यसृजत् स्थानिन: पुरा ।
आपोऽग्नि: पृथिवी वायुरन्तरिक्ष' दिव तथा ॥१७

स्वर्गं दिशः समुद्रांश्च नदीः सर्वांश्च पर्वतान् ।
ओषधीनाँ तथात्मानमात्मानं वृक्षवीरुधाम् ॥१८
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्तं सन्धिराव्यहम् ।
अर्द्धमासांश्च मासांश्च अयमाब्दयुगानि च ॥१६
स्थानाभिमानिनश्चैव स्थानानि च पृथक् पृथक् ।
स्थानात्मानः स सृष्ट्वा वै युगावस्थां विनिर्ममे ॥२०
त्रेता द्वापरं च कलिं चैव तथा युगम् ।
कल्पस्यादौ कृतयुगे प्रथमे सोऽसृजत् प्रजाः ॥२१

सात द्वीप और समुद्र अन्योन्य के मण्डल के सन्निकृष्ट होगये और वे परस्पर में अपने ही आप स्वभाव से समावृत हो गये थे ॥१५॥ सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने सूर्य और चन्द्रादि ग्रहों के साथ भू-इस नाम वाले चार लोकों का निर्माण किया और इनके सब ओर से स्थानों की रचना की थी ॥१६॥ इस कल्प के ब्रह्माजी ने पहिले स्थानियों का सृजन किया। जैसे—जल, अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष और उसी प्रकार से दिव-इन सब का सृजन किया जो कि स्थानी होते हैं ॥१७॥ इसी तरह स्वर्ग, दिशा, समुद्र, नदी, पर्वत समस्त ओषधियों के स्वरूप तथा सम्पूर्ण वृक्ष और बीरुधों के रूप की रचना की थी ॥१८॥ लव, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, सन्धि, रात्रि और दिन, पक्ष, मास, अयन, युग और वर्ष ये सब स्थान और इनके पृथक-पृथक् स्थानों के अभिमानी अर्थात् उनमें रहने वाले उन्होंने स्थानों के स्वरूपों का सृजन कर फिर युगों की अवस्था का निर्माण किया था ॥१६-२०॥ कृत युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों युगों का सृजन कर कल्प के आदि काल में उनने सर्वप्रथम कृत युग में प्रजाओं की सृष्टि की थी ॥२१॥

प्रागुक्ता या मया तुभ्यं पूर्वकालं प्रजास्तु ताः ।
तस्मिन् संवर्त्तमाने तु कल्पे दग्धास्तदाऽग्निना ॥२२
अप्राप्ता यास्तपोलोकं जनलोकं समाश्रिताः ।
प्रवर्तन्ति पुनः सर्गे बीजार्थं ता भवन्ति हि ॥२३
बीजार्थेन स्थितास्तत्र पुनः सर्गस्य कारणात् ।

ततस्ता. सृज्यमानास्तु सन्तानार्थं भवन्ति हि ॥२४
धर्मार्थकाममोक्षाणामिह ता साधका स्मृता ।
देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा ॥२५
ततस्ते तपसा युक्ता स्थानान्यापूरयन्ति हि ।
ब्रह्मणो मानसास्ते वै सिद्धात्मानो भवन्ति हि ॥२६
ये सर्गा द्व पयुक्तेन कर्मणा ते दिव गता ।
आवर्त्तमाना इह ते सम्भवन्ति युगे युगे ॥२७
स्वकर्मफलशेषेण ख्याताश्चैव तथात्मिका ।
सभवन्ति जनाल्लोकात् कर्मसशयवन्धनात् ॥२८

इसके पूर्व समय मे जो मैंने तुम्हार सामने प्रजा का वर्णन किया था वह समस्त प्रजा उस कल्प के सवर्ज्यमान होने पर उसी समय अग्नि से दग्ध हो गई थी ॥२२॥ जो तप लोक म प्राप्त नही हुई और इस जनलोक मे ही समाश्रित रही वे ही पुन सर्ग म प्रवृत्त होते हैं और वे बीज के लिये ही रहा करते है ॥२३॥ फिर सर्ग के होने के लिये व वहाँ बीज के लिये ही स्थित रहे इसके पश्चात् वे सृज्यमान होकर सन्तान के लिये होते हैं ॥२४॥ यहाँ पर वे सब देव, पितर, ऋषि और मनुष्य धर्माथ काम और मोक्ष के लिये साधक कहे गये हैं ॥२५॥ इसके पश्चात् वे तप से युक्त होकर समस्त स्थानों को भर देते हैं। वे ब्रह्मा के सिद्ध आत्मा वाले मानस सृष्टि के रूप मे होते हैं ॥२६॥ जो सर्ग द्वन्द से युक्त होकर कर्म के द्वारा दिव को प्राप्त हो जाते हैं वे यहाँ पर युग युग मे आवर्त्तमान होते हुए जन्म धारण किया करते हैं ॥२७॥ अपने किये हुए कर्मों के शेष रहे हुए फलों के द्वारा जो उस स्वरूप मे प्रसिद्ध होते हैं वे कर्मों के सशययुक्त बन्धन के कारण स जनलोक से यहाँ आकर जन्म लिया करते हैं ॥२८॥

आशय कारण तत्र वोद्धव्य कर्मणा तु सः ।
तै कर्मभिस्तु जायन्ते जनाल्लोका शुभाशुभै ॥२९
गृह्णन्ति ते शरीराणि नानारूपाणि योनिषु ।
देवाद्यस्थावरान्ते च उत्पद्यन्ते परस्परम् ॥३०

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्टेः प्रतिपेदिरे ।
तान्येते प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥३१
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे ऋतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३२
कल्पेष्वासन् व्यतीतेषु रूपनामानि यानि च ।
तान्येवानागते काले प्रायशः प्रतिपेदिरे ॥३३
तस्मात्तु नामरूपाणि तान्येव प्रतिपेदिरे ।
पुनः पुनस्ते कल्पेषु जायन्ते नामरूपतः ॥३४

कर्मों का कारण आशय ही समझना चाहिए । उन शुभ और अशुभ कर्मों से मनुष्य यहाँ जन्म लिया करते हैं ॥२६॥ वे यहाँ देव से आदि लेकर स्थावर पर्यन्त नाना भाँति की योनियों में परस्पर में उत्पन्न होते हुए अनेक प्रकार के शरीरों को धारण किया करते हैं ॥३०॥ सृष्टि होने के पहिले उनके जो-जो भी कर्म थे उन्हीं कर्मों के अनुसार यहाँ बार-बार सृज्यमान होते हुए फलों को भोगा करते हैं ॥३१॥ उनके हिंसा तथा अहिंसा वाले, मृदु तथा क्रूरता से भरे हुए, धर्म से युक्त तथा पूर्ण अधर्म से भरे हुए और सत्य एवं असत्य जैसे भी पहिले कर्म होते हैं उनकी वैसी ही भावनाऐं होती हैं और वैसा ही यहाँ भोगते हैं क्योंकि उनका स्वभाव भी वैसा ही होता है कि फिर उन्हें वही अच्छा भी लगा करता है चाहे वह ठीक हो अथवा नहीं ॥३२॥ बीते हुए कल्पों में जैसे भी उनके नाम और स्वरूप होते हैं वैसे ही वे आने वाले समय में भी प्रायः प्राप्त किया करते हैं ॥३३। इसी कारण से वे उन्हीं नाम और रूपों की प्राप्ति करते हैं क्योंकि कल्पों में वे बार-बार जन्म नाम और रूप से ही लिया करते हैं ॥३४॥

ततः सर्गे ह्यवष्टब्धे सिसृक्षोर्ब्रह्मणस्तु वै ।
प्रजास्ता ध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ॥३५
मिथुनानां सहस्रन्तु सोऽसृजद्वै मुखात्तदा ।
जनास्ते ह्युपपद्यन्ते सत्त्वोद्रिक्ताः सुचेतसः ॥३६
सहस्रमन्यद्वक्षस्तो मिथुनानां ससर्ज ह ।

ते सर्वे रजसोद्रिक्ता शुष्मिणश्चाप्यशुष्मिण: ॥३७
सृष्ट्वा सहस्रमन्यत्तु द्वन्द्वानामूरुत. पुन. ।
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता ईहाशीलास्तु ते स्मृता: ॥३८
पद्भ्या सहस्रमन्यत्तु मिथुनाना ससर्ज ह ।
उद्रिक्तास्तमसा सर्वे नि श्रीका ह्यल्पतेजस. ॥३९
ततो वै हर्षमानास्ते द्वन्द्वोत्पन्नास्तु प्राणिन ।
अन्योन्या हृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमु ॥४०
तत प्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनोत्पत्तिरुच्यते ।
मासे मासेऽर्त्तव यद्यत्तदाज्ञासीद्धि योषितान् ॥४१
तस्मात्तदा न सुषुवु सेवितैरपि मैथुनै ।
आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते मिथुनान्येव ते मक्रन् ॥४२

इसके अनन्तर सग के अवष्टब्ध हो जाने पर सृजन की पूर्ण इच्छा रखने वाले ब्रह्माजी के जो सत्य के अभिध्यान करने वाले थे, उस समय उन्होने मुख से सहस्रो प्रजा के मिथुन उत्पन्न किये, वे मनुष्य सत्त्व के उद्रेक से अच्छे चित्त वाले होते हैं ॥३५ ३६॥ उन्होने सहस्रो मिथुनो को अपने वक्ष स्थल से उत्पन्न किया वे सभी रजोगुण के उद्रेक वाले थे जो शुष्मी होते हुए भी अशुष्मी थे ॥३७॥ अन्य सहस्रो द्वन्द्वो को ब्रह्माजी ने अपने उरुओ से उत्पन्न किया था जो कि रजोगुण और तमोगुण के उद्रेक वाले थे और वे ईहा के स्वभाव वाले कहे गये हैं ॥३८॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने सहस्रों जोडो को अपने चरणों से उत्पन्न किया था जो कि सभी तमोगुण के उद्रेक वाले थे और श्रीरहित एव तेज से शून्य थे ।३९॥ इसके अनन्तर अपने-अपने द्वन्द्वो के रूप मे उत्पन्न होने वाले वे सभी प्राणी परम प्रसन्न हुए और अन्योन्य काम वासना में लिप्त होकर मैथुन में प्रवृत्त हो गये ॥ ४० ॥ तभी से लेकर इस कल्प मे मिथुन उत्पत्ति कही जाती है । प्रत्येक मास मे स्त्रियो को जो ऋतु धर्म होता था वह उस समय उन्ही ब्रह्मा की आज्ञा थी ॥४१॥ इस लिये उस आर्तव काल मे मैथुन के सेवन करने वालो ने भी स्त्रियो के साथ शयन नहीं किया । आयु के अन्त में ही वे एकबार, मिथुनो का प्रसव करते हैं ॥४२॥

कुटकाः कुविकाश्चैव उत्पद्यन्ते मुमूर्षिताः ।
ततःप्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनानां हि सम्भवः ॥४३
ध्याते तु मनसा तासां प्रजानां जायते सकृत् ।
शब्दादि विषयः शुद्धः प्रत्येकं पञ्चलक्षणः ॥४४
इत्येवं मनसा पूर्वं प्राक्सृष्टिर्या प्रजापतेः ।
तस्यान्ववाये सम्भूतायैरिदं पूरितं जगत् ॥४५
सरित्सरः समुद्रांश्च सेवन्ते पर्वतानपि ।
तदा नात्यम्बुशीतोष्णा युगे तस्मिन् चरन्ति वै ॥४६
पृथ्वीरसोद्भवं नाम आहारं ह्याहरन्ति वै ।
ताः प्रजाः कामचारिण्यो मानसीं सिद्धिमास्थिताः ॥४७
धर्माधर्मौ न तास्वास्तां निर्विशेषाः प्रजास्तु ताः ।
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन् कृते युगे ॥४८
धर्माधर्मौ न तास्वास्तां कल्पादौ तु कृते युगे ।
स्वेन स्वेनाधिकारेण जज्ञिरे ते कृते युगे ॥४९

कुटक और कुविक मरने की इच्छा वाले उत्पन्न होते हैं । तभी से लेकर इस कल्प में मिथुनों का जन्म हुआ था ॥४३॥ मन से ध्यान करने पर उन प्रजाओं का एकबार पाँच लक्षणों वाला शुद्ध शब्दादि का विषय उत्पन्न होता है ॥४४॥ इसी प्रकार से प्रजापति की जो पूर्व सृष्टि पहिले हुई उसी अन्ववाय में उसकी यह समस्त प्रजा हुई है जिनसे यह समस्त जगत् परिपूरित हो रहा है ॥४५॥ वह प्रजापति की प्रजा सरित्, सरोवर, समुद्र और पर्वतों का सेवन करती है । उस समय युग में वे सब अत्यन्त जल, शीत और उष्णता से रहित होते हुए सर्वत्र विचरण किया करते हैं ॥४६॥ वह समस्त प्रजा अपनी इच्छा के अनुरूप आचरण करने वाली मानसी सिद्धि में अवस्थित होती हुई पृथ्वी के रस से उत्पन्न आहार को ग्रहण करती है ॥४७॥ उस कृत युग में उन प्रजाओं में धर्म तथा अधर्म कुछ भी नहीं थे । उस समय की वह प्रजा विशेषता रहित थी । उन सब की तुल्य आयु, सुख और रूप था । कहीं भी कुछ भी आपस में अन्तर नहीं था ऐसी सतयुग की समस्त प्रजा थी ॥४८॥ कल्प के आदि में कृत

युग मे उन प्रजाओ मे धर्म और अधर्म कुछ भी नही था। कृत युग मे वे सब अपने अपने अधिकार के अनुसार यजन करते थे ॥४६॥

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां दिव्यसंख्यया ।
आद्य कृतयुगं प्राहु सन्ध्यानान्तु चतुः शतम् ॥५०
तत सहस्रशस्तासु प्रजासु प्रथितास्वपि ।
न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वन्द्वश्चापि च क्रम ॥५१
पर्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ताः ।
विशोका. सत्वबहुला एकान्तसुखितप्रजाः ॥५२
ता वै निकामचारिण्यो नित्य मुदितमानसा ।
पशव पक्षिणश्चैव न तदासन् सरीसृपाः ॥५३
नोद्भिज्जा नारकाश्चैव ते ह्यधर्मप्रसूतयः ।
न मूलफलपुष्पञ्च नार्तव ह्यृतवो न च ॥५४
सर्वकामसुख कालो नात्यर्थं ह्युष्णशीतता ।
मनोभिलषिता कामास्तासां सर्वत्र सर्वदा ॥५५
उत्तिष्ठन्ति पृथिव्या वै ताभिर्ध्याता रसोत्थिता. ।
बलवर्णकरी तासा सिद्धि सा रोगनाशिनी ॥५६

दिव्य सख्या स चार हजार वर्ष का आद्य कृत-युग कहा गया है और चार सौ वर्ष सन्ध्याओ मे कहे गये हैं ॥५०॥ उन सहस्रों प्रथित प्रजाओ में उनका कोई प्रतिघात नही होता है, न कोई द्वन्द्व होता है और न कोई क्रम होता है ॥५१॥ कृत युग मे प्रजा पर्वत और समुद्र के सेवन करने वाली थी तथा बिना निकेत और आश्रय वाली थी। उस समय उन प्रजाओ मे शोक का अभाव था, सत्त्व की प्रचुरता थी और एकान्त सुख से युक्त थी ॥५२॥ कृत-युग मे समस्त प्रजा स्वेच्छानुकूल आचरण करने वाली और नित्य ही परम प्रसन्न चित्त वाली थी। उस समय पशु, पक्षी और सरीसृप नहीं थे ॥५३॥ अधर्म से जिनकी उत्पत्ति होती है ऐसे नारकीय पुरुष और उद्भिज भी नही थे। न मूल था, न पुष्प थे और न फल ही थे तथा ऋतु का धर्म और ऋतु भी नहीं थे ॥५४॥ कृत युग म उस समय समस्त कामो मे सुख देने वाला

काल था। उस समय न अधिक उष्णता थी और न शीतलता ही थी। उस समय उन कृतयुग की प्रजाओं के सभी काम मन के अभिलाषित ही सर्वत्र और सदा होते थे ॥५५॥ पृथिवी में उनके द्वारा ध्यान की हुई इससे उत्थित बल और वर्ण को करने वाली उनकी सिद्धि उठती थी जो समस्त रोगों के नाश करने वाली थी ॥५६॥

असंस्कार्यैः शरीरैश्च प्रजास्ताः स्थिरयौवनाः ।
तासां विशुद्धात सङ्कल्पाज्जायन्ते मिथुनाः प्रजाः ॥५७
समं जन्म च रूपञ्च म्रियन्ते चैव ताः समम् ।
तदा सत्यमलोभश्च क्षमा तुष्टिः सुखं दमः ॥५८
निर्विशेषाः कृताः सर्वा रूपायुःशीलचेष्टितैः ।
अबुद्धिपूर्वकं वृत्तं प्रजानां जायते स्वयम् ॥५९
अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः ।
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदासन्न सङ्करः ॥६०
अनिच्छाद्वेषयुक्तास्ते वर्त्तयन्ति परस्परम् ।
तुल्यरूपायुषः सर्वा अधमोत्तमवर्ज्जिताः ॥६१
सुखप्राया ह्यशोकाश्च उत्पद्यन्ते कृते युगे ।
नित्यप्रहृष्टमनसो महासत्त्वा महाबलाः ॥६२
लाभालाभौ न तास्वास्तां मित्रामित्रे प्रियाप्रिये ।
मनसा विषयस्तासान्निरीहाणां प्रवर्त्तते ।
न लिप्सन्ति हि ताऽन्योन्यन्नानुगृह्णन्ति चैव हि ॥६३

न संस्कार करने के योग्य शरीरों के द्वारा वह समस्त प्रजा स्थिर यौवन वाली थी। उनके विशुद्ध सङ्कल्प से मिथुन प्रजा उत्पन्न हुई ॥५७॥ उन सब का जन्म और रूप समान ही था और वे साथ ही मरते भी थे। उस समय सब में सत्य—लोभ का अभाव—क्षमा-तुष्टि-सुख और दम वर्त्तमान था। रूप, आयु, शील और चेष्टितों के द्वारा सब विशेषता से रहित कर दिये थे। प्रजाओं का वृत्त अबुद्धि के साथ स्वयं होता है ॥५९॥ कृतयुग में पाप और शुभयुक्त कर्मों में प्रवृत्ति का अभाव रहता था। उस समय सतयुग में चारों वर्णों और चारों

आश्रमो की कोई भी व्यवस्था ही नही थी और न कृतयुग मे वर्ण सङ्करता ही थी ॥६०॥ उस समय के लोग सब इच्छा और द्वेष से युक्त न होते हुए ही परस्पर मे बरताव किया करते थे । उस समय न तो कोई किसी से उत्तम था और न कोई अधम ही अर्थात् उत्तमाधम के होने का कोई अवसर ही नही था और सब समान वय और रूप वाले थे ॥६१॥ कृतयुग मे प्राय. सभी सुख से युक्त और शोक से रहित थे और इसी प्रकार का जीवन लेकर उत्पन्न होते हैं । वे नित्य ही प्रहृष्ट चित्त वाले, महान् सत्व से संयुत और महान् बल वाले थे ॥६२॥ उस समय के व्यक्तियो के विचार मे कोई लाभ या कुछ अलाभ अर्थात् हानि है, ऐसा होता ही नही था । उनमे न कोई किसी का मित्र था और न कोई शत्रु अर्थात् मित्रामित्र का भेद-भाव सर्वथा था ही नहीं । किसी का प्रिय और किसी का अप्रिय होने की भावना भी बिल्कुल नही थी । बिना ईहा वाले उनका विषय मन से प्रवृत्त होता है । वे अन्योन्य की कोई लिप्सा नहीं करते हैं और न किसी पर कोई अनुग्रह किया करते हैं ॥६३॥

ध्यान पर कृतयुगे त्रेताया ज्ञानमुच्यते ।
प्रवृत्तं द्वापरे यज्ञ दान कलियुगे वरम् ॥६४
सत्व कृत रजस्त्रेता द्वापरन्तु रजस्तमौ ।
कलौ तमस्तु विज्ञेय युगवृत्तवशेन तु ॥६५
काल कृते युगे त्वेष तस्य सख्यान्निबोधत ।
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणा तत् कृत युगम् ॥६६
सन्ध्याशो तस्य दिव्यानि शतान्यष्टौ च सन्ध्यया ।
तदा तासा बभूवायुर्नं च क्लेशविपत्तय ॥६७
तत्र कृतयुगे तस्मिन् सन्ध्याशे हि गते तु वै ।
पादावशिष्टो भवति युगधर्मस्तु सर्वश· ॥६८
सन्ध्यायामप्यतीतायामन्तकाले युगस्य तु ।
एव कृते तु नि.शेषे सिद्धिस्त्वन्तर्दधे तदा ॥६९
तस्याश्च सिद्धौ भ्रष्टाया मानस्यामभवत्ततः ।
सिद्धिरन्या युगे तस्मिंस्त्रेतायामन्तरे कृता. ॥७०

कृतयुग में सबसे प्रधान ध्यान माना गया है और त्रेतायुग में ज्ञान का सबसे अधिक महत्त्व होता है। द्वापर युग में यज्ञ-यागादि का सबसे अधिक गौरव माना जाता था और इस कलियुग में दान की सर्वश्रेष्ठता मानी गई है ॥६४॥ युगवृत्त की वशता के कारण से कृतयुग में सत्त्वगुण—त्रेता में रजोगुण—द्वापर में रजोगुण और तमोगुण तथा कलियुग में केवल तमोगुण का आधिपत्य रहता है।.६५॥ कृतयुग में जो काल होता है उसकी संख्या समझ लो। चार सहस्र वर्ष का वह कृतयुग होता है॥६६॥ उसके संध्या-सन्ध्यांश दिव्य आठ सौ वर्ष संख्या में होते हैं। उस समय उनकी आयु ऐसी ही होती थी कि उसमें कोई भी क्लेश तथा विपत्तियाँ नहीं होती थीं।॥६ ॥ इसके अनन्तर उस कृतयुग के सन्ध्यांश के चले जाने पर एक पाद से अवशिष्ट युग-धर्म सभी ओर से होता है॥६८॥ अन्तकाल में युग की सन्ध्या के भी व्यतीत हो जाने पर युग का एक पाद से सन्ध्या-धर्म अवस्थित रहता है । इस प्रकार से कृतयुग के निःशेष हो जाने पर उस समय सिद्धि अन्तर्हित हो जाती है॥६६॥ तब उस मानसी सिद्धि के भ्रष्ट हो जाने पर उस युग में त्रेता में अन्तर में की हुई अन्य सिद्धि होती है॥७१॥

सर्गादौ या मयाष्टौ तु मानस्यो वै प्रकीर्तिताः।
अष्टौ ताः क्रमयोगेन सिद्धयो यान्ति संक्षयम् ॥७१
कल्पादौ मानसी ह्येषा सिद्धिर्भवति सा कृते।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु चतुर्युगविभागशः।
वर्णाश्रमाचारकृतः कर्मसिद्धोद्भवः स्मृतः ॥७२
सन्ध्याकृतस्य पादेन सन्ध्यापादेन चांशतः।
कृतसन्ध्यांशका ह्येते त्रींस्त्रीन् पादान् परस्परान्।
ह्रसन्ति युगधर्मैस्ते तः श्रुतबलायुषैः ॥७३
ततः कृतांशे क्षीणे तु बभूव तदनन्तरम्।
त्रेतायां युगमन्यन्तु कृतांशमृषिसत्तमाः ॥७४
तस्मिन् क्षीणे कृतांशे तु तच्छिष्टासु प्रजास्विह।
कल्पादौ संप्रवृत्तायास्त्रेतायाः प्रमुखे तदा ॥७५

प्रणश्यन्ति तदा सिद्धिः कालयोगेन नान्यथा ।
तस्या सिद्धौ प्रणष्टायामन्या सिद्धिरवर्त्तत ।।७६
अपां सौक्ष्म्ये प्रतिगते तदा मेघात्मना तु तौ ।
मेघेभ्यस्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्ज्जनम् ।।७७

सर्ग के आदि में मैंने जो आठ मानसी सिद्धियाँ कीर्त्तित की थी वे आठों सिद्धियाँ क्रम के योग से सक्षय को प्राप्त हो जाती हैं ।।७१।। कल्प के आदि में मानसी जो यह सिद्धि है वह कृत-युग में होती है । सभी मन्वतरों में चारों युगों के विभाग से वर्ण और आश्रमों के कर्मों द्वारा सिद्धि की उत्पत्ति कही गई है ।।७२।। सन्ध्या कृत-पाद में और अंश से सन्ध्या-पाद में सन्ध्या के अंश किये जाने वाले परस्पर में तीन तीन पादों की तप, श्रुत, बल, आयु वाले युग के धर्मों से वे ह्रास को प्राप्त होते हैं ।।७३।। हे श्रेष्ठ ऋषियो ! फिर इसके अनन्तर कृत-अंश के क्षीण हो जाने पर इनके पश्चात् त्रेता में अन्य युग कृत-अंश वाला हुआ ।।७४।। उस कृतांश के क्षीण हो जाने पर यहाँ पर उनसे शेष प्रजाओं में कल्प के आदि में त्रेता के सम्प्रवृत्त होने पर प्रमुख में ही उस समय काल योग से सिद्धि का नाश हो जाता है अन्य कोई कारण नहीं है । उस पूर्व सिद्धि के नाश हो जाने पर फिर अन्य सिद्धि हुई थी ।।७५-७६।। उस समय जलों की सूक्ष्मता होने पर अर्थात् कुछ कमी हो जाने पर उन दोनों ने मेघ के स्वरूप से स्तनयित्नु मेघों से वर्षा के सृजन में प्रवृत्ति की ।७७।।

सकृदेव तया वृष्ट्या संयुक्ते पृथिवीतले ।
प्रादुरासंस्तदा तासां वृक्षास्तु गृहसंस्थिताः ।।७८
सर्वप्रत्युपभोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते ।
वर्त्तयन्ति हि तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः ।।७९
ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात् ।
रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत् ।।८०
यत्तद्भवति नारीणां जीवितान्ते तदार्त्तवम् ।
तदा तद्वै न भवति पुनर्युगबलेन तु ।।८१
तासां पुनः प्रवृत्तं तु मासे मासे तदार्त्तवम् ।

ततस्तेनैव योगेन वर्तता मिथुने तदा ॥८२
तासां तत्कालभावित्वान्मासि मास्युपगच्छताम् ।
अकाले ह्यार्तवोत्पत्तिर्गर्भोत्पत्तिरजायत ॥८३
विपर्ययेण तासां तु तेन कालेन भाविना ।
प्रणश्यन्ति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंस्थिताः ॥८४

एक बार होने वाली ही उस वृष्टि से पृथ्वी तल के जल से परिपूर्णतया संयुक्त हो जाने पर उस समय उनके घरों में संस्थित वृक्षों का प्रादुर्भाव हो गया अर्थात् वृक्षादि खूब अच्छी तरह उत्पन्न हुए ॥७८॥ उनसे उन प्रजाओं का सभी प्रकार का उपभोग सम्पन्न हो जाता है । त्रेतायुग के आरम्भ में प्रजा उन वृक्षों को बरताव में लाती हैं ॥ ७६ ॥ इसके अनन्तर अधिक काल उस त्रेतायुग का व्यतीत होने पर उन्हीं प्रजाओं के कुछ विपर्यय हो जाने से तब अचानक राग और लोभ के रूप वाला भाव उत्पन्न हो गया ॥८०॥ स्त्रियों के जीवितान्त में जो आर्त्तव होता है उस समय वह नहीं होता है तो फिर योग के बल से उनको फिर मास में अर्थात् प्रत्येक मास में वह ऋतु-धर्म प्रवृत्त हुआ और फिर उसी योग से उस समय वे मिथुन में प्रवृत्त हुए हैं ॥८१–८२॥ उनको उस समय में ऋतु-धर्म होने से उन स्त्रियों का उपगमन करें और प्रत्येक मास में ही करना चाहिए । अकाल में आर्त्तव की उत्पत्ति गर्भ की उत्पत्ति हुई ॥८३॥ उस समय में होने वाले उनके विपर्यय से उस समय सब गृह संस्थित वृक्ष नष्ट हो जाते हैं ॥८४॥

ततस्तेषु प्रणष्टेषु विभ्रान्ता व्याकुलेन्द्रियाः ।
अभिध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा ॥८५
प्रादुर्बभूवुस्तासां च वृक्षास्ते गृहसंस्थिताः ।
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च ॥८६
तेष्वेव जायते तासां गन्धवर्णरसान्वितम् ।
अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु ॥८७
तेन ता वर्तयन्ति स्म मुखे त्रेतायुगस्य च ।
हृष्टतुष्टास्तया सिद्धया प्रजा वै विगतज्वराः ॥८८

पुन कालातरेणैव पुनर्ल्लोभावृतास्तु ता ।
वृक्षास्तान् पर्यगृह्णन्त मधु वा माक्षिक बलात् ॥८६
तासा तना पचारेण पुनर्ल्लोककृतेन वै ।
प्रणष्टा मधुना सार्द्ध कल्पवृक्षा क्वचित् क्वचित् ॥६०

तब उस समय उन वृक्षो के प्रनष्ट हो जाने पर वे बहुत ही भ्रान्त हुए उनकी समस्त इन्द्रियाँ व्याकुलित हो गई तब सत्य के अभिध्यायी उन्होने उस सिद्धि का ध्यान किया ॥८५॥ फिर सिद्धि के ध्यान से वे सब गृह में रहने वाले वृक्ष प्रादुर्भूत हो गये थे । और वे वस्त्र फल तथा अनेक आभरणो का प्रसव किया करते हैं ॥८६॥ उन प्रजाओ के उन्ही वृक्षा मे ग ध वर्ण और रस से युक्त महान् वीर्य युक्त पुट पुट मे अमाक्षिक मधु उत्पन्न होता है ॥८७॥ त्रेतायुग के आरम्भ काल मे सभी प्रजा उसी का व्यवहार करते थे । इससे वे सब परम हृष्ट पुष्ट और उस सिद्धि से विगत ज्वर अर्थात् दुःख रहित हो गये ॥८८॥ फिर कुछ काल के पश्चात् ही लोभ से आवृत हुए उन वृक्षो का परिग्रहण करते हैं और बलपूर्वक उनका मधु अथवा माक्षिक भी ग्रहण करते हैं ॥ ८६ ॥ उनके उस लोक कृत अपचार से फिर कहीं कहीं वे कल्प वृक्ष मधु के साथ ही साथ नष्ट हो गये थे ॥६०॥

तस्यामेवाल्पशिष्टाया सन्ध्याकालवशात्तदा ।
प्रावर्तत तदा तासा द्वन्द्वान्यभ्युत्थितानि तु ॥६१
शीतवातातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दु खिता भृशम् ॥
द्वन्द्वैस्ता पीडयमानास्तु चक्रुरावरणानि च ॥६२
कृत्वा द्वन्द्व प्रतीकार निकेतानि हि भेजिरे ।
पूर्वं निकामचारास्त अनिकेनाश्रया भृशम् ॥६३
यथायोग्य यथाप्रीति निकेतेष्ववसन् पुन ।
मरुधन्वसु निम्नेपु पर्वतेपु नदीषु च ।
सश्रयन्ति च दुर्गाणि धन्वान शाश्वतोदकम् ॥६३
यथायोग यथाराम समेपु विषमेपु च ।
आरब्धास्ते निकेता वै कर्त्तुं शीतोष्ण वारणम् ॥६४

ततः संस्थापयामास खेटानि च पुराणि च ।
ग्रामांश्चैव यथाभागं तथैवान्तः पुराणि च ।।९६

तासामायामविष्कम्भान् संनिवेशान्तराणि च ।
चक्रुस्तदा यथाप्राज्ञं प्रदेशः संज्ञितस्तु तैः ।।९७

अंगुष्ठस्य प्रदेशिन्या व्यासः प्रादेश उच्यते ।
तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया ।।९८

कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशांगुल उच्यते ।
रत्निरंगुलपर्वाणि संख्यया त्वेकविंशतिः ।।९९

उस समय सन्ध्या-काल के कारण से जोकि सन्ध्या का थोड़ा-सा भाग ही शेष रह गया था उन प्रजाओं में द्वन्द्वों की उत्पत्ति हुई अर्थात् 'सुख-दुःख' आदि के जोड़े उत्पन्न हो गये ।।९१।। तब तो वे अति तीव्र शीत, वात, आतप के द्वन्द्वों से बहुत उत्पीड़ित हुए और वे परम पीड़ा प्राप्त होकर उन द्वन्द्वों से बचाव करने के लिये अपने आचरण करने लगे । ९२।। सुख-दुःखादि द्वन्द्वों का प्रतीकार करके वे सब घरों में निवास करने लगे जिससे शीतलता, उष्णतादि से पूर्ण बचाव हो जावे । इसके पूर्व वे सभी स्वेच्छाचारी थे और किसी भी घर का आश्रय लेकर नहीं रहते थे ।।९३।। योग्यता और प्रीति के अनुसार फिर घरों में निवास करते हुए रहने लगे । मरुधन्वाओं में, नीचे स्थानों में, पर्वतों में और नदियों में जहाँ कि निरन्तर जल विद्यमान रहता है वे ऐसे दुर्गों को अर्थात् पूर्ण सुरक्षित स्थानों का आश्रय लेते थे ।। ९४ ।। जैसा भी योग हो और जैसी भी इच्छा हो उसी के अनुसार समतल और विषमतल में उन्होंने शीत और उष्णता का वारण करने के लिये अपने घरों का निर्माण करना आरम्भ कर दिया था ९५।। इसके पश्चात् खेटों तथा पुरों की स्थापना की थी और भाग के अनुसार ग्रामों की और अन्तःपुरों की स्थापना की गई थी ।।९६।। उनके आयाम और विष्कम्भों को तथा अन्दर के सन्निवेशों का बुद्धि के अनुसार निर्माण किया और उस समय उन्हीं के द्वारा 'प्रदेश' यह संज्ञा रखी गई थी ।।९७।। प्रदेशिनी से अंगुष्ठ का व्यास 'प्रादेश' कहा जाता है । मध्यमा से 'ताल' और अनामिका से 'गोकर्ण' कहा गया है ।। ९८ ।। कनिष्ठिका से 'वितस्ति' जोकि द्वादशांगुल कहा

जाता है। अ गुलियों के पर्व जो मध्य में इनहीत होते हैं 'रत्नि' कहे जाते हैं ॥६६॥

चतुर्विंशतिभिश्चैव हस्तः स्यादगुलानि तु ।
किष्कु स्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदगुलम् ॥१००
चतुर्हस्त धनुर्दण्डो नालिकायुगमेव च ।
धनु सहस्रे द्वे तत्र गव्यूतिस्तैर्विभाव्यते ॥१०१
अष्टौ धनु सहस्राणि योजन तैर्निरुच्यते ।
एतेन योजनेनैव सन्निवेशस्तत कृत. ॥१०२
चतुर्णामेव दुर्गाणा स्वसमुत्थानि त्रीणि तु ।
चतुर्थं कृत्रिम दुर्ग तस्य वक्ष्याम्यह विधिम् ॥१०३
सौधोच्चवप्रप्राकार सर्वतश्चातकावृतम् ।
तदेक स्वस्तिकद्वार कुमारीपुरमेव च ॥१०४
श्रोतसोसह तद्द्वार निखात पुनरेव च ।
हस्ताष्टौ च दश श्रेष्ठा नवाष्टौ चाप्सरे मता ॥१०५
खेटाना नगराणाच ग्रामाणाचैव सर्वशः ।
त्रिविधानान्च दुर्गाणा पर्वतोदरबन्धनम् ॥१०६

चौबीस अ गुल का 'हस्त' होता है। दो रत्नियों का 'किष्कु' होता जोकि बयालीस अ गुल का होता है ॥१००॥ चार हस्त का धनु होता है और दो नालिका दण्ड होता है। दो सहस्र धनुओं का गव्यूति होता है ॥१०१॥ आठ सहस्र धनुओं का एक योजन कहा जाता है। इस योजन से ही सन्निवेश किया गया था ॥१०२॥ चार दुर्गों में तीन तो अपने से उत्थित थे और चौथा कृत्रिम था जिसकी विधि को मैं कहता हूँ ॥१०३॥ सब ओर से खातों से आवृत ऊँचे प्राकार वाला सौध होता है। उसमें एक स्वस्तिक द्वार होता है और कुमारी पुर होता है ॥१०४॥ श्रोतसी के साथ वह द्वार निखात (खु- हुआ) होता है। वह आठ हाथ, दस हाथ अथवा नौ हाथ का दूसरे मानते ॥१०५॥ खेटों के, नगरों के और ग्रामों के सब ओर से और तीन प्रकार दुर्गों के पर्वतोदर बन्धन होता है ॥१०६॥

त्रिविधानांच दुर्गाणां विष्कम्भायाममेव च ।
योजनानाञ्च विष्कम्भमष्टभागार्द्धमायतम् ॥१०७
परमार्द्धार्द्धमायामं प्रागुदक्प्रवरं पुरम् ।
छिन्नकर्ण विकर्णन्तु व्यञ्जनं कृशसंस्थितम् ॥१०८
वृत्तं हीनञ्च दीर्घञ्च नगरं न प्रशस्यते ।
चतुरस्रार्जवं दिकस्थं प्रशस्त वै पुरं परम् ॥१०९
चतुर्विंशतिराद्यन्तु हस्तानष्टशतं परम् ।
अत्र मध्यं प्रशंसन्ति ह्रस्वोत्कृष्टविवर्जितम् ॥११०
अथ किष्कुशतान्यष्टौ प्राहुर्मुख्यनिवेशनम् ।
नगरादर्धविष्कम्भं खेटं ग्रामं ततो बहिः ॥१११॥
नगराद्योजनं खेटं खेटाद्ग्रामोऽर्द्ध योजनम् ।
द्विक्रोश परमा सीमा क्षेत्रसीमा चतुर्द्धनुः ॥११२

तीनों प्रकार के दुर्गों का विष्कम्भ जितना आयाम होता है। योजनों के अष्ट-भाग और अर्ध-भाग आयत विष्कम्भ होता है ॥१०७॥ परमार्थ के अर्ध आयाम वाला पहिले उदक से प्रवर पुर, छिन्न कर्ण, विकर्ण, व्यंजन, कृश-संस्थित, वृत्त, हीन और दीर्घ नगर प्रशस्त नहीं कहा जाता है। चारों ओर से सिधाई वाला दिशाओं में स्थित पुर परम प्रशस्त होता है ॥१०८-१०९॥ जिसका आद्य चौबीस हाथ और पर आठ सौ तथा ह्रस्व और उत्कृष्ट से रहित मध्य भाग हो उसकी प्रशंसा करते हैं ॥११०॥ इसके अनन्तर आठ सौ किष्कु का मुख्य निवेशन कहा गया है। नगर से आधा विष्कम्भ खेट होता है और उससे बाहिर ग्राम होता है ॥१११॥ नगर से एक योजन खेट और खेट से आधा योजन ग्राम होता है। दो कोश परम सीमा होती है और चार धनुष क्षेत्र की सीमा होती है ॥११२॥

विंशद्धनूंषि विस्तीर्णो दिशां मार्गस्तु तैः कृतः ।
विंशद्धनुर्ग्राममार्गः सीमामार्गो दशैव तु ॥११३
धनूंषि दश विस्तीर्णः श्रीमान् राजपथः स्मृतः ।
नृवाजिरथनागानामसम्बाधः सुसंचरः ॥११४

धनू वि चैव चत्वारि शाखारथ्यास्तु तं कृता ।
गृहरथ्योपरथ्याश्च द्विकाश्चाप्युपरथ्यका ॥११५
घण्टापथश्चतुष्पादस्त्रिपदञ्च गृहान्तरम् ।
वृत्तिमार्गास्त्वर्द्ध पद प्राग्वश पदिक स्मृत ॥११६
अवस्करं परीवाह पदमात्र समन्ततः ।
कृतेषु तेषु स्थानेषु पुनश्चक्रुर्गृहाणि वै ॥११७
यथा ते पूर्वमासन्वै वृक्षास्तु गृहसस्थिताः ।
तथा कर्तुं समारब्धाश्चिन्तयित्वा पुन. पुन ॥११८
वृक्षाश्चैव गता शाखा न ताश्चैव परागताः ।
अत उर्द्धंगताश्चान्या एव तिर्य्यग्गताः पुरा ॥११९

बीस धनुप विस्तार वाला उन्होने दिशाओ का मार्ग बनाया, बीस धनुप का विस्तीर्ण ग्राम का मार्ग और दश धनुप विस्तार वाला सीमा का मार्ग बनाया था ॥११ ॥ दश धनुष विस्तार वाला शोभायुक्त राजपथ कहा गया है जोकि मनुष्य, अश्व, रथ, हस्ती आदि का बाधा-रहित सचार वाला होता है ॥११४॥ चार धनुप के विस्तार वाली ही शाखा रथ्या (गली) उ होने बनाई इसी प्रकार से गृहरथ्या, उपरथ्या, द्विका और उपरथ्यका, घण्टापथ, चतुष्पाद, त्रिपद, गृहान्तर, वृत्तिमार्ग, अर्द्ध पद, प्राग्वश और पदिक कहा गया है ॥११५-११६॥ यह मात्र चारो ओर अवस्कर परीवाह उन स्थानो पर करने पर फिर घर किये ॥११७॥ जिस तरह वे पहिले गृह सस्थित वृक्ष थे पुन-पुन. चिन्तन कर वैसा ही करना आरम्भ कर दिया ॥११८॥ शाखाएँ और वृक्ष गये वैसे ही परागत नहीं हुए । इसलिये ऊपर की ओर गये हुए दूसरे थे इसी प्रकार से पहिले तिरछे जाने वाले थे ॥११९॥

बुद्धाऽन्विष्यस्तथा न्यायो वृक्षशाखा यथा गता. ।
तथा कृतास्तु तं शाखास्तस्माच्छालास्तु ता. स्मृताः ॥१२०
एव प्रसिद्धा शाखाभ्य शालाश्चैव गृहाणि च ।
तस्मात्ता वै स्मृताः शालाः शालात्व चैव तासु तत् ॥१२१
प्रसीदति मनस्तासु मन प्रसादयन्ति ताः ।

तस्माद्गृहाणि शालाश्च प्रासादाश्चैव संज्ञिताः ।।१२२
कृत्वा द्वन्द्वोपघातांस्तान् वार्त्तोपायमचिन्तयन् ।
नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा ।
विषादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधात्मिकाः ।।१२३
ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः ।
वार्त्तार्थसाधिकाप्यन्या वृत्तिस्तासां हि कामतः ।।१२४
तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु ।
वृष्ट्या तदभवत्स्रोतः खातानि निम्नगाः स्मृताः ।।१२५
एवं नद्यः प्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्ज्जने ।
ये परस्तादपां स्तोका आपन्नाः पृथिवीतले ।।१२६
अपाम्भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तासु चाभवन् ।
पुष्पमूलफलिन्यस्तु ओषध्यस्ताः प्रजज्ञिरे ।।१२७
अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे ।। २८

खूब समझ कर खोज करते हुए का वैसा ही न्याय है जैसा कि वृक्ष में रहने वाली शाखाएँ होती हैं। उनके द्वारा की हुई शाखाएँ है इससे वे शालायें कहलाई गईं हैं ।।१२०।। इस प्रकार से शाखाओं से शालाऐं और गृह प्रसिद्ध हुए। इसी से वे शालाऐं कहलाई और उनमें वह शालत्व था ।।१२१।। उनमें मन प्रसन्न होता है और वे मन को प्रसाद युक्त करती भी है। इसी से गृह और शालाऐं प्रसाद संज्ञा से युक्त हुए हैं ।।१२२।। उन द्वन्द्वों के उपघातों को करके अर्थात् सुख-दुखादि स्वरूप जो बहुत से संसार में द्वन्द्व (जोड़े) हैं उनका निवारण करके अर्थात् गृहादि का निर्माण करके बचाव करके अब जीविका के उपाय के विषय में चिन्तन किया अर्थात् रोजी कैसे चले, यह विचार किया। उस समय मधु के साथ कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर भूखी-प्यासी प्रजा विषाद से व्याकुल हो उठी ।।१२३।। इसके अनन्तर उन प्रजाजनों को फिर त्रेता युग में वृत्ति की सिद्धि का प्रादुर्भाव हुआ। उनकी इच्छा से जीविका और अर्थ के साधन करने वाली अन्य वृत्ति भी प्रादुर्भूत हुई ।।१२४।। तब वृष्टि का जो जल था जो कि यहाँ पर निम्न स्थानों में चला गया था, वृष्टि से वह स्रोत हो

गया और जो खात अर्थात् गहराई वाले खुदे हुए थे, वे नदियाँ कहलाईं ॥॥१२५। इस तरह द्वितीय वृष्टि के सर्जन में नदियाँ प्रवृत्त हुईं। जो जलों के परे छोटी थी और पृथ्वी तल में प्राप्त हुई थी ॥१२६॥ भूमि और जल के संयोग से उनमें औषधियाँ सम्पन्न हुईं वे औषधियाँ फूल-मूल और फलों वाली उत्पन्न हुईं थी ॥१२७॥ जो हल से नहीं जोते गये हैं और बोये गये हैं ऐसे ग्राम के चौदह अरण्य थे जो कि ऋतु के पुष्प और फलों से युक्त वृक्षों को और गुल्मों को उत्पन्न करते थे ॥१२८॥

प्रादुर्भावश्च त्रेतायां वार्त्तायामौषधस्य तु।
तेनौषधेन वर्त्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे तदा ॥१२९
ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः।
अवश्यम्भावितार्थेन त्रेतायुगवशेन तु ॥१३०
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान्।
वृक्षान् गुल्मौषधीश्चैव प्रसह्यन्तु यथाबलम् ॥१३१
सिद्धात्मानस्तु ये पूर्वं व्याख्याता प्राकृते मया।
ब्रह्मणा मानवास्ते वै उत्पन्ना योजनादिह ॥१३२
शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव कर्मिणो दुःखिनस्तदा।
तत प्रवर्त्तमानास्ते त्रेतायां जज्ञिरे पुनः ॥१३३

त्रेता युग मे जीविका के कार्य मे औषध का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय त्रेता युग मे प्रजा उस औषध से अन्न भी रोगी चलाती थी ॥१२९॥ त्रेता युग में होने वाले अवश्यम्भावी अर्थ से फिर उन प्रजा-जनों मे सभी ओर से राग और लोभ युत हो गया था ॥१३०॥ इसके अनन्तर उन्होंने नदी के क्षेत्रों को और पर्वतों का परिग्रहण किया और बल के अनुसार वृक्षों और गुल्मौषधियों को प्रसहन किया। झाड़ी के रूप मे रहने वाली औषधि गुल्मौषधि कही जाती हैं ॥१३१॥ जो सिद्ध आत्मा वाले थ वे सब मैंने पहिले प्राकृत मे बता दिये अर्थात् उनकी भली-भाँति व्याख्या कर दी थी। यहाँ पर योजन से ब्रह्मा के द्वारा जो उत्पन्न हुए वे मानव थे ॥१३२॥ उस समय शान्त-शुष्मी कर्म करने वाले और दुःख मे युक्त इसके पश्चात् पुन प्रवर्त्तमान होते हुए त्रेता युग में उत्पन्न हुए ॥१३३॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा द्रोहिजनास्तथा ।
भाविताः पूर्वजातीषु कर्मभिश्च शुभाशुभैः ॥१३४
इतस्तेभ्यो बला ये तु सत्यशीला ह्यहिंसकाः ।
वीतलोभा जितात्मानो निवसन्ति स्म तेषु वै ॥१३५
प्रतिगृह्णन्ति कुर्वन्ति तेभ्यश्चान्येऽल्पतेजसः ।
एवं विप्रतिपन्नेषु प्रपन्नेषु परस्परम् ॥१३६
तेन दोषेण तेषां ता ओषध्यो मिषतां तदा ।
प्रणष्टा ह्रियमाणा वै मुष्टिभ्यां सिकता यथा ॥१३७
अग्रसद्भूर्युगबलाद्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
फलं गृह्णन्ति पुष्पैश्च पुष्पं पत्रैश्च याः पुनः ॥१३८
ततस्तासु प्रणष्टासु विभ्रान्तास्ताः प्रजास्तदा ।
स्वयम्भुवं प्रभुं जग्मुः क्षुधाविष्टाः प्रजापतिम् ॥१३९
वृत्त्यर्थमभि लिप्सन्त आदौ त्रेतायुगस्य तु ।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् ज्ञात्वा तासां मनीषितम् ॥१४०

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र और द्रोह करने वाले मनुष्य शुभ और अशुभ कर्मों से पूर्व जातियों में भावित होते हुए उत्पन्न हुए ॥१३४॥ यहाँ से जो उनसे बलवान् थे—सत्य के स्वभाव वाले थे—हिंसा का कर्म न करने वाले थे—अपनी आत्मा जीत लेने वाले और वीत-लोभ अर्थात् लोभ से रहित थे, वे उनमें निवास करते थे ॥१३५॥ उनसे अन्य अल्प तेज वाले प्रतिग्रहण करते हैं। इस प्रकार से आपस में विप्रतिपन्न और प्रपन्नों में रहते हैं ॥१३६॥ उन सबके उस दोष से वे सब औषधियाँ उस समय मुट्ठियों से सिकता की भाँति ह्रियमाण और प्रनष्ट हो गईं ॥१३७॥ भूमि ने सबका ग्रास कर लिया। युग के बल से चौदह जो ग्राम्य अरण्य थे वे पुष्पों से फल को और पत्रों से पुष्प को ग्रहण करते हैं ॥ ॥१३८॥ इसके पश्चात् उन सभी के प्रनष्ट हो जाने पर उस समय सब प्रजाजन विभ्रान्त होते हुए, भूख से आविष्ट होते हुए प्रजापति प्रभु स्वयम्भू के पास आये ॥१३९॥ त्रेता युग के आदि में जीविका के लिये इच्छा करते हुए उनको देखकर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ने उनके बुद्धि स्थित विचार को जान लिया था ॥१४०॥

युक्त प्रत्यक्षदृष्टेन दर्शनेन विचार्य च ।
ग्रस्ता पृथिव्या ओषध्यो ज्ञात्वा प्रत्यदुहत्पुन ॥१४१
कृत्वा वत्स सुमरु तु दुदोह पृथिवीमिमाम् ।
दुग्धेय गौस्तदा तेन बीजानि पृथिवीतले ॥१४२
जज्ञिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्यास्तु ता पुन ।
ओषध्य फलपाकान्ता सप्तसप्तदशास्तु ता ॥१४३
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिला ।
प्रियङ्गवो ह्युदाराश्च कारूपाश्च सतीनका ॥१४४
माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावा सकुलत्थका ।
आढकयश्चणकाश्चैव सप्तसप्तदशा स्मृता ॥१४५
इत्यता ओषधीना तु ग्राम्याणा जातय स्मृता ।
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥१४६

प्रत्यक्ष दृष्ट दर्शन स युक्त बात का विचार कर ब्रह्मा जी ने यह जान लिया कि पृथिवी न समस्त ओषधियों को ग्रस लिया है और उन्होंने पुन प्रति दोहन किया ॥१४१॥ ब्रह्माजी ने सुमरु पर्वत को बछड़ा बनाकर इस पृथ्वी का दोहन किया था । इससे उस समय दोहन की हुई यह गौ ने पृथ्वी तल में बीजों को उत्पन्न किया और उन बीजों ने पुन वे ग्राम्यारण्य उत्पन्न किय और सात सात दशा वाली ओषधियाँ जिनम फलों का अन्त तक पाक होता था उत्पन्न हुई । व्रीहि–यव–गोधूम–अणु–तिल–उदार प्रियङ्गु–कारूप–सतीनक–माष (उद)–मुद्ग (मूंग)–मसूर और कुलत्थ के सहित निष्पाव–आढकी–चणक ये सात सात दशा वाली कहे गये हैं ये सब उत्पन्न हुए ॥१४२॥१४३॥१४४॥१४५॥ ये सब ग्राम्य ओषधियों की जातियाँ बतलाई गई हैं । और जो याज्ञिय ओषधियाँ हैं वे ग्राम्यारण्य चौदह हैं ॥ ४६॥

व्रीहय सयवा माषा गोधूमा अणवस्तिला ।
प्रियगुसप्तमा ह्येते अष्टमी तु कुलत्थिका ॥१४७
श्यामाकास्त्वथ नीवारा जर्तिला सगवेधुका ।
कुरुविन्दा वेणुयवास्तथा मर्कटकाश्च ये ॥१४८

ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यस्तु चतुर्द्दश ।
उत्पन्नाः प्रथमा ह्येता आदौ त्रेतायुगस्य तु ।।१४६
अफालकृष्टा ओषध्यो ग्राम्यारण्यास्तु सर्वशः ।
वृक्षा गुल्मलतावल्लीवीरुधस्तृणजातयः ।।१५०
मूलैः फलैश्च रोहिण्यो गृह्णन् पुष्पैश्च जायते ।
पृथ्वी दुग्धा तु बीजानि यानि पूर्वं स्वयम्भुवा ।।१५१
ऋतुपुष्पफलास्ता वै ओषध्यो जज्ञिरे त्विह ।
यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ताः पुनः ।।१५२
ततः स तासां वृत्त्यर्थं वार्त्तोपायं चकार ह ।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान् दृष्ट्वा सिद्धिं तु कर्मजाम् ।।१५३
ततः प्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्या स्तु जज्ञिरे ।
संसिद्धायान्तु वार्त्तायान्ततस्तासां स्वयंभुवः ।
मर्यादाः स्थापयामास यथारब्धाः परस्परम् ।।१५४

ब्रीहि, यव, माष, गोधूम, अणु, तिल, सातवीं प्रियङ्गु और आठवीं कुलत्थिका–श्यामाक, नीवार, जत्तिला, सगवेधुका, कुरुविन्द, वेणुयव और मर्कट ये चौदह औषधियाँ ग्राम्यारण्य नाम से कही गई है ।। त्रेता युग के आदि में पहिले ये ही उत्पन्न हुई थीं ।।१४७।।१४८।।१४६।। हल की फाल से जो भूमि नहीं जुती हुई है, उसमें होने वाली ये औषधियाँ हैं और सब ओर ग्राम्यारण्य है जिनमें वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, विरुध और तृण की जाति वाली औषधियाँ होतीं हैं ।।१५०।। स्वयम्भू के द्वारा दुही हुई पृथ्वी ने जो बीज दिये उन सबके अङ्कुर उत्पन्न हुए और मूल-फल और पुष्पों से युक्त हुए उत्पन्न होते हैं ।।१५१।। अपनी ऋतु में फल और पुष्प प्रदान करने वाली औषधियाँ यहाँ उत्पन्न हुई । जब औषधियाँ प्रसृष्ट हो गईं तो फिर नहीं उगती है ।।१५२।। इसके अनन्तर उन्होंने उन प्रजाजनों की वृत्ति के लिये उपाय किये और भगवान् स्वयम्भू ब्रह्मा नें उनके कर्मों से उत्पन्न होने वाली सिद्धि को देखा ।।१५३।। तब से लेकर कृष्ट पच्या औषधियाँ उत्पन्न हुईं । इसके अनन्तर उन प्रजा के जनों की जीविका के भली-भाँति सिद्ध हो जाने पर भगवान् स्वयम्भू के द्वारा परस्पर में जैसे आरम्भ की गई थी वह मर्यादा स्थापित हो गई ।।१५४।।

य वै परिगृहीतारस्तासामा सन्विधात्मका ।
इतरपा कृतत्राणा स्थापयामास क्षत्रियान् ॥१५८
उपतिष्ठन्ति ये तान्वै यावन्तो निर्भयास्तथा ।
सत्य ब्रह्म यथा भूत ब्रुवन्तो ब्राह्मणाश्च ते ॥१५६
ये चान्येप्यबलास्तेषा वैश्यसकर्मसस्थिता ।
कीनाशा नाशयन्ति स्म पृथिव्या प्रागतन्द्रिता ।
वैश्यानेव तु तानाहु कीनाशान् वृत्तिसाधकान् ॥१५७
शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये रता ।
निस्तेजसाऽल्पवीर्याश्च शूद्रास्तानब्रवीत्तु स ॥१५८
तेषा कर्माणि धर्माश्च ब्रह्मा तु व्यदधात् प्रभु ।
सस्थितौ प्राकृतायां तु चातुर्वर्ण्यस्य सर्वश ॥१५६
पुन प्रजास्तु ता मोहात् तान् धर्मास्तानपालयन् ।
वर्ण धर्मैरजीवन्त्यो व्यरुध्यन्त परस्परम् ॥१६०
ब्रह्मा तमथ बुद्धा तु याथातथ्येन वै प्रभु ।
क्षत्रियाणा बल दण्ड युद्धमाजीवमादिशत् ॥१६१
याजनाध्यापन चैव तृतीय च परिग्रहम् ।
ब्राह्मणाना विभुस्तेषा कर्माण्येतान्यथादिशत् ॥१६२

उनके परिगृहीता विघात्मक थ । दूसरो के त्राण करने वाले क्षत्रियों की स्थापना की । उनका जो उपस्थान करते हैं व यथाभूत सत्य ब्रह्म को बोलने वाले ब्राह्मण थे जो कि निर्भय रहा करते थे अर्थात् क्षत्रियो के सरक्षण मे उन्हें किसी भी बाधा आदि का भय नहीं रहता था ॥१५६॥ उनमे जो भी अन्य बल रहित थे और वैश्य कर्मों म सस्थित थ पहिले पृथ्वी म अतन्द्रित का नाश कर देते थे। उन वृत्ति के साधक वैश्यो का कीनाश ही कहते हैं ॥१५७॥ शोच करते हुए—द्रव होते हुए जो परिचर्याओं मे निरत रहते है और जो तेज स हीन और अल्प वीर्य वाले हैं उन्हें वह शूद्र इस नाम से बोलता था ॥१५८॥ प्रभु ब्रह्माजी ने प्राकृत सस्थिति म सब ओर से चतुर्वर्ण के अनुसार उनके कर्मों की और धर्मों की व्यवस्था कर दी थी ॥१५६॥ फिर उन प्रजा के जनो ने मोह से उन धर्मों का पालन न करते हुए वे वर्णों के धर्मों के द्वारा जीविका

चलाते हुए परस्पर में विरोध करने वाले हो गये ।।१६०।। प्रभु ब्रह्माजी ने उस अर्थ को भली भाँति ठीक-ठीक समझ कर क्षत्रियों की जीविका बल, दण्ड और युद्ध करना बतलाया था ।।१६१।। यज्ञादि का यजन कराना, वेद और शास्त्रों का पढ़ाना तथा दान ग्रहण करना ये तीन कर्म उन ब्राह्मणों के विभु श्री ब्रह्मा जी ने बताये थे ।।१६२।।

पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं चैव विशां ददौ ।
शिल्पाजीवं भृतिञ्चैव शूद्राणां व्यदधात् प्रभुः ।।१६३
सामान्यानि तु कर्माणि ब्रह्मक्षत्रविशां पुनः ।
यजनाध्ययनं दानं सामान्यानि तु तेषु च ।।१६४
कर्माजीवं ततो दत्त्वा तेभ्यश्चैव परस्परम् ।
लोकान्तरेषु स्थानानि तेषां सिद्धयाऽददत् प्रभुः ।।१६५
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ।।१६६
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममुपजीविनाम् ।
गान्धर्वं शूद्रजातीनां प्रतिचारेण तिष्ठताम् ।।१६७
स्थानान्येतानि वर्णानां व्यस्याचारवतां स्वयम् ।
ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान् ।।१६८
गृहस्थो ब्रह्मचारित्वं वानप्रस्थं सभिक्षुकम् ।
आश्रमांश्चतुरो ह्येतान् पूर्वमास्थापयन् प्रभुः ।।१६९

पशुओं का पालन करना, व्यापार करना और कृषि का काम करना ये तीन कर्मों के करने की व्यवस्था ब्रह्माजी ने वैश्यों के लिये की और यही आदेश दिया। प्रभु ने दस्तकारी के द्वारा रोजी कमाना, नौकरी करना ये कर्म शूद्रों के करने के लिए बताये थे ।।१६३।। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के सामान्य कर्म स्वयं यजन करना, स्वयं अध्ययन करना और स्वयं दान देना था। ये तीनों कर्म उन तीनों में समान रूप से होते थे ।।१६४।। इस प्रकार से इन सबके कर्म और आजीविका की व्यवस्था करके और उन्हें परस्पर में यह देकर फिर प्रभु ने दूसरे लोकों में सिद्धि से उनके स्थानों को भी दिया था ।।१६५।। जो परम

क्रियावान् ब्राह्मण थे उनके लिये प्राजापत्य कहा गया है।" जो संग्रामों में कभी पीठ दिखाकर शत्रु के समक्ष से मर्यादित होकर पलायन नहीं किया करते थे, उन क्षत्रियों को इन्द्र सम्बन्धी स्थान दिया गया था ॥१६६॥ अपने धर्म के अनुसार उपजीवन करने वाले वैश्यों के लिए दूसरे लोक में वायु का स्थान दिया था। शूद्र प्रतिचार से सेवावृत्ति करते हुए यहाँ लोक में रहते थे उन शूद्रों की जाति वाले पुरुषों के लिए दूसरे लोक में गन्धर्वों का स्थान दिया था ॥१६७॥ विशेष रूप से अत्यन्त आचार के पालन करने वाले उन वर्णों के लिये स्वयं ये स्थान देकर फिर उन वर्णों के स्थित लोगों में चार आश्रमों की स्थापना की थी ॥१६८॥ प्रभु ब्रह्माजी ने गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों की पहिले ही स्थापना की थी ॥१६९॥

वर्णकर्माणि ये केचित्तेषामिह न कुर्वते ।
कृत कर्मा क्षिति प्राहुराश्रमस्थानवासिनः ॥१७०
ब्रह्मा तान् स्थापयामास आश्रमान्नामनामत ।
निर्देशार्थं ततस्तेषां ब्रह्मा धर्मान् प्रभाषत ।
प्रस्थानानि च तथा वै यमाश्च नियमाश्च ह ॥१७१
चातुर्वर्ण्यात्मक पूर्वं गृहस्थश्चाश्रम स्मृत ।
त्रयाणामाश्रमाणाञ्च प्रतिष्ठायोनिरेव च ।
यथाक्रम प्रवक्ष्यामि यमैश्च नियमैश्च ते ॥१७२
दाराग्नयोऽथातिथेय इज्याश्राद्धक्रिया प्रजा ।
इत्येष वै गृहस्थस्य समासाद्धमसग्रह ॥१७३
दण्डी च मेखली चव ह्यध शायी तथा जटी ।
गुरुशुश्रूषण भक्ष विद्यार्थं ब्रह्मचारिण ॥१७४
चीरपत्राजिनानि स्युर्धान्यमूलफलौषधम् ।
उभे सन्ध्येऽवगाहश्च होमश्चारण्य वासिनाम् ॥१७५

जो भी कोई इस संसार में वर्णों के कर्मों को नहीं करता है उसे आश्रम स्थान के निवास करने वाले 'कर्मक्षिति' क्यों कहते हैं ॥ १७० ॥ ब्रह्माजी ने उन आश्रमों का नाम से स्थापन किया था। इसके पश्चात् उनके निर्देश के

D

लिये ब्रह्माजी ने स्वयं उन धर्मो का बतलाया था, और प्रस्थान तथा उनके नियम और यम भी ब्रह्मा जी ने बताये थे ॥ १७१ ॥ यह एक ही गृहस्थ का आश्रम ऐसा है जो चारों वर्णो के स्वरूप वाला पहिले कहा गया है। यह गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों की प्रतिष्ठा का उद्‌भव स्थान ही होता है। अब यहाँ क्रम के अनुसार ही उनका यम तथा नियमों के साथ वर्णन करता हूँ ॥ १७२ ॥ पत्नी का वैदिक विधि से ग्रहण करना. अग्नियों को आहित रखना, घर में समागत अतिथियों के लिये श्रद्धाभाव से अतिथि-सत्कार करना, यजन करना, श्राद्धादि की क्रिया का करना और प्रजा को जन्म देना अर्थात् सन्तान उत्पन्न करना, ये ही संक्षेप से गृहस्थों के धर्मो का संग्रह किया है ॥ १७३ ॥ अब ब्रह्मचर्य आश्रम का धर्म बतलाया जाता है—दण्ड का धारण करना, मौञ्जी मेखला का पहिनना, भूमि में शयन करना, शिर पर जटा धारण करना, गुरु की सेवा करना और भिक्षा करना, ये सब ब्रह्मचारी के धर्म होते हैं ॥ १७४ ॥ अरण्य में निवास करने वालों के चीरपत्र और अजिन अर्थात् मृगचर्म वस्त्र होते हैं। धान्य, मूल, फल और औषध, आहार दोनों समय सन्ध्योपासना करना और स्नान करना आदि धर्म होते हैं ॥ १७५ ॥

आसन्नमुसले भैक्षमस्तेयं शौचमेव च।
अप्रमादोऽव्यवायश्च दया भूतेषु च क्षमा ॥१७६
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा सत्यञ्च दशमं स्मृतम्।
दशलक्षणिको ह्येष धर्मः प्रोक्तः स्वयम्भुवा ॥१७७
भिक्षोर्व्रतानि पञ्चात्र पञ्चैवोपव्रतानि च।
आचारशुद्धिर्नियमः शौचञ्च प्रतिकर्म च।
सम्यग्दर्शनमित्येवं पञ्चैवोपव्रतान्यपि ॥१७८
ध्यानं समाधिर्मनसेन्द्रियाणां ससागरैर्भैक्षमथोपगम्य।
मौनं पवित्रोपचितैर्विमुक्तिः परिव्रजो धर्ममिमं वदन्ति ॥१७९
सर्वे ते श्रेयसे प्रोक्तो आश्रमा ब्रह्मणा स्वयम्।
सत्यार्जवन्तपः क्षान्तिर्योगेज्या दमपूर्विका ॥१८०
वेदाः साङ्गाश्च यज्ञाश्च व्रतानि नियमाश्च ये।
न सिद्ध्यन्ति प्रदुष्टस्य भावदोष उपागते ॥१८१

यदि कर्माणि सर्वाणि प्रसिद्ध्यन्ति वदान न ।
अन्तर्भावप्रदुष्टस्य कुर्वतोऽपि पराक्रमान् ॥१८२

आसन्नमुमल म भिक्षा करना, चोरी न करना, शुद्धि रखना, प्रमाद न करना तथा स्त्री-गमन न करना प्राणियों में दया करना तथा क्षमा रखना, क्रोध न करना, गुरु की सेवा करना और सत्य ये दश नियम एवं धर्म होते हैं। स्वयम्भू भगवान् ने यह दस लक्षण वाला धर्म बताया है ॥ १७६-१७७ ॥ भिक्षु अर्थात् संन्यासी के पाँच तो यहाँ व्रत होते हैं और पाँच ही उपव्रत होते हैं। आचारों की शुद्धि नियम है और शौच का होना प्रतिकर्म होता है और सम्यक् दर्शन इस प्रकार से पाँच ही उपव्रत भी होते हैं ॥ १ ८ ॥ मन में इन्द्रियों का ध्यान समाधि, सागर के सहित भिक्षा प्राप्त करके मौन, पवित्र उपचिनों से विमुक्ति प्राप्त करना यही पारिव्राज धर्म कहते हैं । १७६ ॥ ये सब भैक्षय ब्रह्माजी ने स्वयं ही कल्याण के लिये कहे हैं। सत्य, आर्जव, तप, क्षान्ति, योग दया और दम अङ्गों के सहित वेद, यज्ञ व्रत और नियम ये सब भावदोषों के उपागत होने पर प्रदुष्ट के कभी सिद्ध नहीं होते हैं ॥ १८१ ॥ जिसका अन्तर्भाव प्रदुष्ट दाव से युक्त होता है उसके पराक्रम करने हुये भी वाञ्छित से समस्त कर्म कभी प्रसिद्ध नहीं होते हैं अर्थात् केवल दिखावे के कर्मों से कोई अभीष्ट सिद्धि नहीं होता है ॥ १८२ ॥

सर्वस्वमपि यो दद्यात् कलुषेणान्तरात्मना ।
न तेन धर्मभाक् स स्याद्भाव एवात्र कारणम् ॥१८३
एव देवा सपितर ऋषयो मनवस्तथा ।
तथा स्थानममुष्मिंस्तु सस्थितानां प्रचक्षते ॥१८४
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृतं तु तेषां तत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥१८५
सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्मृतन्तद्वै दिवौकसाम् ।
प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षयः ।
योगिनाममृतं स्थानं नानाधीनां न विद्यते ॥१८६
स्थानान्याश्रमिणां तानि ये स्वधर्मे व्यवस्थिता ।
चत्वार एते पन्थानो देवयाना विनिर्मिता ॥१८७

ब्रह्मणा लोकतन्त्रेण आद्ये मन्वन्तरे भुवि ।
पन्थानो देवयानाय तेषां द्वारं रविः स्मृतः ॥१८८
तथैव पितृयाणानां चन्द्रमा द्वारमुच्यते ।
एवं वर्णाश्रमाणां वै प्रविभागे कृते तदा ।
यदास्य न व्यवर्त्तन्त प्रजा वर्णाश्रमात्मिकाः ॥१८९

चाहे कोई अपनी कलुषित आत्मा से अपना सर्वस्व भी क्यों न दे देवे, उस दिये दान से वह कभी भी धर्म का भागी नहीं हो सकता है क्योंकि इस दान आदि के कर्म में भाव ही मुख्य कारण होता है ॥ १८३ ॥ इस प्रकार से पितर-ऋषिगण और मनुवृन्द इस लोक में सस्थित होने वाले उनका स्थान बतलाया जाता है ॥ १८४ ॥ ऊर्द्ध्वरेतस ऋषियों की संख्या अठ्ठासी हजार है उनका वह स्थान है, वही गुरुवासी सप्तर्षियों का स्थान है और वही दिवौकस अर्थात् देवताओं का स्थान कहा गया है। गृहस्थों का प्राजापत्य न्यास करने वालों के ब्रह्मा का क्षय और योगियों का अमृत स्थान है और जो नाना धी वाले हैं उनका कोई नहीं है ॥ १८५–१८६ ॥ जो अपने-अपने धर्म में व्यवस्थित रहते हैं उन्हीं आश्रमों में रहने वालों के स्थान होते हैं। ये चार मार्ग देवयान बनाये गये हैं ॥ १८७ ॥ भूमण्डल पर आद्य मन्वन्तर में लोकतन्त्र ब्रह्माजी के द्वारा देवयान के लिये मार्ग बनाये गये हैं और उनका द्वार रवि कहा गया है ॥१८८॥ उसी प्रकार से पितृयान वालों का द्वार चन्द्रमा कहा जाता है। इस प्रकार से उस समय में वर्णों और आश्रमों का प्रविभाग करने पर जब इसकी प्रजा वर्णाश्रम के स्वरूप वाली व्यवहार नहीं करती है ॥ १८९ ॥

ततोऽन्या मानसीः सोऽथ त्रेतामध्ये ऽसृजत् प्रजाः ।
आत्मनः स्वशरीराच्च तुल्याश्चैवात्मना तु वै ॥१९०
तस्मिंस्त्रेतायुगे त्वाद्ये मध्यं प्राप्ते क्रमेण तु ।
ततोऽन्या मानसीस्तत्र प्रजाः स्रष्टुं प्रचक्रमे ॥१९१
ततः सत्त्वरजोद्रिक्ताः प्रजाः सोऽथासृजत् प्रभुः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां वार्ताथाश्चैव साधिकाः ॥१९२
देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा ।
युगानुरूपा धर्मेण यैरिमा विचिताः प्रजाः ॥१९३

उपस्थिने तदा तस्मिन् प्रजाधर्मे स्वयम्भुव ।
अर्भि दध्यौ प्रजा सर्वा नानारूपास्तु मानसाः ॥१६४
पूर्वोक्ता या मया तुभ्यञ्जनलोक समाश्रिता ।
कल्पऽतीते तु त ह्यासन् देवाद्यास्तु प्रजा इह ॥१६५
ध्यायतस्तस्य ता सर्वा सम्भूत्यथमुपस्थिता ।
मन्वन्तरक्रमेणेह कनिष्ठे प्रथमे मता ॥१६६
ख्यात्यानुबन्धैस्तैस्तैस्तु सर्वार्थैरिह भाविता ।
कुशलाकुशलप्रायै कर्मभिस्तै सदा प्रजाः ।
तत्कर्मफलशेषेण उपष्टब्धा प्रजज्ञिरे ॥१६७
देवासुरपितृत्वैश्च पशुपक्षिसरीसृपै ।
वृक्षनारकिकीटत्वै स्तैस्तैर्भावैरुपस्थिताः ।
आधीनार्थं प्रजानाञ्च आत्मनो वै विनिर्ममे ॥१६८

इसके अनन्तर उन्होंने त्रेता के मध्य में अन्य मानसी प्रजा की सृष्टि की थी। जो अपने से, अपने शरीर से और अपनी आत्मा से तुल्य ही थे ॥१९०॥ उस आद्य त्रेता युग मे क्रम से मध्य को प्राप्त होने पर इसके अनन्तर अन्द वहाँ पर मानसी प्रजा के सृजन का उपक्रम किया था। १९१ ॥ इसके पश्चात् उस प्रभु ने सत्व और रजोगुण के उद्रेक वाली प्रजा का सृजन किया जो कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की तथा आजीविका की साधिका थी ॥ १९२ ॥ देवगण, पितृवृन्द, ऋषि समुदाय और मनुगण ये सब धर्म से युग के अनुरूप ही थे जिन्होंने इस सम्पूर्ण प्रजा को विचित किया है ॥ १९३ ॥ उस समय में स्वयम्भू के उस प्रजा धर्म मे उपस्थित होने पर वह नाना रूप वाला मानसी समस्त प्रजा ने अभिध्यान किया ॥ १९४ ॥ मैंने पहिले तुम से जो जनलोक मे आश्रित रहने वाली बताई थी कल्प के व्यतीत हो जाने पर वह देवाद्या प्रजा यहाँ थी ॥ १९५ ॥ सम्भूति के लिये उपस्थित उस समस्त प्रजा का ध्यान करते हुये उसके यहाँ मन्वन्तर के क्रम से प्रथम कनिष्ठ मे मान गये ॥ १९६ ॥ ख्याति से और सब अर्थों वाले उन-उन अनुबन्धों से भावित प्रजा सर्वदा उन कुशल और अकुशल कर्मों से तथा उन कर्मों के शेष फल से उपलब्ध होती हुई उत्पन्न

हुईं ॥ १६७ ॥ देव, असुर, पितृत्व, पशु, पक्षी, सरीसृप, वृक्ष, नारकिकीटत्व आदि भावों के द्वारा उपस्थित अपने आधीनता के लिये प्रजाओं का निर्माण किया ॥ १६८ ॥

॥ देव-सृष्टि वर्णन ॥

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसीप्रजाः ॥
तच्छरीरसमुत्पन्नै कार्यैस्तैः कारणैः सह ।
क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्त गात्रेभ्य स्तस्य धीमतः ॥१
ततो देवासुरपितॄन् मानवञ्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भांस्येतांश्च स्वात्मना समयूयुजत् ॥२
युक्तात्मनस्ततस्तस्य ततो मात्रा स्वयम्भुवः ।
तमिमध्यायतः सर्ग प्रयत्नोऽभूत् प्रजापतेः ॥३
ततोऽस्य जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः ।
असुः प्राणः स्मृतो विप्रास्तज्जन्मान स्ततोऽसुराः ॥४
यया सृष्टाः सुरा‚स्तन्वा तां तनु स व्यपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ॥५
सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिस्त्रि यामिका ।
आवृतास्तमसा रात्री प्रजास्तस्मात् स्वयम्भुवः ॥६
दृष्ट्वा सुरांस्तु देवेशस्तनुमन्यामपद्यत ।
अव्यक्तां सत्वबहुलां ततस्तां सोऽभ्ययु युजत् ।
ततस्तां युञ्जतस्यस्य प्रियमासीत् प्रभोः किल ॥७

श्री सूत जी ने कहा—इसके अनन्तर अभिध्यान करने वाले उनके उन कारणों के साथ उनके शरीर से समुत्पन्न कार्य्यों से मानसी प्रजा को जन्माया। उस धीमान के गात्रों से क्षेत्रज्ञ हुये ॥ १ ॥ इसके पश्चात् देव, असुर, पितर और चौथा मान की सृष्टि करने की इच्छा वाले ने अपनी आत्मा से इनको और जलों को संयोजित कर दिया था ॥ २ ॥ इसके बाद स्वयम्भू के जन्म-दाता युक्तात्मा उसके उस सर्ग का अभिध्यान करते हुये प्रजापति का प्रयत्न हुआ ॥३॥ इसके अनन्तर उसकी जाँघ से पहिले असुर पुत्र उत्पन्न हुये। असुः—यह प्राण

कहा गाया है। उसके जन्म देने वाले विप्र हैं। इससे असुर हुये ॥ ४ ॥ जिस शरीर से सुरों का सृजन किया था वह तनु उसने व्यपोहित कर दिया। उससे वह तनु अर्थात् शरीर अपविद्ध हो गया इससे तुरन्त ही रात्रि उत्पन्न हुई ॥ ५ ॥ वह विशेष तम वाली थी इससे वह तीन याम वाली रात्रि हुई। इसमें स्वयम्भू की समस्त प्रजा रात्रि मे अन्धकार से एकदम आवृत्त हो गई थी ॥ ६ ॥ देवेश ने सुरों को देखकर अन्य तनु को प्राप्त किया जो कि अव्यक्त और सत्व की प्रचुरता वाली थी। इसके पश्चात् उसने उसको योजित कर दिया था। उसको योजित करने वाले प्रभु का वह बहुत ही प्रिय था ॥ ७ ॥

ततो मुखे समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवता ।
यतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेन देवा प्रकीर्तिता ॥८
धातुर्द्दिवीति य प्रोक्त क्रीडाया स विभाव्यते ।
तस्यान्तन्वान्तु दिव्याया जज्ञिरे तेन देवता ॥९
देवान् सृष्ट्वाथ देवेशस्तनुमन्या मपद्यत ।
सत्वमात्रात्मिका देवस्ततोऽन्या सोऽभ्यपद्यत ॥१०
पितृवन्मन्यमानस्तान् पुत्रान् प्राध्यायत प्रभु ।
पितरो ह्युपपक्षाभ्या रात्र्यह्नोरन्तरामृजत् ।
तस्मात्ते पितरो देवा पुत्रत्वन्तन तेपु तत् ॥११
यया सृष्टास्तु पितरस्तान्तनु स व्यपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तन सद्य सन्ध्या प्रजायत ॥१२
तस्मादहस्तु देवाना रात्रिर्या साऽसुरी स्मृता ।
तयोर्मध्ये तु वै पैत्री या तनुः सा गरीयसी ॥१३
तस्माद्देवासुरा सर्वे ऋपयो मनवस्तथा ।
ते युक्तास्तामुपासन्ते ब्रह्मणो मध्यमान्तनुम् ॥१४

दीव्यमान उसके मुख से फिर देवगण उत्पन्न हुये क्योंकि ये दीव्यमान होते हुये ही उत्पन्न हुये थे इसीलिए ये देवता कहे गये थे ॥ ८ ॥ 'दिवु'—यह धातु जो कहा गया है वह क्रीडा के अर्थ मे होता है। उस दीव्यमान तनु मे देवता उत्पन्न हुये थे ॥ ९ ॥ फिर देवेश ने देवों का सृजन करके उसके पश्चात्

उसने अन्य शरीर धारण किया। उस देव ने सत्वमात्र के स्वरूप वाले अन्य शरीर को प्राप्त किया था ॥ १० ॥ उस प्रभु ने उन पुत्रों को पिता की भाँति मानते हुये पढ़ाया। वे उपपक्षों से पितर थे फिर प्रभु ने रात्रि और दिन के अन्तर भाग का सृजन किया था। इसी से वे देव पितर हुये क्योंकि उनमें उनका पुत्रत्व भाव था ॥ ११ ॥ जिस तनू से पितरों की सृष्टि की थी उस शरीर का उसने त्यागकर दिया। वह शरीर उससे अपविद्ध हो गया था फिर उससे तुरन्त ही सन्ध्या उत्पन्न हो गई थी ॥ १२ ॥ उससे देवों का दिन हुआ जोकि असुरों की रात्रि कही गई है। उन दोनों के मध्य में जो ऐन्द्री तनू था वह बहुत ही गौरव से पूर्ण था ॥ १३ ॥ उससे सब देव, असुर ऋषि और मनु युक्त होते हुए ब्रह्मा के उस मध्यम शरीर की उपासना करते हैं ॥ १४ ॥

ततोऽन्यां स पुनर्ब्रह्मा तनुं वै प्रत्यपद्यत ।
रजोमात्रात्मिकायान्तु मनसा सोऽसृजत् प्रभुः ॥१५
रजः प्रायात् ततः सोऽथ मानसानसृजत् सुतान् ।
मनसस्तु ततस्तस्य मानसा जज्ञिरे प्रजाः ॥१६
दृष्ट्वा पुनः प्रजाश्चापि स्वान्तनुन्ता मपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तेन ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत ॥१७
तस्माद्भवन्ति संहृष्टा ज्योत्स्नाया उद्भवे प्रजाः ।
इत्येतास्तनवस्तेन व्यपविद्धा महात्मना ॥१८
सद्यो राज्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे ।
ज्योत्स्ना सन्ध्या तथाहश्च सत्त्वमात्रात्मकं स्वयम् ।
तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात्रियामिका ॥१९
तस्माद्देवा दिव्यतन्वा हृष्टाः सृष्टा मुखात्तु वै ।
यस्मात्तेषां दिवा जन्म बलिनस्तेन ते दिवा ॥२०
तन्वा यदसुरान् रात्रौ जघनादसृजत् प्रभुः ।
प्राणेभ्यो रात्रिजन्मानो ह्यसह्या निशि तेन ते ॥२१

इसके अनन्तर उस ब्रह्मा ने फिर एक अन्य शरीर प्राप्त किया था। वह शरीर रजोगुण के स्वरूप वाला था और उसे उस प्रभु ने मन से सृजन किया

था ॥१५॥ इसके अनन्तर उस रजोगुण की बहुलता वाले उस शरीर से मानस पुत्रों का सृजन किया था। फिर उसके मन से मानस प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ उस अपनी मानस प्रजा देखकर उसने अपने शरीर का त्याग कर दिया क्योंकि वह तनु उससे अपविद्ध होगया था फिर उससे तुरन्त ही ज्योत्स्ना उत्पन्न हो गई थी ॥१७॥ उससे ज्योत्स्ना के जन्म होने पर समस्त प्रजा अत्यन्त ही प्रसन्न हुई। उस महापुरुष ने इस तरह इतने ये शरीर विशेष रूप से अपविद्ध किये थे ॥१८॥ फिर तुरन्त ही रात्रि, दिन, सन्ध्या ज्योत्स्ना (चाँदनी) उत्पन्न हुए। ज्योत्स्ना, सन्ध्या और दिन सत्व मात्र स्वरूप वाले स्वयं ही थे। रात्रि तमो मात्र स्वरूप वाली थी और वह तीन याम (प्रहर) के स्वरूप वाली थी ॥ १९ ॥ इससे दिव्य सत्व वाले देव परम हृष्ट और मुख से सृष्ट हुए थे। क्योंकि उनका दिवा मे जन्म हुआ इसलिये वे दिवा के ही बलि-ग्रहण करने वाले हैं ॥२०॥ जो असुर रात्रि मे शरीर की जाँघ से प्रभु ने उत्पन्न किये थे वे प्राणों से रात्रि के जन्म ग्रहण करने वाले हैं इसी से वे रात्रि मे असह्य होते हैं ॥ २१ ॥

एतान्येव भविष्याणां देवानामसुरैः सह।
पितृणां मानवानाञ्च अतीतानागतेषु वै।
मन्वन्तरेषु सर्वेषां निमित्तानि भवन्ति हि ॥२२
ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्याभासितानि वै।
भान्ति यस्मात्ततो भासि भाशब्दोऽयं मनीषिभिः।
व्याप्तिदीप्त्या निगदितं पुनश्चाह प्रजापतिः ॥२३
सोऽम्भास्येतानि दृष्ट्वा तु देवदानवमानवान्।
पितृंश्च वामृजत्सोऽन्यानात्मनो विबुधान् पुनः ॥२४
तामुत्सृज्य तनुं कृत्स्नान्ततोऽन्यामसृजत् प्रभुः।
मूर्ति रजस्तमःप्राया पुनरेवाभ्ययूयुजत् ॥२५
अन्धकारे क्षुधाविष्ट स्ततोऽन्या सृजते पुनः।
तेन सृष्टा. क्षुधात्मानस्तेऽम्भास्यादातुमुद्यता ॥२६
अम्भास्येतानि रक्षाम उक्तवन्तश्च तेषु च।

राक्षसास्ते स्मृता लोके क्रोधात्मानो निशाचराः ।।२७
येऽब्रुवन् क्षिणुमोऽम्भांसि तेषां हृष्टाः परस्परम् ।
तेन ते कर्मणा यक्षा गुह्यकाः क्रूरकर्मिणः ।।२८

ये ही भविष्य में होने वाले देवों के असुरों के साथ, पितरों के और अतीत तथा अनागत मानवों के सबबों के मन्वन्तरों में निमित्त होते हैं ।। २२ ।। ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन और सन्ध्या ये चार आभासित हैं । जिस कारण से ये भा-युक्त होते हैं इसी से इनका 'भा" यह शब्द मनीषियों ने व्याप्ति और दीप्ति इन दोनों के कारण से कहा है और फिर प्रजापति ने भी कहा है ।।२३।। उसने इन जलों को देखकर तथा देव, दानव, मानव और पितरों को देखकर उसने आत्मा से फिर अन्य देवों को सृजित किया ।। २४ ।। प्रभु ने उस अपने सम्पूर्ण शरीर को उत्कृत करके फिर अन्य शरीर का सृजन किया और फिर रजोगुण और तमोगुण की बहुलता वाले शरीर को अभियोजित किया था ।। २५ ।। उस अन्धकार में क्षुधा से आविष्ट होते हुए उसने फिर अन्य तनू का सृजन किया । उससे सृजित हुए क्षुधात्मा के अम्भों को लेने के लिये उद्यत हो गये थे ।।२६।। हम इन जलों की रक्षा करते हैं इस प्रकार से कहे गये वे उनमें राक्षस कहलाये थे जोकि लोक में क्रोधात्मा निशाचर थे ।।२७। जिन्होंने उनमें परस्पर में परम प्रसन्न होते हुए यह कहा कि हम इन जलों को क्षीण करते हैं । इस कर्म से यक्ष और क्रूर कर्म करने वाले गुह्यक हुए ।। २८ ।।

रक्षणे पालने चापि धातुरेष विभाव्यते ।
य एष क्षितिधातुर्बै क्षयणे सन्निरुच्यते ।।२९
तान्हष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्यंत धीमतः ।
शीतोष्णाच्चोच्छ्रिता ह्यूर्द्धं तदारोहन्त तं प्रभुम् ।।३०
हीना मच्छिरसो व्याला यस्माच्चैवापसर्पिताः ।
व्यालात्मानः स्मृता व्यालाद्धीनत्वादहयः स्मृताः ।।३१
पन्नत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवापसर्पिणः ।
तेषां पृथिव्यां निलयाः सूर्यचन्द्रमसोरधः ।।३२
तस्य क्रोधोद्भवो योऽसावग्निगर्भस्सुदारुणः ।

स तु सर्पसहोत्पन्नानाविवेश विषात्मिकान् ॥३३
सर्पान् दृष्ट्वा तत. क्रोधात् क्रोधात्मानो विनिर्ममे ।
वर्णेन कपिशेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशना ॥३४
भूतत्वात्ते स्मृता भूता पिशाचा· पिशिताशनात् ।
वयतो गास्तन्मस्य गन्धर्वा जज्ञिरे तदा ॥३५
ध्यायतीत्येष धातुर्वै यानार्थे परिपठ्यते ।
पिवतो जज्ञिरे गास्तु गन्धर्वास्तेन ते स्मृता ॥३६

यह धातु-रक्षण और पालन के अर्थ में विभावित होता है। जो यह क्षिति धातु है वह क्षपण में कही जाती है ॥२९॥ अपिच उसने उनको देखा कि धीमान् उसके केश विशीर्ण हो गये थे और शीत और उष्णता से ऊर्द्ध्व की ओर उद्विग्न होते हुए उस प्रभु का आरोहण किया ॥ ३० ॥ मेरे शिर से हीन व्याल अपसर्पित हो गये इससे व्याल कहे गये और व्याल से हीनता होने के कारण से अहि कहलाये गये हैं ॥३१॥ पन्नत्व होने से ये पन्नग कहे गये और अपसर्पण करने वाले होने के कारण सर्प कहलाये गये हैं। उनका सूर्य और चन्द्रमा के अधोभाग मे पृथिवी म निलय है ॥३२॥ उसके क्रोध से उत्पन्न होने वाला जो यह अग्नि गर्भ है वह बहुत ही सुदारुण है और वह सर्पों के साथ उत्पन्न विषात्मको में आविष्ट हो गया ॥३३॥ इसके अनन्तर सर्पों को देखकर क्रोध से क्रोधात्माओ का निर्माण किया वे कपिश वर्ण से उग्र माँस को खाने वाले भूत हुए ॥३४॥ भूतत्व होने से वे भूत कहे गये और पिशित (माँस) का अशन (भोजन) करने से पिशाच कहलाये गये है। वय से गा और उसके पश्चात् उस समय उसके गन्धर्व उत्पन्न हुये ॥३५॥ "ध्यायति"—यह धातु यात्रा के अर्थ मे परिपठित की जाती है। पीते हुए गा के उत्पन्न हुए थे इसलिये वे गन्धर्व कहे गये हैं ॥३६॥

अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभु ।
तत स्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वय सोऽसृजत् ॥३७
छादनस्तानि छन्दांसि वयसोऽपि वयांस्यपि ।
पक्ष्मान् दृष्ट्वा तु देवो वैऽसृजत्पक्षिगणानपि ॥३८

मुखतोऽजान् ससर्ज्जाथ वक्षसश्च वयोऽसृजत् ।
गाश्चैवाथोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्याञ्च विनिर्ममे ॥३६
पद्भ्याञ्चाश्वान् समातङ्गान् शरभान् गवयान् मृगान् ।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव ताश्चान्याश्चैव जातयः ॥४०
ओषध्यः फलमूलानि रोमतस्तस्य जज्ञिरे ।
एवं पश्वोषधीः सृष्ट्वा न्ययुञ्जत्सोऽध्वरे प्रभुः ॥४१
तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा ।
गौरजः पुरुषो मेदो ह्यश्वोऽश्वतरगर्द्दभौ ।
एतान् ग्राम्यान् पशूनाहुरारण्यांश्च निबोधत ॥४२
श्वापदा द्विखुरोहस्ती वानरः पक्षिपश्चमाः ।
उन्दकाः पशवः सृष्टाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ॥४३

इन आठ देव-योनियों की सृष्टि कर लेने पर उस प्रभु ने इसके अनन्तर स्वच्छन्दता से वय से अन्य पशु-पक्षियों का सृजन किया ।।३७।। छाग से उन छन्दों को वय से भी वयों को सृजा तथा देव ने शून्यों को देखकर पक्षियों के समुदाय का भी सृजन किया था ।।३८।। मुख से अजों का उत्पन्न किया, वक्षःस्थल से वय का सृजन किया तथा ब्रह्माजी ने उदर से और पार्श्वों से गा का सृजन किया था ।।३९।। पैरों से घोड़ों को, मातङ्गों को, शरभों को, गवयों को, मृगों को, उष्ट्रों को और अश्वतरों को तथा इनकी अन्य जाति वालों का निर्माण किया ।।४०।। औषधियाँ, फल और मूल उसके रोम से उत्पन्न हुए। इस तरह से पशु-औषधियों का सृजन करके उस प्रभु ने अध्वर में नियोजन किया था ।।४१।। इससे आदि में कल्प के त्रेतायुग में मुख गौ, अज, पुरुष, मेष, अश्व, अश्वतर और गर्दभ—इनको ग्राम्य पशु कहते हैं। अब आगे अरण्य पशुओं को समझ लो ।।४२।। श्वापद, द्विखुर, हाथी, बन्दर, पक्षी पञ्चम, उन्दक, पशु और सप्तम सरीसृपों सृजन किया ।।४३।।

गायत्रं वरुणञ्चैव त्रिवृत्सौम्यं रथन्तरम् ।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥४४
छन्दांसि त्रैष्टुभङ्कर्म स्तोमं पञ्चदशन्तथा ।

बृहत्साममथोक्थञ्च दक्षिणात्सोऽसृजन्मुखात् ॥४५
सामानि जगतीच्छन्दस्तोमं पञ्चदशन्तथा ।
वैरूप्यमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात् ॥४६
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥४७
विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
वयांसि च ससर्ज्जादौ कल्पस्य भगवान् प्रभुः ॥४८
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सजतो हि प्रजापतेः ॥४९
सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरपितॄन् प्रजाः ।
तत सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥५०

गायत्र, ऋक्, त्रिवृ सोम्य, रथन्तर और अग्निष्टोम यज्ञों को प्रथम मुख से निर्माण किया था। ब्रह्माजी के चार मुखों में जो प्रथम था उससे उक्त प्राणियों की उत्पत्ति की थी ॥ ४४ ॥ त्रैष्टुभ, कम, स्तोम, पञ्चदश, बृहत्साम उक्थछन्दों को दक्षिण मुख से सृजन किया था ॥४५॥ साम, जगती छन्दोस्तोम, पञ्चदश, वैरूप्य अतिरात्र को पश्चिम मुख से सृजा था ॥ ४६ ॥ एकविंश, अथर्वाण, आप्तोर्यामाण, अनुष्टुभ और सवैराज को ब्रह्माजी ने अपने उत्तर के मुख से सृष्ट किया था ॥ ४७ ॥ विद्युत, अशनि (वज्र), मेघ, रोहित, इन्द्र धनुष और कल्प की अवस्था को भगवान् प्रभु ने आदि में सृजा था ॥ ४८ ॥ उच्चावच भूत उनके गात्रों अर्थात् शरीराङ्गों से उत्पन्न हुए जबकि प्रजापति ब्रह्माजी प्रजा के सर्ग का सृजन कार्य कर रहे थे ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर पहिले देव, असुर, पितर आदि चार प्रकार की प्रजा की सृष्टि करके इसके पश्चात् भूत, स्थावर और चरों का सृजन करते हैं ॥५०॥

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वान् तथैवाप्सरसाङ्गणान् ।
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ॥५१
अव्ययञ्च व्ययं चैव यदिदं स्थाणु जङ्गमम् ।
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्या प्रतिपेदिरे ।

तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ।।५२
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ।।५३
महाभूतेषु नानात्व मिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।
विनियोगञ्च भूतानां धातैव व्यदधात् स्वयम् ।।५४
केचित् पुरुषकारन्तु प्राहुः कर्म च मानवाः ।
दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं दैवचिन्तकाः ।।५५
पौरुष कर्म दैवञ्च फलवृत्तिस्वभावतः ।
न चैकं न पृथग्भावमधिकं न तयोर्विदुः ।
एतदेवञ्च नैकञ्च न चोभे न च वाप्युभे ।।५६
कर्मस्थान् विषयान् ब्रूयुः सत्वस्थाः समदर्शिनः ।
नामरूपञ्च भूतानां कृतानाञ्च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ।।५७

यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओं का समुदाय, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, मृग, उरग, अव्यय, व्यय, स्थाणु और जङ्गम का सृजन किया। इनमें जिन्होंने जो कर्म पहिले सृष्टि में प्राप्त किये थे वे पुनः-पुनः सृज्यमान होते हुए भी उन्हीं को प्राप्त होते हैं ।।५१–५२।। हिंसा की वृत्ति वाले तथा अहिंस्र, कोमल स्वभाव वाले तथा कठोर, धर्म और अधर्म, ऋत और अनृत आदि तत्तत् भावनाओं से भावित होकर यहाँ जन्म ग्रहण करते हैं और इसीलिये वही उनको अच्छा भी लगता है ।।५३।। महाभूतों में अनेक प्रकारता और इन्द्रियों के अर्थों की मूर्तियों में भूतों का विनियोग करना विधाता ने ही स्वयं किया था ।।५४। कुछ मनुष्य तो पुरुषार्थ को ही कर्म कहते हैं और दैव (भाग्य या प्रारब्ध) का चिन्तन करने वाले अर्थात् भाग्यवादी दूसरे ब्राह्मण दैव ही को कहा करते हैं ।। ५५ ।। पौरुष कर्म और दैव इनके फल की वृत्ति स्वभाव से ही हुआ करती है। न तो ये दोनों एक ही हैं न ये दोनों पृथक् ही होते हैं और न उन दोनों में कोई अधिक ही है। इस प्रकार से यह दोनों न एक ही हैं और न दो अलग-अलग ही होते हैं ।।५६।। सत्त्व गुण में स्थित रहने वाले समान भाव से देखने वाले समदर्शी

बृहत्साममथोक्थञ्च दक्षिणात्सोऽसृजन्मुखात् ॥४५
सामानि जगतीच्छन्दस्तोमं पञ्चदशन्तथा।
वैरूप्यमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात् ॥४६
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥४७
विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च।
वयांसि च ससर्जादौ कल्पस्य भगवान् प्रभुः ॥४८
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सजतो हि प्रजापते ॥४९
सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरपितॄन् प्रजाः।
ततः सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥५०

गायत्र, वरुण, त्रिवृ सौम्य रथंतर और अग्निष्टोम यज्ञों को प्रथम मुख से निर्माण किया था। ब्रह्माजी के चार मुखों में जो प्रथम था उससे उक्त प्राणियों की उत्पत्ति की थी ॥ ४४ ॥ त्रैष्टुभ कर्म, स्तोम, पञ्चदश, बृहत्साम उक्थच्छन्दों को दक्षिण मुख से सृजन किया था ॥४५॥ साम, जगती छन्दोस्तोम, पञ्चदश, वैरूप्य अतिरात्र को पश्चिम मुख से सृजा था ॥ ४६ ॥ एकविंश, अथर्वाण, आप्तोर्यामाण, अनुष्टुभ और सवैराज को ब्रह्माजी ने अपने उत्तर के मुख से सृष्ट किया था ॥ ४७ ॥ विद्युत, अशनि (वज्र), मेघ, रोहित, इन्द्र धनुष और कल्प की अवस्था को भगवान् प्रभु ने आदि में सृजा था ॥ ४८ ॥ उच्चावच भूत उनके गात्रों अर्थात् शरीराङ्गों से उत्पन्न हुए जबकि प्रजापति ब्रह्माजी प्रजा के सर्ग का सृजन कार्य कर रहे थे ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर पहिले देव असुर, पितर आदि चार प्रकार की प्रजा की सृष्टि करके इसके पश्चात् भूत, स्थावर और चरों का सृजन करते हैं ॥५०॥

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वान् तथैवाप्सरसाङ्गणान्।
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ॥५१
अव्ययञ्च व्ययं चैव यदिदं स्थाणु जङ्गमम्।
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्या प्रतिपेदिरे।

तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥५२
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥५३
महाभूतेषु नानात्व मिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।
विनियोगञ्च भूतानां धातैव व्यदधात् स्वयम् ॥५४
केचित् पुरुषकारन्तु प्राहुः कर्म च मानवाः ।
दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं दैवचिन्तकाः ॥५५
पौरुष कर्म दैवञ्च फलवृत्तिस्वभावतः ।
न चैकं न पृथग्भावमधिकं न तयोर्विदुः ।
एतदेवञ्च नैकञ्च न चोभे न च वाप्युभे ॥५६
कर्मस्थान् विषयान् ब्रूयुः सत्वस्थाः समदर्शिनः ।
नामरूपञ्च भूतानां कृतानाञ्च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ॥५७

यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओं का समुदाय, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, मृग, उरग, अव्यय, व्यय, स्थाणु और जङ्गम का सृजन किया। इनमें जिन्होंने जो कर्म पहिले सृष्टि में प्राप्त किये थे वे पुनः-पुनः सृज्यमान होते हुए भी उन्हीं को प्राप्त होते हैं ॥५१-५२॥ हिंसा की वृत्ति वाले तथा अहिंस्र, कोमल स्वभाव वाले तथा कठोर, धर्म और अधर्म, ऋत और अनृत आदि तत्तत् भावनाओं से भावित होकर यहाँ जन्म ग्रहण करते हैं और इसीलिये वही उनको अच्छा भी लगता है ॥५३॥ महाभूतों में अनेक प्रकारता और इन्द्रियों के अर्थों की मूर्तियों में भूतों का विनियोग करना विधाता ने ही स्वयं किया था ॥५४॥ कुछ मनुष्य तो पुरुषार्थ को ही कर्म कहते हैं और दैव (भाग्य या प्रारब्ध) का चिन्तन करने वाले अर्थात् भाग्यवादी दूसरे ब्राह्मण दैव ही को कहा करते हैं ॥ ५५ ॥ पौरुष कर्म और दैव इनके फल की वृत्ति स्वभाव से ही हुआ करती है। न तो ये दोनों एक ही हैं न ये दोनों पृथक् ही होते हैं और न उन दोनों में कोई अधिक ही है। इस प्रकार से यह दोनों न एक ही हैं और न दो अलग-अलग ही होते हैं ॥५६॥ सत्व गुण में स्थित रहने वाले समान भाव से देखने वाले समदर्शी

पुरुष कर्मों मे स्थित रहने वाले विषयों को बोला करते हैं। महेश्वर उस भगवान् ने आदि मे विनिर्मित भूतों के नाम और रूप का समस्त प्रपञ्च शब्दों से ही सृष्ट किये हैं ॥५७॥

ऋषीणां नामधेयानि याश्च देवेषु दृष्टय. ।
शर्वर्यन्ते प्रसूताना तान्ये वास्य ददाति सः ॥५८
यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥५९
एवंविधासु सृष्टासु ब्रह्मणाऽव्यक्तजन्मना ।
शर्वर्यन्ते प्रदृश्यन्ते सिद्धिमाश्रित्य मानसीम् ॥६०
एव भूतानि सृष्टानि चराणि स्थावराणि च ।
यदास्य ता प्रजा सृष्टा न व्यवर्धन्त धीमत ॥६१
अथान्यान्मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ।
भृगु पुलस्त्य पुलह क्रतुमाङ्गिरसन्तथा ॥६२
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम् ।
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
तेषां ब्रह्मात्मकाना वै सर्वेषा ब्रह्मवादिनाम् ॥६३

ऋषियो के नामधेय अर्थात् नाम और देवों में जो दृष्टियाँ हैं वे सब रात्रि के अन्त मे प्रसूत होने वालो के वही उनको करता है ॥५८॥ ऋतुओं के अनुसार जो ऋतुओं के चिह्न होते हैं और अनेक प्रकार के स्वरूप होते हैं जबकि उनका परिवर्तन हुआ करता है ये सब युगादिकों मे उस तरह के भाव वे-वे ही दिखाई दिया करते हैं ॥५९॥ इस प्रकार से अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा के द्वारा इस रीति से की हुई सृष्टियों मे रात्रि के अन्त मे मानसी सिद्धि का आश्रय करके दिखलाई दिया करते हैं ॥ ६० ॥ इस तरह से ब्रह्माजी ने चर और स्थावर भूतों की सृष्टि की किन्तु उनकी वह सृजन की हुई समस्त प्रजा जब वृद्धि प्राप्त करती हुई नहीं हुई तो धीमान् ब्रह्मा ने अपनी ही आत्मा के सदृश अन्य मानस पुत्रों का सृजन किया था जिनके नाम भृगु पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, आङ्गिरस, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ ये होते हैं। ये सभी ब्रह्मवादी

और ब्रह्मात्मक अर्थात् ब्रह्मा के स्वरूप वाले ही थे जिनको कि पुराण में निश्चित रूप से 'नव-ब्रह्मा' ऐसा ही कहा गया है ॥६१–६२–६३॥

ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसंभवम् ।
संकल्पं चैव धर्मं च पूर्वेषामपि पूर्वजः ॥६४
अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।
सनन्दनं ससनकं विद्वांसं च सनातनम् ॥६५
सनत्कुमारं च विभुं सनकं च सनन्दनम् ।
न ते लोकेषु सज्जन्ते निरपेक्षाः सनातनाः ॥६६
सर्वे ते ह्यागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ।
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकवृत्तानुकारणात् ॥६७
हिरण्यगर्भो भगवान् परमेष्ठी ह्यचिन्तयत् ।
तस्य रोषात्समुत्पन्नः पुरुषोऽर्कसमद्युतिः ।
अर्द्धनारीनरवपुस्तेजसाज्वलनोपमः ॥६८
सर्वं तेजोमयं जातमादित्यसमतेजसम् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥६९
एवमुक्त्वा द्विधाभूतः पृथक् स्त्री पुरुषः पृथक् ।
स चैकादशधा जज्ञे अर्द्धमात्मानमीश्वरः ॥७०

इसके उपरान्त पूर्व में होने वालों में भी सबसे पहिले जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा ने रोषात्म सम्भव रुद्र का सृजन किया और संकल्प तथा धर्म का सृजन किया था ॥६४॥ पहिले ब्रह्माजी ने अपने ही तुल्य मानस सनक के सहित सनन्दन परम विद्वान् सनातन और विभु सनत्कुमार का सृजन किया था किन्तु वे लोकों के सृजन कर्म में निरपेक्ष होने के कारण प्रवृत्त ही नहीं हुए थे ॥ ६५–६६ ॥ वे सबके सब ज्ञानोदय हो जाने वाले, वीतराग अर्थात् परम वैराग्य से परिपूर्ण रहने वाले और मत्सरता से रहित थे । इस प्रकार से लोक वृत्त के अनुकरण में बिल्कुल ही अपेक्षा न रखने वाले उनके होने पर ब्रह्माजी चिन्तित हुए ॥ ६७ ॥ उस समय लोक सृजन एवं बराबर उसके वर्धन के अपने कार्य में असफल रहते हुए हिरण्यगर्भ परमेष्ठी भगवान् ने मन में बहुत ही चिन्ता की

थी। उस चिन्तन काल में उनके रोष से समुत्पन्न सूर्य के समान द्युति वाला, अर्धनारीश्वर पुरुष मानने हुआ जो इतना तेज युक्त था जैसे कि साक्षात् अग्नि ही हो ॥६८॥ वह आदित्य के समान तेज वाला समस्त तेज से पूर्ण उत्पन्न हुआ और अपने आपका विभाजन करो, यह कहकर वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गया ॥ ६॥ इस प्रकार कहकर पुरुष और स्त्री पृथक् पृथक् होकर दो रूपों में ईश्वर ने अपने आपके अर्ध भाग को एकादश प्रकार से जन्म दिया अर्थात् उत्पन्न किया था ॥७०॥

> तेनोक्तास्ते महात्मान सर्व एव महात्मना ।
> जगतो बहुलीभावमधिकृत्य हितैषिण ॥७१
> लोकवृत्तान्तहेतोर्हि प्रयतध्वमतन्द्रिता ।
> विश्व विश्वस्य लोकस्य स्थापनाय हिताय च ॥७२
> एवमुक्तास्तु रुरुदुर्द्रुवुश्च समन्तत ।
> रोदनाद्द्रावणच्चैव रुद्रा नाम्नेतिविश्रुताः ॥७३
> यैर्हि व्याप्तमिद सर्व त्रैलोक्य सचराचरम् ।
> तेषामनुचरा लोके सर्वलोकपरायणा ॥७४
> नैरनागा युवबला विक्रान्ताश्च गणेश्वरा ।
> तत्र या सा महाभागा शङ्करस्यार्द्धकायिनी ॥७५
> प्रागुक्ता तु मया तुभ्य स्त्री स्वयमोर्मुखोद्गता ।
> कायार्द्ध दक्षिणन्तस्या शुक्ल वाम तथाऽसितम् ॥७६
> आत्मान विभजस्वेति प्रोक्ता देवी स्वयम्भुवा ।
> सा तु प्रोक्ता द्विधाभूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजा ।
> तस्या नामानि वक्ष्यामि शृणुध्व सुसमाहिता ॥७७

उन महान् आत्मा के द्वारा इस प्रकार से कहे गये वे सभी महात्मा जोकि हित के चाहने वाले थे, जगत् की बहुलता को करने की भावना में अधिकार वाले हुए ॥ ७१ ॥ आप सब अतन्द्रित होते हुए लोक के वृतान्त के लिये पूर्ण प्रयत्न करो अर्थात् विश्व की रचना करने में आलस्य का त्याग कर पूरा पूरा यत्न करो। लोक की स्थापना और विश्व का हित करना ही तुम्हारा पूर्ण

कर्त्तव्य है ।। ७२ ।। जब ब्रह्माजी ने लोक की रचना एवं स्थापना तथा विश्व के हित के कार्यों की निर्मिति के लिये उनसे कहा तो वे सब ओर से रुदन करने लगे और एकदम द्रवीभूत हो गये । अतएव रोदन करने से तथा उनके द्रावण होने से उनका नाम संसार में "रुद्र"—यह प्रसिद्ध हो गया था ।।७३।। जिनके द्वारा यह समस्त चर और अचर स्वरूप वाला त्रैलोक्य व्याप्त हो गया था वे भगवान् रुद्र थे । उनके अनुचर लोक में समस्त लोक कार्यों में परायण हुए ।। ७४ ।। वे गणेश्वर अनेक नागों के बल के तुल्य बल वाले और परम विक्रम से युक्त थे । और वहाँ पर भगवान् शङ्कर के अर्ध शरीर वाली जो वह परम महान् भाग वाली थी ।।७५।। पहिले मैंने तुमको स्वयम्भू के मुख से उत्पन्न हुई स्त्री के विषय में बतलाया था । उसका दक्षिण काया का अर्ध भाग शुक्ल तथा वाम अर्ध भाग असित था ।। ७६ ।। हे द्विज वृन्द ! आत्मा का विभाजन करो इस प्रकार से भगवान् स्वयम्भू के द्वारा कही गई वह शुक्ल और कृष्ण दो प्रकार की हो गई थी । अब उनके नाम मैं बतलाता हूँ उन्हें तुम लोग सावधान होकर श्रवण करो ।। ७७ ।।

स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती ।
अपर्णा चैकपर्णा च तथा स्यादेव पाटला ।।७८
उमा हैमवती षष्ठी कल्याणी चैव नामतः ।
ख्यातिः प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता ।।७९
विश्वरूपमथार्यायाः पृथग्देहविभावनात् ।
शृणु संक्षेपतस्तस्या यथावदनुपूर्वशः ।।८०
प्रकृतिर्नियता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ।
कालरात्रिर्महामाया रेवती भूतनायिका ।।८१

द्वापरान्तविकारेषु देव्या नामानि मे शृणु ।
गौतमी कौशिकी आर्या चण्डी कात्यायनी सती ।।८२
कुमारी यादवी देवी वरदा कृष्णपिङ्गला ।
बर्हिर्ध्वजा शूलधरा परमब्रह्मचारिणी ।।८३
माहेन्द्री चेन्द्रभगिनी वृषकन्यैकवाससी ।

अपराजिता बहुभुजा प्रगल्भा सिंहवाहिनी ॥८४
एकानसा दैत्यहनी माया महिषमर्दिनी ।
अमोघा विन्ध्यनिलया विक्रान्ता गणनायिका ॥८५
देवीनामविकाराणि इत्येतानि यथाक्रमम् ।
भद्रकाल्यास्तवोक्तानि देव्या नामानि तत्त्वतः ॥८६

उनके नाम—स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती अपर्णा एकपर्णा, पाटला, उमा, हैमवती, कल्याणी, ख्याति, प्रज्ञा, महाभागा हैं जो लोक में 'गौरी'–इस नाम से विश्रुत हुई हैं ॥७८–७९॥ अब इस आर्या का जो विश्व रूप है जिसका पृथक् देह की विभावना से प्राकट्य हुआ है, उसका पूरा हाल यहाँ आनुपूर्वी के अनुसार संक्षेप में श्रवण करो ॥८०॥ प्रकृति, नियता, रौद्री, दुर्गा भद्रा, प्रमाथिनी, कालरात्रि, महामाया, रेवती भूतनायिका ये उसके नाम होते हैं ॥८१॥ अब द्वापर के अन्त तक विकारों में जो उसके नाम हैं उनका श्रवण करो—गौतमी, कौशिकी आर्या, चण्डी, कात्यायनी, सती, कुमारी, यादवी, देवी, वरदा, कृष्ण पिङ्गला बर्हिर्ध्वजा, शूलधरा, परम ब्रह्मचारिणी, माहेन्द्री, इन्द्रभगिनी वृषकन्या, एक वाससी, अपराजिता, बहुभुजा, प्रगल्भा, सिंहवाहिनी, एकानसा, दैत्यहनी, माया, महिषमर्दनी, अमोघा, विन्ध्य निलया, विक्रान्ता, गण नायिका ये देवियों के क्रम के अनुसार विकार रहित नाम हैं। तुमको भद्रकाली के नामों को तत्व रूप से बतला दिया गया है ॥८२–८३–८४–८५–८६॥

ये पठन्ति नरास्तेषां विद्यते न पराभवः ।
अरण्ये प्रान्तरे वापि पुरे वापि गृहेऽपि वा ॥८७
रक्षामेतां प्रयुञ्जीत जले वापि स्थलेऽपि वा ।
व्याघ्रकुम्भीरचोरेभ्यो भूतस्थाने विशेषतः ।
आधिष्वपि च सर्वासु देव्या नामानि कीर्त्तयेत् ॥८८
अर्भकग्रहभूतैश्च पूतनामातृभिः सदा ।
अभ्यर्दितानां बालानां रक्षामेतां प्रयोजयेत् ॥८९
महादेवी कुले द्वे तु प्रज्ञा श्रीश्च प्रकीर्त्यते ।

आभ्यां देवीसहस्राणि यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥९०
साऽसृजद् व्यवसायन्तु धर्मं भूतसुखावहम् ।
सङ्कल्पञ्चैव कल्पादौ जज्ञिरेऽव्यक्तयोनितः ॥९१

जो पुरुष उन नामों का पाठ करते है उनका अरण्य में, प्रान्तर में, पुर में तथा घर में भी कहीं भी कभी कोई पराभव नहीं होता है ॥८७॥ यह सर्वत्र रक्षाकारक है और जल में अथवा स्थल में भी इससे रक्षा होती है। व्याघ्र, कुम्भीर और चोरों से विशेष रूप से भूतस्थान में तथा समस्त आधियों में देवी के शुभ नामों का कीर्तन करना चाहिए ॥८८॥ अनेक ग्रह और भूतों से तथा सर्वदा पूतना मातृकाओं से जो बालक अभ्यर्दित होते हैं अर्थात् सताये हुए होते हैं, उनकी इस देवी की नामावली से रक्षा करनी चाहिए ॥८९॥ महादेवी के कुल में प्रज्ञा और श्री ये दोनों प्रकीर्तित होती हैं। इन दोनों से देवी के सहस्र नाम होते हैं जिनसे यह समस्त जगत् व्याप्त हो रहा है ॥९०॥ उस देवी ने व्यवसाय का सृजन किया तथा सबको सुख प्रदान करने वाले धर्म और सङ्कल्प को कल्प के आदि में अव्यक्त योनि से उत्पन्न किया ॥९१॥

मानसश्च रुचिर्नाम विज्ञेयो ब्रह्मणः सुतः ।
प्राणात् स्वादसृजद्दक्षश्चक्षुर्भ्याञ्च मरीचिकम् ॥९२
भृगुस्तु हृदयाज्जज्ञे ऋषिः सलिलजन्मनः ।
शिरसोऽङ्गिरसञ्चैव श्रोत्रादत्रिन्तथैव च ॥९३
पुलस्त्यञ्च तथोदानाव्द्यानाच्च पुलहं पुनः ।
समानजं वसिष्ठन्तु अपा नान्निर्ममे क्रतुम् ॥९४
अभिमानात्मकं भद्रं निर्ममे नीललोहितम् ।
इत्येते ब्रह्मणः पुत्राः प्राणजा द्वादश स्मृताः ॥९५
इत्येते मानसाः पुत्रा विज्ञेया ब्रह्मणः सुताः ।
भृग्वादयस्तु ये सृष्टा न चैते ब्रह्मवादिनः ॥९६
गृहमेधिनः पुराणास्ते धर्मस्तैः प्राक् प्रवर्त्तितः ।
द्वादशैते प्रवर्त्तन्ते सह रुद्रेण वै प्रजाः ॥९७
ऋभुः सनत्कुमारस्तु द्वावेतावूर्द्ध्वरेतसौ ।
पूर्वोत्पन्नौ पुरा तेभ्यः सर्वेषामपि पूर्वजौ ॥९८

ब्रह्मा का मानस पुत्र रुचि–इस नाम वाला जानना चाहिए। अपने प्राण से ब्रह्मा ने दक्ष को उत्पन्न किया और चक्षुओं से मरीचि को जन्म दिया था। ॥९२॥ भृगु हृदय से उत्पन्न हुए अर्थात् सलिल से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा के हृदय से भृगु ऋषि की उत्पत्ति हुई थी। शिर से अङ्गिरा की तथा श्रोत्र से अत्रि ऋषि का जन्म हुआ था ॥९३॥ उदान से पुलस्त्य को, व्यान से पुलह को, समान से वसिष्ठ को अपान से क्रतु को और अभिमान के स्वरूप वाले नील लोहित भद्र को निर्मित किया था। ये बारह प्राण से जन्म लेने वाले ब्रह्मा के पुत्र कहलाये थे ॥९५॥ ये ब्रह्मा के पुत्र मानस जानने चाहिए और जो भृगु आदि का सृजन किया था वे ब्रह्मवादी नहीं थे ॥९६॥ वे सब पुराण गृहमेधी अर्थात् पुराने गृहस्थ थे जिन्होंने प्रथम धर्म को प्रवृत्त किया था। ये बारह रुद्र के साथ प्रजा के सृजन में प्रवृत्त होते हैं ॥९७॥ ऋभु और सनत्कुमार ये दोनों ऊर्द्ध्वरेता थे। ये उनमें पहिले प्राचीन समय में उत्पन्न हुए थे और ये दोनों सभी के पूर्वज थे ॥९८॥

व्यतीते प्रथमे कल्पे पुराणे लोकसाधकौ।
वैराजे तावुभौ लोके तेज संक्षिप्य चास्थितौ ॥९९
तावुभौ योगधर्माणावारोप्यात्मानमात्मनि।
प्रजाधर्मञ्च कामञ्च वर्त्तयेता महौजसा ॥१००
यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते।
तस्मात्सनत्कुमारोयमिति नामास्य कीर्तितम् ॥१०१
तेषा द्वादश ते वंशा दिव्या देवगुणान्विता।
क्रियावन्त प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृता ॥१०२
इत्येष करणोद्भूतो लोकान् स्रष्टुं स्वयम्भुव।
महदादिविशेषान्तो विकारः प्रकृते स्वयम् ॥१०३
चन्द्रसूर्यप्रभालोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः।
नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च समावृत ॥१०४
पुरैश्च विविधाकारैं प्रीतैर्जनपदैस्तथा।
तस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यक्ते ब्रह्मा चरति शर्वरीम् ॥१०५

वैराज नामक प्रथम कल्प के व्यतीत होने पर लोकों के साधक वे दोनों लोक में तेज का संक्षेप करके आस्थित रहे थे ॥ ९९ ॥ योग के धर्म वाले वे दोनों आत्मा में आत्मा को आरोप करके महान् ओज से प्रजा धर्म और काम को बरतते थे ॥ १०० ॥ ज्यों ही यहाँ उत्पन्न हुये वैसे ही कुमार यह कहे जाते हैं। इसी कारण से यह सनत्कुमार हैं—इस प्रकार से इनका नाम कीत्तित हुआ है ॥ १०१ ॥ उनके वे देव गुणों से युक्त दिव्य द्वादश वंश हुए जो महर्षियों से अलङ्कृत क्रिया वाले और प्रजा वाले थे ॥ १०२ ॥ यह करण से उद्भूत स्वयम्भू के लोकों का सृजन करने के लिये महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त तक स्वयं प्रकृति का विकार है ॥ १०३ ॥ चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा के आलोक (प्रकाश) वाला, ग्रहों और नक्षत्रों से विभूषित तथा नदियों, समुद्रों और पर्वतों से समावृत—अनेक प्रकार के आकार वाले, पुरों से एवं प्रीतियुक्त जनपदों से आवृत ऐसे उस अव्यक्त ब्रह्म-वन में ब्रह्मा शर्वरी (रात्रि) को बिताते हैं ॥१०४-१०५ ॥

अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहोत्थितः ।
बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटरः ॥१०६

महाभूतप्रशाखश्च विशेषैः पत्रवांस्तथा ।
धर्माधर्मसुपुष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः ॥१०७

आजीवः सर्वभूतानामयं वृक्षः सनातनः ।
एतद्ब्रह्मबलं चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य ह ॥१०८

अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
इत्येषोऽनुग्रहः सर्गो ब्रह्मणः प्राकृतस्तु यः ॥१०९

मुख्यादयस्तु षट् सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्वकाः ।
त्रैकाले समवर्तन्त ब्रह्मणस्तेऽभिमानिनः ॥११०

सर्गाः परस्परस्याथ कारणं ते बुधैः स्मृताः ।
दिव्यौ सुपर्णौ सयुजौ सशाखौ पटविद्रुमौ ।
एकस्तु यो द्रुमं वेत्तिनान्यः सर्वात्मनस्ततः ॥१११

द्यौर्मूर्द्धानं यस्य विप्रास्तुवन्ति खन्नाभिं वै चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे।
दिशः श्रोत्रे चरणौ चास्य भूमिः,
सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूत प्रसूतिः ॥११२

वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणाः संप्रसूताः यद्वक्षस्तः क्षत्रियाः पूर्वभागे।
वैश्याश्चोरोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः,
सर्वे वर्णा गात्रतः सम्प्रसूताः ॥११३

महेश्वर परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम्।
अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा येन लोकाः कृतास्त्विमे ॥११४

उसी के अनुग्रह से उत्थित हुआ—अव्यक्त बीज से प्रभव (जन्म) वाला, बुद्धि के स्कन्ध से परिपूर्ण, इन्द्रियों के अंकुर कोटर वाला, महाभूतों की प्रशाखाओं वाला, विशेषों के से पत्रों वाला, धर्म तथा अधर्म रूपी पुष्पों से अन्वित, सुख और दुःख रूपी फलों के उदय वाला और समस्त प्राणियों की आजीविका वाला यह सनातन वृक्ष है। उस ब्रह्म वृक्ष का यह ब्रह्म ही बल होता है ॥ १०६—१०७—१०८ ॥ जो अव्यक्त कारण है वह नित्य और सत् तथा असत् स्वरूप वाला होता है। जो प्राकृतिक सर्ग है वह ब्रह्मा का अनुग्रह है ॥ १०९ ॥ मुख्य आदि छैः सर्ग वैकृत और बुद्धिपूर्वक होते हैं। वे अभिमान वाले ब्रह्मा के त्रैकाल में होते थे ॥ ११० ॥ विद्वानों ने उन सर्गों को ही परस्पर के कारण कहा है। सुन्दर पर्ण वाले, सयुत और शाखाओं से युक्त दिव्य पद विद्रुम हैं। जो एक द्रुम का ज्ञान रखता है वह सर्वात्मा है अन्य नहीं है ॥ १११ ॥ जिसके द्यौ रूपी मूर्धा का ब्राह्मण स्तवन किया करते हैं, आकाश जिसकी नाभि है और चन्द्रमा तथा सूर्य दो नेत्र हैं, दिशा श्रोत्र हैं और भूमि उसके चरण हैं, वह समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करने वाला अचिन्त्य आत्मा है ॥ ११२ ॥ जिसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए, वक्षःस्थल से क्षत्रिय, उरुओं के पूर्व भाग से वैश्य और जिसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार सभी वर्ण उसके शरीर से ही उद्भूत हुए हैं ॥ ११३ ॥ अव्यक्त से पर महेश्वर हैं और अव्यक्त से उत्पन्न अण्ड है, अण्ड से फिर ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया जिस ब्रह्मा ने ये सभी लोक बनाये हैं ॥ ११४ ॥

।। मन्वन्तरादि वर्णन ।।

एवंभूतेषु लोकेषु ब्रह्मणा लोककर्तृणा ।
यदा ता न प्रवर्त्तन्ते प्रजाः केनापि हेतुना ।।१
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाप्रभृति दुःखितः ।
ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ।।२
अथात्मनि समस्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम् ।
राजसत्वं पराजित्य वर्त्तमानं स धर्मतः ।।३
तप्यते तेन दुःखेन शोकञ्चक्रे जगत्पतिः ।
तमश्च व्यनुदत्तस्माद्रजस्तमसमावृणोत् ।।४
तत्तमः प्रतिनुत्तं वै मिथुनं स व्यजायत ।
अधर्माच्चरणाज्जज्ञे हिंसा शोकादजायत ।।५
ततस्तस्मिन् समुद्भूते मिथुने चरणात्मनि ।
ततश्च भगवानासीत् प्रीतिश्चैवमशिश्रियत् ।।६
स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहदभास्वराम् ।
द्विधाकरोत्स तं देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ।।७
अर्द्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत ।
प्राकृतां भूतधात्रीं तां कामान्वै सृष्टवान् विभुः ।।८

श्री सूत जी ने कहा—इस प्रकार से होने वाले लोकों में जब लोकों की रचना करने वाले ब्रह्मा के द्वारा किसी भी हेतु से वह प्रजा प्रवृत्त न हुई तब तमोमात्र से आवृत ब्रह्मा जी तभी से लेकर अत्यन्त दुःखित हुये । इसके अनन्तर उन्होंने अर्थ के निश्चय करने वाली बुद्धि बनाई ।। १—२ ।। इसके अनन्तर उनने धर्म से वर्त्तमान राजसत्व को पराजित करके तमोमात्रा की नियामक बुद्धि का आत्मा में सृजन किया था ।। ३ ।। उस दुःख से वह तप्यमान होते हैं और जगत्पति ने बड़ा शोक किया था । उससे तम का विनोदन किया और रजोगुण ने तमोगुण आवृत कर लिया था ।। ४ ।। प्रतिनुत्त हुए उस तम से मिथुन की उत्पत्ति हुई । अधर्म के चरण से हिंसा शोक से उत्पन्न हुई ।। ५ ।। इसके पश्चात् चरणात्मा मिथुन के समुत्पन्न होने पर इसके अनन्तर भगवान् प्रसन्न हुए

और इस प्रकार से सेवन किया ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्मा ने अपने उस अभास्वर शरीर का अपोह कर दिया और उसने उस देह के दो भाग कर दिए। आधे भाग से वह पुरुष हुए और आधे शरीर के भाग मे उसको नारी शतरूपा उत्पन्न हुई। विभु ने भूतो की प्राकृत धात्री उसको प्राप्तकर कामनाओ की सृष्टि की थी ॥ ७—८ ॥

सा दिव पृथिवीञ्चैव महिम्ना व्याप्य धिष्ठिता ।
ब्रह्मण सा तनु पूर्वा दिवमावृत्य तिष्ठति ॥६
या त्वर्द्धात् सृजते नारी शतरूपा व्यजायत ।
सा देवी नियुतन्तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥१०
भर्त्तारन्दीप्तयशस पुरुष प्रत्यपद्यत ।
स वै स्वायम्भुव पूर्व पुरुषो मनुरुच्यते ॥११
तस्यैकसप्ततियुग मन्वन्तरमिहाच्यते ।
लब्ध्वा तु पुरुष पत्नी शतरूपामयोनिजाम् ॥१२
तया स रमते सार्द्धं तस्मात्सा रतिरुच्यते ।
प्रथम सप्रयोग स कल्पादौ समवर्त्तत ॥१३
विराजमसृजत ब्रह्मा सोऽभवत् पुरुषो विराट् ।
सम्राड्मानसरूपात्तु वै राजस्तु मनु स्मृत ॥१४

वह अपनी महिमा से दिव और पृथिवी मे व्याप्त होकर अधिष्ठित हुई। ब्रह्मा का वह पूर्व तनु दिव को आवृत करके अधिष्ठित होता है ॥ ६ ॥ जिस शरीर ने अपने अर्धभाग से नारी का सृजन किया और शतरूपा समुत्पन्न हुई। उस देवी ने दस हजार वर्ष पर्यन्त परम दुश्चार तप किया था ॥ १० ॥ ऐसी उग्र तपश्चर्या करके उसने दीप्त यश वाले अपना स्वामी पुरुष प्राप्त किया था और वह पुरुष प्रथम स्वायम्भुव मनु इस नाम से कहा जाता है ॥ ११ ॥ यहाँ पर उसका एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर युगपर्यन्त मन्वन्तर कहा जाता है। पुरुष ने अयोनिजा अर्थात् योनि उत्पन्न न होने वाली शतरूपा को पत्नी के रूप मे प्राप्त किया ॥ १२ ॥ वह उसके साथ रमण करते हैं इसीलिये वह रति कही जाती है। कल्प के आदि मे वह प्रथम सम्प्रयोग हुआ ॥ १३ ॥ ब्रह्मा जी ने

विराट् का सृजन किया सो वह पुरुष विराट् हो गया था। मानस रूप से सम्राट् वैराज मनु कहा गया है ॥ १४ ॥

स वैराजः प्रजासर्गः स सर्गे पुरुषो मनुः ।
वैराजात्पुरुषाद्वीराच्छतरूपा व्यजायत ॥१५
प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ।
कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जाताः प्रजास्त्विमाः ॥१६
देवी नाम्ना तथाकूतिः प्रसूतिश्चैव ते शुभे ।
स्वायम्भुवः प्रसूतिन्तु दक्षाय व्यसृजत् प्रभुः ॥१७
प्राणो दक्षस्तु विज्ञेयः सङ्कल्पो मनुरुच्यते ।
रुचेः प्रजापतेश्चैव आकूतिं प्रत्यपादयत् ॥१८
आकूत्यां मिथुनं यज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम् ।
यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमकौ सम्बभूवतुः ॥१९
यज्ञस्य दक्षिणायाञ्च पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ।
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥२०
यमस्य पुत्रा यज्ञस्य तस्माद्यामास्तु ते स्मृताः ।
अजिताश्चैव शूकाश्च गणौ द्वौ ब्रह्मणः स्मृतौ ॥२१

वह वैराज प्रजासर्ग है और वह सर्ग में पुरुष मनु है। और वैराज पुरुष से शतरूपा उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥ पुत्रवानों में परम श्रेष्ठ प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र और दो महान् भाग्यशालिनी कन्याऐं हुईं जिन दोनों से ये समस्त प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ नाम से वे देवी आकूति और प्रसूति थीं जो कि अत्यन्त शुभ थीं। स्वायम्भुव प्रभु ने प्रसूति को दक्ष के लिये दान करके दिया था ॥ १७ ॥ प्राण को दक्ष समझ लेना चाहिये और सङ्कल्प मनु कहा जाता है। प्रजापति रुचि के लिए आकूति को दे दिया ॥ १८ ॥ आकूति में मानस के यज्ञ में शुभ मिथुन हुआ। यज्ञ और दक्षिणा यह यमल (जोड़ली सन्तति) पैदा हुआ ॥ १९ ॥ यज्ञ के दक्षिणा में बारह पुत्र उत्पन्न हुए। वे स्वायम्भुव के अन्तर में 'यामा' इस नाम से आख्यात हुए थे ॥ २० ॥ यम के पुत्र थे इससे यज्ञ के याम कहे गये हैं। अजित और शूक ये दो गण ब्राह्मण कहे गये हैं ॥२१॥

यामा पूर्वे परिक्रान्ता यत संज्ञा दिवौकस ।
स्वायम्भुवसुतायान्तु प्रसूत्या लोकमातरः ॥२२
तस्या कन्याश्चतुर्विशद्दक्षस्त्वजनयत् प्रभुः ।
सर्वास्ताश्च महाभागा सर्वा कमललोचना ॥२३

योगपत्न्यश्च ता सर्वाः सर्वास्ता योगमातर. ।
श्रद्धा लक्ष्मी धृतिस्तुष्टि पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।
बुद्धिर्लज्जा वपु शान्ति. सिद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदशी ॥२४
पत्न्यर्थे प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभु ।
द्वाराण्येतानि चैवास्य विहितानि स्वयम्भुवा ॥२५

ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचना ।
ख्याति सत्यथ सभूतिः स्मृति प्रीतिः क्षमा तथा ॥२६
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ।
तास्तत प्रत्यपद्यन्त पुनरन्ये महर्षय ॥२७
रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अङ्गिरा पुलह क्रतु ।
पुलस्त्योऽत्रिर्वसिष्ठश्च पितरोऽग्निस्तथैव च ॥२८

याम पहिले परिक्रान्त हुए इसलिए दिवौकस सज्ञा हुई। स्वायम्भुव सुता प्रसूति मे दक्ष ने लोकमातर चौबीस कन्याओ को उत्पन्न किया था। वे सभी महान् भाग वाली और सभी कमल के समान सुन्दर नेत्रो वाली परम सुन्दरी थीं ॥ २२—२३ ॥ वे सभी योग पत्नियाँ थी और सब योगमाताऐं थीं। श्रद्धा, लक्ष्मी धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु शान्ति, सिद्धि, कीर्त्ति इन तेरहो को दाक्षायणी प्रभु धर्म ने पत्नी के रूप में ग्रहण कर लिया था। इसके ये द्वार स्वयम्भू ने किए थे ॥ २४—२५ ॥ उनसे शेष यवीयान की एकादश सुलोचनाऐं थी जिसके नाम ये हैं—ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा ये ग्यारह हैं। उनको फिर अन्य महर्षियो ने ग्रहण किया था। उन महर्षियो के नाम ये हैं—रुद्र, भृगु मरीचि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पितर और अग्नि ये महर्षियो के नाम थे ॥ २६–२७–२८ ॥

सतीं भवाय प्रायच्छत् ख्यातिञ्च भृगवे तथा ।
मरीचये च सम्भूतिं स्मृतिमाङ्गिरसे ददौ ।।२६
प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च ।
क्रतवे सन्नतिं नाम अनसूयान्तथात्रये ।।३०
ऊर्ज्जां ददौ वसिष्ठाय स्वाहां वै ह्यग्नये ददौ ।
स्वधां चैव पितृभ्यस्तु तास्वपत्यानि वक्ष्यते ।।३१
एते सर्वे महाभागाः प्रज्ञाः स्वानुष्ठिताः स्थिताः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु यावदाभूतसंप्लवम् ।।३२
श्रद्धा कामं विजज्ञे वै दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः ।
धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः सन्तोष उच्यते ।।३३
पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः श्रुतस्तथा ।
क्रियायास्तु नयः प्रोक्तो दण्डः समय एव च ।।३४
बुद्धेर्बोधसुतश्चापि अप्रमादश्च तावुभौ ।
लज्जाया विनयः पुत्रो व्यवसायो वपुः सुतः ।।३५

दक्ष ने सती को महादेव के लिये दिया, भृगु को ख्याति, मरीचि को सम्भूति और अङ्गिरस के लिये स्मृति नाम वाली कन्या का दान किया था ।। २६ ।। पुलस्त्य को प्रीति, पुलह को क्षमा, क्रतु को सन्नति तथा अत्रि के लिये अनसूया नाम वाली कन्या का दान दक्ष ने दिया था ।। ३० ।। वसिष्ठ को ऊर्ज्जा, अग्नि को स्वाहा और पितृगण को स्वधा दी । अब उनमें जो सन्तति समुत्पन्न हुई उसे बतलाया जाता है ।। ३१ ।। ये सब महान् भाग्य से युक्त, परम पण्डित और अपने कर्त्तव्य कर्म में निष्ठित होकर स्थित रहे जब तक कि समस्त मन्वन्तरों में आभूत संप्लव हुआ था ।। ३२ ।। श्रद्धा ने काम को समुत्पन्न किया और लक्ष्मी का पुत्र 'दर्प' इस नाम से कहा जाने वाला पैदा हुआ । धृति का पुत्र नियम था और तुष्टि ने सन्तोष नामक पुत्र को जन्म दिया था ।। ३३ ।। पुष्टि से लाभ नामक पुत्र का प्रसव हुआ तथा मेधा का पुत्र श्रुत हुआ था । क्रिया के पुत्र का नाम 'नय' था और दण्ड एवं समय भी उसी के पुत्र हुए थे ।। ३४ ।। बुद्धि के बोध और अप्रमाद ये दो पुत्र पैदा हुए थे एक लज्जा

के विनय नामक पुत्र प्रसूत हुआ तथा व्यवसाय काम वाला पुत्र वपु का हुआ था ॥ ३५ ॥

क्षेमः शान्तिसुतश्चापि सुखं सिद्धेर्व्यजायत ।
यश कीर्त्तेः सुतश्चापि इत्येते धर्मसूनवः ॥३६
कामस्य हर्ष. पुत्रो वै देव्या रत्या व्यजायत ।
इत्येष वै सुखोदर्क. सर्गो धर्मस्य कीर्तित ॥३७
जज्ञे हिंसात्वधर्माद्वै निकृतिश्चानृतावुभौ ।
निकृत्यानृतयोर्जज्ञे भय नरक एव च ॥३८
माया च वेदना चापि मिथुनद्वयमेतयोः ।
भयाज्जज्ञेऽथ सा माया मृत्यु भूतापहारिणम् ॥३९
वेदनायास्ततश्चापि दु ख जज्ञेऽथ रौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिज्वरा शोकाः क्रोधोऽसूया च जज्ञिरे ।
दु खान्तरा स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः ॥४०
तेषा भार्याऽस्ति पुत्रो वा ते सर्वे निधनाः स्मृता ।
इत्येव तामस· सर्गो जज्ञे धर्मनियामक· ॥४१
प्रजा सृजेति व्यादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः ।
सोऽभिध्याय सती भार्यान्निर्ममे ह्यात्मसम्भवाम् ॥४२

शान्ति के क्षेम और सिद्धि का सुख पुत्र हुआ। कीर्ति का यश हुआ इतने वे धर्म पुत्र हुए थे ॥ ३६ ॥ काम का हर्ष नामक पुत्र देवी रति से उत्पन्न हुआ। यह धर्म का सुखोदर्क अर्थात् सुखप्रदान करने वाला सर्ग हुआ जो कि बताया गया है ॥ ३७ ॥ हिंसा ने अधर्म से निकृति और अनृत ये दो पुत्र उत्पन्न किये थे। निकृति और अनृत के भय तथा नरक समुत्पन्न हुए ॥३८॥ इन दोनो के माया और वेदना इनका जोडा पैदा हुआ जो भय से जन्म ग्रहण किया था। उस माया ने समस्त भूतो के अपहरण करने वाली मृत्यु को जन्म दिया था ॥ ३९ ॥ वेदना ने रौरव से दु ख को जन्म दिया था। मृत्यु ने व्याधि, ज्वर, शोक और असूया ने क्रोध को उत्पन्न किया ये सब दु खान्तर अधर्म के लक्षण वाले हुए हैं ॥ ४० ॥ उनकी भार्या अथवा पुत्र वे सभी निधन कहे गये

हैं। यह इतना तामस सर्ग था जो धर्म का नियामक हुआ है ॥ ४१ ॥ 'प्रजा का सृजन करो—इस प्रकार से ब्रह्मा के द्वारा नीललोहित जब आदेश प्राप्त करने वाला हुआ तो उसने आत्मा से सम्भूत होने वाली सती का अभिध्यान करके उसे अपनी भार्या बनाया था ॥ ४२ ॥

नाधिकान्न च हीनांस्तान्मानसानात्मनः समान् ।
सहस्रं हि सहस्राणामसृजत् कृमिवाससा ।
तुल्यांश्चैवात्मनः सर्वे रूपतेजोबलश्रुतैः ॥४३
पिङ्गलान् सन्निषङ्गांश्च सकपर्द्दान् विलोहितान् ।
विवासान् हरि केशांश्च दृष्टिघ्नांश्च कपालिनः ॥४४
बहुरूपान् विरूपांश्च विश्वरूपांश्च रूपिणः ।
रथिनो वर्मिणश्चैव धर्मिणश्च वरूथिनः ॥४५
सहस्रशत बाहूश्च दिव्यान् भौमान्तरिक्षगान् ।
स्थूलशीर्षानिष्टदंष्ट्रानुद्विजिह्वांस्त्रिलोचनान् ॥४६
अन्नादान् पिशितादांश्च आज्यपान् सोमपांस्तथा ।
मेदपांश्चातिकायांश्च शितिकण्ठोग्रमन्यवः ॥४७
सोपासङ्गतलत्रांश्च धन्विनो ह्य पर्वमिणः।
आसीनान् धावतश्चैव जृम्भिनश्चैव धिष्ठितान् ॥४८
अध्यापिनोऽथ जपतो युञ्जतोऽध्यायतस्तथा ।
ज्वलतो वर्षतश्चैव द्योतमानान् प्रधूपितान् ॥४९

तब कृमिवासा ने न ज्यादा अधिक और न ज्यादा हीन ऐसे अपने ही समान मानस पुत्र जो सहस्रों के सहस्र थे उत्पन्न किये जो कि रूप, तेज और बल से सब अपनी आत्मा के ही बिल्कुल तुल्य थे ॥ ४३ ॥ अब यहाँ उनके ही रूप, गुण तथा आकारादि का वर्णन किया जाता है कि ये किस प्रकार के थे—पिङ्गल, सन्निषङ्ग, सकपर्द, विलोहित, विवास, हरिकेश, दृष्टिघ्न और कपाली थे ॥ ४४ ॥ फिर वे विरूप, बहुरूप, विश्वरूप, रूपी, रथी, वर्मी, धर्मी और वरूथ वाले थे जिनको कि उत्पन्न किया था ॥ ४५ ॥ सहस्र शत बाहु वाले, दिव्य, भूमि और अन्तरिक्ष में गमन करने वाले, स्थूल शीर्ष वाले,

आठ दाढ़ो वाले, दो जिह्वाओ वाले और तीन नेत्रों वाले थे ॥ ४६ ॥ अन्नाद अर्थात् अन्न को भक्षण करने वाले, पिशिताद अर्थात् मांसाशी, घृत पीने वाले, सोम का पान करने वाले, मेदय, अतिकाया वाले, शिति कण्ठ और अत्यन्त उग्र क्रोध वालो का सृजन किया ॥ ४७ ॥ सोपासङ्ग तलवों को, धन्वियो को, उपवर्मियों को, आसीनो को, दौड़ते हुओं को, जँभाई लेने वालों को और अधिष्ठितो को उत्पन्न किया था ॥ ४८ ॥ अध्यापन करने वाले, जपते हुए, योग करते हुए, अध्ययन करते हुए, ज्वलित होते हुए, वर्षते हुए, द्योतमान तथा प्रधूपितो का सृजन किया ॥ ४६ ॥

वृद्धान् वुद्धतमाश्चैव ब्रह्मिष्ठान् शुभदर्शनान् ।
नीलग्रीवान् सहस्राक्षान् सर्वांश्चाथ क्षपाचरान् ॥५०
अदृश्यान् सर्वभूतानां महायोगान् महौजसः ।
रुदतो द्रवतश्चैव एवयुक्तान् सहस्रश ।
अपातयामास सृजन् रुद्ररूपान् सुरोत्तमान् ॥५१
ब्रह्मा दृष्ट्वाऽब्रवीदेनान्मासाक्षीरीदृशी प्रजा' ।
सृष्टव्या नात्मनस्तुल्या प्रजा नैवाधिकास्त्वया ।
अन्याः सृज त्व भद्रन्ते स्थितोहन्त्व सृज प्रजाः ॥५२
एते ये वं मया सृष्टा विरूपा नीललोहिता ।
सहस्राणा सहस्रन्तु आत्मनोपमनिश्चिता' ॥५३
एते देवा भविष्यन्ति रुद्रा नाम महाबलाः ।
पृथिव्यामन्तरिक्षे च रुद्रनाम्ना प्रतिश्रुता. ॥५४
शतरुद्रसमाम्नाता भविष्यन्तीह यज्ञियाः ।
यज्ञभाजो भविष्यन्ति सर्वे देवयुगै. सह ॥५५
मन्वन्तरेषु ये देवा भविष्यन्तीह च्छन्दजाः ।
तै. सार्द्धमीज्यमानास्ते स्थास्यन्तीह युगक्षयान् ॥५६

वृद्धों का, वृद्धतमो का, ब्रह्मिष्ठो का और शुभ दर्शन वालो का, नीली ग्रीवा वालो का, सहस्र नेत्रो वालो का, समस्त निशाचरो का सृजन किया ॥५०॥ जो किसी को दृश्यमान नही होवे वे ऐसे अदृश्य, महान् योग वाले, महान्

ओज वाले, रुदन करते हुए तथा द्रवित होते हुए, आपालयाम, रुद्र के रूप वाले और सुरोत्तम इस प्रकार के युक्त सहस्रों का सृजन किया ॥ ५१ ॥ ब्रह्मा जी ने जब इस तरह की प्रजा की सृष्टि को देखा तो कहा ऐसी प्रजा का सृजन मत करो। तुम को अपनी प्रजा अपने ही समान सृजित करनी चाहिये, न अधिक हो और न तुमसे हीन होवे। अब तुम अन्य प्रजा का सृजन करो, तुम्हारा कल्याण होगा, मैं यहाँ पर स्थित हूँ, तुम प्रजा का सृजन करो ॥ ५२ ॥ ये सब जो मैंने उत्पन्न किये हैं जो कि विरूप और नीललोहित हैं और सहस्रों के सहस्र हैं वे अपनी आत्मा के समान ही मिश्रित रूप से हैं ॥ ५३ ॥ ये सब महान् बल वाले रुद्र देवता होंगे जो कि पृथिवी में और अन्तरिक्ष में रुद्र के नाम से प्रसिद्ध होंगे ॥ ५४ ॥ शत रुद्र कहे गये हैं जो यहाँ यजिय होंगे। वे सब देवताओं के साथ यज्ञों के भागों को ग्रहण करने वाले होंगे ॥ ५५ ॥ मन्वन्तरों में जो छन्दिज देवता यहाँ होंगे उनके साथ ईज्यमान वे यहाँ युग के क्षय होने तक स्थित रहेंगे ॥ ५६ ॥

एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा महादेवेन धीमता।
प्रत्युवाच तदा भीमं हृष्यमाणः प्रजापतिः ॥५७
एवं भवतु भद्रं ते यथा ते व्याहृतं प्रभो।
ब्रह्मणा समनुज्ञाते सदा सर्वमभूत् किल ॥५८
ततःप्रभृति देवेशो न प्रासूयत वै प्रजाः।
ऊर्द्ध्वरेताः स्थिताः स्थाणुर्यावदाभूतसंप्लवम्।
यस्माच्चोक्तं स्थितोऽस्मीति ततः स्थाणुरिति स्मृतः ॥५९
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः।
स्रष्टृत्वमात्मसम्बोधस्त्वधिष्ठातृत्वमेव च।
अथ यानि दशैतानि नित्यन्तिष्ठन्ति शङ्करे ॥६०
सर्वान् देवान् ऋषींश्चैव समेतानसुरैः सह।
अत्येति तेजसा देवो महादेवस्ततः स्मृतः ॥६१
अत्येति देवानैश्वर्याद्बलेन च महासुरान्।
ज्ञानेन च मुनीन् सर्वान् योगाद्भूतानि सर्वशः ॥६२

योग तपश्च सत्यञ्च धर्मश्चापि महामुने ।
माहेश्वरस्य ज्ञानस्य साधनञ्च प्रचक्ष्व नः ॥६३
येन येन च धर्मेण गतिं प्राप्स्यन्ति वै द्विजाः ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि योग माहेश्वर प्रभो ६४

उस समय पर धीमान महादेव के द्वारा इस प्रकार से कहे गये ब्रह्माजी ने उत्तर दिया और प्रजापति हर्षित होते हुए भीम से बोले—इस प्रकार से आपका कल्याण हो—हे प्रभो ! जैसा भी आपने कहा है । ब्रह्मा के द्वारा समनुज्ञात होने पर सदा सब ठीक हुआ ॥ ५ —५८ ॥ तब से लेकर फिर देवों के स्वर्मा ने आगे प्रजा का सृजन नहीं किया था । जब तक आभूत सप्लव अर्थात् *महाप्रलय नहीं हुआ तब तक ऊर्द्ध्वरेता होकर स्थाणु के रूप में स्थित हो गये ।* मैं स्थित हूँ यह कहने के कारण से ही स्थाणु इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं ॥५९॥ ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, सृष्टृत्व, आत्म सम्बोध, अधिष्ठातृत्व ये दश शङ्कर में नित्य ही विद्यमान रहा करते हैं ॥ ६० ॥ समस्त देवता ऋषिवृन्द और उनके अनुचर इन सबको अपने तेज से ये अतिक्रान्त कर देते हैं *अतएव यह महादेव कहलाये गये हैं ॥ ६१ ॥ ऐश्वर्य से देवों का तथा बल से* महान् असुरों का ज्ञान से समस्त मुनिगण का एवं योग से सम्पूर्ण प्राणिमात्र का सब ओर से अतिक्रमण महादेव शम्भु कर दिया करते हैं । ६२ ॥ ऋषियों ने कहा—हे महामुने ! महेश्वर भगवान का योग, तप सत्य, धर्म तथा ज्ञान का साधन हमारे सामने वर्णन कीजिये, हम उसे श्रवण करना चाहते हैं ॥ ६३ ॥ *हे प्रभो ! जिस जिस धर्म से द्विज गति को प्राप्त किया करते हैं वह सभी माहेश्वर* योग को सुनना चाहते हैं ॥ ६४ ।

पञ्च धर्माः पुराणे तु रुद्रेण समुदाहृताः ।
माहेश्वर्यं यथा प्रोक्तं रुद्रैरक्लिष्टकर्मभिः ॥६५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैरश्विभ्याञ्चैव सर्वशः ।
मरुद्भिर्भृगुभिश्चैव ये चान्ये विबुधालयाः ॥६६
यमशुक्रपुरोगैश्च पितृकालान्तकैस्तथा ।
एतैश्चान्यैश्च बहुभिस्ते धर्माः पर्युपासिताः ॥६७

तेवं प्रक्षीणकर्माणः शारदाम्बरनिर्मलाः ।
उपासते मुनिगणाः सन्ध्यायात्मानमात्मनि ॥६८
गुरुप्रियहिते युक्ता गुरूणां वै प्रियेप्सवः ।
विमुच्य मानुषं जन्म विहरन्ति च देववत् ॥६९
महेश्वरेण ये प्रोक्ताः पञ्च धर्मा सनातनाः ।
तान् सर्वान् क्रमयोगेन उच्यमानान्नि बोधत ॥७०

वायुदेव ने कहा—पुराण में रुद्र ने पाँच धर्म बतलाये हैं। अक्लिष्ट कर्म करने वाले रुद्रों ने जिस प्रकार से माहेश्वर्य ज्ञान को बतलाया है उन समस्त धर्मों की जिन्होंने उपासना की है वह मैं बतलाता हूँ ॥ ६५ ॥ आदित्य, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, भृगु और जो अन्य देवगण हैं उन्होंने तथा यम, शुक्र जिन के पुरोगामी हैं उनके द्वारा तथा पितृ कालान्तक इन सबके द्वारा एवं अन्य बहुतों के द्वारा वे समस्त धर्म उपासित किये गये हैं ॥ ६६–६७ ॥ प्रक्षीण कर्म वाले और शरत्काल के अम्बर के सदृश विर्मल चित्त वाले वे मुनियों के समूह सन्ध्या में आत्मा में आत्मा की उपासना करते हैं ॥ ६८ ॥ अपने गुरु के प्रिय और हित के कार्यों में सदा युक्त रहने वाले और गुरु के प्रिय की इच्छा रखने वाले मनुष्य का जन्म त्याग कर देवताओं की तरह विहार किया करते हैं ॥ ६९ ॥ भगवान महेश्वर ने जो सनातन पाँच धर्म बतलाये हैं उन सबको क्रम के योग से मैं कहता हूँ मेरे द्वारा कहे जाने वाले उन सबको आप लोग भली-भाँति समझ लो ॥ ७० ॥

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
स्मरणञ्चैव योगेऽस्मिन् पञ्च धर्माः प्रकीर्त्तिताः ॥७१
तेषां क्रमविशेषेण लक्षणं कारणं तथा ।
प्रवक्ष्यामि तथा तत्वं यथा रुद्रेण भाषितम् ॥७२
प्राणायामगतिश्चापि प्राणस्यायाम उच्यते ।
स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मन्दो मध्योत्तमस्तथा ॥७३
प्राणानां च निरोधस्तु स प्राणायामसंज्ञितः ।
प्राणायामप्रमाणन्तु मात्रा वै द्वादश स्मृताः ॥७४

मन्दो द्वादशमानस्तु उद्घाता द्वादश स्मृता ।
मध्यमश्च द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः ॥७५
उत्तमस्त्रिरुद्घातो मात्रा षट्त्रिंशदुच्यते ।
स्वेदकम्पविषादाना जननो ह्युत्तम स्मृत ।७६
इत्येतद् त्रिविध प्रोक्त प्राणायामस्य लक्षणम् ।
प्रमाणञ्च समासेन लक्षणञ्च निबोधत ॥७७

प्राणायाम ध्यान, प्रत्याहार, धारणा और स्मरण ये पांच बातें इस योग मे धर्म के नाम से कही गयी हैं ॥ ७१ ॥ इन पांचों का क्रम विशेष से लक्षण, कारण तथा तत्व जैसा कि भगवान रुद्र ने कहा है उसे मैं बताता हूँ ॥ ७२ ॥ प्राणायाम की गति भी प्राण का आयाम कहा जाता है और वह भी तीन प्रकार का होता है। एक मन्द होता है दूसरा मध्यम और तृतीय उत्तम होता है ॥ ७३ ॥ प्राणो का निरोध जो किया जाता है वही प्राणायाम इस संज्ञा वाला होता है। प्राणायाम का प्रमाण द्वादश मात्रा बताई गई हैं ॥७४॥ मन्द उनका प्राणायाम द्वादश मात्रा वाला ही होता है। इसमे द्वादश उद्घात मात्रा बताई गई है। प्राणायाम का दूसरा मध्यम नाम वाला जो भेद है उसमें दो बार उद्घाता होता है और चौबीस मात्राएं हो जाती हैं। तीसरे उत्तम नामक भेद मे तीन बार उद्घात होकर छत्तीस मात्राऐ होती हैं। स्वेद, कम्प और विषाद का जनन करने वाला उत्तम कहा गया है ॥ ७५—७६ ॥ ये तीन प्रकार वाला प्राणायाम का लक्षण बताया गया है। संक्षेप मे इसका प्रमाण और लक्षण समझ लो ॥ ७७ ॥

सिंहो वा कुञ्जरो वापि तथाऽन्यो वा मृगो वने ।
गृहीत सेव्यमानस्तु मृदु समुपजायते ॥७८
तथा प्राणो दुराधर्ष सर्वेषामकृतात्मनाम् ।
योगत सेव्यमानस्तु स एवाभ्यासतो व्रजेत् ॥७९
स चैव हि यथा सिंह कुञ्जरो वापि दुर्बल ।
कालान्तरवशाद्योगाद्दम्यते परिमर्द्द नात् ॥८०
परिधाम गतो मन्द वश्यत्व चाधिगच्छति ।
परिधाय मनोदेव तथा जीवति मारुत ॥८१

वश्यत्वं हि तथा वायुर्गच्छते योगमास्थितः ।
तदा स्वच्छन्दतः प्राणं नयते यत्र चेच्छति ॥८२
यथा सिंहो गजो वापि वश्यत्वादवतिष्ठते ।
अभयाय मनुष्याणां मृगेभ्यः संप्रवर्त्तते ॥८३
यथा परिच्चितश्चायं वायुर्वै विश्वतो मुखः ।
परिध्यायमानः संरुद्धः शरीरे किल्बिषं दहत् ॥८४

सिंह हो अथवा हाथी हो तथा वन में अन्य कोई मृग हो, उसे ग्रहण कर लिया जावे और सेव्यमान बनाया जावे तो वह मृदु हो जाता है अर्थात् उस हिंस् पशु की नैसर्गिक क्रूरता का ह्रास होकर उसमें कोमल भाव आ जाता है ॥७८॥ इसी भाँति अकृतात्मा समस्त मानवों का प्राण बहुत ही दुराधर्ष होता है अर्थात् आत्म-बल से हीन मनुष्यों का प्राण धर्षण के अयोग्य होता है। यदि योग के अभ्यास से वही प्राण सेव्यमान होकर वहीं जाता है ॥ ७९ ॥ जिस प्रकार कोई दुर्बल शेर या हाथी कालान्तर में योग के वश से परिमर्दन होने से गम्य होता है उसी भाँति प्राण भी होता है । ८० ॥ मन मन्व को परिधान करके वश्यत्व को प्राप्त होता है। मारुत मनोदेव का परिधान करके जीवित रहता है ॥८१॥ योग में आस्थित होता हुआ वायु जिस प्रकार से वश्यत्व को प्राप्त होता है उसी तरह उस समय वह जहाँ भी चाहता है वहीं स्वच्छन्दता के साथ प्राण को ले जाता है ॥ ८२ ॥ जिस प्रकार से सिंह अथवा हाथी वश्यत्व हो जाने से अव-स्थित हो जाता है और मनुष्यों को पशुओं से भय रहित कर देता है ॥ ८३ ॥ उसी तरह यह विश्वतोमुख वायु अर्थात् सभी ओर सर्वत्र गमनशील वायु परि-चित होता हुआ परिध्यायमान होकर जब संरुद्ध होता है तो वह शरीर में जो किल्विष होता है उसका दाह कर दिया करता है ॥ ८४ ॥

प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मनः ।
सर्वे दोषाः प्रणश्यन्ति सत्वस्थश्चैव जायते ॥८५
तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये ।
सर्वयज्ञफलश्चैव प्राणायामश्च तत्समः ॥८६

अविन्दु य कुशाग्रेण मासि मासि समश्नुते ।
संवत्सरशत साग्र प्राणायामश्च तत्समम् ।।८७
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ।।८८
तस्माद्युक्त सदा योगी प्राणायामपरो भवेद् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा पर ब्रह्माधिगच्छति ।।८९

प्राणायाम से युक्त नियत आत्मा वाले विप्र के समस्त दोष नष्ट हो जाया करते हैं और फिर वह केवल सत्वगुण मे ही स्थित रहा करता है ।। ८५ ।। जो भी तपस्यायें तपी जाती हैं व्रत लिये जाते हैं और नियम ग्रहण किये जाते हैं तथा समस्त यज्ञों के करने का जो भी कुछ फल होता है वह सब प्राणायाम के समान होता है ।। ८६ ।। जो कोई मास-मास मे कुशा के अग्रभाग से जल के बिन्दु को ग्रहण करता है और सौ वर्ष तक करता रहता है यह सब प्राणायाम के तुल्य ही होता है ।। ८७ ।। प्राणायामो के द्वारा मनुष्य अपने समस्त दोषो को दग्ध कर दिया करता है धारणाओ के द्वारा किल्विष का नाश कर देता है, प्रत्याहार से विषयो का सहार कर देता है और ध्यान के द्वारा अनीश्वर गुणो का क्षय करता है ।। ८८ ।। इसलिये योगी को सर्वदा युक्त होकर प्राणायाम में परायण होना चाहिये । वह फिर समस्त पापो से विशुद्ध आत्मा वाला होकर परब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है ।। ८९ ।।

।। पाशुपत-योग ।।

एक महान्त दिवसमहोरात्रमथापि वा ।
अर्द्धमास तथा मासमयनाब्दयुगानि च ।।१
महायुगसहस्राणि ऋषयस्तपसि स्थिता ।
उपासते महात्मान प्राण दिव्येन चक्षुषा ।।२
अतऊर्द्धं प्रवक्ष्यामि प्राणायामप्रयोजनम् ।
फलञ्चैव विशेषेण यथाह भगवान् प्रभुः ।।३
प्रयोजनानि चत्वारि प्राणायामस्य विद्धि वै ।
शान्ति प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च चतुष्टयम् ।।४

घोराकारशिवानान्तु कर्मणां फलसम्भवम् ।
स्वयंकृतानि कालेन इहामुत्र च देहिनाम् ॥५
पितृमातृ प्रदुष्टानां ज्ञातिसम्बन्धिसङ्करैः ।
क्षपणं हि कषायाणां पापानां शान्तिरुच्यते ॥६
लोभमानात्मकानां हि पापानामपि संयमः ।
इहामुत्र हितार्थाय प्रशान्तिस्तप उच्यते ॥७

श्री वायु ने कहा—एक महान् दिन अथवा एक अहोरात्र अर्थात् पूरा दिन और पूरी रात्रि, अर्धमास अर्थात् पन्द्रह दिन, मास, अयन, अब्द अर्थात् वर्ष, युग और सहस्रों महायुग तक महान् आत्मा वाले ऋषिगण तपश्चर्या में स्थित होते हुये दिव्य चक्षु के द्वारा प्राणायाम की उपासना किया करते हैं ॥ १—२ ॥ इससे आगे प्राणायाम का प्रयोजन बतलाया जाता है और जैसा कि भगवान प्रभु ने कहा है उसका विशेष रूप से फल भी बतलाते हैं ॥ ३ ॥ प्राणायाम के चार प्रयोजन जान लो—शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और चौथा प्रसाद—ये प्रयोजन-चतुष्टय होता है ॥ ४ ॥ देहधारियों के घोर आकार वाले तथा शिव कर्मों की फल की उत्पत्ति स्वयंकृत इस लोक में अथवा परलोक में कुछ काल में होती है ॥ ५ ॥ पिता माता के द्वारा प्रकृष्ट रूप से दुष्ट एवं ज्ञाति-सम्बन्धी सङ्करों से दोषयुक्त कषाय पापों का क्षपण शान्ति कही जाती है ॥ ६ ॥ लोभ और मान-स्वरूप वाले पापों का संयम इस लोक में और परलोक में हित के लिये जो तप होता है "प्रशान्ति" कही जाती है ॥ ७ ॥

सूर्येन्दुग्रहतारार्णा तुल्यस्तु विषयो भवेत् ।
ऋषीणाञ्च प्रसिद्धानां ज्ञानविज्ञानसम्पदाम् ॥८
अतीतानागतानाञ्च दर्शनं साम्प्रतस्य च ।
बुद्धस्य समतां यान्ति दीप्तिः स्यात्तप उच्यते ॥९
इन्द्रियाणीन्द्रितार्थांश्च मनः पंच च मारुतान् ।
प्रसादयति येनासौ प्रसाद इति संज्ञितः ॥१०
इत्येष धर्मः प्रथमः प्राणायामश्चतुर्विधः ।
सन्निकृष्टफलो ज्ञेयः सद्यःकाल प्रसादजः ॥११

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य लक्षणम् ।
आसन च यथातत्वं युञ्जतो योगमेव च ॥१२
ओङ्कारं प्रथम कृत्वा चन्द्रसूर्यौ प्रणम्य च ।
आसन स्वस्तिकं कृत्वा पद्ममर्द्धासनन्तथा ॥१३
समजानुरेकजानुरुत्तान सुस्थितोऽपि च ।
समो दृढासनो भूत्वा सहृत्य चरणावुभौ ॥१४

सूर्य, चन्द्र, ग्रह और ताराओं के तुल्य विषय होता है। ज्ञान और विज्ञान की सम्पत्ति स्वरूप प्रसिद्ध ऋषियों के तथा जो पहिले हो चुके हैं उनके एवं भविष्य मे होने वालो के और बोध से युक्त इस समय में होने वाले के दर्शन समानता को प्राप्त होते हैं और वह दीप्ति होती है. यह तप कहा जाता है ॥ ८–६ ॥ इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के अर्थ अर्थात् विषय, मन और पाँच मारुतों को जिससे प्रसाद होता है इसलिये यह प्रसाद इस सज्ञा से युक्त हुआ है ॥१०॥ यह प्रथम धर्म है और प्राणायाम चार प्रकार का होता है। सद्य काल में प्रसाद से उत्पन्न होने वाला सन्निकृष्ट फल वाला जानना चाहिए ॥ ११ ॥ इसके आगे प्राणायाम का लक्षण बताते हैं और योग को ही करने वाले के यथातथ्य आसन को भी बताया जाता है ॥ १२ ॥ सर्व प्रथम ओङ्कार का उच्चारण करे फिर चन्द्र और सूर्य देव को प्रणाम करे इसके पश्चात् स्वस्तिक आसन करे तथा पद्म या अर्धासन करे ॥ १३ ॥ समान जानुओं वाला, एक जानु, उत्तान और सुस्थित, सम और दृढ आसन वाला होकर दोनो चरणो को सहृत करे ॥१४॥

सवृतास्योऽववद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रत. ।
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ छाद्य तथा प्रजननं तत ॥१५
किञ्चिदुन्नामितशिराः शिरो ग्रीवा तथैव च ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्र स्व दिशश्चानवलोकयन् ॥१६
तम. प्रच्छाद्य रजसा रज सत्त्वेन च्छादयेत् ।
तत सत्त्वस्थितो भूत्वा योगं युञ्जन् समाहित. ॥१७
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च मन. पञ्च स मारुतान् ।
विगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥१८

यस्तु प्रत्याहरेत् कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वतः ।
तथात्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥१६
पूरयित्वा शरीरन्तु स बाह्याभ्यन्तरं शुचिः ।
आकण्ठनाभियोगेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥२०
कलामात्रस्तु विज्ञेयो निमेषोन्मेष एव च ।
तथा द्वादशमात्रस्तु प्राणायामो विधीयते ॥२१

अपने मुख को बन्द करके—आँखों को बन्द करके और उरःस्थल को आगे की ओर निकालकर—पार्ष्णियों से वृषणों को तथा जननेन्द्रिय को छादित करे ॥१५॥ कुछ ऊँचा सिर करने वाला सिर और ग्रीवा (गरदन) को ऊँचे की ओर करे और अपनी नासिका के अग्र भाग को देखे तथा इधर-उधर किसी भी ओर दिशाओं में नहीं देखे ॥१६॥ रजोगुण से तमोगुण का प्रच्छादन करे और फिर सत्त्व के द्वारा रजोगुण का छादन करना चाहिए। इसके अनन्तर सत्त्वगुण में स्थित होकर बहुत समाहित भाव से योग का अभ्यास करे ॥१७॥ इन्द्रियों को और समस्त इन्द्रियों के अर्थों को—मन को तथा पाँच मारुतों को समवाय से विगृहीत करके प्रत्याहार करने का उपक्रम करना चाहिए ॥१८॥ जो कूर्म के द्वारा अपने अङ्गों की भाँति सभी ओर से अपनी कामनाओं का प्रत्याहरण करता है और आत्मरति वाला होता हुआ एकस्थ अर्थात् एकाग्र होकर अपने में ही आत्मा को देखता है ॥१६॥ बाहर और भीतर से शुचि होकर शरीर को पूरित करे और आकण्ठ नाभि के योग से प्रत्याहार का उपक्रम करना चाहिए ॥२०॥ एक कला मात्र निमेष और उन्मेष जानना चाहिए फिर द्वादश मात्रा वाला प्राणायाम किया जाता है ॥२१॥

धारणा द्वादशायामो योगो वै धारणाद्वयम् ।
तथा वै योगयुक्तश्च ऐश्वर्यं प्रतिपद्यते ।
वीक्षते परमात्मानं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥२२
प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मनः ।
सर्वे दोषाः प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते ॥२३
एवं वै नियताहारः प्राणायामपरायणः ।

जित्वा जित्वा सदा भूमिमारोहेत्तु सदा मुनि ॥२४
अजिता हि महाभूमिर्दोषानुत्पादयेद्बहून् ।
विवर्द्धयति सम्मोह न रोहेदजिता तत ॥२५
नालेन तु यथा तोय यन्त्रेणैव बलान्वित ।
आपिबेत प्रयत्नेन तथा वायुञ्जितश्रम ॥२६
नाभ्या च हृदये चैव कण्ठे उरसि चानने ।
नासाग्रे तु तथा नेत्रे भ्रुवोर्मध्येऽथ मूर्द्ध नि ॥२७
किञ्चिदूर्द्ध परस्मिश्च धारणा परमा स्मृता ।
प्राणापानसमाराधान् प्राणायाम स कथ्यते ॥२८

द्व दशायाम धारणा होती है और दो धारणाओ का योग होता है और उस प्रकार से योग से युक्त होकर ऐश्वर्य को प्राप्त हो जाता है फिर अपने तेज मे दीप्यमान परमात्मा को देख लेता है ॥२२॥ प्राणायाम स युक्त नियत आत्मा वाले विप्र के समस्त दोप नष्ट हो जाते हैं और फिर वह केवल सत्त्व मे ही स्थित रहने वाला होता है ॥२३॥ इस प्रकार से नियत आहार वाला और सवदा प्राणायाम करने तत्पर रहन वाला सदा मुनि जीत-जीत कर भूमि का आरोहण करे ॥२४॥ न जीती हुई महाभूमि बहुत से दोषो को उत्पन्न कर देती है और सम्मोह को बढा देती है इसलिये अजिता का कभी आरोहण नही करना चाहिए ॥२५॥ नाल यन्त्र से बल से अन्वित होता हुआ जिस प्रकार मे जल को पीता है उसी प्रकार से प्रयत्न से वायु को श्रम मे जीते ॥२६॥ नाभि में, हृदय में, कण्ठ मे, उरस्थल में, मुख मे, नासा के अग्रभाग मे, नेत्र म, भ्रूओ के मध्य में और मूर्धा म कुछ ऊर्ध्व में और पर मे धारणा परम कही गई है। प्राण और अपान के समारोध करने से वह प्राणायाम कहा जाता है ॥२७-२८॥

मनसो धारणा चैव धारणेति प्रकीर्तिता ।
निवृत्ति विषयाणान्तु प्रत्याहारस्तु सज्ञित ॥२९
सर्वेषा समवाये तु सिद्धि स्याद्योगलक्षणा ।
तयोरभ्यस्य योगस्य ध्यान वै सिद्धिलक्षणम् ।
ध्यानयुक्त सदा पश्येदात्मान सूर्यचन्द्रवत् ॥३०

सत्त्वस्यानुपपत्तौ तु दर्शनन्तु न विद्यते ।
अदेशकालयोगस्य दर्शनन्तु न विद्यते ॥३१
अग्न्यभ्याशे वने वापि शुष्कपर्णचये तथा ।
जन्तुव्याप्ते श्मशाने वा जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ॥३२
सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसंचये ।
उदपाने तथा नद्यान्न बाधातः कदाचन ॥३३
क्षुधाविष्टस्तथाऽप्रीतो न च व्याकुलचेतनः ।
युञ्जीत परमं ध्यानं योगी ध्यानपरः सदा ॥३४
एतान् दोषान् विनिश्चित्य प्रमादाद्यो युनक्ति वै ।
तस्य दोषाः प्रकुप्यन्ति शरीरे विघ्नकारकाः ॥३५

मन की धारणा ही धारणा इस नाम से कीर्तित हुई है। विषयों की निवृत्ति प्रत्याहार इस संज्ञा से युक्त हुआ है ॥२९॥ प्राणायामादि समस्तों के समवाय में ही योग के लक्षण वाली सिद्धि होती है। उससे उत्पन्न योग का ध्यान सिद्धि का लक्षण है। ध्यान से युक्त सदा आत्मा को सूर्यचन्द्र की भाँति देखता है ॥३०॥ सत्त्व की उपपत्ति न होने पर दर्शन नहीं होता है। देश और काल के योग से रहित को दर्शन नहीं होता है ॥३१॥ अग्नि के समीप में—वन में—शुष्क पत्तों के ढेर में—जन्तुओं से व्याप्त स्थान में—श्मशान में—पुराने टूटे-फूटे गोष्ठ में—चतुष्पथ में—शब्दों से अर्थात् कोलाहल पूर्ण स्थान में—भय से पूर्ण प्रदेश में—चैत्य और वल्मीकों के संचय वाली स्थान में—उदपान में—अन्नादि बाधा से युक्त—क्षुधा से आविष्ट—अप्रसन्न और व्याकुल चित्त वाला पुरुष सदा ध्यान में परायण योगी परम ध्यान कभी न करे। तात्पर्य यह है कि ऐसी परिस्थिति में ध्यानादि कर्म नहीं करना चाहिए ॥३२-३३-३४॥ इन उक्त दोषों का विशेष रूप से निश्चय करके प्रमाद से जो योग का अभ्यास करता है उसके दोष प्रकुपित हो जाते हैं और शरीर में विघ्नों के करने वाले हो जाते हैं ॥३५॥

जडत्वं बधिरत्वं च मूकत्वं चाधिगच्छति ।
अन्धत्वं स्मृतिलोपश्च जरा रोगस्तथैव च ॥३६

तस्य दोषा प्रकुप्यन्ति अज्ञानाद्यो युनक्ति वै ।
तस्माज्ज्ञानेन शुद्धेन योगी युञ्जेत्समाहित: ॥३७
अप्रमत्त: सदा चैव न दोषान् प्राप्नुयात् क्वचित् ।
तेषा चिकित्सा वक्ष्यामि दोषाणा च यथाक्रमम् ।
यथा गच्छन्ति ते दोषा प्राणायामसमुत्थिता. ॥३८
स्निग्धा यवागूमत्युष्णा भुक्त्वा तत्रावधारयेत् ।
एतेन क्रमयोगेन वातगुल्म प्रशाम्यति ॥३९
गुदावर्त्तप्रतीकारमिद कुर्य्याच्चिकित्सितम् ।
भुक्त्वा दधियवागूर्वा वायुरुर्द्ध्व ततो व्रजेत् ॥४०
वायुग्रथि ततो भित्त्वा वायुदेशे प्रयोजयेत् ।
तथापि न विशेष: स्याद्धारणा मूर्ध्नि धारयेत् ॥४१
युञ्जानस्य तनु तस्य सत्त्वस्थस्यैव देहिन. ।
गुदावर्त्तप्रतीघाते एतत् कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥४२

समय–स्थिति–देश आदि की कुछ भी परवाह न करके जो योग का अभ्यास किया करते हैं उनको जडता–बहरापन–मूकता हो जाती है । अन्धापन—स्मृति का लुप्त हो जाना—बुढापा और रोग आदि हो जाते है ॥३६॥ उस व्यक्ति के दोष प्रकुपित हो जाया करते हैं जो अज्ञान से योग का अभ्यास किया करते हैं । इसलिये शुद्ध ज्ञान से योगी को पूर्णतया समाहित होकर ही योगाभ्यास करना चाहिए ॥३७॥ जो अप्रमत्त अर्थात् प्रमाद म रहित होता है वह सर्वदा ही दोषो को प्राप्त नही किया करता है । उन दोषो की क्रम के अनुसार चिकित्सा बतलाते हैं जिससे कि प्राणायाम से उत्पन्न हुए दोष चले जाया करते हैं ॥३८॥ स्निग्ध अर्थात् घृत के स्नेह वाली अत्यन्त उष्ण यवागू को खाकर वहीं अवधारण करना चाहिए । इस क्रम के योग से वात गुल्म प्रशान्त हो जाता है ॥३९॥ गुदावर्त्त का प्रतीकार चिकित्सा को करते हुए यही करे कि दही अथवा यवागू खाकर रहे इससे वायु ऊर्ध्व को चली जाती है ॥४०॥ वायु की ग्रन्थि का भेदन कर उसे वायु के देश मे प्रयोजित करना चाहिए । तो भी विशेष न हो तो धारणा को मूर्धा मे धारण करे ॥४१॥ जो युञ्जान व्यक्ति है

उसकी स्थिति सत्त्व में होती है उस देही के गुदावर्त्त के प्रतिघात में यह चिकित्सा करनी चाहिए ।।४२।

सर्वगात्रप्रकम्पेन समारब्धस्य योगिनः ।
इमां चिकित्सां कुर्व्वीत तया संपद्यते सुखी ।।४३
मनसा यद्व्रतं किञ्चिद्विष्टम्भीकृत्य धारयेत् ।
उरोद्घाते उरःस्थानं कण्ठदेशे च धारयेत् ।।४४
त्वचोऽवघाते तां वाचि बाधिर्ये श्रोत्र योस्तथा ।
जिह्वास्थाने तृषार्त्तस्तु अग्रे स्नेहांश्च तन्तुभिः ।
फलं वै चिन्तयेद्योगी ततः संपद्यते सुखी ।।४५
क्षये कुष्ठे सकीलासे धारयेत्सर्वसात्त्विकीम् ।
यस्मिन् यस्मिन् रजोदेशे तस्मिन् युक्तो विनिर्दिशेत् ।।४६
योगोत्पन्नस्य विप्रस्य इदं कुर्याच्चिकित्सितम् ।
वंशकीलेन मूर्द्धानं धारयाणस्य ताडयेत् ।
मूर्ध्नि कील प्रतिष्ठाप्य काष्ठं काष्ठेन ताडयेत् ।।४७
भयभीयस्य सा संज्ञा ततः प्रत्यागमिष्यति ।
अथ वा लुप्तसंज्ञस्य हस्ताभ्यां तत्र धारयेत् ।।४८
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।
स्निग्धमल्पं च भुञ्जीत ततः संपद्यते सुखी ।।४९

शरीर के समस्त अङ्गों के प्रकम्प होने से समारब्ध योगी की इस चिकित्सा को करे उससे वह सुखी हो जाता है ।।४३।। जो कोई भी व्रत हो उसे मन से विष्टम्भी कृत बनाकर धारण करना चाहिए अर्थात् मन में पूर्ण दृढ़ता करके ही धारण करे । उर के उद्घात होने पर उरःस्थान को कण्ठ देश में धारण करना चाहिए ।।४४।। त्वक् का अवघात हो जाने पर उसको वाणी में धारण करे, श्रोत्रों के बधिरत्त्व में उसी प्रकार करे । तृषा से आर्त्त को जिह्वा के स्थान में आगे तन्तुओं से स्नेहों को धारण करे । योगी को फल का चिन्तन करना चाहिए इससे वह सुख वाला होता है ।।४५।। क्षय में–कुष्ठ में और सकीलास में सब सात्त्विकी को धारण करे । जिस-जिस में रजोदेश में युक्त

होते हुए उसका विनिर्देश करना चाहिए ॥४६॥ योगोत्पन्न विप्र की यह चिकित्सा करे कि बाँस की कील को मूर्धा मे धारण करते हुए ताडित करना चाहिए। मूर्धा मे कील प्रतिष्ठित करके काष्ठ को काष्ठ से ताडन करे ॥४७॥ भयभीत की सब वह संज्ञा आ जायगी। अथवा लुप्त संज्ञा वाले की हाथों से वहाँ धारण करे ॥४८॥ फिर संज्ञा को प्राप्त कर धारणा को मूर्धा मे धारण करे। थोडा स्निग्ध पदार्थ खाना चाहिए तब वह सुखी हो जाता है ॥४९॥

अमानुषेण सत्त्वेन यदा बुध्यति योगवित् ।
दिवं च पृथिवीञ्चैव वायुमग्निं च धारयेत् ॥५०
प्राणायामेन तत्सर्वं दह्यमानं वशीभवेत् ।
अथापि प्रविशेद्देहं ततस्तं प्रतिषेधयेत् ॥५१
ततः सस्तम्य योगेन धारयानस्य मूर्द्धनि ।
प्राणायामाग्निना दग्धं तत्सर्वं विलयं व्रजेत् ॥५२
कृष्णसर्पापराधं तु धारयेद्धृदयोदरे ।
महर्जनस्तपः सत्यं हृदि कृत्वा तु धारयेत् ॥५३
विषस्य तु फलं पीत्वा विशल्या धारयेत्ततः ।
सर्वतः सनगां पृथ्वीं कृत्वा मनसि धारयेत् ॥५४
हृदि कृत्वा समुद्रांश्च तथा सर्वांश्च देवताः ।
सहस्रेण घटानाञ्च युक्तः स्नायीत योगवित् ॥५५

जिस समय योग का वेत्ता अमानुष सत्त्व से जागृत हो जाता है और दिव तथा पृथिवी को—वायु को और अग्नि को धारण करे ॥५०॥ प्राणायाम से यह सब दह्यमान होकर वशीभूत हो जाते हैं और भी देह मे प्रवेश करे तो उसका प्रतिषेध कर देना चाहिए ॥५१॥ इसके अनन्तर योग से स्तम्भित कर मूर्धा मे धारण करने वाले के प्राणायाम की अग्नि मे दग्ध हुआ वह सब विलीन हो जाता है ॥५२॥ कृष्ण सर्प के अपराध को हृदय के उदर मे धारण करे और मह—जन—तप और सत्य को हृदय मे करके धारण करना चाहिए ॥५३॥ विष के फल को पीकर फिर विशल्या को धारण करे। सब ओर से पृथ्वी को ` से युक्त करके मन मे धारण करे। हृदय म समस्त समुद्रों को तथा सम्पूर्ण

देवों को करके योग के ज्ञाता पुरुष को एक सहस्र घटों से स्नान करना चाहिए ॥५४-५५॥

उदके कण्ठमात्रे तु धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।
प्रतिस्रोतोविषाविष्टो धारयेत् सर्वगात्रिकीम् ॥५६
शीर्णोऽर्कपत्रपुटकैः पिबेद्वल्मीकमृत्तिकाम् ।
चिकित्सितविधिर्ह्येष विश्रुतो योगनिर्मितः ॥५७
व्याख्यातस्तु समासेन योगदृष्टेन हेतुना ।
ब्रुवतो लक्षणं विद्धि विप्रस्य कथयेत् कचित् ॥५८
अथापि कथयेन्मोहात्तद्विज्ञानं प्रलीयते ।
तस्मात् प्रवृत्तिर्योगस्य न वक्तव्या कथञ्चन ॥५९
सत्त्वं तथारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रभा सुस्वरसौम्यता च ।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिः प्रथमा शरीरे ॥६०
आत्मानं पृथिवीञ्चैव ज्वलन्तीं यदि पश्यति ।
कृत्वान्यं विशते चैव विद्यात् सिद्धिमुपस्थिताम् ॥६१

कण्ठ मात्र जल में धारणा को मूर्धा में धारण करे। प्रति स्रोत के विष से आविष्ट होता हुआ सर्वगात्रिकी को धारण करना चाहिए ॥५६॥ शीर्ण होता हुआ आक के पत्तों के दोनों से वल्मीक की मृत्तिका को पीना चाहिए यह योग में निर्मित चिकित्सा की विधि बतलाई गई है ॥५७॥ योग में दृष्ट हेतु से इसकी संक्षेप में व्याख्या भी कर दी गई है। बोलने वाले से इसका लक्षण जानलो। किसी भी योग्य विप्र को इसे कह देना चाहिए ॥५८॥ और भी मोह के कारण यदि कहेगा तो वह विज्ञान प्रलीन हो जायगा। अतएव योग की प्रवृत्ति को किसी भी प्रकार से कहना नहीं चाहिए ॥५९॥ यह शरीर में प्रथम योग की प्रवृत्ति है। इसमें सत्त्वगुण की पूर्ण वृद्धि होती है—आरोग्य, अलोलुपता, वर्ण की कान्ति, सुन्दर स्वर और सौम्यता, अच्छा गन्ध और अल्प मूत्र तथा मल ये सब इसमें हो जाते हैं ॥६०॥ यदि अपने आपको और जलती हुई पृथिवी को देखे तो अन्य को करके प्रवेश करे और सिद्धि को उपस्थित होने वाली समझ लेना चाहिए ॥६१॥

।। योगमार्ग के विघ्न ।।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपसर्गा यथा तथा ।
प्रादुर्भवन्ति ये दोषा दृष्टतत्वस्य देहिनः ।।१
मानुष्यान् विविधान् कामान् काममेत ऋतुं स्त्रिय ।
विद्यादानफलञ्चैव उपसृष्टस्तु योगवित् ।।२
अग्निहोत्र हविर्यज्ञमेतत प्रायतन तथा ।
मायाकर्म धन स्वर्गमुपसृष्टस्तु काक्षति ।।३
एष कमसु युक्तस्तु सोऽविद्यावशमागत ।
उपसृष्टं जानीयाद्बुद्धया चैव विसर्जयेत् ।
नित्य ब्रह्मपरो युक्त उपसर्गात प्रमुच्यते ।।४
जितप्रत्युपसर्गस्य जितश्वासस्य देहिन ।
उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते सात्वराजसतामसा ।।५
प्रतिभाश्रवणे चैव देवानाञ्चैव दर्शनम ।
भ्रमावर्तश्च इत्येते सिद्धिलक्षणसंज्ञिता । ६
विद्या काव्य तथा शिल्प सर्वं वाचावृतानि तु ।
विद्यार्थाश्चोपतिष्ठन्ति प्रभावस्यैव लक्षणम् ।।७

श्री सूतजी ने कहा—अब इसके आगे जैसे-तैसे उपसर्गों को बतलाते हैं। तत्व को देख लेने वाले देहधारी को जो दोष प्रादुर्भूत हो जाते हैं ।।१।। मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाले अनेक प्रकार के कामों की और स्त्री की ऋतु की कामना करनी चाहिए और उपसृष्ट और योग का वेत्ता पुरुष विद्या दान के फल की इच्छा करे ।।२। जो उपसृष्ट अर्थात् उपसर्ग से युक्त होता है वह पुरुष अग्निहोत्र हवि यज्ञ तथा यह प्र यतन माया कर्म धन और स्वर्ग की इच्छा करता है ।३।, कर्मों में युक्त यह अविद्या के वश में आया हुआ होकर किया करता है उसे उपसृष्ट अर्थात् उपसर्ग से युक्त ही जान लेना चाहिए और बुद्धि से इन सब का त्याग कर देना चाहिए। जो नित्य ही ब्रह्म परायण युक्त होता है वह उपसर्ग से प्रमुक्त हो जाता है ।।४।। प्रत्युपसर्ग को जीत लेने वाले और श्वास को जीत लेने वाले देही को उपसर्ग प्रवृत्त हुआ करते हैं और वे सत्व से

युक्त, राजस तथा तामस होते हैं ॥५॥ प्रतिभा के श्रवण में और देवों के दर्शन तथा भ्रमावर्त्त इतने ये सिद्धि के लक्षण की संज्ञा वाले कहे गये हैं ॥६॥ विद्या, काव्य, शिल्प और सर्व आचावृत तथा विद्या के अर्थ में ये सब उपस्थित होते हैं और यह सब प्रभाव का ही लक्षण कहा जाता है ॥७॥

शृणोति शब्दात् श्रोतव्यान् योजनानां शतादपि ।
सर्वज्ञश्च विधिज्ञश्च योगी चोन्मत्तवद्भवेत् ॥८
यक्षराक्षसगन्धर्वान् वीक्षते दिव्यमानुषान् ।
वेत्ति तांश्च महायोगी उपसर्गस्य लक्षणम् ॥९
देवदा नवगन्धर्वान् ऋषींश्चापि तथा पितृन् ।
प्रेक्षते सर्वतश्चैव उन्मत्तं तं विनिर्द्दिशेत् ॥१०
भ्रमेण भ्राम्यते योगी चोद्यमानोऽन्तरात्मना ।
भ्रमेण भ्रान्तबुद्धेस्तु ज्ञानं सर्वं प्रणश्यति ॥११
वार्त्ता नाशयते चित्तं चोद्यमानोऽन्तरात्मना ।
वर्त्तनाक्रान्तबुद्धेस्तु सर्वं ज्ञानं प्रणश्यति ॥१२
आवृत्य मनसा शुक्लं पटं वा कम्बलं तथा ।
ततस्तु परमं ब्रह्म क्षिप्रमेवानुचिन्तयेत् ॥१३
तस्माच्चैवात्मनो दोषांस्तूपसर्गानुपस्थितान् ।
परित्यजेत मेधावी यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ॥१४॥

एकसौ योजन सेभी सुनने के योग्य शब्दों को सुनलेता है, सब कुछ का ज्ञाता तथा विधियों का जानने वाला योगी एक उन्मत्त की भाँति हो जाता है ॥८॥ यक्ष, राक्षस और गन्धर्वों को तथा दिव्य मनुष्यों को वह देखता है और महान् योग वाला उनको जानता है, यह सब उपसर्ग का ही लक्षण होता है ॥९॥ देव, दानव, गन्धर्वों को ऋषियों, को तथा पितृगणों को सब ओर वह देखा करता है। उसे एक उन्माद से युक्त उन्मत्त व्यक्तिनिर्दिष्ट करना चाहिए ॥१०॥ अन्त रात्मा के द्वारा प्रेरित होता हुआ योगी भ्रम से भ्राम्यमाण होता है और जो भ्रम से भ्रान्त बुद्धि वाला हो जाता है उसका सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो जाया करता है ॥११॥ अन्तरात्मा के द्वारा प्रेरित होने वाला वार्त्ता का नाश कर देता है

और जो वर्त्तन से आक्रान्त बुद्धि वाला होना है उसका समस्त ज्ञान स्पृष्ट रूप से नष्ट हो जाता है ।।१२।। उस स्थिति में मन से शुक्ल वस्त्र या कम्बल से आवृत होकर इसके अनन्तर शीघ्र ही ब्रह्म का अनुचिन्तन करना चाहिए ।।१३।। उस से ही आत्मा के दोषों को तथा उक्तप्रकार के उपस्थित उपसर्गों को मेधा वाले पुरुष को परित्याग कर देना चाहिए यदि वह अपनी आत्मा की सिद्धि की इच्छा करता है। तो योगको सिद्धि के लिये ऐसे त्याग करने की परमावश्यकता होती है ।।१४।।

ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षोरगमहासुरा ।
उपसर्गेषु सयुक्ता आवर्त्तन्ते पुन पुनः ।।१५
तस्माद्युक्त सदा योगी लघ्वाहारी जितेन्द्रियः ।
तथा सूक्ष्म सुमूक्ष्मेषु धारणा मूर्ध्नि धारयेत् ।।१६
ततस्तु यागयुक्तस्य जितनिद्रस्य योगिन ।
उपसर्गा पुनश्चान्ते जायन्ते प्राणसज्ञका. ।।१७
पृथिवी धारयेत्सर्वा तमश्चापो ह्यनन्तरम् ।
ततोऽग्निश्चैव सर्वेषामाकाशं मन एव च ।।१८
तत पग पुनर्बुद्धि धारयेद्यत्नतो यती ।
सिद्धीनाञ्चैव लिङ्गानि दृष्ट्वा दृष्ट्वा परित्यजेत् ।।१९
पृथ्वी धारयमाणस्य मही सूक्ष्मा प्रवर्तते ।
अपो धारयमाणस्य आपः सूक्ष्मा भवन्ति हि ।
शीता रसा. प्रवर्तन्ते सूक्ष्मा ह्यमृतसन्निभा. ।।२०
तेजो धारयमाणस्य तेज. सूक्ष्मं प्रवर्त्तते ।
आत्मान मन्यते तेजस्तद्भावमनुपश्यति ।।२१

ऋषिगण, देवता, गन्धर्व, यक्ष, उरग और महान् असुर गण ये सब उपसर्ग में सयुक्त होकर बार-बार आवर्तित हुआ करते हैं ।।१५।। इसलिये जो युक्त योगी होता है उसे सर्वदा अल्प और हल्का आहार करने वाला, इन्द्रियों को जीत लेने वाला होना चाहिए तथा सूक्ष्मों में सुप्त रहने वाला होकर उसे मूर्धा में धारणा को धारण करना चाहिए ।।१६।। इस प्रकार से रहने वाले निद्रा

का जीत लेने वाले योग से युक्त योगी को अन्त में फिर ये उपसर्ग प्राणसंज्ञा वाले हो जाया करते हैं ॥१७॥ समस्त पृथिवी को धारण करे इसके अनन्तर जलों को, फिर अग्नि को और सबके बाद आकाश को धारण करे ॥१८॥ इसके अनन्तर यती को मनसे भी परा बुद्धि को यत्न पूर्वक धारण करनी चाहिए। और इस बीच में जो भी सिद्धियों के चिह्न उपस्थित हों उन्हें देख,देख कर त्याग देना चाहिए ॥१६॥ पृथ्वी को धारण करने वाले के लिये यह मही अति सूक्ष्म प्रवृत्त होती है। जलों को धारण करने वाले के लिये जल सूक्ष्म हो जाते हैं और समस्त रस शीत तथा अमृत के तुल्य प्रवर्तमान हुआ करते हैं ॥२०॥ जब तेज को धारण किया जाता है तो वह तेज भी सूक्ष्म हो जाता है और आत्मा को तेज मानता है और तेज तद्भाव का ही अनुदर्शन किया करता है ॥२१॥

आत्मानं मन्यते वायुं वायुवन्मण्डलं प्रभो।
आकाशं धारयाणस्य व्योम सूक्ष्मं प्रवर्त्तते ॥२२
पश्यते मण्डलं सूक्ष्मं घोषश्चास्य प्रवर्त्तते ।
आत्मानं मन्यते नित्यं वायुः सूक्ष्मः प्रवर्त्तते ॥२३
तथा मनो धारयतो मनः सूक्ष्मं प्रवर्त्तते।
मनसा सर्वभूतानां मनस्तु विशते हि सः।
बुद्धया बुद्धि यदा युङ्क्ते तदा विज्ञाय बुद्धयते ॥२४॥
एतानि सप्त सूक्ष्माणि विदित्वा यस्तु योगवित्।
परित्यजति मेधावी स बुद्ध्या परमं व्रजेत् ॥२५॥
यस्मिन् यस्मिश्च संयुक्तो भूत ऐश्वर्यलक्षणे।
तत्रैव सङ्गं भजते तेनैव प्रविनश्यति ॥२६॥
तस्माद्विदित्वा सूक्ष्मणि संसक्तानि परस्परम्।
परित्यजति यो बुद्धया स परं प्राप्नुयाद्द्विजः ॥२७
दृश्यन्ते हि महात्मान ऋषयो दिव्यचक्षुषः।
संसक्ताः सूक्ष्मभावेषु ते दोषास्तेषु संज्ञिताः ॥२८

हे प्रभो ! आत्मा को वायु मानता है और समस्त मण्डल को वायु की भाँति देखता है। आकाश को धारयमाण का व्योम सूक्ष्म हो जाता है ॥२२॥

वह मण्डल को सूक्ष्म देखता है और इसका घोष प्रवृत्त होता है। जो आत्मा को वायु मानता है उसको वायु सूक्ष्म होकर प्रवर्तमान हुआ करता है ॥२३॥ उसी प्रकार से मन को धारण करने वाले का मन सूक्ष्म होता हुआ प्रवर्तमान होता है। मन से समस्त प्राणियों के मन में वह प्रवेश कर जाता है। जब बुद्धि से बुद्धि को युक्त करता है तब ज्ञान प्राप्त करके समझा जाया करता है ॥२४॥ ये सात सूक्ष्म होते हैं इनको जान कर जो योग का ज्ञाता परित्याग करता है वही मेधावी बुद्धि से परम को प्राप्त होता है ॥२५॥ यह प्राणी जिसमें संयुक्त होता हुआ उस ऐश्वर्य के लक्षण वाले में उसके सङ्ग का सेवन करता है उसी से उसका नाश हो जाता है ॥२६॥ इसलिये इन समस्त सूक्ष्मों को जोकि एक दूसरे से आपस में संसक्त हो रहे हैं भली भाँति जानकर जो बुद्धि से त्याग कर देता है वही द्विज परम की प्राप्ति किया करता है ॥२७। परम महान् आत्मा वाले, दिव्य चक्षु वाले ऋषि लोग सूक्ष्मभावों में संसक्त होते हुए दिखलाई दिया करते हैं वे उनमें दोषों की संज्ञा वाले ही रह जाते हैं ॥२८॥

तस्मान्न निश्चय. कार्य. सूक्ष्मेष्विह कदाचन।
ऐश्वर्याज्जायते रागो विराग ब्रह्म चोच्यते ॥२६

विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गञ्च महेश्वरम्।
प्रधान विनियोगज्ञः पर ब्रह्माधिगच्छति ॥३०

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोध' स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्ति।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञा. षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥३१

नित्य ब्रह्मध्नो युक्त उपसर्गै. प्रमुच्यते।
जितश्वासोप सर्गस्य जितरागस्य योगिन।
एका वहि शरीरेऽस्मिन् धारणा सर्वकामिकी ॥३२

विशेषदा द्विजो युक्तो यत्र यत्रार्पयेन्मन.।
भूतान्याविशते वापि त्रैलोक्यञ्चापि कम्पयेत् ॥३३

एतया प्रविशेद्देहं हित्वा देह पुनस्त्विह।
मनोद्वार हि योगानामादित्यञ्च विनिर्द्दिशेत् ॥३४

आदानादिक्रियाणान्तु आदित्य इति चोच्यते ।
एतेन विधिना योगी विरक्तः सूक्ष्मवर्ज्जितः ।
प्रकृति समतिक्रम्य रुद्रलोके महीयते ॥३५

इसलिये यहाँ पर इन सूक्ष्मों का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए । ऐश्वर्य से ही राग की उत्पत्ति हुआ करती है और विराग हो ब्रह्म कहा जाता है ॥२६॥ सात प्रकार के इन सूक्ष्मों का भली भाँति ज्ञान प्राप्त करके और छे अङ्गों से महेश्वर को जानकर जोकि प्रधान है । इनके अनन्तर विनियोग का आत्मा पुरुष पर ब्रह्म को प्राप्त किया करता है ॥३०॥ सर्वज्ञता का होना, पूर्णतया मानसिक तृप्ति का हो जाना, अनादि बोधपूर्ण स्वाधीनता, नित्य शक्ति के लोप का अभाव, अनन्तशक्ति का होना और विभुकी विधि का ज्ञान रखना ये महेश्वर के छे अङ्ग होते है ॥३१॥ नित्य ही जो ब्रह्म रूपी धन से धनराज होता है । श्वास के उपसर्ग को जीत लेने वाले तथा राग को जीत लेने वाले योगी को इस शरीर में बाहिर एक ही सर्वकामिनी धारणा होनी चाहिये ॥ ३२ ॥ जिस समय में युक्त द्विज जहां, जहां पर मन को अर्पित करे तथा भूतों में आविष्ट होवे तो वह त्रैलोक्य को कँपादेता है ॥३३॥ इससे यहाँ पर-देह का त्यागकर फिर देह मे प्रवेश करे और आदित्व को तथा योगों के मनोद्वार की विनिर्दिष्ट करना चाहिए ॥३४॥ आदानादि क्रियाओं को आदित्य यह कहा जाता है । इस विधि से सूक्ष्म से वर्जित विरक्त योगी प्रकृति का भली भाँति क्रमण करके रूद्रलोक में प्रनिष्ठित हुआ करता है ॥३५॥

ऐश्वर्यगुणसम्प्राप्तं ब्रह्मभूतन्तु तं प्रभुम् ।
देवस्थानेषु सर्वेषु सर्वतस्तु निवर्त्तते ॥३६
पैशाचेन पिशाचांश्च राक्षसेन च राक्षसान् ।
गान्धर्वेण च गन्धर्वान् कौबेरेण कुबेरजान् ॥३७
इन्द्रमैन्द्रेण स्थानेन सौम्यं सौम्येन चैव हि ।
प्रजापति तथा चव प्राजापत्येन साधयेत ॥३८
ब्राह्मं ब्राह्म्येन चाप्येवमुपामन्त्रयते प्रभुम् ।
तत्र सक्तस्तु उन्मत्तस्तस्मात्सर्वं प्रवर्त्तते ॥३९

नित्य ब्रह्मपरो युक्त. स्थानान्येतानि वै त्यजेत् ।
असज्यमान. स्थानेषु द्विज. सर्वगतो भवेत् ॥४०

ऐश्वर्य के गुण से सम्प्राप्त ब्रह्मभून उस प्रभु को सब ओर समस्त दे स्थानो मे निर्दोष रूप से बरतता है ॥ ३६ ॥ पिशाचो को पिशाच से, राक्ष को राक्षस से, गन्धर्वों को गन्धर्व से तथा कुबेरजो को कौबेर से अर्थात् कुबेर स्थान से साधन करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इन्द्र को ऐन्द्र स्थान से, सौम्य व सौम्य स्थान से तथा प्रजापति को प्राजापत्य स्थान से साधन करना चाहि ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार से ब्राह्म से ब्राह्म प्रभु का उपानिश्रण करता है। वहाँ पर सक्त होने वाला उन्मत्त हो जाता है। उसी से सब प्रवृत्त होता है ॥ ३६ ॥ नित्य ही ब्रह्म मे परायण रहने वाले युक्त पुरुष को ये स्थान त्याग देने चाहिये। स्थानो मे आसज्यमान द्विज सर्वगत हो जाता है ॥ ४० ॥

॥ योग-मार्ग के ऐश्वर्य ॥

अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि ऐश्वर्यगुण विस्तरम् ।
येन योग विशेषेण सर्वलोकानतिक्रमेत् ॥१
तत्राष्टगुणमैश्वर्य योगिना समुदाहृतम् ।
तत्सर्वं क्रमयोगेन उच्यमान निबोधत ॥२
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च ।
प्राकाम्यञ्चैव सर्वत्र ईशित्वञ्चैव सर्वत ॥३
वशित्वमथ सर्वत्र यत्र कामावसायिता ।
तच्चापि विविध ज्ञेयमैश्वर्य सर्वकामिकम् ॥४
सावद्य निरवद्य च सूक्ष्मञ्चैव प्रवर्त्तते ।
सावद्य नाम तत्तत्व प चभूतात्मक स्मृतम् ॥५
निरवद्य तथा नाम प चभूतात्मक स्मृतम् ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव अहङ्कारश्च वै स्मृतम् ॥६
तत्र सूक्ष्मप्रवृत्तन्तु प चभूतात्मकं पुन ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव बुद्ध्यहङ्कार सज्ञितम् ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—इससे आगे ऐश्वर्य गुणो का विस्तार से वर्णन

किया जाता है जिस योग विशेष के द्वारा समस्त लोकों का अतिक्रमण किया करता है ॥ १ । वहाँ पर आठ गुणों वाला योगियों का ऐश्वर्य कहा गया है। वह सब क्रम के योग से कहा जाने वाला है उसे आप लोग भली-भाँति समझ लेवें ॥ २ ॥ अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, सर्वत्र प्राकाम्य और सब ओर ईशत्व तथा सर्वत्र वशित्व जहाँ कि कामावसायिता होवे । वह भी सर्वकामिक ऐश्वर्य अनेक प्रकार वाला जानना चाहिये ॥ ३—४ ॥ वह ऐश्वर्य सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म प्रवर्त्तमान हुआ करता है। इसमें जो सावद्य होता है वह तत्व होता है जो कि पञ्चभूतात्मक होता है ॥ ५ ॥ निरवद्य यह नाम भी पञ्च-भूतात्मक कहा गया है। इन्द्रियों का समूह, मन और अहङ्कार कहा गया है ॥ ६ ॥ वहाँ पर पुनः सूक्ष्म प्रवृत पञ्चभूतात्मक इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहङ्कार संज्ञा वाला होता है ॥ ७ ॥

तथा सर्वमयश्चैव आत्मस्था ख्यातिरेव च ।
संयोग एवं त्रिविधः सूक्ष्मेष्वेव प्रवर्त्तते ॥८
पुनरष्टगुणस्यापि तेष्वेवाथ प्रवर्त्तते ।
तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यथाह भगवान् प्रभुः ॥९
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु जीवस्यानियतः स्मृतः ।
अणिमा च यथाव्यक्तं सर्वं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥१०
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां दुष्प्राप्यं समुदाहृतम् ।
तच्चापि भवति प्राप्यं प्रथमं योगिनां बलात् ॥११
लम्बनं प्लवनं योगे रूपमस्य सदा भवेत् ।
शीघ्रगं सर्वभूतेषु द्वितीयं तत्पदं स्मृतम् ॥१२
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां प्राप्तिः प्राकाम्यमेव च ।
महिमा चापि यो यस्मिंस्तृतीयो योग उच्यते ॥१३
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु त्रैलोक्यमगमं स्मृतम् ।
प्रकामान् विषयान् भुंक्ते न च प्रतिहतः क्वचित् ।
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां सुख-दुःखं प्रवर्त्तते ॥१४

इसी प्रकार से सर्वमय और आत्मा में रहने वाली ख्याति ही तीन प्रकार

का सयोग सूक्ष्मों मे ही प्रवृत्त होता है ॥ ८ ॥ पुन. आठ गुणो वाले की भी उनमे जो प्रवृत्ति होती है उसके रूप को बतलाते हैं जो कि भगवान प्रभु ने बनाया है ॥ ६ ॥ त्रैलोक्य मे समस्त भूतो मे जीव की अनियतता कही गई है। अणिमा जिस प्रकार से अव्यक्त है उसमे सभी कुछ प्रतिष्ठित होता है ॥१०॥ तीनो लोको मे जो परम दुष्प्राप्य बताया गया है वह भी योगियो को पहिले बल-पूर्वक प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ योग मे इसका रूप सर्वदा लम्बन एव प्लवन होता है। शीघ्र गमन करने वाला समस्त भूतो में उसका द्वितीय पद कहा गया है ॥ १२ ॥ त्रैलोक्य मे समस्त भूतो की प्राप्ति और प्राकाम्य तथा जो जिसमे महिमा होती है वह भी तृतीय योग कहा जाता है ॥ १३ ॥ त्रैलोक्य मे समस्त भूतो में त्रैलोक्य अगम कहा गया है। वह विषयो को प्रकृष्ट कामना के अनु-सार भोग करता है और कोई कहीं भी प्रतिहति करने वाला नही होता है। त्रैलोक्य मे सर्वभूतो का सुख और दुःख प्रवृत्त होता है ॥ १४ ॥

ईशो भवति सर्वत्र प्रविभागेन योगवित् ।
वश्यानि चैव भूतानि त्रैलोक्ये सचराचरे ।
भवन्ति सर्वकार्येषु इच्छतो न भवन्ति च ॥१५
यत्र कामावसायित्व त्रैलोक्ये सचराचरे ।
इच्छया चेन्द्रियाणि स्युर्भवन्ति न भवन्ति च ॥१६
शब्द स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चैव मनस्तथा ।
प्रवर्त्तन्तेऽस्य चेच्छातो न भवन्ति तथेच्छया ॥१७
न जायते न म्रियते भिद्यते न च छिद्यते ।
न दह्यते न मुह्यते हीयते न च लिप्यते ॥१८
न क्षीयते न क्षरति न खिद्यति कदाचन ।
क्रियते चैव सर्वत्र तथा विक्रियते न च ॥१९
अगन्धरसरूपस्तु स्पर्शशब्दविवर्जित ।
अवर्णो ह्यवरश्चैव तथा वर्णस्य कर्हिचित् ॥२०
भुक्तेऽथ विषयाश्चैव विषयैर्न च युज्यते ।
ज्ञात्वा तु परम सूक्ष्म सूक्ष्मत्वाच्चापवर्गक. ॥२१

व्यापकस्त्वपवर्गाच्च व्यापित्वात्पुरुषः स्मृतः ।
पुरुषः सूक्ष्मभावात्तु ऐश्वर्ये परतः स्थितः ॥२२
गुणान्तरन्तु ऐश्वर्ये सर्वतः सूक्ष्म उच्यते ।
ऐश्वर्य्यमप्रतीघाति प्राप्य योगमनुत्तमम् ।
अपवर्गं ततो गच्छेत् सुसूक्ष्मं परमं पदम् ॥२३

योग के ज्ञान को रखने वाला प्रविभाग से सर्वत्र ईश होता है। इस चराचरात्मक त्रैलोक्य में समस्त भूत वश्य होते हैं। समस्त कार्यो में इच्छा करते हुये नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ इस चराचर त्रैलोक्य में जहाँ पर कामावसायित्व होता है वहाँ इच्छा से इन्द्रियाँ होती हैं और नहीं होती हैं ॥ १६ ॥ शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप तथा मन इसकी इच्छा से प्रवृत्त होते हैं तथा इच्छा से नहीं होते हैं ॥ १७ ॥ यह न उत्पन्न होता है, न मरता है, न भिन्न होता है, न छेदन किया जाता है, न जलाया जाता है, न मोह को प्राप्त होता है, न दीयमान होता है, न लिप्त ही होता है, न यह क्षीण होता है, न क्षर होने वाला होता है और न कभी खिन्न होता है। यह सर्वत्र किया जाता है और विकार युक्त नहीं होता है ॥ १८—१९ ॥ बिना गन्ध, रस और रूप वाला तथा स्पर्श और शब्द से विवर्जित, बिना वर्ण वाला तथा वर्ण का अवर, स्वरूप वाला यह होता है ॥ २० ॥ और विषयों का भोग करता है तथा विषयों से युक्त नहीं होता है। परम सूक्ष्म का ज्ञान प्राप्त करके सूक्ष्मत्व होने से अपवर्ग से व्यापक है और व्यापित्व होने से पुरुष कहा गया है। सूक्ष्मभाव से यह पुरुष ऐश्वर्य में परे स्थित होता है ॥ २२ ॥ ऐश्वर्य में दूसरा गुण सब ओर सूक्ष्म कहा जाता है। ऐश्वर्य का अप्रतिघाती परम श्रेष्ठ योग को प्राप्त करके अति सूक्ष्म परम पद अपवर्ग को जाता है ॥ २३ ॥

॥ पाशुपत योग का स्वरूप ॥

न चैवमागतो ज्ञानाद्रागात् कर्म्म समाचरेत् ।
राजसं तामसं वापि भुक्त्वा तत्रैव युज्यते ॥१
तथा सुकृतकर्म्मा तु फलं स्वर्गे समश्नुते ।
तस्मात् स्थानात् पुनर्भ्रष्टो मानुष्यमनुपद्यते ॥२

तस्माद्ब्रह्म परं सूक्ष्मं ब्रह्म शाश्वतमुच्यते ।
ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव परम सुखम् ॥३
परिश्रमस्तु यज्ञाना महतार्थेन वर्त्तते ।
भूयो मृत्युवशं याति तस्मान्मोक्षः पर सुखम् ॥४
अथ वै ध्यानसयुक्तो ब्रह्मयज्ञारायणः ।
न स स्याद् व्यापितु शक्यो मन्वन्तरशतैरपि ॥५
दृष्ट्वा तु पुरुष दिव्य विश्वाख्य विश्वरूपिणम् ।
विश्वपादशिरोग्रीव विश्वेश विश्वभावनम् ।
विश्वगन्ध विश्वमाल्य विश्वाम्बरधर प्रभुम् ॥६
गोभिर्मही सयतते पतत्रिण महात्मान परमर्मति वरेण्यम् ।
कवि पुराणमनुशासितार सूक्ष्माच्च सूक्ष्म महतो महान्तम् ।
योगेन पश्यन्ति न चक्षुषा त निरिन्द्रिय पुरुष रुक्मवर्णम् ॥७

श्री वायु देव ने कहा—इस प्रकार से आया हुआ ज्ञान से अथवा राग से कर्म का आचरण न करे। राजस हो अथवा तामस हो उसका भोग करके वहाँ पर ही मुक्त होना है ॥ १ ॥ यदि कोई सुकृत कर्मों के करने वाला है तो वह अपने सुकृत कर्मों के प्रभाव से उनका फल स्वर्ग मे भोगता है। जब पुण्य-कर्मों के फल का भोग समाप्त हो जाता है तो उस स्थान से भ्रष्ट होकर पुनः मनुष्य लोक को प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥ इसमे ब्रह्म परम सूक्ष्म है और ब्रह्म शाश्वत कहा गया है अर्थात् ब्रह्म सर्वदा रहने वाला कहा जाता है। ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिये क्योंकि ब्रह्म ही परम सुख होता है ॥ ३ ॥ यज्ञो के करने मे महान् परिश्रम करना पड़ता है और वह भी बहुत अधिक धन से सम्पन्न किया जाता है। यज्ञादि के करने वाला भी फिर मृत्यु के वश मे हो जाता है। इसलिये मोक्ष का प्राप्त करना ही परम सुख होता है ॥ ४ ॥ ध्यान से सयुक्त होता हुआ जो ब्रह्म यज्ञ मे परायण होता है वह सौ मन्वन्तरो में भी मारा नही जा सकता है ॥ ५ ॥ विश्व नाम वाले, विश्व के रूप वाले, विश्व के पाद, शिर और ग्रीवा वाले, विश्व के स्वामी, विश्व का पालन करने वाले, दिव्य पुरुष, विश्व की गन्ध वाले, विश्व की माल्य, विश्व के अम्बर को धारण करने वाले

प्रभु का योग से दर्शन करते हैं ॥ ६ ॥ मेरी इन्द्रियों से पतत्रि, महान् आत्म वाले, परम मति, वरेण्य, कवि, पुराण, अनुशासन करने वाले, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, महान् से भी महान् को संयत करती है उस इन्द्रियों से रहित सुवर्ण के समान वर्ण वाले पुरुष को योग से देखते हैं, चक्षु से नहीं देखते हैं ॥ ७ ॥

अलिङ्गिनं पुरुषं रुक्मवर्णं सलिङ्गिनं निर्गुणं चेतनं च।
नित्यं सदा सर्वगतन्तु शौचं पश्यन्ति युक्त्या ह्यचलं प्रकाशम् ॥८
तद्भावितस्तेजसा दीप्यमानः अपाणि पादोदरपार्श्वजिह्वः।
अतीन्द्रियोऽथापि सुसूक्ष्म एकः पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः ॥९
नास्यास्त्यबुद्धं न च बुद्धिरस्ति स वेद सर्वं न च वेदवेद्यः।
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तं सचेतनं सर्वगतं सुसूक्ष्मम् ॥१०
तामाहुर्मुनयः सर्वे लोके प्रसवधर्मिणीम्।
प्रकृतिं सर्वभूतानां युक्ताः पश्यन्ति चेतसा ॥११
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुति (म) माँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१२
युक्ता योगेन चेशानं सर्वतश्च सनातनम्।
पुरुषं सर्वभूतानां तस्माद्ध्याता न मुह्यते ॥१३
भूतात्मानं महात्मानं परमात्मानमव्ययम्।
सर्वात्मानं परं ब्रह्म तद्वै ध्यात्वा न मुह्यति ॥१४

बिना लिङ्ग (चिह्न) वाले, हेम के सदृश वर्ण से युक्त, सलिङ्गी, निर्गुण, चेतन, नित्य, सदा सब में रहने वाले, शौच, अचल और प्रकाश स्वरूप पुरुष को युक्ति से देखते हैं ॥८। उसकी भावना से युक्त तेज से दीप्यमान, पाणि, पाद, उदर, पार्श्व और जिह्वा से रहित, इन्द्रियों की पहुँच से परे, बिना नेत्रों वाला और बिना कानों वाला अब भी सुसूक्ष्म एक वह देखता है और सुनता भी है ॥९॥ इसको कुछ भी अबुद्ध नहीं है, इसके बुद्धि भी नहीं है, वह सब को जानता है और वह वेदों के द्वारा भी जानने के योग्य नहीं हैं अर्थात् वेद भी उसके यथार्थ स्वरूप को नहीं बता सकते हैं। उसको सब मे प्रथम पुरुष, महान, सचेतन, सर्वगत और सुसूक्ष्म कहते हैं ॥१०॥ लोक

मे सब मुनिगण उस को समस्त प्राणियो के प्रसव के धर्म वाली प्रकृति कहते हैं। जो योग से युक्त होते हैं वे ध्यान मे चित्त से उसे देखते हैं। ११॥ अब उसके स्वरूप का वर्णन करते हैं कि वह सभी ओर पाणि तथा पादो वाला है, सब ओर नेत्र शिर और मुख वाला है, सब तरफ श्रुतिमान् है और लोक में सब को आवृत करके स्थित रहता है ॥१२॥ जो युक्त होते हैं वे योग से उस ईशान और सर्वत्र स्थित सनातन को एव समस्त भूतो के पुरुष को देखते हैं। इसलिये जो ध्याता अर्थात् ध्यान-योगी है वे कभी मोह को प्राप्त नही होते हैं ॥१३॥ समस्त भूतो की आत्मा, महान् आत्मा वाले, अव्यय, सब की आत्मा परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करके मोहित नही होते हैं ॥१४॥

पवनो हि यथा ग्राह्यो विचरन् सर्वमूर्तिपु ।
पुरि शेते तथाभ्रे च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
अथ चेल्लुप्तधर्म्मात्तु सविशेषेश्च कर्म्मभिः ॥१५
ततस्तु ब्रह्मयोन्या वै शुक्रशोणितसयुतम् ।
स्त्रीपुमासप्रयोगेण जायते हि पुन पुन ॥१६
ततस्तु गर्भकाले तु कलन नाम जायते ।
कालेन कलनश्चापि बुद्बुदश्च प्रजायते ॥१७
मृत्पिण्डस्तु यथा चक्रे चक्रवातेन पीडित ।
हस्ताभ्या क्रियमाणस्तु विश्वत्वमुपगच्छति ॥१८
एवमात्मास्थिसयुक्तो वायुना समुदीरितः ।
जायते मानुपस्तत्र यथा रूप तथा मन. ॥१
वायु सम्भवते तेपा वातात् सञ्जायते जलम् ।
जलात्सभवति प्राण प्राणाच्छुक्र विवर्द्धते ॥२०
रक्तभागास्त्रयस्त्रिशच्छुक्रभागाश्चतुर्दश ।
भागतोऽर्द्धपल कृत्वा ततो गर्भे निपेवते ॥२१

जिस तरह पवन समस्त मूर्तियों मे विचरता हुआ ग्राह्य हुआ करता है उसी भाँति वह पुर मे शयन करता है तथा अभ्र में भी स्थित रहता है इसी लिये 'पुरुष'—यह कहा जाता है । इसके अनन्तर सविशेष कर्मों से लुप्त

धर्म वाला होता है ॥१५॥ इसके पश्चात् वह ग्रहा शुक्र और शोणित से संयुत होकर योनि में स्त्री और पुमान् के प्रयोग से बार-बार उत्पन्न होता है ॥१६॥ सर्वप्रथम योनि में पुरुष के शुक्र और स्त्री के शोणित के संयोग से गर्भ की स्थिति होती है तो वह उस गर्भ के समय में पहिले कलन नाम वाला होता है। कुछ समय में वही कलन बुद्बुद हो जाता है ॥१७॥ जिस तरह मिट्टी का एक पिण्ड चक्र वात के द्वारा पीड़ित किया जाता है और हाथों से बनाया हुआ विश्वत्व को प्राप्त हो जाता है ॥१८॥ इसी प्रकार से वायु के द्वारा समुदीरित वह आत्मा और अस्थि से संयुक्त मनुष्य उत्पन्न होता है। उसमें फिर जैसा रूप होता है वैसा मन होता है ॥१९॥ वायु उत्पन्न होता है, उस वात से जल होता है, जल से प्राण उत्पन्न होता है और प्राण से शुक्र की वृद्धि होती है ॥२०॥ तेतीस रक्त के भाग होते हैं और शुक्र के चौदह भाग होते हैं। भाग से आधा पल करके फिर गर्भ में निषेवित होता है ॥२१

ततस्तु गर्भसंयुक्तः पञ्चभिर्वायुभिर्वृतः ।
पितुः शरीरात् प्रत्यङ्गरूपमस्योपजायते ॥२२
ततोऽस्य मातुराहारात् पीतलीढप्रवेशितम् ।
नाभिः स्रोतःप्रवेशेन प्राणाधारो हि देहिनाम् ॥२३
नवमासान् परिक्लिष्टः संवेष्टितशिरोधरः ।
वेष्टितः सर्वगात्रैश्च अपर्य्ययिकमागतः ।
नवमासोषितश्चैव योनिच्छिद्रादवाङ्मुखः ॥२४
ततस्तु कर्म्मभिः पापैर्निरयं प्रतिपद्यते ।
असिपत्रवनञ्चैव शाल्मलीच्छेदभेदयोः ॥२५
तत्र निर्भर्त्सनञ्चैव तथा शोणितभोजनम् ।
एतास्तु यातना घोराः कुम्भीपाकसुदुःसहाः ॥२६
यथा ह्यापस्तु विच्छिन्नाः स्वरूपमुपयान्ति वै ।
तस्माच्छिन्नाश्च भिन्नाश्च यातनास्थानमागताः ॥२७
एवं जीवस्तु तैः पापैस्तप्यमानः स्वयं कृतैः ।
प्राप्नुयात् कर्म्मभिर्दुःखं शेषं वा यदि चेतरम् ॥२८

इसके पश्चात् पाँच वायु से वृत और गर्भ से संयुक्त इसके पिता के शरीर से प्रत्येक अङ्ग का रूप उत्पन्न होता है ॥२२॥ इसके अनन्तर माता जो कुछ भी खाया करती है उस उसके आहार से पीया हुआ, चाटा हुआ अन्दर प्रवेशित होता है वह नाभि के स्रोत के द्वारा गर्भ तक प्रवेश करता है उससे देह धारियों के प्राणों का आधार होता है ॥२३॥ इस तरह नौ मास पर्यन्त सर्वेष्टित शिरोधर, परिक्लेश से युक्त होता हुआ, समस्त गात्रों से वेष्टित होकर अपर्याय क्रम से आया हुआ रहता है। नौमास तक वहाँ गर्भ में रहकर फिर योनि के छिद्र से अवाङ्मुख होता हुआ जन्म ग्रहण किया करता है ॥२४॥ फिर यहाँ पर आकर अनेक पाप कर्म करता है और उन दुष्कर्मों के कारण नरक को प्राप्त किया करता है। असिपत्र वन, शाल्मली छेद भेदों के नाम वाले नरक होते हैं उनमें पाप कर्मों से यातना भोगता है ॥२५॥ वहाँ नरक स्थानों में बहुत बुरी तरह फटकार खाता है तथा शोणित का भोजन करना पड़ता है। ये समस्त अत्यन्त घोर यातनाऐं हैं और कुम्भीपाक नरक की बहुत असह्य यातना होती है ॥२६॥ जिस तरह छिन्न किये हुए जल अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं उसी प्रकार छिन्न और भिन्न हुए यातना के स्थान में आते हैं ॥२७॥ इस तरह जीवात्मा अपने ही किये हुए पाप कर्मों से तप्यमान होता हुआ कर्मों के द्वारा दुःख प्राप्त किया करता है। आदि का जो भी शेष अन्य होता है। उसे भी भोगता है ॥२८॥

एकेनैव तु गन्तव्य सर्वमृत्युनिवेशनम् ।
एकनैव च भोक्तव्य तस्मात् सुकृतमाचरेत् ॥२९
न ह्येन प्रस्थित कश्चिद्गच्छन्तमनुगच्छति ।
यदनेन कृत कर्म्म तदेनमनुगच्छति ॥३०
ते नित्य यमविषये विभिन्नदेहा क्रोशन्तः सततमनिष्टसप्रयोगं ।
शुष्यन्ते परिगतवेदनाशरीरा बह्वीभिः सुभृशमधर्म्मयातनाभि ॥ ३१
कर्मणा. मनसा वाचा यदभीष्ट निषेव्यते ।
तत् प्रसह्य हरेत् पाप तस्मात् सुकृतमाचरेत् ॥३२
यादृग जातानि पापानि पूर्व कर्म्माणि देहिन ।

संसारं तामसं तादृक् षड्विधं प्रतिपद्यते ।।३३
मानुष्यं पशुभावश्च पशुभावान्मृगो भवेत् ।
मृगत्वात् पक्षिभावस्तु तस्माच्चैव सरीसृपः ।।३४
सरीसृपत्वाद्गच्छेद्धि । स्थावरत्वन्न संशयः ।
स्थावरत्व पुनः प्राप्तो यावदुन्मिषते नरः ।
कुलालचक्रवद्भ्रान्तस्तत्रै वपरिकीर्तितः ।।३५

समस्त प्राणियों के मृत्यु के स्थान में एक ही को अकेले जाना पड़ता में अर्थात् अन्य वहाँ कोई भी सहायक नहीं हो सकता है । और स्वयं एक ही को वहाँ नरक स्थान में कर्मों का फल भोगना पड़ता है इसलिये सर्वदा सुकृत ही करना चाहिए ।।२८।। जब अन्त समय उपस्थित होता है तो मृत्यु के मुख में प्रस्थान करने वाले इसको कोई भी साथी नहीं मिलता है और न जाते हुए के पीछे ही कोई जाया करता है । इसने यहाँ लोक में जो भी भला-बुरा कर्म किया है वही इसके पीछे साथ जाया करता है ।।३०।। वे वहाँ यमराज के स्थान में विभिन्न देह वाले नित्य ही बराबर बुरे-बुरे सम्प्रयोगों से रुदन करते हुए शुष्क हो जाते हैं और बहुत-सी अधर्म यातनाओं से जो कि अत्यन्त ही घोर रूप में प्राप्त होती हैं सब तरह वेदना से पूर्ण शरीर वाले होते हैं ।।३१।। कर्म से मन से और वाणी से जो अभीष्ट का सेवन किया जाता है उस पाप को बलपूर्वक दूर कर देना चाहिए । इससे सुकृत कर्म का ही आचरण करना चाहिए ।।३२।। इस देहधारी पुरुष के जैसे भी पहिले कर्म तथा पाप हुए हैं उनको यह तामस संसार वैसा ही छः प्रकार वाला प्राप्त हुआ करता है ।।३३।। मानुष्य से पशुभाव, पशुभाव से मृग होता है । मृगत्व से पक्षिभाव को प्राप्त होता है और फिर उससे सरीसृप होता है ।।३४।। सरीसृप से स्थावरता को प्राप्त किया करता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । जब तक नर के उन्मेष को प्राप्त नहीं होता है बराबर पुनः स्थावरत्व को प्राप्त किया करता है । कुम्हार के चाक की भाँति भ्रमण करता हुआ वहाँ ही पर रहा करता है ।।३५।।

इत्येवं हि मनुष्यादिः संसारे स्थावरान्तके ।

विज्ञेयस्तामसो नाम तत्रैव परिवर्त्तते ॥३६
सात्विकश्चापि समारो ब्रह्मादिः परिकीर्त्तितः ।
पिशाचान्त. स विज्ञेयः स्वर्गस्थानेषु देहिनाम् ॥३७
ब्राह्मे तु केवल सत्त्व स्थावरे केवल तम ।
चतुर्द्दशाना स्थानाना मध्ये विष्टम्भक रज. ।
मर्मसु च्छिद्यमानेषु वेदनार्त्तस्य देहिनः ॥३८
ततस्तु परम ब्रह्म कथ विप्र स्मरिष्यति ।
सस्कारात् पूर्वधर्मस्य भावनाया प्रणोदित ।
मानुष्य भजते नित्य तस्मान्नित्य समादधेत् ॥३९

इस प्रकार से ससार मे मनुष्य से आदि लेकर स्थावर के अन्त तक तामस भाव जानना चाहिए । यह वहाँ ही परिवर्त्तित होता रहा करता है ॥३६॥ सात्विक भी ससार ब्रह्म म आदि लकर कहा गया है जो कि पिशाच के अन्त तक स्वर्ग स्थानो म देहधारियों का जानना चाहिए ॥३७॥ ब्राह्म मे तो केवल सत्त्व ही होता है और स्थावर मे केवल तमोगुण ही होता है । चौदह स्थानो के मध्य मे रजोगुण विष्टम्भक होता है जो कि मर्म स्थानो के छिद्यमान होने पर वेदना से आर्त्त देहधारी को हुआ करता है ॥३८॥ इसके पश्चात् विप्र परम ब्रह्म का कैसे स्मरण करेगा ? पूर्व धर्म के सस्कार से भावना मे प्रेरित होता हुआ मानुष्य का सेवन किया करता है । इसलिये नित्य ही समाधीत होना चाहिए ॥३६॥

॥ पाशुपत योग–महिमा ॥

चतुर्द्दशविध ह्येतद्बुद्धा ससारमण्डलम् ।
तथा समारभेत् कर्म्म ससारभयपीडितः ॥१
तत स्मरति ससारचक्रेण परिवर्न्तित ।
तस्मात् सतत युक्तो ध्याननत्परयुञ्जक ।
तथा समारभेद्योग यथात्मान स पश्यति ॥२
एष आद्यः पर ज्योतिरेष सेतुरनुत्तम. ।
विवृद्धो ह्येष भूताना न सम्भेदश्च शाश्वत ॥३

तदेनं सेतुमात्मानं अग्निं वै विश्वतोमुखम् ।
हृदिस्थं सर्वभूतानामुपासीत विधानवित् ।।४
हुत्वाष्टावाहुतीः सम्यक् शुचिस्तद्गतमानसः ।
वैश्वानरं हृदि.थन्तु यथावदनुपूर्वशः ।
अपः पूर्वं सकृत् प्राश्य तूष्णीं भूत्वा उपासते । ५
प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृता ।
अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा ।।६
उदानाय चतुर्थीति व्यानायेति च पञ्चमी ।
स्वाहाकारैः परं हुत्वा शेषं भुञ्जीत कामतः ।
अपः पुनः सकृत् प्राश्य त्र्याचम्य हृदयं स्पृशेत् ।।७

श्रीवायुदेव ने कहा—इस प्रकार से चौदह प्रकार वाले इस संसार के मण्डल को समझ कर संसार के भय से पीड़ित होते हुए वैसे कर्मों के करने का आरम्भ करना चाहिए ।।१।। इस संसार के चक्र से परिवर्त्तित होते रहने वाला फिर स्मरण किया करता है। इसलिये निरन्तर योग में युक्त होकर ध्यान में परायण युञ्जान होवे और इस तरह से योग का आरम्भ करना चाहिए कि फिर आत्मा का दर्शन प्राप्त कर लेवे ।।२।। यही आद्य परम ज्योति है, यही सर्वोत्तम सेतु है, यह प्राणियों का विशेष रूप से वर्धित होता है और सम्भेद शास्वित नहीं है ।। ३ ।। इसलिये आत्मा स्वरूप सेतु को, विश्वतोमुख अग्नि को जो कि समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित होता है, विधान के ज्ञाता को उसकी उपासना करनी चाहिए ।।४।। पवित्र होकर उसी में अपने मन को सन्निविष्ट करने वाले को भली-भाँति आठ आहुतियों से हवन करना चाहिए। जो वैश्वानर हृदय में स्थित है उसी के लिये यथावत् क्रम से आहुतियाँ देनी चाहिए। पूर्व में एकबार जल का पान कर फिर मौन होकर उपासना करे ।।५।। प्रथम आहुति 'प्राणाय स्वाहा'—इससे बताई गई है। दूसरी आहुति 'अपानाय स्वाहा'—इससे देवे और तीसरी आहुति 'समानाय स्वाहा'—इससे देनी चाहिए ।।६।। 'उदानाय स्वाहा'—इससे चौथी व्यानाय स्वाहा'—इससे पाँचवी आहुति देवे। स्वाहाकारों से पर को हवन कर शेष का इच्छा पूर्वक

भोजन करे । फिर एकबार जल का पान कर तीन बार आचमन करे और हृदय का स्पर्श करना चाहिए ॥७।

ॐप्राणाना ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तक. ।
स रुद्रो ह्यात्मन प्राणा एवमाप्याययेत् स्वयम् ॥८
त्व देवानामपि ज्येष्ठ उग्रस्त्व चतुरा वृषा ।
मृत्युघ्नोऽसि त्वमस्मभ्य भद्रमेनद्धुत हवि ॥९
एव हृदयमालभ्य पादागुष्ठे तु दक्षिणे ।
विश्राव्य दक्षिण पाणि नाभि वै पाणिना स्पृशेत् ।
तत पुनरुपस्पृश्य चात्मानमभिमस्पृशेत् ॥१०
अक्षिणी नासिका श्रोत्रे हृदय शिर एव च ।
द्वावात्मानावुभावेतौ प्राणापानावुदाहृतौ ॥११
तयो प्राणोऽन्तरात्मास्य वाह्योऽपानोऽन उच्यते ।
अन्न प्राणस्तथापान मृत्युर्जीवितमेव च ॥१२
अन्न ब्रह्म च विज्ञेय प्रजाना प्रसवस्तथा ।
अन्नाद्भूतानि जायन्ते स्थितिरन्नेन चेष्यते ।
वर्द्धन्ते तेन भूतानि तस्मादन्नन्लदुच्यते ॥१३
तदेवाग्नौ हुत ह्यन्न भुञ्जते देवदानवा: ।
गन्धर्वयक्षरक्षासि पिशाचाश्चान्नमेव हि ॥१४

इनके अनन्तर 'ओ प्राणाना ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तक. । स रुद्रो ह्यात्मन प्राणा एवमाप्याये त्स्वयम्'—अर्थात् प्राणो की जो ग्रन्थि है इसकी आत्मा विशान्तक रुद्र है । वही रुद्र आत्मा के प्राण हैं । इस प्रकार से स्वय आप्यायित होना चाहिए ॥८॥ आप देवो मे भी सबसे बडे हैं, आप उग्र हैं, आप चतुर वृष हैं । आप हमारी मृत्यु के नाशक हैं । यह हुत हवि हमारे लिये कल्याणप्रद होवे ॥९॥ इस प्रकार हृदय का आलभन कर दक्षिण पाद के अगूठे मे विश्रावित कर फिर दक्षिण पाणि और नाभि का पाणि से स्पर्श करना चाहिए । इसके पश्चात् पुन आचमन कर अपने आपको स्पर्श करे ॥१०॥ तथा दोनो नत्रो का नासिका, दोनो कानो को, हृदय को और शिर को स्पर्श करे ।

प्राण और अपान ये दोनों दो आत्माऐं कही गई हैं ॥११॥ उन दोनों का अन्तरात्मा प्राण होता है। इसका बाह्य आत्मा अपान है यह कहा जाता है। अन्न प्राण तथा अपान है, मृत्यु और जीवन है ॥१२॥ अन्न को ब्रह्म जानना चाहिए तथा अन्न को प्रजाओं का प्रसव समझना चाहिए। अन्न से प्राणी होते हैं और उनकी स्थिति भी अन्न से कही जाती है तथा भूतों की वृद्धि भी अन्न से ही होती है, इसी लिये अन्न को ऐसा कहा जाता है ॥१३॥ वही अन्न जब अग्नि में हुत होता है तो उस अन्न को देव और दानव खाते हैं। गन्धर्व, यक्ष और राक्षस तथा पिशाच भी अन्न का ही भोग करते हैं ॥१४॥

॥ शौचाचार लक्षण ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम्।
यदनुष्ठाय शुद्धात्मा प्रेत्य स्वर्गं हि चाप्नुयात् ॥१
उदकार्थी तु शौचानां मुनीनामुत्तमं पदम्।
यस्तु तेष्वप्रमत्तः स्यात् स मुनिर्नावसीदति ॥२
मानावमानौ द्वावेतौ तावेवाहुर्विषामृते।
अवमानं विषं तत्र मानन्त्वमृतमुच्यते ॥३
यस्तु तेष्वप्रमत्तः स्यात् स मुनिर्नावसीदति।
गुरोः प्रियहिते युक्तः स तु संवत्सरं वसेत् ॥४
नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत्।
प्राप्यानुज्ञान्ततश्चैव ज्ञानागमनमुत्तमम्।
अविरोधेन धर्मस्य विचरेत् पृथिवीमिमाम् ॥५
चक्षुःपूतं व्रजेन्मार्गं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाणीमिति धर्मानुशासनम् ॥६
आतिथ्यं श्राद्धयज्ञेषु न गच्छेद्योगवित् क्वचित्।
एवं ह्यहिंसको योगी भवेदिति विचारणा ॥७

श्रीवायुदेव कहते हैं—इसके आगे शौचाचार का लक्षण बतलाया जाता है जिसको अनुष्ठित करने पर शुद्ध आत्मा वाला होकर मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक की प्राप्ति किया करता है ॥१॥ उदक को चाहने वाला शुद्ध मुनियों का उत्तम

पद होता है। जो उनमे प्रमाद से रहित होता है वह मुनि कभी भी अवसन्न नही होता है ॥२॥ मान और अवमान ये दोनों हैं और इन्हीं दोनो को अमृत तथा विष कहते हैं। उनमे जो अवमान है वही विष ह ता है और मान को अमृत कहा जाता है ॥३॥ जो उनमे अप्रमत्त होता है वह मुनि दु खित नही होता है। जो गुरु के प्रिय कार्य और हितप्रद कर्म मे युक्त होता है वह एक सम्वत्सर तक वास करता है ॥४॥ जो नियम निर्धारित हैं उनमे अप्रमत्त होता हुआ सर्वदा यमो का पूर्ण पालक होना चाहिए। अनुज्ञा को प्राप्त करके इसके अनन्तर ज्ञान का आगमन उत्तम होता है। सदा धर्म का विरोध न करते हुए ही इस भूमण्डल पर विचरण करना चाहिए ॥५॥ नेत्रो से पवित्र करके अर्थात् आँखो से अच्छी तरह देख भाल के मार्ग मे आगे चलना चाहिए तथा व स्त्र से पवित्र करके अर्थात् सर्वदा कपडे से छानकर ही जल पीना चाहिए। सत्य से पूत करके अर्थात् सचाई से पवित्र की हुई वाणी को बोलना चाहिए, यह धर्म श स्त्र का अनुशासन अर्थात् आदेश है ॥६॥ योग का वेत्ता पुरुष श्राद्ध, यज्ञो मे कही भी आतिथ्य ग्रहण न करे। इस प्रकार से योगी अहिंसक होता है यह विचारणा है ॥७॥

वह्नौ विधूमे व्यङ्गारे सर्वस्मिन् भुक्तवज्जने।
विचरेन्मतिमान् योगी न तु तेष्वेव नित्यशः ॥८
यथैवमवमन्यन्ते यथा परिभवन्ति च।
युक्तस्तथा चरेद्भैक्ष सता धर्ममदूषयन् ॥९
भैक्ष चरेद्गृहस्थेषु यथाचारगृहेषु च।
श्रेष्ठा तु परमा चेय वृत्तिरस्योपदिश्यते ॥१०
अत ऊर्द्ध्व गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्द्विज.।
श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ॥११
अत ऊर्द्ध्व पुनश्चापि अदुष्टपतितेषु च।
भैक्षचर्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते ॥१२
भैक्ष यवागू तक्र वा पयो यावकमेव च।
फलमूल विपक्व वा पिण्याक शक्तिनोपि वा ॥१३

इत्येते वै मया प्रोक्ता योगिनां सिद्धिवर्द्धनाः ।
आहारास्तेषु सिद्धेषु श्रेष्ठं भैक्षमिति स्मृतम् ॥१४

वह्नि के धूम रहित तथा व्यङ्गार होने पर तथा सब जनों के भुक्तवान् होने पर मतिमान् योगी को विचरण करना चाहिए किन्तु उन्हीं घरों में नित्य नहीं करे ॥८॥ जिस प्रकार से एवं अवमन्यमान होते हैं और जिस तरह परिभूत होते हैं युक्त को उस प्रकार से सत्पुरुषों के धर्म को दूषित न करते हुए भिक्षा करनी चाहिए ॥९॥ योगी पुरुष को गृहस्थों में तथा यथा चार गृहों में भिक्षा चरण करना चाहिए। इसके लिये यही वृत्ति परम श्रेष्ठ शास्त्र में उपदिष्ट की जाती है ॥१०॥ इसके आगे द्विज को जो शालीन गृहस्थ हों उनमें, श्रद्धानों में, दान्तों में, श्रोत्रियों में और महान् आत्माओं में भिक्षाचरण करना चाहिए ॥११॥ इसके बाद में आगे फिर जो दुष्ट तथा पतित न हों उनमें एवं विवर्णों में भैक्षचर्या करे किन्तु यह जघन्य वृत्ति कही जाती है ॥१२॥ भिक्षा में यवागू, तक्र, पय, यावक, फल मूल अथवा विपक्व पिण्याक अथवा जो भी शक्तिपूर्वक दिया गया हो ग्रहण करे ॥१३॥ इतने जो मैंने बताये हैं वे सब योगियों की सिद्धि के बढ़ाने वाले आहार होते हैं। उनके सिद्ध हो जाने पर परम श्रेष्ठ भैक्ष कहा गया है ॥१४॥

अबिन्दुं यः कुशाग्रेण मासे मासे समश्नुते ।
न्यायतो यस्तु भिक्षेत स पूर्वोक्ताद्विशिष्यते ॥१५
योगिनां चैव सर्वेषां श्रेष्ठं चान्द्रायणं स्मृतम् ।
एकं द्वे त्रीणि चत्वारि शक्तितो वा समाचरेत् ॥१६
अस्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च अलोभस्त्याग एव च ।
व्रतानि चैव भिक्षूणामहिंसा परमार्थिता ॥१७
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् ।
नित्यं स्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्तिताः ॥१८
बीजयोनिर्गुणवपुर्बद्धः कर्मभिरेव च ।
यथा द्विप इवारण्ये मनुष्याणां विधीयते ॥१९
प्राप्यते वाचिरा देवांकुशनेव निवारितः ।

एव ज्ञानेन शुद्धेन दग्धबीजो ह्यकल्मष ।
विमुक्तबन्ध. शान्तोऽसौ मुक्त इत्यभिधीयते ॥२०
वेदैस्तुत्या सर्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञे जप्य ज्ञानिनामाहुरग्रयम् ।
ज्ञानाद्ध्यान सङ्गरागव्यपेत तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः ॥२१
दम' शम. सत्यमकल्मपत्व मौन च भूतेष्वखिलेष्वथाऽर्जवम् ।
अतीन्द्रियज्ञानमिद तथार्जव प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धसत्वा. ॥२२
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादो शुचिस्तथैवात्मरतिर्जितेन्द्रिय. ।
समाप्नुयुर्योगमिम महाधियो महर्षयश्चैवमनिन्दितामला ॥२३

जो कुशा के अग्रभाग स मास माम मे जल की बूदो का अशन किया करता है और जो न्याय से भिक्षा किया करता है वह पहिले कहे हुए से भी विशेषता से युक्त होता है ॥१५॥ और योगियों के लिये चान्द्रायण सबसे श्रेष्ठ कहा गया है । एक दो तीन और चार चान्द्रायण व्रतो को शक्तिपूर्वक आचरण करना चाहिए ॥१६॥ चोरी न करना, ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना, लोभ न करना, त्याग अहिंसा और परमार्थिता ये व्रत भिक्षुओं के लिये सर्वोत्तम होते हैं ॥१७॥ क्रोध न करना, गुरु की सेवा, शौच, आहार का हलकापन, नित्य वेद का अध्ययन ये नियम कहे गये हैं ॥१८॥ बीज योनि वाला तथा गुणों के शरीर वाला कर्मों से बँधा हुआ है । अरण्य हाथी की तरह मनुष्यो के लिये विधान किया जाता है ॥१९॥ अङ्कुश से जैसे निवारित होकर शीघ्र ही प्राप्त किया जाता है इसी प्रकार से शुद्ध ज्ञान के द्वारा दग्ध बीज वाला, कल्मष हीन, विमुक्त बन्धन वाला शान्त यह मुक्त कहा जाता है ॥२०॥ वेदों से, स्तुति से, समस्त यज्ञो की क्रिया, यज्ञ में जप ज्ञानियो को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है । ज्ञान से सङ्ग और राग से विरहित ध्यान कहा गया है । उसके पाने पर शाश्वत पुरुष की प्राप्ति हो जाती है ॥२१॥ दम, शम, सत्य, अकल्मषत्व, मौन, समस्त प्राणियो में सीधापन तथा आर्जव इनको ज्ञान से विशुद्ध सत्त्व वाले लोग अतीन्द्रिय ज्ञान कहते हैं ॥२२॥ समाहित अर्थात् पूर्ण सावधान, ब्रह्म में तत्पर रहने वाले अप्रमादी, पवित्र, आत्मा मे रति रखने वाले और इन्द्रियो को जीत लेने वाले, महान् बुद्धि वाले, अनिन्दित एव अमल महर्षिगण इस योग को समापन करें ॥२३॥

॥ परमाश्रय प्राप्ति ॥

आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्तस्तु परमाश्रमम् ।
अतः संवत्सरस्यान्ते प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ॥१
अनुज्ञाप्य गुरुंचैव विचरेत् पृथिवीमिमाम् ।
सारभूतमुपासीत ज्ञानं यज्ज्ञेयसाधकम् ॥२
इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति यस्तुषितश्चरेत् ।
अपि कल्पसहस्रायुर्नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ॥३
त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
पिधाय बुद्धया द्वाराणि ध्याने ह्येवं मनो दधेत् ॥४
शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वने तथा ।
नदीनां पुलिने चैव नित्यं युक्त सदा भवेत् ॥५
वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः ।
यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी व्यवस्थितः ॥६
अवस्थितो ध्यानरतिर्जितेन्द्रियः शुभाशुभे हित्य च कर्मणी उभे ।
इदं शरीरं प्रविमुच्य शाश्वतो न जायते म्रियते वा कदाचिन् ॥७

श्रीवायुदेव ने कहा—तीन आश्रमों का त्याग कर परमाश्रम को प्राप्त करे और एक सम्वत्सर के अन्त में सर्वोत्तम ज्ञान की प्राप्ति कर लेवे ॥ १ ॥ श्री गुरुचरण की आज्ञा को प्राप्त करके इस भूमण्डल में विचरण करे और जो जानने के योग्य एवं साधक ज्ञान हो उसी ज्ञान की उपासना करनी चाहिएं क्योंकि इस समय परम सार स्वरूप ज्ञान ही अत्यावश्यक होता है ॥२॥ यह ज्ञान है और यही जानने के योग्य है—इस प्रकार से तुष्ट होकर विचरण करना चाहिए। सहस्र कल्पों की आयु वाला होकर भी जो जानने के योग्य होता है उसे प्राप्त नहीं किया करता है ॥३। सब प्रकार के सङ्गों को त्याग देने वाला, क्रोध को जीत लेने वाला, हलका तथा स्वल्प । आहार करने वाला, अपनी इन्द्रियों को काबू में रखने वाला बुद्धि से द्वारों को ढाँककर इस प्रकार से मन को ध्यान में लगावे ॥४॥ जो बिल्कुल शून्य स्थान हों उनमें, अवकाशों में, गुफाओं में तथा वन में एवं नदियों के पुलिन में नित्य युक्त होते हुए सदा रहना चाहिए

॥५॥ वाणी का दण्ड, कर्म का दण्ड और मन रूपी दण्ड ये तीन प्रकार के दण्ड कहे गये हैं। जिसके पास ये तीन दण्ड होते हैं वही त्रिदण्डी व्यवस्थित होता है ॥६॥ ध्यान मे रति रखने वाला अवस्थित होकर तथा अपनी समस्त इन्द्रियों को जीत कर, शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों को त्याग कर इस शरीर को जो त्याग देता है वह शास्त्र की पद्धति से चलने वाला फिर न उत्पन्न होता है और न कभी मृत्यु को ही प्राप्त होता है अर्थात् आवागमन से मुक्त होकर वह मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है ॥७॥

॥ प्रायश्चित्त विधि ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतीनामिह निश्चयम् ।
प्रायश्चित्तानि तत्त्वेन यान्यकामकृतानि तु ।
अथ कामकृतेप्याहु- सूक्ष्मधर्मविदोजनाः ॥१
पापञ्च त्रिविधं प्रोक्तं वाङ् मन कायसम्भवम् ।
सततं हि दिवा रात्रौ येनेदं बध्यते जगत् ॥२
न कर्माणि न चाप्येष तिष्ठतीतिपरा श्रुति ।
क्षणमेव प्रयोज्यन्तु आयुषस्तु विधारणात् ॥३
भवेद्धीरोऽप्रमत्तस्तु योगो हि परमं बलम् ।
न हि योगात्परं किञ्चिन्नराणामिह दृश्यते ।
तस्माद्योगं प्रशसन्ति धर्मयुक्ता मनीषिण ॥४
अविद्यां विद्यया तीर्त्वा प्राप्यैश्वर्यमनुत्तमम् ।
दृष्ट्वा परापरं धीरा परं गच्छन्ति तत्पदम् ॥५
व्रतानि यानि भिक्षूणा तथैवोपव्रतानि च ।
एकैकापक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ॥६
उपेत्य तु स्त्रियं कामात् प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।
प्राणायामसमायुक्तं कुर्यात्सान्तपनं तथा ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—अब इससे आगे यतियों के निश्चय को बतलाते हैं और प्रायश्चित्तों को बतलाया जाता है जो कि तात्त्विक रूप से बिना इच्छा के किये गये हैं। इसके अनन्तर सूक्ष्म धर्म के ज्ञाता मनुष्य कामकृतों को भी कहते

हैं ॥ १ ॥ इस लोक में पाप तीन प्रकार का बतलाया गया है जो कि वाणी, मन और शरीर से उत्पन्न होता है । सर्वदा रात-दिन जिस पाप से यह समस्त संसार बाधित होता रहता है ॥ २ ॥ न तो यहाँ जगत् में यह और न कर्म ही कोई भी नहीं रहता हैं, यह पर–श्रुति है । आयु के विशेष रूप से धारण करने से एक क्षणमात्र ही का प्रयोग करें ॥ ३ ॥ धीर एवं अप्रमत्त होना चाहिए । योग सबसे प्रबल बल होता है । इस संसार में योग से अधिक मनुष्यों का हित साधक अन्य कुछ भी दिखलाई नहीं देता है । इसी लिये धर्म के तत्त्व के जानने मनीषीगण योग की ही अत्यधिक प्रशंसा किया करते हैं ॥ ४ ॥ विद्या से अर्थात् ज्ञान से अविद्या के अन्धकार को पार करके तथा सर्वोत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करके धीर पुरुष परापर को देखकर उस परम पद को जाया करते हैं ॥ ५ ॥ जो यतियों के लिये व्रत तथा उपव्रत बताये गये हैं उनमें एक-एक के अपक्रम करने में प्रायश्चित्त का विधान होता है ॥ ६ ॥ स्वेच्छया स्त्री का उपगमन करे तो प्रायश्चित्त करना चाहिए । प्राणायाम से समायुक्त होते हुए सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥ ७ ॥

ततश्चरति निर्द्देशं कृच्छ्रस्यान्ते समाहितः ।
पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ।
न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्तीति मनीषिणः ॥८
तथापि च न कर्त्तव्यः प्रसङ्गो ह्येष दारुणः ।
अहोरात्राधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति श्रुतिः ॥९
हिंसा ह्येषा परा सृष्टा दैवतैर्मुनिभिस्तथा ।
यदेतद्द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः ।
स तस्य हरति प्राणान् यो यस्य हरते धनम् ॥१०
एवं कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्च्युतः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥११॥
विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः ।
ततः संवत्सर स्यान्ते भूयः प्रक्षीणकल्मषः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥१२

अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा।
अकामादपि हिंसेत यदि भिक्षु पशून् मृगान् ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत चान्द्रायणमथापि वा ॥१३
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्टा यतिर्यदि ।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ॥१४

इसके अनन्तर कृच्छ् के अन्त में निर्देश से चरण करना चाहिए और पूर्ण समाहित होकर रहना चाहिए। भिक्षु को पुनः अपने आश्रम में आकर अतन्द्रित होते हुए रहना चाहिए। मनीषी लोग कहते हैं कि कभी मर्मयुक्त वचन के द्वारा हिंसा न करे ॥८॥ तोभी यह दारुण प्रसङ्ग कभी नहीं करना चाहिए। अहो-गत्र से अधिक कोई अधर्म नहीं है—ऐसी श्रुति है। ६॥ देवताओंने तथा मुनियों ने यह सबसे परा-हिंसा बताई है। जो यह द्रविण है वह भी प्राण के ही समान है क्योंकि प्राण वहिश्वर हो जाया करते हैं। वह उसके प्राणों का हो हरण किया करता है जो कि उसका धन हरण करता है अर्थात् यहाँ प्राण और धन में कुछ भी अन्तर नहीं होता है ॥१०॥ जो कोई भी ऐसा करता है वह परम दुष्ट होता है आचरण से भ्रष्ट तथा व्रत से च्युत हो जाया करता है। उसे फिर निर्वेद प्राप्त करते हुए चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥११॥ शास्त्र में बताई हुई विधि से एक वर्ष पर्यन्त ऐसा करे, ऐसी श्रुति है। फिर संवत्सर के अन्त में प्रक्षीण कल्मष वाला होता है। इसके बाद में फिर निर्वेद को प्राप्त कर भिक्षु को अतन्द्रित होते हुए चरण करना चाहिए ॥१२॥ समस्त प्राणियों की हिंसा न करे और वह कर्म, मन तथा वाणी किसी के भी द्वारा नहीं करनी चाहिए। यदि बिना इच्छा के भी भिक्षु पशु तथा मृग की हिंसा करे तो उसे उस पाप की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित करना ही चाहिए और वह कृच्छ्रातिकृच्छ्र तथा चान्द्रायण व्रत है ॥१३॥ यदि कोई यति किसी स्त्री को देख कर इन्द्रियों की दुर्बलता के कारण स्कन्दन करे तो उसे उस पाप की निवृत्ति के के लिये सोलह प्राणायाम अवश्य ही करने चाहिए ॥१४॥

दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ।
त्रिरात्रमुपवासश्च प्राणायामशतं तथा ॥१५

रात्री स्कन्नः शुचिः स्नातोशैव तु धारणाः ।
प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विजः ॥१६
एकान्नं मधु मांसं वा ह्यामश्राद्धं तथैव च ।
अभोज्यानि यतीनाञ्च प्रत्यक्षलवणानि च ॥१७
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ।
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण ततः पापात् प्रमुच्यते ॥१८
व्यतिक्रमाच्च ये केचिद्वाङ्मनः कायसम्भवम् ।
सद्भिः सहः विनिश्चित्य यद्ब्रूयुस्तत्समाचरेत् ॥१९
विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः समस्त भूतेषु चरन् स माहितः ।
स्थानं ध्रुवं शाश्वतमव्ययं सतां परं स गत्वा न पुनर्हि जायते २०

दिन में जो विप्र स्कन्न होता है उसके प्रायश्चित्त का विधान किया जाता है कि उसे तीन रात्रि तक उपवास करना चाहिए ॥१५॥ जो रात्रि में स्कन्न हो अर्थात् स्खलित हो तो उसे शुद्धि स्नान करके केवल बारह ही प्राणायाम कर लेने चाहिए। इन द्वादश प्राणायामों से वह द्विज निष्पाप हो जाता है ॥१६॥ एक ही अन्न, मधु, मांस, आमश्राद्ध, प्रत्यक्ष लवण ये यतियों के अभोज्य बताये गये हैं इनमें किसी भी एक का अतिक्रमण करने में प्रायश्चित्त का विधान होता है। प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करने से इस पाप से प्रमुक्त होता है ॥१७–१८॥ जो कोई वाणी, मन और शरीर से उत्पन्न होने वाले पाप का व्यतिक्रम करे तो सत्पुरुषों के साथ विशेष रूप से निश्चय करके उसका प्रायश्चित्त जैसा भी वे बतावें करना चाहिए ॥१९॥ यति को सर्वदा विशुद्ध बुद्धि वाला और सुवर्ण तथा मिट्टी के ढेले को एक सान दृष्टि से देखते हुए परम समाहित होकर समस्त प्राणियों में विचरण करना चाहिए। ऐसा यति शाश्वत, ध्रुव और अव्यय और सत्पुरुषों का परम स्थान प्राप्त करता है और फिर इस जगत् में जन्म ग्रहण नहीं करता है ॥२०॥

॥ अरिष्ट वर्णन ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि अरिष्टानि निबोधत ।
येन ज्ञानविशेषेण मृत्युं पश्यति चात्मनः ॥१

अरुन्धती ध्रुवञ्चैव सोम च्छाया महापथम् ।
यो न पश्येत्स नो जीवेन्नर सवत्सरात्परम् ॥२
अरश्मिवन्तमादित्य रश्मिवन्तञ्च पावकम्
य पश्येन्न च जीवेत मासादेकादशात्परम् ॥३॥
वमेन्मूत्र करीष वा सुवर्णं रजत तथा ।
प्रत्यक्षमथ वा स्वप्ने दशमासान् स जीवति ॥४
अग्रत पृष्ठतो वापि खण्ड यस्य पदम्भवेत् ।
पासुले कर्दमे वापि सप्तमासान् स जीवति ॥५
काक. कपोतो गृध्रो वा निलीयेद्यस्य मूर्द्धनि ।
क्रव्यादो वा खग कश्चित् षण्मासान्नातिवर्त्तते ॥६
बध्ये द्वायसपङ्क्तीभि. पाशुवर्षेण वा पुन ।
छाया वा विकृता पश्येत्तु. पञ्च स जीवति ॥७

श्रीवायुदेव ने कहा—अब आगे अरिष्टो को बताते है, उन्हे जानो जिस ज्ञान विशेष से अपनी मृत्यु को देखलेता है ॥१॥ जो अरुन्धती, ध्रुव, सोम की छाया और महापथ को नही देखता है वह मनुष्य एक वर्ष से अधिक जीवित नही रहा करता है ॥२॥ जो मनुष्य बिना रश्मियो वाले सूर्य को तथा रश्मियो से युक्त पावक को देखता है वह ग्यारह मास से अधिक जीवित नही रहा करता है ॥३॥ जो मनुष्य मूत्र करीष, सुवर्ण अथवा रजत का मन प्रत्यक्ष या स्वप्न में करता है वह दश मास तक जीवित रहता है ॥४॥ रेतीले स्थान मे अथवा बीच मे आगे या पीछे से जिसके पद खण्ड हो सात मास पर्यन्त जीवन धारण किया करता है ॥५॥ काक, कपोत अथवा गृध्र जिसके मस्तक पर निलीन हो जावे अथवा क्रव्याद या पक्षी बैठ जावे वह मनुष्य छै मास से अधिक जीवित नही रहता है ॥६॥ कौओ की पक्तियों से अथवा पाशु की वर्षा से वध्य हो जावे अथवा विकृत छाया को देखे वह मनुष्य चार या पाच मास तक ही जीवित रहता है ॥७॥

अनभ्रे विद्युत पश्येद्दक्षिणा दिशमाश्रिताम् ।
उदकेन्द्रधनुर्वापि त्रयो द्वौ वा स जीवति ॥८

अप्सु वा यदि वाऽऽदर्शे आत्मानं यो न पश्यति ।
अशिरस्कं तथात्मानं मासादूर्द्धं न जीवति ॥९
शवगन्धि भवेद्गात्रं वसागन्धि ह्यथापि वा ।
मृत्युह्युपस्थितस्तस्य अर्द्ध मासं स जीवति ॥१०
सम्भिन्नो मारुतो यस्य गर्भस्थानानि कृन्तति ।
अद्‌भिः स्पृष्टो न हृष्येच्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥११
ऋक्षवानरयुक्तेन रथेनाशान्तु दक्षिणाम् ।
गायन्नथ व्रजेत् स्वप्ने विद्यान्मृत्युरुपस्थितः ॥१२
कृष्णाम्बरधरा श्यामा गायन्ती वाथ चाङ्गना ।
यन्नयेद्दक्षिणामाशां स्वप्ने सोऽपि न जीवति ॥१३
छिद्रं वासश्च कृष्णञ्च स्वप्ने यो बिभृयान्नरः ।
भग्नं वा श्रवणं दृष्ट्वा विद्यान्मृत्युरुपस्थितः ॥१४

मेघाडम्बर के बिना ही जो दक्षिण दिशा में आश्रित बिजली को देखता है अथवा उदक में इन्द्र धनुष को देखा करता है वह तीन या दो मास तक ही जीवित रहा करता है ॥८॥ जलमें अथवा दर्पण में जो अपने आपको नहीं देखता है अथवा बिना शिर वाला अपने आपको देखता है वह मनुष्य एक मास से अधिक जीवित नहीं रहता है ॥९॥ जिसका शरीर शव की गन्ध के समान गन्धवाला हो जावे अथवा वसा (चर्बी) की गन्ध वाला हो जावे उस की मौत उपस्थित ही समझ लेना चाहिए। वह केवल १५ दिन तक ही जीवित रहा करता है ॥१०॥ सम्भिन्न वायु जिसके गर्भस्थानों को कृन्तित किया करता है और जल से स्पर्श हो जाने पर प्रसन्नता का अनुभव नहीं करता है उस मनुष्य की मृत्यु उपस्थित ही समझ लेना चाहिए ॥११॥ जो रीछ या बन्दरों से युक्त रथ में गान करता हुआ दक्षिण दिशा में स्वप्न में जावे उसकी मौत उपस्थित ही जान लेनी चाहिए। १२॥ कृष्ण वर्ण के वस्त्रों को धारण करने वाली श्यामा अथवा जाती हुई अङ्गना स्वप्न में जो दक्षिण दिशा को ले जावे तो वह जीवित नहीं रहता है ॥१३॥ जो स्वप्न में छिद्र और कृष्ण वस्त्र को धारण करता है अथवा भग्न श्रवण को देखे उसकी मृत्यु उपस्थित ही जान लेनी चाहिए ॥१४॥

आमस्तकततायस्तु निमज्जेत्पङ्कसागरे ।
दृष्ट्वा तु तादृशं स्वप्नं सद्य एव न जीवति ॥१५
भस्माङ्गारांश्च केशांश्च नदीं शुष्कां भुजङ्गमान् ।
पश्येद्यो दशरात्रन्तु न स जीवेत् तादृशः ॥१६
कृष्णैश्च विकटैश्चैव पुरुषैरुद्यतायुधैः ।
पाषाणैस्ताड्यते स्वप्ने यः सद्यो न स जीवति ॥१७
सूर्योदये प्रत्युषसि प्रत्यक्षं यस्य वै शिवा ।
क्रोशन्ती सम्मुखाभ्येति स गतायुर्भवेन्नरः ॥१८
यस्य वै स्नातमात्रस्य हृदयं पीड्यते भृशम् ।
जायते दन्तहर्षश्च तं गतायुषमादिशेत् ॥१९
भूयो भूयः श्वसेद्यस्तु रात्रौ वा यदि वा ।
दीपगन्धञ्च नो वेत्ति विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥२०
रात्रौ चेन्द्रायुधं पश्येद्दिवा नक्षत्रमण्डलम् ।
परनेत्रेषु चात्मानं न पश्येन्न स जीवति ॥२१

जो नीचे मे मस्तक पर्यन्त पङ्क सागर मे निमग्न हो जावे अथवा इस प्रकार का स्वप्न देखे वह तुरन्त ही शेष जीवन वाला हो जाता है ॥१५॥ जो कोई भस्म अङ्गार, केश, नदी जो सूखी हुई हो, और सर्पों को दस रात्रि तक स्वप्न मे बराबर देखा करता है ऐसा आदमी जीवित नही रहा करता है ॥१६॥ कृष्ण वर्ण वाले और विकट आकार वाले तथा उद्यत हथियारो वाले पुरुषों के द्वारा जो स्वप्न मे पाषाणो से ताडित किया जाता हो वह मनुष्य तुरन्त ही मृत्युगत हो जाता है और जीवित नही रहा करता है ॥१७॥ प्रात काल मे सूर्य के उदय समय मे गीदड की मादा रोती हुई मुख के सामने से आती है वह मनुष्य गतायु होता है ॥१८॥ जिस पुरुष के केवल स्नान करने ही से हृदय मे बहुत ही अधिक पीडा होती है और दन्तहर्ष होता है वह मनुष्य गतायु होता है अर्थात् यह समझ लेना चाहिए कि अब उसकी आयु समाप्त हो चुकी है । १९॥ जो बारम्बार दिन के अन्दर, रात्रि में श्वास लिया करता है और दीप गन्ध को नहीं जानता है उसकी मृत्यु उपस्थित ही समझ लेनी चाहिए ॥२०॥ जो मनुष्य

रात्रि में तो देखता हो और दिन में नक्षत्र मण्डल को देखता हो और दूसरे के नेत्रों में अपने आप को नहीं देखता है वह जीवित नहीं रहा करता है ॥२१॥

नेत्रमेकं स्रवेद्यस्य कर्णौ स्थानाच्च भ्रश्यतः ।
नासा च वक्रा भवति स ज्ञेयो गतजीवितः ॥२२
यस्य कृष्णा खरा जिह्वा पङ्कभासं च वै मुखम् ।
गण्डे चिपिटके रक्ते तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥२३
मुक्तकेशो हसंश्चैव गायन् नृत्यश्च यो नरः ।
याम्याशाभिमुखो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२४
यस्य स्वेदसमुद्भूताः श्वेतसर्षपसन्निभाः ।
स्वेदा भवन्ति ह्यसकृत्तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥२५
उष्ट्रा वा रासभा वापि युक्ताः स्वप्ने रथेऽशुभाः ।
यस्य सोपि न जीवेत दक्षिणाभिमुखो गतः ॥२६
द्वे चात्र परमेऽरिष्टे एतद्रूपं परं भवेत् ।
घोषं न शृणुयात् कर्णे ज्योतिर्नेत्रे न पश्यति ॥२७
श्वभ्रे यो निपतेत् स्वप्ने द्वारश्चास्य न विद्यते ।
न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२८

जिसके एक नेत्र में स्राव होता हो और कान दोनों अपने स्थान से भ्रष्ट हो गये हों तथा नाक टेढ़ी हो गई हो उस मनुष्य को गतजीवित समझ लेना चाहिये ॥ २२ ॥ जिसकी जिह्वा काली और खरखरी हो गई हो तथा मुखपङ्क की कान्ति के समान कान्ति वाला हो गया हो एवं गण्ड-चिपिटक और रक्त हो गये हों उस मनुष्य की उपस्थिति नहीं समझ लेनी चाहिये ॥ २३ ॥ खुले हुये केशों वाला, हँसता हुआ, गाता हुआ और नाचता हुआ जो मनुष्य दक्षिण दिशा की ओर मुख किये हुये जाता है उसके जीवन का अन्त ही समझ लेना चाहिये ॥ २४ ॥ जिस मनुष्य के पसीने में उत्पन्न होने वाली श्वेत सरसों के सदृश श्वेत कण बार-बार होते हैं उसकी मृत्यु उपस्थित ही जान लेनी चाहिये ॥२५॥ जिस मनुष्य के रथ में ऊँट अथवा गधे जुड़े हुये हों और स्वप्न में दक्षिण की ओर मुख किये हुये जाता हो वह मनुष्य भी जीवित नहीं रहा करता है ॥२६॥

यहाँ पर ये दो परम अरिष्ट होते हैं और यह रूप भी पर होता है। कानों में ध्वनि न सुनाई देती हो और नेत्र मे ज्योति नही देखता हो ॥ २७ ॥ स्वप्न मे जो श्वभ्र मे निपतित होवे और इसका द्वार न होवे और जो श्वभ्र से नहीं उठता है उसके जीवन का बिल्कुल अन्त समझ लेना चाहिये ॥ २८ ॥

ऊर्द्ध्वा च दृष्टिर्न च सम्प्रतिष्ठा रक्ता पुन सम्परिवर्त्तमाना ।
मुखस्य चोष्मा सुपिरा च नाभिरत्युष्णमूत्रो विपमस्थ एव ॥२९
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रत्यक्ष योऽभिहन्यते ।
त पश्येदथ हन्तार स हतस्तु न जीवति ॥३०
अग्निप्रवेश कुरुते स्वप्नान्ते यस्तु मानव. ।
स्मृति नोपलभेच्चापि तदन्त तस्य जीवितम् ॥३१
यस्तु प्रावरण शुक्ल स्वक पश्यति मानव ।
रक्त कृष्णमपि स्वप्ने तस्य मृत्युरुपस्थित ॥३२
अरिष्टसूचिते देहे तस्मिन् काल उपागते ।
त्यक्त्वा भयविषादश्च उद्गच्छेद्बुद्धिमान्नर ॥३३
प्राची वा यदि वोदीची दिश निष्क्रम्य वै शुचिः ।
समेऽतिस्थावरे देशे विविक्ते जनवर्ज्जिते ॥३४
उदड मुख प्राड मुखो वा स्वस्थ स्वाचान्त एव च ।
स्वस्तिकोपनिविष्टश्च नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
समकायशिरोग्रीव धारयेन्नावलोकयेत् ॥३५

जिसकी दृष्टि ऊर्ध्व हो तथा साम्प्रतिष्ठित रक्त एव फिर सम्परिवर्त्तमान न हो, मुख की ऊष्मा (गर्मी) तथा नाभि सुपिरा हो एव मूत्र अत्यधिक उष्ण हो ऐसा व्यक्ति विषम स्थिति म ही रहने वाला होता है ॥ २९ ॥ दिन मे अथवा रात्रि मे जो प्रत्यक्ष रूप से हन्यमान होता है उस मारने वाले को देखे जो हत हुआ है वह जीवित नही रहता है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य स्वप्न के अन्त मे अग्नि मे प्रवेश किया करता है और स्मृति को उपलब्ध नही किया करता है उस मनुष्य के जीवन का अन्त ही समझ लेना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य अपना प्रावरण अर्थात् आच्छादन शुक्ल देखता है तथा स्वप्न मे रक्त और कृष्ण

देखता है उसकी मृत्यु उपस्थित ही जाननी चाहिये ॥ ३२ ॥ अरिष्ट से सूचित देह में उस काल के उपस्थित होने पर भय और विषाद का त्याग करके बुद्धिमान मनुष्य को उद्गमन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ पूर्व या उत्तर दिशा में बाहिर निकलकर पवित्र हो जावे और अत्यन्त स्थावर समतल देश में जो कि एकान्त एवं जनों से विवर्जित हो, वहाँ पर उत्तर या पूर्व की ओर मुख वाला होकर स्वस्थता से बैठ जावे तथा आचमन करे। स्वस्तिक पर उपनिष्ट होते हुये महेश्वर को प्रणाम करे। अपने पूरे शरीर को, ग्रीवा को तथा मस्तक को समस्थिति में रक्खे। इधर-उधर किसी भी ओर नहीं देखना चाहिये ॥ ३४—३५ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
प्रागुदक् प्रवणे देशे तस्माद्युञ्जीत योगवित् ॥३६
प्राणे च रमते नित्यं चक्षुषोः स्पर्शने तथा ।
श्रोत्रे मनसि बुद्धौ च तथा वक्षसि धारयेत् ॥३७
कालधर्मञ्च विज्ञाय समूहञ्चैव सर्वशः ।
द्वादशाध्यात्ममित्येवं योगधारणमुच्यते ॥३८
शतमष्ट शतं वापि धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।
न तस्य धारणायागोद्धायुः सर्वं प्रवर्त्तते ॥३९
ततस्त्वापूरयेद्देहमोङ्कारेण समाहितः ।
अथोङ्कारमयो योगी न क्षरेत्वक्षरी भवेत् ॥४०

जिस प्रकार निर्वात स्थान में रक्खा हुआ दीपक बिल्कुल भी उसकी ज्योति नहीं हिलती है वही उपमा यहाँ पर बताई गई है। प्राक्, उदक्, प्रवण देश में योग के ज्ञाता व्यक्ति को अभ्यास करना चाहिये ॥ ३६ ॥ रमण करने वाले प्राण में, नेत्रों में, स्पर्शन अर्थात् त्वगिन्द्रिय में, श्रोत्र में, मन में, बुद्धि में तथा वक्षःस्थल में धारण करे ॥ ३७ ॥ काल के धर्म को और सब ओर के समूह को जानकर द्वादश अध्यात्म हैं यही योग का धारण करना कहा जाता है ॥ ३८ ॥ सौ अथवा आठ सौ धारणा को मस्तक में धारण करना चाहिये। उसकी धारणायागोद्धायु सब प्रवृत्त नहीं होती है ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर समाहित होकर ओङ्कार से देह को आपूरित करना चाहिये। इसके अनन्तर ओङ्कारमय योगी क्षरित न होते हुये अक्षरी हो जाता है ॥ ४० ॥

।। ओङ्कार प्राप्ति लक्षण ।।

अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि ओङ्कार प्राप्ति लक्षणम् ।
एप त्रिमात्रो विज्ञेयो व्य जनश्चात्र सस्वरम् ।।१
प्रथमा वैद्युनी मात्रा द्वितीया तामसी स्मृता ।
तृतीया निर्गुणी विद्यान्मात्रामक्षरगामिनीम् ।।२
गन्धर्वीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसम्भवा ।
पिपीलिकासमस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते ।।३
तथा प्रयुक्तमोङ्कार प्रतिनिर्वाति मूर्द्धनि ।
तयोङ्कारमयो योगी ह्यक्षरे त्वक्षरी भवेत् ।।४
प्रणवो धनु शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तन वेद्धव्य शरवत्तन्मयो भवेत् ।।५
ओमित्येकाक्षर ब्रह्म गुहाया निहित पदम् ।
आमित्येनत्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नय. ।
विष्णुक्रमास्त्रयस्त्वेते ऋक्‌सामानि यजू षि च ।।६
मात्राश्चात्र चतस्रस्तु विज्ञेया परमार्थत ।
तत्र युक्तश्च यो योगी तस्य सालोक्यता व्रजेत् ।।७

श्री वायुदेव ने कहा—इसके आगे ओङ्कार की प्राप्ति का लक्षण बतलाते हैं। यह ओङ्कार तीन मात्रा वाला समझ लेना चाहिये इसमें व्यञ्जन जो होता है वह युक्त होता है ।। १ ।। प्रथमा मात्रा वैद्युती होती है, द्वितीया मात्रा तामसी कही गई है और तृतीया मात्रा निर्गुणी होती है। इस प्रकार से अक्षरो मे गमन करने वाली मात्रा को जाननी चाहिये ।। २ ।। गान्धार नामक स्वर से समुत्पन्न जो मात्रा है वह गन्धर्वी इस नाम से कही जाती है। पिपीलिका के समान स्पर्श करने वाली मूर्द्धा मे प्रयुक्त की हुई दिखाई देती है ।। ३ ।। उस प्रकार से प्रयोग में लाया हुआ ओङ्कार मूर्द्धा में प्रतिनिर्वात होता है। इस तरह यह ओङ्कार से परिपूर्ण योगी अक्षर म अक्षरी हो जाता है ।। ४ ।। प्रणव धनुष है आत्मा शर है और उसका लक्ष्य स्थान ब्रह्म होता है। यदि अप्रमत्त होते हुये वध्य हो तो शर की भाँति वह तन्मय हो जाता है ।। ५ ।। 'ओम्' यह

एकाक्षर वाला ब्रह्म पद गुहा में निहित है। 'ओम्'— यह तीन वेद हैं—तीन लोक हैं और तीन अग्नि हैं। ये तीनों ऋक्-साम और यजु विष्णु के क्रम हैं ॥ ६ ॥ यहाँ चार मात्राऐं हैं जो कि परमार्थ रूप से समझ लेनी चाहिये। उनमें युक्त जो योगी है वह सालोक्यता को जाता है ॥ ७ ॥

अकारस्त्वक्षरो ज्ञेय उकारः स्वरितः स्मृतः।
मकारस्तु प्लुतो ज्ञेयस्त्रिमात्र इति संगितः ॥८
अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारो भुवरुच्यते।
सव्यंजनो मकारश्च स्वर्ल्लोकश्च विधीयते ॥९
ओङ्कारस्तु त्रयो लोकाः शिरस्तस्य त्रिविष्टपम्।
भुवनान्तश्च तत्सर्व ब्राह्मं तत्पदमुच्यते ॥१०
मात्रापदं रुद्रलोको ह्यमात्रस्तु शिवं पदम्।
एवन्ध्यानविशेषेण तत्पदं समुपासते ॥११
तस्माद्ध्यानरतिर्नित्यममात्रं हि तदक्षरम्।
उपास्यं हि प्रयत्नेन शाश्वतं पदमिच्छता ॥१२
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा ततो दीर्घा त्वनन्तरम्।
ततः प्लुतवती चैव तृतीया उपदिश्यते ॥१३
एतास्तु मात्रा विज्ञेया यथावदनुपूर्वशः।
यावच्चैव तु शक्यन्ते धार्यन्ते तावदेव हि ॥१४

इस में अकार को अक्षर समझना चाहिये और उकार स्वरित कहा गया है। मकार प्लुत जानना चाहिये। इस प्रकार से यह तीन मात्रा वाला संक्षिप्त होता है ॥ ८ ॥ इसमें जो अकार है वह भूर्लोक है और उकार भुवर्लोक कहा जाता है। व्यञ्जन के साथ मकार जो है वह स्वर्लोक होता है ॥ ९ ॥ ओङ्कार जो है वह तीन लोक हैं उसका शिर त्रिविष्टप होता है। वह सब भुवनान्त होता है। ब्राह्म उसका पद कहा जाता है ॥ १० ॥ मात्रा पद रुद्र-लोक है और जो अमात्र है वह शिव-पद होता है। इस प्रकार से ध्यान की विशेषता से उसके पद की समुपासना करते हैं ॥ ११ ॥ इससे ध्यान में रति रखने वाला होवे और नित्य मात्रारहित उस अक्षर की शाश्वत पद की इच्छा रखने वाले के द्वारा

प्रयत्न के साथ उपासना करनी चाहिए ॥ १२ ॥ प्रथमा जो मात्रा है वह ह्रस्व होती है इसके पश्चात् दीर्घा मात्रा होती है और उसके आगे फिर तृतीया जो मात्रा होती है वह प्लुता होती है अर्थात् प्लुत वाली होती है ॥ १३ ॥ ये यथा विधि आनुपूर्वी के क्रम से मात्राऐं जान लेनी चाहिये। जितनी हो हो सकें उतनी ही धारण की जाती हैं ॥ १४ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धि ध्यायन्नात्मनि य सदा ।
अर्द्धमात्रमपि चेच्छृणुयात्फलमाप्नुयात् ॥१५
मासे मासेऽश्वमेधेन यो यजेत शत समा ।
न स तत प्राप्नुयात् पुण्य मात्रया यदवाप्नुयात् ॥१६
अबिन्दु य कुशाग्रेण मासे मासे पिबेन्नर ।
सवत्सरशत पूर्ण मात्रया तदवाप्नुयात् ॥१७
इष्टापूर्त्तस्य यज्ञस्य सत्यवाक्ये च यत् फलम् ।
अमक्षणे च मासस्य मात्रया तदवाप्नुयात् ॥१८
स्वाम्यर्थे युध्यमानाना शूराणामनिवर्त्तिनाम् ।
यद्भवेत्तत फल दृष्ट मात्रया तदवाप्नुयात् ॥१९
न तथा तपसोग्रेण न यज्ञैर्भूरिदक्षिणैः ।
यत् फल प्राप्नुयात् सम्यग् मात्रया तदवाप्नुयात् ॥२०
तत्र वै योऽर्द्धमात्रो य प्लुतो नामोपदिश्यते ।
एषा एव भवेत् कार्या गृहस्थानान्तु योगिनाम् ॥२१
एषा चैव विशेषेण ऐश्वर्य समलक्षणा ।
योगिनान्तु विशेषेण ऐश्वर्ये ह्यष्टलक्षणे ।
अणिमाद्यति विज्ञेया तस्माद्युञ्जीत ता द्विज ॥२२

जो सदा आत्मा में इन्द्रियों को मन को और बुद्धि को ध्यान करते हुए यदि यहाँ पर आठ मात्रा वाले का भी श्रवण करे तो फल को प्राप्त किया करता है ॥ १५ ॥ मास मास में अर्थात प्रत्येक मास में जो सौ वर्ष तक अश्वमेधों का सृजन किया करता है वह भी उस पुण्य की प्राप्ति नहीं करता है जो मात्रा के द्वारा पुण्य प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ जो कुशा के अग्रभाग से जल की बिन्दुओं

को मास-मास में पीता है और बराबर सौ वर्ष तक पीता रहता है उसका जो पुण्य होता है वह पुण्य मात्रा के द्वारा प्राप्त किया करता है ॥ १७ ॥ इष्टापूर्त-यज्ञ का सत्यवाक्य में जो फल होता है तथा मांस के न खाने में जो पुण्य होता है वह पुण्य मात्रा के द्वारा हो जाता है ॥ १८ ॥ अपने स्वामी के लिये युद्ध करते हुए शूरवीरों का जो कि पुनः जगत् में अनिवर्त्ती होते हैं उनका जो पुण्य-फल होता है वही मात्रा से प्राप्त किया जाता है ॥ १९ ॥ अत्यन्त उग्र तप के द्वारा और भूरि दक्षिणा वाले यज्ञों के द्वारा जो फल प्राप्त होता है वही फल भली भाँति मात्रा के द्वारा प्राप्त किया करते हैं ॥ २० ॥ वहाँ पर जो आधी मात्रा वाला प्लुत इस नाम से कहा जाता है, यही गृहस्थ योगियों को करनी चाहिये ॥ २१ ॥ यही मात्रा विशेष रूप से ऐश्वर्य के समान लक्षण वाली होती है और आठ लक्षण वाले ऐश्वर्य में योगियों को विशेष रूप से होती है। अणिमादि ये जाननी चाहिये। इससे द्विज को उसका युञ्जन करना चाहिये ॥२२॥

एवं हि योगी संयुक्तः शुचिर्दान्तो जितेन्द्रियः ।
आत्मानं विन्दते यस्तु स सर्वं विन्दते द्विजः ॥२३
ऋचो यजूंषि सामानि वेदोपनिषदस्तथा ।
योगज्ञानादवाप्नोति ब्राह्मणो ध्यानचिन्तकः ॥२४
सर्वभूतलयो भूत्वा अभूतः स तु जायते ।
योगी सङ्क्रमणं कृत्वा याति वै शाश्वतं पदम् ॥२५
अपि चात्र चतुर्हस्तां ध्यायमानश्चतुर्मुखीम् ।
प्रकृतिं विश्वरूपाख्यां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥२६

अजामेतां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाम् ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।
अष्टाक्षरां षोडशपाणिपादां चतुर्मुखीं त्रिशिखामेकशृङ्गाम् ।
आद्यामजां विश्वसृजां स्वरूपां ज्ञात्वा बुधास्त्वमृतत्वं व्रजन्ति ।
ये ब्राह्मणाः प्रणवं वेदयन्ति न ते पुनः संसरन्तीह भूयः ॥२७
इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम् ।
यस्तु वेदयते सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः ॥२८

ससारचक्रमुत्सृज्य मुक्तबन्धनबन्धन ।
अचल निर्गुण स्थान शिव प्राप्नोत्यसशय ।
इत्येतद्वै मया प्रोक्तमोङ्कारप्राप्ति लक्षणम् ।।२८

जो इस प्रकार से शुचि, दमनशील, जितेन्द्रिय सयुक्त योगी, आत्मा का लाभ किया करता है वह ब्राह्मण सभी कुछ को प्राप्त कर लेता है ।। २३ ।। ध्यान मे चिन्तन करने वाला ब्राह्मण योग के ज्ञान से ऋक्, यजु और सामवेद तथा उपनिषदो को प्राप्त कर लेता है अर्थात् एक मात्र योग के द्वारा सबका ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।। २४ ।। समस्त भूतों का लय होकर वह बिना भूतों वाला अभूत हो जाता है । योगी सक्रमण करके शाश्वत पद को प्राप्ति कर लेता है । ।। २५ ।। और यहाँ पर भी चार हाथ की चार मुख वाली विश्व रूप नाम मे युक्त प्रकृति को दिव्य चक्षु के द्वारा देखता है ।। २६ ।। लोहित कृष्ण और शुक्ल वर्ण वाली इस अजा को जो बहुत सी प्रजा का सृजन करने वाली अपने रूप मे स्थित है, एक अज सेवन करता हुआ अनुशयन करता है और दूसरा अज भुक्त-भोगों वाली इसको त्याग देता है। आठ अक्षर वाली, सोलह हाथ और पदो वाली, चार मुख वाली, तीन शिखा से युक्त और एक शृग वाली, आद्या, अजा और विश्व के सृजन करने वाले स्वरूप वाली को पण्डितगण जानकर अमृतत्व को प्राप्त किया करते हैं। जो ब्राह्मण प्रणव का वेदन किया करते हैं वे फिर यहाँ दुबारा ससार मे नही आया करते हैं ।। २७ ।। यही ओङ्कार सज्ञा वाला अक्षर ब्रह्म है जो परम माना जाता है । जो इसे भली भाँति जानता है तथा इसका फिर ध्यान किया करता है वह इस ससार के चक्र का त्यागकर वन्धनो के बन्धन से भी मुक्त हो जाता है और अचल तथा निर्गुण शिव स्थान को निस्सन्देह प्राप्त करता है । यह इतना मैंने ओङ्कार की प्राप्ति का लक्षण बता दिया है ।। २८ ।।

नमो लोकेश्वराय सङ्कल्पकल्पग्रहणाय महान्तमुपतिष्ठते तद्वोहि यद्ब्रह्मणे नम । सर्वत्र स्थानिने निर्गुणाय सम्भक्तयोगीश्वराय च । पुष्करपर्णमिवाद्भिर्विशुद्धमिव ब्रह्ममुपतिष्ठेत्पवित्र पवित्राणा पवित्र पवित्रेण परिपूरितेन पवित्रेण ह्रस्वान्दीर्घप्लुतमिति तदेतमो-

ङ्कारमशब्दमस्पर्शमरूपमरसमगन्धं पर्युपासेत अविद्येशानाय विश्वरूपो न तस्य अविद्येशानाय नमो योगीश्वरायेति च येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तनितं येन नाकस्तयोरन्तरिक्षमिमे वरीयसो देवानां हृदयं विश्वरूपो न तस्य प्राणापानौपम्यं चास्ति ओङ्कारो-विश्वविश्वा वै यज्ञः यज्ञो वै वेदः वेदो वै नमस्कारः नमस्कारो रुद्रः नमो रुद्राय योगेश्वराधिपतये नमः। इति सिद्धिप्रत्युपस्थानं सायंप्रात-र्मध्याह्ने नमः इति। सर्वकामफलोरुद्रः। यथा वृन्तात् फलं पक्वं पवनेन समीरितम्। नमस्कारेण रुद्रस्य तथा पापं प्रणश्यति ॥३०

सङ्कल्प कल्प ग्रहण स्वरूप लोक के स्वामी के लिये नमस्कार है। महान् को उपतिष्ठमान, वह जो हमारा हित है, ऐसे ब्रह्म के लिये नमस्कार है। सब जगह स्थान वाले, निर्गुण और सम्भक्त योगीश्वर के लिये नमस्कार है। जल से कमल पत्र की भाँति विशुद्ध ब्रह्म का उपस्थान कहे। परिपूरित पवित्रता से पवित्रों को भी पवित्र करने वाला है और ह्रस्वदीर्घ प्लुत स्वरूप वाला उस ओङ्कार को जो शब्द स्पर्श रूप, रस, गन्ध से हीन है उसकी उपासना करनी चाहिये। अविद्या के ईशान के लिये उसका विश्वरूप नहीं है ऐसे अविद्येशान के लिये नमस्कार है और योगीश्वर के लिये नमस्कार है जिसने द्यौ को उग्र किया, पृथिवी को दृढ़ बनाया, जिसने स्वः को विस्तृत किया, जिसने नाक (स्वर्ग) बनाया और इस अन्तरिक्ष को किया वरीयान, देवों का हृदय विश्व रूप उसका प्राणापानौपम्य नहीं है। ओङ्कार विश्व-विश्वा है, यज्ञ-यज्ञ है, वेद वेद है और नमस्कार नमस्कार है ऐसे रुद्र के लिये नमस्कार है तथा योगेश्वराधिपति के लिये नमस्कार है। यह सिद्धि का प्रत्युप स्थान है। सायं, प्रातः और मध्याह्न के लिये नमस्कार है। समस्त कामों का फल रुद्र है। जिस प्रकार वृन्त से पका हुआ फल वायु के द्वारा समीरित होता है वैसे ही नमस्कार से अर्थात् रुद्र को किये हुये नमन से पाप भी नष्ट हो जाता है ॥ ३० ॥

यथा रुद्रनमस्कारः सर्वधर्मफलो ध्रुवः।
अन्यदेवनमस्कारो न तत् फलमवाप्नुयात् ॥३१
तस्मात् त्रिषवणं योगी उपासीत महेश्वरम्।
दशविस्तारकं ब्रह्म तथा च ब्रह्म विस्तरम् ॥३२

ओङ्कार सर्वत्र काले सर्व विहितवान् प्रभुः ।
तेन तेन नु विष्णुत्व नमस्कार महायशा ॥३३
नमस्कारस्तथा चैव प्रणवस्तुवते प्रभुम् ।
प्रणव स्तुवते यज्ञो यज्ञ सस्तुवते नमः ।
नमस्तुवतिवै रुद्रस्तस्याद्रुद्रपद शिवम् ॥३४
इत्येतानि रहस्यानि यतीना वै यथाक्रमम् ।
यस्तु वेदयते ध्यान स पर प्राप्नुयात्पदम् ॥३५

जिस तरह रुद्रदेव के लिये किया हुआ नमस्कार समस्त धर्मों के फल वाला होता है और ध्रुव होता है वैसे अन्य देव के लिये किया हुआ नमस्कार वह फल प्राप्त नही कराता है ॥ ३१ ॥ इसलिये योगी का कर्त्तव्य है कि वह तीनो कालो मे महेश्वर की उपासना करे। ब्रह्म दश विस्तारक होता है और वह ब्रह्म विस्तार है ॥ ३२ ॥ प्रभु ने सर्व काल मे सबको ओङ्कार बनाया था। उस-उस से विष्णुत्व होता है। नमस्कार महान् यश वाला है ॥ ३३ ॥ नमस्कार प्रणव के लिये है, प्रणव प्रभु का स्तवन करता है। यज्ञ प्रणव का स्तवन करता है उस सस्तवन करने वाले के लिये नमस्कार है। नमः—यह रुद्र का स्तवन करता है इसलिये रुद्र पद ही शिव है ॥ ३४ ॥ यतियों के ये रहस्य हैं। इनको जो यथाक्रम जानता है और ध्यान करता है वह परम पद को प्राप्त किया करता है ॥ ३५ ॥

॥ कल्प-निरूपण ॥

ऋषीणामग्निकल्पाना नैमिषारण्यवासिनाम् ।
ऋषि श्रुतिधर प्राज्ञः सावर्णिर्नाम नामतः ॥१
तेपा सोप्यग्रतो भूत्वा वायु वाक्यविशारद. ।
सातत्य तत्र कुर्वन्त प्रियार्थं सत्रयाजिनाम् ।
विनयेनोपसगम्य पप्रच्छ स महाद्युतिम् ॥२
विभो पुराणसबद्धा कथा वै वेदसमिताम् ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक् प्रसादात्सर्वदर्शिन ॥३

हिरण्यगर्भो भगवान् ललाटान्नीललोहितम् ।
कथं तत्तेजसं देवं लब्धवान् पुत्रमात्मनः ।।४
कथं च भगवान् जज्ञे ब्रह्मा कमलसंभवः ।
रुद्रत्वं चैव शर्वस्य स्वात्मजस्य कथं पुनः ।।५
कथं च विष्णो रुद्रेण सार्द्धं प्रीतिरनुत्तमा ।
सर्वे विष्णुमया देवा सर्वे विष्णुमया गणाः ।।६
न च विष्णुसमा काचिद्गतिरन्या विधीयते ।
इत्येवं सततं देवा गायन्ते नात्र संशयः ।
भवस्य स कथं नित्यं प्रणामं कुरुते हरिः ।।७

श्री सूत जी ने कहा—नैमिषारण्य में निवास करने वाले अग्नि के समान ऋषियों में से श्रुति को धारण करने वाला परम पण्डित सावर्णि नाम वाले ऋषि थे ।। १ ।। वचन बोलने में महापण्डित उन सब में अग्रणी होकर सबका यजन करने वालों के प्रिय के लिये सर्वदा वहीं रहने वाले वायु के समीप विनयपूर्वक उपस्थित होकर उस महान् द्युति वाले वायु से पूछा ।। २ ।। सावर्णि ने कहा—हे विभो ! पुराणों से सम्बद्ध तथा वेदों से संमित कथा को सर्वदर्शी आप से सुनने की हम इच्छा करते हैं आपके प्रसाद से उसे भली भाँति श्रवण करेंगे ।। ३ ।। हिरण्यगर्भ भगवान् ने ललाट से नीललोहित अपने पुत्र उस तेजस्वरूप देव को कैसे प्राप्त किया था ? ।। ४ ।। कमल से जन्म ग्रहण करने वाले भगवान् ब्रह्मा जी ने अपने आत्मज शर्व का फिर रुद्रत्व कैसे उत्पन्न किया था ? ।। ५ ।। और भगवान् विष्णु की रुद्र के साथ किस तरह सर्वोत्तम प्रीति उत्पन्न हुई ? समस्त विष्णुमय देव हैं और सम्पूर्ण गण विष्णुमय हैं ।। ६ ।। विष्णु के समान कोई भी गति नहीं होती है । इस प्रकार से समस्त देवता गान किया करते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । वह हरि नित्य ही भव को क्यों प्रणाम किया करते हैं ।। ७ ।।

एवमुक्त तु भगवान् वायुः सावर्णिमब्रवीत् ।
अहो साधु त्वया साधो पृष्टः प्रश्नो ह्यनुत्तमः ।।८
भवस्य पुत्रमन्मत्वं ब्रह्मणः सोऽभवद्यथा ।
ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं रुद्रत्वं शंकरस्य च ।।६

द्वाभ्यामपि च सम्प्रीतिर्विष्णोश्चैव भवस्य च ।
यच्चापि कुरुते नित्य प्रणाम शंकरस्य च ।
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च श्रृणुत ब्रुवतो मम ॥१०
मन्वन्तरस्य सहारे पश्चिमस्य महात्मनः ।
आसीत्तु सप्तमः कल्प पद्मो नाम द्विजोत्तम ।
वाराहः साम्प्रतस्तेषा तस्य वक्ष्यामि विस्तरम् ॥११
कियता चैव कालेन कल्प सम्भवते कथम् ।
किं च प्रमाण कल्पस्य तत्र प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥१२
मन्वन्तराणा सप्ताना कालसख्या यथाक्रमम् ।
प्रवक्ष्यामि समासेन ब्रुवतो मे निबोधत ॥१३
कोटीना द्वे सहस्रे वै अष्टौ कोटिशतानि च ।
द्विपष्टिश्च तथा कोटयो नियुतानि च सप्तति ।
कल्पार्द्धस्य तु सख्यायामेतत् सर्वमुदाहृतम् ॥१४

श्री सूतजी ने कहा—सावर्णि ऋषि के इस प्रकार से कहने पर भगवान् वायुदेव ने कहा—हे साधो ! आपने यह बहुत ही अच्छा अत्युत्तम प्रश्न किया है ॥ ८ ॥ जिस तरह महादेव का ब्रह्मा से पुत्र का जन्म लेना हुआ और ब्रह्मा का पद्म योनित्व जैसे हुआ तथा शकर का रुद्रत्व जिस प्रकार से हुआ ॥ ९ ॥ विष्णु और शिव इन दोनों की पारम्परिक प्रीति जिस तरह से हुई थी और जो नित्य ही विष्णु शकर को प्रणाम किया करते हैं इन सब बातो को मैं तुम्हें विस्तार के साथ बताता हूँ और आनुपूर्वी के सहित बताता हूँ आप लोग मुझसे सब श्रवण करें ॥ १० ॥ हे द्विजोत्तम ! महात्मा पश्चिम मन्वन्तर के सहार हो जाने पर पद्म नाम वाला सप्तम कल्प था । उनमे इस समय वाराह कल्प है उसके विस्तार को बताता हूँ ॥ ११ ॥ सावर्णि ने कहा—कल्प कितने समय मे होता है और वह कैसे होता है ? कल्प का क्या प्रमाण होता है, यह पूछने वाले हम को बतलादये ॥ १२ ॥ वायु ने कहा—सात मन्वन्तरो की काल की सख्या *क्रम के अनुसार बतलाऊँगा । सक्षेप मे बतलाते हुए मुझसे सब जान लो ॥१३॥* दो सहस्र आठ सौ करोड तथा सत्तर नियुत बासठ करोड़ कल्प के आधे भाग की यह सख्या कह दी गई है ॥ १४ ॥

पूर्वोक्तौ च गुणच्छेदौ वर्षाग्रं लब्धमादिशेत् ।
शतं चैव तु कोटीनां कोटीनामष्टसप्ततिः ।
द्वे च शतसहस्रे तु नवतिर्नियुतानि च ॥१५
मानुषेण प्रमाणेन यावद्वैवस्वतान्तरम् ।
एष कल्पस्तु विज्ञेयः कल्पार्द्धं द्विगुणीकृतः ॥१६
अनागतानां सप्तानामेतदेव यथाक्रमम् ।
प्रमाणं कालसंख्याया विज्ञेयं मतमैश्वरम् ॥१७
नियुतान्यष्टपञ्चाशत्तथाऽशीतिशतानि च ।
चतुरशीतिश्चान्यानि प्रयुतानि प्रमाणतः ॥१८
सप्तर्षयो मनुश्चैव देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ।
एतत् कालस्य विज्ञेयं वर्षाग्रन्तु प्रमाणतः ॥१९
एवं मन्वन्तरं तेषां मानुषान्तः प्रकीर्त्तितः ।
प्रणवान्ताश्च ये देवाः साध्या देवगणाश्च ये ।
विश्वे देवाश्च ये नित्याः कल्पं जीवन्ति ते गणाः ॥२०
अयं यो वर्त्तते कल्पो वाराहः स तु कीर्त्त्यते ।
यस्मिन् स्वायम्भुवाद्याश्च मनवश्च चतुर्दश ॥२१

पूर्व में उक्त गुणच्छेद लब्ध वर्ष का अग्र बताना चाहिए । एक सौ अठत्तर करोड़ दो सौ हजार नब्बे नियुत होता है ॥ १५ ॥ मानुष प्रमाण से जितना वैवस्वतान्तर है कल्प के अर्ध भाग को दुगुना करने पर वह कल्प जानना चाहिए ॥१६॥ अनागत सातों के काल की संख्या में प्रमाण भी यथाक्रम ही होता है, यह ऐश्वर मत है ॥ १७ ॥ अट्ठावन नियुत तथा अस्सी सौ और चौरासी अन्य प्रयुत प्रमाण से होते हैं ॥ १८ ॥ सप्तर्षिगण—मनु और इन्द्रादि देवगण यह काल का वर्षाग्र प्रमाण जान लेना चाहिए ॥ १९ ॥ इसी प्रकार से उनका मन्वन्तर मानुषान्त कहा गया है । प्रणवान्त जो देवता है, साध्य और जो देवगण हैं और जो नित्य विश्वेदेवा हैं वे सब गण एक कल्प पर्यन्त जीवित रहा करते हैं । यह जो कल्प बरत रहा है वह वाराह इस नाम से कहा जाता है । जिसमें स्वायम्भुवादि चौदह मनु होते हैं ॥ २०-२१ ॥

यस्माद्वाराहकल्पोऽयं नामतः परिकीर्तितः ।
कस्माद कारणाद्देवो वराह इति कीर्त्यते ॥२२
को वा वराहो भगवान् कस्य योनिः किमात्मकः ।
वराह कथमुत्पन्न एतदिच्छाम वेदितुम् ॥२३
वराहस्तु यथोत्पन्नो यस्मिन्नर्थे च कल्पितः ।
वाराहश्च यथा कल्पः कल्पत्वं कल्पना च या ॥२४
कल्पयोरन्तरं यच्च तस्य चास्य च कल्पितम् ।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥२५
भवस्तु प्रथमः कल्पो लोकादौ प्रथितः पुरा ।
ज्ञातव्या भगवानत्र ह्यानन्दः साम्प्रतं स्वयम् ॥२६
ब्रह्मस्थानमिदं दिव्यं प्राप्तं वा दिव्यसम्भवम् ।
द्वितीयस्तु भवः कल्पस्तृतीयस्तप उच्यते ॥२७
भवश्चतुर्थो विज्ञयः पंचमो रम्भ एव च ।
ऋतुकल्पस्तथा षष्ठः सप्तमस्तु क्रतुः स्मृतः ॥२८

ऋषियों ने कहा—यह नाम से वाराह कल्प क्यों कहा गया है और किस कारण देव वाराह इस नाम से पुकारे जाते हैं ॥ २२ ॥ भगवान् वाराह कौन थे ? किससे उत्पन्न हुए और क्या उनका स्वरूप था ? वाराह उत्पन्न कैसे हुए, यह सभी हम जानने की इच्छा रखते हैं ॥ २३ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—वाराह जिस तरह से उत्पन्न हुए और जिस अर्थ में कल्पित हुए तथा जिस प्रकार से यह वाराह कल्प हुआ और जो कल्पत्व और कल्पना है ॥ २४ ॥ दो कल्पों में जो अन्तर है उसका और इसका जो कल्पित है वह सभी जैसा हम ने देखा है और सुना है कहेंगे ॥ २५ ॥ पहिले लोक के आदि में भव यह प्रथम कल्प प्रसिद्ध हुआ था । यहाँ भगवान् स्वयं साम्प्रत आनन्द जानने चाहिए ॥ २६ ॥ यह दिव्य ब्रह्म स्थान है अथवा दिव्य-सम्भव है । दूसरा भुव कल्प है, तीसरा तप कल्प कहा जाता है । २७ ॥ चतुर्थ भव-कल्प जानना चाहिए और पंचम रम्भ-कल्प होता है । छठा ऋतु कल्प होता है और सातवाँ क्रतु इस नाम से कल्प कहा गया है ॥ २८ ॥

अष्टमस्तु भवेद्वह्निर्नवमो हव्यवहनः ।
सावित्रो दशमः कल्पो भुवस्त्वेकादशः स्मृतः ॥२६
उशिको द्वादशस्तत्र कुशिकस्तु त्रयोदशः ।
चतुर्दशस्तु गन्धर्वो गान्धर्वो यत्र वै स्वरः ।
उत्पन्नस्तु यथा नादो गन्धर्वा यत्र चोत्थिताः ॥३०
ऋषभस्तु ततः कल्पो ज्ञेयः पंचदशो द्विजाः ।
ऋषयो यत्र सम्भूताः स्वरो लोकमनोहरः ॥३१
षड्जस्तु षोडशः कल्पः षड् जना यत्र चर्षयः ।
शिशिरश्च वसन्तश्च निदाघो वर्ष एव च ॥३२
शरद्धेमन्त इत्येते मनसा ब्रह्मणः सुताः ।
उत्पन्नाः षड्ज संसिद्धाः पुत्राः कल्पे तु षोडशे ॥३३
यस्माज्जातैश्च तैः षड्भिः सद्यो जातो महेश्वरः ।
तस्मात् समुत्थितः षड्जः स्वरस्तूदधिसन्निभः ॥३४
ततः सप्तदशः कल्पो मार्जालीय इति स्मृतः ।
मार्ज्जालीयं तु तत् कर्म यस्माद्ब्राह्ममकल्पयत् ॥३५

आठवाँ वह्नि नाम वाला कल्प होता है और नवम कल्प हव्य वाहन नाम वाला होता है। सावित्र इस नाम वाला दशम कल्प होता है और भुवः इस नाम से एकादश कल्प प्रसिद्ध होता है ॥ २६ ॥ उशिक बारहवाँ और कुशिक तेरहवाँ कल्प होता है । चौदहवाँ कल्प गन्धर्व होता है जहाँ गान्धर्व स्वर उत्पन्न हुआ जिसके नाद से यहाँ गन्धर्व उत्पन्न हुए थे । इसके पश्चात् पन्द्रहवाँ कल्प ऋषभ नाम वाला हुआ । जहाँ द्विज ऋषिवर्ग उत्पन्न हुए और लोक मनोहर स्वर उत्पन्न हुआ था ॥ ३०-३१ ॥ षड्ज सोलहवाँ कल्प है जहाँ छै जन ऋषि हैं। शिशिर और वसन्त, निदाघ और वर्षा, शरद और हेमन्त ये ब्रह्माजी के मानस पुत्र उत्पन्न हुए और सोलहवें कल्प में षड्ज से संसिद्ध हुए थे ॥ ३२-३३ ॥ जिससे उत्पन्न उन छै से तुरन्त ही महेश्वर उत्पन्न हुए उनसे उदधि के तुल्य षड्ज स्वर उठ खड़ा हुआ ॥ ३४ ॥ इसके पश्चात् सत्रहवाँ कल्प मार्जालीय इस नाम से कहा गया है। मार्जालीय वह कर्म है जिससे ब्राह्म की कल्पना की गई है ॥ ३५ ॥

ततस्तु मध्यमो नाम कल्पोऽष्टादश उच्यते ।
यस्मिंस्तु मध्यमो नाम स्वरो धैवतपूजितः ।
उत्पन्नः सर्वभूतेषु मध्यमो वै स्वयम्भुवः ॥३६
ततस्त्वेकोनविंशस्तु कल्पो वैराजकः स्मृतः ।
वैराजो यत्र भगवान् मनुर्वै ब्रह्मणः सुतः ॥३७
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दधीचिर्नाम धार्मिकः ।
प्रजापतिर्महातेजा बभूव त्रिदशेश्वरः ॥३८
अकामयत गायत्री यजमानं प्रजापतिम् ।
तस्माज्जज्ञे स्वरः स्निग्धः पुत्रस्तस्य दधीचिनः ॥३६
ततो विंशतिमः कल्पो निषाद परिकीर्त्तितः ।
प्रजापतिस्तु तं दृष्ट्वा स्वयम्भूप्रभवं तदा ।
विरराम प्रजा स्रष्टुं निषादस्तु तपोऽतपत् ॥४०
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु निराहारो जितेन्द्रियः ।
तमुवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥४१
ऊर्द्ध्वबाहुं तपोग्लानं दु खितं क्षुत्पिपासितम् ।
निषीदेत्यब्रवीदेनं पुत्रं शान्तं पितामहः ।
तस्मान्निषाद सम्भूत स्वरस्तु स निषादवान् ॥४२

इसके पश्चात् मध्यम इस नाम वाला अठारहवाँ कल्प कहा जाता है। जिसमें धैवत पूजित मध्यम इस नाम वाला स्वर उत्पन्न हुआ। समस्त प्राणियों में मध्यम स्वयम्भुव है ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर उन्नीसवाँ कल्प वैराजक कहा गया है। जहाँ भगवान् वैराज ब्रह्मा के पुत्र मनु हुए हैं ॥ ३७ ॥ उनके पुत्र महात्मा दधीचि परम धार्मिक हुए। त्रिदशेश्वर महान् तेज वाले प्रजापति हुए थे ॥ ३८ ॥ गायत्री ने यजमान प्रजापति की कामना की थी। उससे उन दधीचि का पुत्र स्निग्ध स्वर उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर बीसवाँ कल्प निषाद इस नाम से परिकीर्त्तित हुआ है। उस समय प्रजापति ने स्वयम्भू से उत्पन्न उसे देखकर प्रजा के सृजन के कार्य मे विराम ले लिया था। इसके अनन्तर निषाद ने तपश्चर्या आरम्भ करदी ॥ ४० ॥ निषाद ने एक सहस्र

दिव्य वर्षों तक निराहार और जितेन्द्रिय होकर तपश्चर्या की थी, तब लोक के पितामह महान् तेज वाले ब्रह्माजी ने उससे कहा ।।४१।। यह निषाद उस समय में ऊर्ध्व बाहुओं वाला—तप से अत्यन्त ग्लान—परम दुःखित और भूख-प्यास से युक्त होकर तप कर रहा था। तब पितामह ने इस शान्त अपने पुत्र से कहा—'निषीद' अर्थात् बैठ जाओ। इससे निषाद वाला वह निषाद स्वर उत्पन्न हुआ था ।।४२।।

एकविंशतिमः कल्पो विज्ञेयः पञ्चमो द्विजाः ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।।४३
ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः पञ्च ते ब्रह्मणः समाः ।
तैस्त्वर्थवादिभिर्युक्तैर्वाग्भिरिष्टो महेश्वरः ।।४४
यस्मात्परिगतैर्गीतैः पञ्चभिस्तैर्महात्मभिः ।
स्वरस्तु पञ्चमः स्निग्धः तस्मात्कल्पस्तु पञ्चमः ।।४५
द्वाविंशस्तु तथा कल्पो विज्ञेयो मेघवाहनः ।
यत्र विष्णुर्महाबाहुर्मेघो भूत्वा महेश्वरम् ।
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु अवहत् कृत्तिवाससम् ।।४६
तस्य निःश्वसमानस्य भाराक्रान्तस्य वै मुखात् ।
निर्जगाम महाकायः कालो लोकप्रकाशनः ।
यस्त्वयं पठ्यते विप्रैर्विष्णुर्वै कश्यपात्मजः ।।४७
त्रयोविंशतिमः कल्पो विज्ञेयश्चिन्तकस्तथा ।
प्रजापतिसुतः श्रीमान् चितिश्च मिथुनञ्च तौ ।।४८
ध्यायतो ब्रह्मणश्चैव यस्माच्चिन्ता समुत्थिता ।
तस्मात्तु चिन्तकः सो वै कल्पः प्रोक्तः स्वयम्भुवा ।।४९

हे द्विजगणों ! इक्कीसवाँ कल्प पञ्चम जानना चाहिए। प्राण—अपान—उदान—समान और व्यान ये ब्रह्माजी के मानस पाँच पुत्र जो कि ब्रह्मा के ही तुल्य थे उत्पन्न हुए। उनके द्वारा युक्त अर्थवादियों ने वाणियों के द्वारा महेश्वर की उपासना की थी ।।४३। ४४।। जिस कारण से महान् आत्मा वाले उन परिगत पाँच गीतों से गाये गये पञ्चम स्वर बहुत ही स्निग्ध हुए इसी कारण से

पञ्चम कल्प हुआ ॥४५॥ बाईसवाँ कल्प तो मेघवाहन इस नाम वाला जानना चाहिए, जहाँ पर महाबाहु विष्णु भगवान् ने मेघ होकर कृत्ति वस्त्र वाले महेश्वर को एक सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त वहन किया था ॥४६॥ भार से आक्रान्त निश्वास लेते हुए उसके मुख से महान् काया वाला लोक को प्रकाश देने वाला काल निकला था जो कि वह विष्णु ब्राह्मणो के द्वारा कश्यप का पुत्र पढ़ा जाता है ॥४७॥ तेईसवाँ कल्प चिन्तक जानना चाहिए। प्रजापति का पुत्र श्रीमान् चिति है और वे दोनों का जोड़ा है। ४८॥ ब्रह्म का ध्यान करते हुए ही चिन्ता समुत्पन्न हो गई थी, यही कारण है जिससे स्वयम्भू के द्वारा वह चिन्तक कल्प कहा गया है ।४९॥

चतुर्विंशतिमश्चापि ह्याकूति कल्प उच्यते।
आकूतिश्च तथा देवी मिथुन सम्बभूव ह ॥५०
प्रजा स्रष्टु तथाकूति यस्मादाह प्रजापति ।
तस्मात् स पुरुषोज्ञेय आकूति कल्पसज्ञित ॥५१
पञ्चविंशतिम कल्पो विज्ञाति परिकीर्त्तित ।
विज्ञातिश्च तथा देवी मिथुन सम्प्रसूयत ॥५२
ध्यायत पुत्रकामस्य मनस्यध्यात्मसज्ञितम्।
विज्ञात वै समासेन विज्ञानिस्तु तत स्मृत ॥५३
षड् विंशस्तु तत कल्पो मन इत्यभिधीयते।
देवी च शाङ्करी नाम मिथुन सम्प्रसूयते ॥५४
प्रजा वै चिन्तमानस्य स्रष्टुकामस्य वै तदा।
यस्मात् प्रजासम्भवनादुत्पन्नस्तु स्वयम्भुवा।
तस्मात् प्रजासम्भवनाद्भावनासम्भव स्मृत ॥५५
सप्तविंशतिम कल्पो भावो वै कल्पसज्ञित ।
पौर्णमासी तथा देवी मिथुन समपद्यत ॥५६

चौबीसवाँ कल्प आकूति कल्प कहा जाता है। आकूति और देवी दोनों का मिथुन हुआ था ॥५०॥ क्योकि प्रजापति ने आकूति से प्रजा के सृजन करने के लिए कहा था, इसी से वह पुरुष आकूति कहा गया और उसके नाम

से कल्प जानना चाहिए ।।५१।। पच्चीसवाँ कल्प विज्ञाति नाम से कहा गया है। विज्ञाति और देवी का मिथुन सम्प्रसूत होता है ।।५२।। मन में अध्यात्म संज्ञा वाले का ध्यान करते हुए पुत्र की कामना के होने से संक्षेप जाना गया अतएव विज्ञात होने से वह विज्ञाति कहा गया है ।।५३।। छब्बीसवाँ कल्प मन इस नाम से कहा जाता है और शाङ्करी देवी से यह मिथुन सम्प्रसूत किया जाता है ।।५४।। उस समय प्रजा की चिन्ता करते हुए प्रजा की सृष्टि की कामना वाले के प्रजा के सम्भवन होने से स्वयम्भू के द्वारा उत्पन्न है इसलिये प्रजा के सम्भवन से भावना सम्भव कहा गया है ।।५५।। सत्ताईसवाँ कल्प का नाम भाव कल्प हुआ है तथा पौर्णमासी देवी से यह मिथुन उत्पन्न हुआ ।।५६।।

प्रजा वै स्रष्टुकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
ध्यायतस्तु परं ध्यानं परमात्मानमीश्वरम् ।।५७
अग्निस्तु मण्डलीभूत्वा रश्मिजालसमावृतः ।
भुवन्दिवञ्च विष्टभ्य दीप्यते स महावपुः ।।५८
ततो वर्षसहस्रान्ते सम्पूर्णे ज्योतिमण्डले ।
आविष्टया सहोत्पन्नमपश्यत् सूर्यमण्डलम् ।।५९
यस्माददृश्यो भूतानां ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
दृष्टस्तु भगवान् देवः सूर्य्यः सम्पूर्णमण्डलः ।।६०
सर्वे योगाश्च मन्त्राश्च मण्डलेन सहोत्थिताः ।
यस्मात् कल्पो ह्ययं दृष्टस्तस्मात्तं दर्शमुच्यते ।।६१
यस्मान्मनसि सम्पूर्णो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
पुरा वै भगवान् सोमः पौर्णमासी ततः स्मृता ।।६२
तस्मात्तु पर्वदर्शे वै पौर्णमासञ्च योगिभिः ।
उभयोः पक्षयोर्ज्येष्ठमात्मनो हितकाम्यया ।।६३

प्रजा के सृजन की कामना रखने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा द्वारा परमात्मा ईश्वर का ध्यान करते हुए रश्मि जाल से समावृत अग्नि मण्डलीभूत होकर भू और दिव दोनों को विष्टब्ध करके महान् वपु वाला वह दीप्यमान होता है ।।५७-५८।। इसके पश्चात् एक सहस्र वर्ष के अन्त में सम्पूर्ण ज्योति-मण्डल में आविष्ट होने

वाली के साथ उत्पन्न होने वाले सूर्य मण्डल को देखा ।।५९।। परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा अदृश्य वह फिर भूतों को भगवान् सम्पूर्ण मण्डल वाले सूर्यदेव दृष्ट हुए अर्थात् पूर्ण रूप से दिखाई देने लगे ।।६०।। समस्त योग और मन्त्र उस मण्डल के साथ ही उत्थित हो गये थे। क्योंकि यह वहां देखा गया है, इसी से इसका नाम दर्शम्—यह कहा जाता है ।।६१।। क्योंकि पहिले परमेष्ठी ब्रह्म के मन से भगवान् सोम थे, इसके पश्चात् पौर्णमासी कही गई है ।।६२।। इसमें पर्वदर्श में योगियों के द्वारा अपने हित की कामना से दोनों पक्षों में पौर्णमास उपष्ट होता है ।।६३।।

दर्शञ्च पौर्णमासञ्च ये यजन्ति द्विजातय. ।
न तेषा पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात् कदाचन ।।६४
योऽनाहिताग्नि, प्रयतो वीराध्वान गतोऽपि वा ।
समाधाय मनस्त्तीव्र मन्त्रमुच्चारयेच्छनैं ।।६५
त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्व शर्धो मारुत पृट ईशिषे ।
त्व पाशगन्धर्वेंशिप पूषा विधत्तपासिना ।
इत्येव मन्त्र मनसा सम्यगुच्चारयेद्द्विज ।
अग्नि प्रविशते यस्तु रुद्रलोक स गच्छति ।।६६
सोमश्चाग्निस्तु भगवान् कालो रुद्र इति श्रुति ।
तस्माद्य प्रविशेदग्नि स रुद्रान्न निवर्त्तते ।।६७
अष्टा विंशतिम कल्पो बृहदित्यभिसज्ञित ।
ब्रह्मण पुत्रकामस्य स्रष्टुकामस्य वै प्रजाः।
ध्यायमानस्य मनसा बृहत्साम रथन्तरम् ।।६८
यस्मात्तत्र समुत्पन्नो बृहत' सर्वतोमुखः ।
तस्मात् बृहत' कल्पो विज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकै ।।६९
अष्टाशीतिसहस्राणा योजनाना प्रमाणत ।
रथन्तरन्तु विज्ञेय परम सूर्य्यमण्डलम् ।
तस्मादण्डन्तु विज्ञेयमभेद्य सूर्यमण्डलम् ।।७०
यत्सूर्य्यमण्डलञ्चापि बृहत्साम तु भिद्यते ।

भित्वा चैनं द्विजायान्ति योगात्मानो दृढव्रताः ।
सङ्घातमुपनीताश्च अन्ये कल्पा रथन्तरे ।।७१
इत्येतत्तु मया प्रोक्तं चित्रमध्यात्मदर्शनम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि कल्पानां विस्तरं शुभम् ।।७२

जो द्विजाति गण दर्श और पौर्णमास का यजन किया करते हैं, उनकी फिर ब्रह्मलोक से पुनरावृत्ति कदाचन ही होनी है ।।६४।। जो व्याहित अग्नि वाला न हो वह वीराध्वा को गया हुआ भी मन को समाहित करके शनैः मन्त्र का उच्चारण करते हैं ।।६५।। मन्त्र यह है—हे अग्ने ! आप रुद्र हैं, असुर हैं, मही हैं, दिव हैं, शर्व हैं और मारुत हैं । आप पूछे हुए हैं, समर्थ हैं, आप पाश-गन्धर्व शिव हैं और विपत्त पाणी के द्वारा पूषा हैं—इस इतने मन्त्र को मन से द्विज भली-भाँति धीरे से उच्चारण करे । जो अग्नि की अर्चना करता है वह रुद्र के लोक को चला जाता है ।।६५।।६६।। सोम और अग्नि भगवान् काल रुद्र हैं, यह श्रुति है । इसलिये जो अग्नि अर्चना करता है वह रुद्र से निवर्तमान नहीं होता है ।।६७।। अट्ठाईसवाँ कल्प 'बृहत्'—इस संज्ञा वाला होता है । पुत्र की इच्छा वाले और प्रजा की सृजन-कामना वाले ब्रह्मा के मन से ध्य न करते हुए बृहत्साम रथन्तर हुआ ।।६८।। क्योंकि वहाँ सर्वतोमुख बृहत् उत्पन्न हुआ था, इसीलिये तत्त्वों के चिन्तकों के द्वारा यह बृहतः कल्प जानने के योग्य हुआ है । ।।६६।। अट्ठासी हजार योजनों के प्रमाण से परम रथन्तर सूर्य-मण्डल जानना चाहिए । इसलिये यह अण्ड न भेदन करने के योग्य सूर्य-मण्डल जानना चाहिए । ।।७०।। जो बृहत् साम सूर्यमण्डल भी भिद्यमान होता है । दृढ़ व्रत वाले योगात्मा द्विज इसका भेदन करके जाया करते हैं । सङ्घात को उपनीत अन्य कल्प- रथन्तर में होते हैं । मैंने यह अध्यात्म दर्शन चित्र बतला दिया है । इससे आगे कल्पों का शुभ विस्तार बताऊँगा ।।७१।।७२।।

।। कल्प-संख्यानिरूपण ।।

अत्यद्भुतमिदं सर्वं कल्पानान्ते महामुने ।
रहस्यं वै समाख्यातं मन्त्राणाञ्च प्रकल्पनम् ।।१
न तवाविदितं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।

तस्माद्विस्तरन्. सर्वा कल्पसख्या ब्रवीहि नः ॥२
अत्र वः कथयिष्यामि कल्पसख्या यथा तथा ।
युगाग्र च वर्षाग्रन्तु ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥३
एक कल्पसहस्रन्तु ब्रह्मणोऽब्द प्रकीर्तित ।
एतदष्टसहस्रन्तु ब्रह्मणस्तद्युगं स्मृतम् ॥४
एकं युगसहस्रन्तु सवन तत् प्रजापते ।
सवनाना सहस्रन्तु द्विगुण त्रिवृत तथा ॥५
ब्रह्मण. स्थितिकालस्य चैनत् सर्व प्रकीर्तितम् ।
तस्य सख्या प्रवक्ष्यामि पुरस्ताद्वै यथाक्रमम् ॥६
अष्टाविशतिर्ये कल्पा नामतः परिकीर्तिता ।
तेषा पुरस्ताद्वक्ष्यामि कल्पसज्ञा यथाक्रमम् ॥७

ऋषियों ने कहा—हे महामुने ! आपने यह अत्यन्त ही अद्भुत कल्पो का सम्पूर्ण रहस्य और मन्त्रों का प्रकल्पन बताया है ॥१॥ तीनों लोकों में ऐसी कुछ भी वस्तु नहीं है जो आपको अविदित हो अर्थात् जिसे आप नहीं जानते हो—तात्पर्य यही है कि आप सभी कुछ जानते हैं। इसलिये आप हमारे सामने समस्त कल्पों की सख्या विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए ॥२॥ वायुदेव ने कहा—यहाँ मैं आपके आगे यथातथ्य कल्पों की सख्या–युग का अग्रभाग और परमेष्ठी ब्रह्माजी के वर्षों के अग्रभाग को बतलाता हूँ ॥३॥ एक सहस्र कल्पो का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है। इनका आठ सहस्र ब्रह्मा का युग कहा गया है ॥४॥ एक युग सहस्र प्रजापति का सवन होता है। इस तरह सवनों का सहस्र तथा द्विगुण एव त्रिवृत यह सब ब्रह्मा की स्थिति का काल बताया गया है। उसकी सख्या यथाक्रम पहिले बताऊँगा ॥५॥६॥ कल्पो की अट्ठाईस सख्या नाम से बतला दी गई है। उनकी पहिले कल्प सज्ञा को यथाक्रम कहूँगा ॥७॥

रथन्तरस्य साम्नस्तु उपरिष्टान्निबोधत ।
कल्पान्ते नाम धेयानि मन्त्रोत्पत्तिश्च यस्य या ॥८
एकोनविंशक कल्पो विज्ञेय. श्वेतलोहितः ।
यस्मिंस्तत् परसप्ततं ध्यायतो ब्रह्मणस्तथा ॥९

श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेताम्बरधरः शिखी ।
उत्पन्नस्तु महातेजाः कुमारः पावकोपमः ॥१०
भीमं मुखं महारौद्रं सुघोरं श्वेतलोहितम् ।
दीप्तं दीप्तेन वपुषा महास्यं श्वेतवर्च्चसम् ॥११
तं दृष्ट्वा पुरुषः श्रीमान् ब्रह्मा वै विश्वतोमुखः ।
कुमारं लोकधातारं विश्वरूपं महेश्वरम् ॥१२
पुराणपुरुषं देवं विश्वात्मा योगिनां चिरम् ।
ववन्दे देवदेवेशं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥१३
हृदि कृत्वा महादेवं परमात्मानमीश्वरम् ।
सद्योजातं ततो ब्रह्म ब्रह्मा वै समचिन्तयत् ।
ज्ञात्वा मुमोच देवेशो हृष्टो हासं जगत्पतिः ॥१४

रथन्तर का साम का ऊपर से समझ लो, जिसकी जो मन्वोत्पत्ति है और जो नामधेय हैं ॥८॥ उन्नीसवाँ कल्प श्वेत लोहित जानना चाहिए जिसमें ध्यान करने वाले ब्रह्माजी का परम ध्यान है ॥९॥ श्वेत उष्णीष (पगड़ी) वाला–श्वेत माला धारण करने वला–श्वेत वस्त्र धारी–महान् तेज से युक्त पावक के समान दीप्ति वाला शिखी कुमार उत्पन्न हुआ ॥१०॥ जिसका मुख भीम–महान् रौद्र–सुघोर और श्वेत लोहित है । दीप्त वपु से दीप्यमान–महान् मुख वाले और श्वेत वर्चस उसको देखकर विश्वतोमुख श्रीमान पुरुष ब्रह्माजी ने लोकों के धाता–विश्वरूप–महेश्वर–कुमार और पुराण पुरुष देव-देव को विश्वात्मा लोक पितामह की वन्दना की ॥ ११–१२–१३ ॥ परमात्मा ईश्वर महादेव को हृदय में स्थित करके ब्रह्म तुरन्त उत्पन्न हुआ है ऐसा ब्रह्माजी ने चिन्तन किया और ज्ञान प्राप्त करके परम प्रसन्न देवेश जगत्पति ने हास्य किया ॥ १४ ॥

ततोऽस्य पार्श्वतः श्वेता ऋषयो ब्रह्मवर्च्चसः ।
प्रादुर्भूता महात्मानः श्वेतमाल्यानुलेपनाः ॥१५
सुदन्दो नन्दकश्चैव विश्वनन्दोऽथ नन्दनः ।
शिष्यास्ते वै महात्मानो यैस्तु ब्रह्म ततो वृतम् ॥१६

तस्याग्रे श्वेत वर्णाभः श्वेतनामा महामुनि ।
विजज्ञेऽथ महातेजा यस्माज्जज्ञे नरस्त्वसौ ।।१७
तत्र ते ऋषय सर्वे सद्योजात महेश्वरम् ।
तस्माद्विश्वेश्वर देव ये प्रपश्यन्ति वै द्विजा ।
प्राणायामपरा युक्ता ब्रह्मणि व्यवसायिन ।।१८
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चस ।
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य ब्रह्मलोक व्रजन्ति च ।।१९
ततस्त्रिशत्तम कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्तित ।
रक्तो यत्र महातेजा रक्तवर्ण मधारयत् ।।२०
ध्यायत पुत्रकामस्य ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
प्रादुर्भूतो महातेजा कुमारो रक्तविग्रह ।
रक्तमाल्याम्बर धरो रक्तनेत्र प्रतापवान् ।।२१

इसके अनन्तर इसके पार्श्व में ब्रह्मवर्चस श्वेत ऋषिगण प्रादुर्भूत हुए जो महान् आत्मा वाले और श्वेतमाल्य तथा अनुलेपन वाले थे ।। १५ । सुनन्द, नन्दक, विश्वनन्द और नन्दन ये महान् आत्मा वाले शिष्य थे जिनसे वह ब्रह्म आवृत था ।। १६ ।। उसके आगे श्वेतवर्ण की आभा वाले श्वेत नाम वाले महामुनि उत्पन्न हुए जिससे महान् तेज वाला यह नर उत्पन्न हुआ था ।। १७ ।। वहाँ वे सब ऋषिगण सद्य उत्पन्न हुए विश्वेश्वर महेश्वर देव को देखते हैं और जो ब्राह्मण उसका दर्शन करते हैं वे प्राणायाम में परायण तथा ब्रह्म में व्यवसाय से युक्त थे ।। १८ ।। वे सब पापों से निर्मुक्त हुए बिना मल वाले ब्रह्मवर्चस ब्रह्मलोक का अतिक्रमण करके ब्रह्मलोक को चले जाते हैं ।। १९ ।। इसके पश्चात् श्री वायुदेव ने कहा—इसके अनन्तर तीसवा जो कल्प था वह रक्त—इस नाम से कहा गया है । जहाँ महान् तेज से युक्त रक्त था उसने रक्तवर्ण को धारण किया था ।। २० ।। पुत्र की कामना वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के ध्यान करते हुए महान् तेज वाला रक्त विग्रह से युक्त कुमार उत्पन्न हुआ था जो रक्तमाल्य और रक्त वस्त्र के धारण करने वाला रक्त नेत्रों वाला तथा प्रताप वाला था ।। २१ ।।

स तं दृष्ट्वा महादेवं कुमारं रक्तवाससम् ।
ध्यानयोगं परङ्गत्वा बुबुधे विश्वमीश्वरम् ॥२२
स तं प्रणम्य भगवान् ब्रह्मा परमयन्त्रितः ।
वामदेवं ततो ब्रह्मा ब्रह्मात्मकं व्यचिन्तयत् ॥२३
एवं ध्यातो महादेवो ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
मनसा प्रीतियुक्तेन पितामहमथाब्रवीत् ॥२४
ध्यायता पुत्रकामेन यस्मात्तेहं पितामहः ।
दृष्टः परमया भक्त्या ध्यानयोगेन सत्तम ॥२५
तस्माद्धयानं परं प्राप्य कल्पे कल्पे महातपाः ।
वेत्स्यसे मां महासत्व लोकधातारमीश्वरम् ।
एवमुक्त्वा ततः शर्वः अट्टहासं मुमोच ह ॥२६
ततस्तस्य महात्मानश्चत्वारश्च कुमारकाः ।
सम्बभूव मे महात्मानो विरेजुः शुद्धबुद्धयः ॥२७
विरजश्च विवाहश्च विशोको विश्वभावनः ।
ब्रह्मण्या ब्रह्मणस्तुल्या वीरा अध्यवसायिनः ॥२८

उस रक्त-वस्त्र धारी महादेव कुमार को उसने देखकर और पर ध्यान-योग में स्थित होकर विश्व-रूप ईश्वर का ज्ञान प्राप्त किया ॥ २२ ॥ भगवान परम यन्त्रित ब्रह्मा जी ने उसको प्रणाम करके फिर ब्रह्मा जी ने ब्रह्मात्मक वाम-देव का विशेष रूप से चिन्तन किया ॥ २३ ॥ इस प्रकार से परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा ध्यान किये हुए महादेव प्रीति से युक्त मन से पितामह से कहा ॥ २४ ॥ हे सत्तम ! पुत्र की कामना रखने वाले और ध्यान करने वाले तुमने पितामह मुझे परम भक्ति से तथा ध्यान के योग से देखा था ॥ २५ ॥ इसलिये परम ध्यान प्राप्त करके महान् तप वाले कल्प-कल्प में हे महासत्व ! लोकों के धाता ईश्वर मुझको भली भाँति जान लोगे । इस प्रकार से कह कर पश्चात् शर्व ने बड़ा अट्टहास किया था ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् उसके महान् आत्मा वाले चार कुमार उत्पन्न हुए थे और शुद्ध बुद्धि वाले महात्मा विशेष रूप से दीप्तिमान हुए थे ॥ २७ ॥ वे विरज, विवाह, विशोक और विश्वमानव थे तथा ब्रह्मण्य, वीर, अध्यवसायी और ब्रह्मा के ही तुल्य थे ॥ २८ ॥

रक्ताम्बरधराः सर्वे रक्तमाल्यानुलेपनाः ।
रक्तभस्मानुलिप्ताङ्गा रक्तास्या रक्तलोचना ॥२९
ततो वर्षसहस्रान्ते ब्रह्मण्या व्यवसायिनः ।
गृणन्तश्च माहात्मानो ब्रह्म तद्वामदेवकम् ॥३०
अनुग्रहार्थं लोकाना शिष्याणा हितकाम्यया ।
धर्मोपदेशमखिल कृत्वा ते ब्राह्मणाः स्वयम् ।
पुनरेव महादेव प्रविष्टा रुद्रमव्ययम् ॥३१
येऽपिचान्ये द्विजश्रेष्ठा युञ्जाना वाममीश्वरम् ।
प्रपद्यन्ति महादेव तद्भक्तास्तत्परायणा ॥३२
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चस ।
रुद्रलोक गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥३३

सब रक्त-वस्त्रों के धारण करने वाले और रक्त माल्य तथा अनुलेपन से युक्त थे। वे रक्त भस्म से अनुलिप्त अङ्गों वाले, रक्त मुख से युक्त तथा रक्त नेत्रों वाले थे ॥ २९ ॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्षों के अन्त मे वे ब्रह्मण्य-महात्मा और व्यवसायी उस वामदेव ब्रह्म को ग्रहण करने वाले थे ॥ ३० ॥ लोकों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये और शिष्यो के हित की कामना से समस्त धर्म का उपदेश करके वे ब्राह्मण स्वय पुन अव्यय रुद्र स्वरूप महादेव मे प्रविष्ट हो गये ॥ ३१ ॥ और जो भी अन्य श्रेष्ठ द्विज वाम ईश्वर के पुंजान होते हुए उनके परम भक्त एव उन ही में परायण रहने वाले थे वे महादेव को प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ वे सभी पापो से छुटकारा पाने वाले होकर विमल अर्थात् मल से रहित विशुद्ध होने वाले ब्रह्मवर्चस रुद्र लोक को जाते हैं जहाँ से फिर इस ९ । मे आवृत्ति दुर्लभ हुआ करती है ॥ ३३ ॥

॥ माहेश्वरावतार-योग ॥

एकत्रिंशत्तम कल्प पीतवासा इति स्मृतः ।
ब्रह्मा यत्र महातेजा पीतवर्णत्वमागत ॥१
ध्यायत. पुत्रकामस्य ब्रह्मण. परमेष्ठिन ।
प्रादुर्भूतो महातेजा· कुमारः पीतवस्त्रवान् ॥२

पीतगन्धानुलिप्ताङ्गः पीतमाल्यधरो युवा ।
पीतयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीषो महाभुजः ॥३
तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तं ब्रह्मा लोकेश्वरं प्रभुम् ।
मनसा लोकधातारं ववन्दे परमेश्वरम् ॥४
ततो ध्यानगतस्तत्र ब्रह्मा माहेश्वरीं पराम् ।
अपश्यद्गां विरूपां च महेश्वरमुखच्च्युताम् ॥५
चतुष्पदां चतुर्वक्त्रां चतुर्हस्तां चतुःस्तनीम् ।
चतुर्नेत्रां चतुःशृङ्गीं चतुर्दंष्ट्रां चतुर्मुखीम् ।
द्वात्रिंशल्लोकसंयुक्तामीश्वरीं सर्वतोमुखीम् ॥६
स तां दृष्ट्वा महातेजाः महादेवीं महेश्वरीम् ।
पुनराह महादेवः सर्वदेवनमस्कृतः ॥७

श्री वायुदेव ने कहा इकत्तीसवाँ कल्प पीतवासा इस नाम से कहा गया है जहाँ महान्-तेज वाला ब्रह्मा पीत वर्णता को प्राप्त हो गया है ॥ १ ॥ पुत्र के पाने की कामना से युक्त ध्यान करने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के पीत-वस्त्र वाला तथा महान् तेज से युक्त कुमार प्रादुर्भूत हुआ था ॥ २ ॥ वह कुमार पीत गन्ध से अनुलिप्त अङ्ग वाला था और वह युवा पीत-माल्य के धारण करने वाला था। वह महान् भुजाओं वाला पीतवर्ण का ही यज्ञोपवीत धारण करने वाला था और पीत ही मस्तक उष्णीष अर्थात् शिरोवस्त्र पहिने हुए था ॥ ३ ॥ ब्रह्मा ने ध्यान में संयुक्त उस लोकेश्वर प्रभु को देखकर मन से लोक धाता परमेश्वर की वन्दना की ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर वहाँ पर ध्यान में स्थित ब्रह्मा जी ने महेश्वर के मुखच्युत विरूप पर माहेश्वरी गौ को देखा ॥ ५ ॥ वह गौ चार पदों वाली, चार मुखों वाली चार ही हाथों से युक्त और चार स्तन वाली थी तथा उसके चार नेत्र, चार शृङ्ग, चार दाढ़ और चार मुख थे। वह बत्तीस लोकों से संयुक्त, सर्वतोमुखी और ईश्वरी थी ॥ ६ ॥ वह महान् तेज वाला उस महादेवी महेश्वरी को देखकर समस्त देवों के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्दित महादेव फिर बोले ॥ ७ ॥

मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमानः पुनः पुनः ।
एह्येहीति महादेवी सोत्तिष्ठत् प्राञ्जलिर्भृशम् ॥८

विश्वमावृत्य योगेन जगत्सर्वं वशीकुरु ।
अथ वा महादेवेन रुद्राणी त्वं भविष्यसि ।
ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्थं भविष्यसि ।।९
अथैना पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ।
प्रददौ देवदेवेशश्चतुष्पादां महेश्वरीम् ।
ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम् ।।१०
ब्रह्मा लोकनमस्कार्यं प्रपद्य ता महेश्वरीम् ।
गायत्रीन्तु ततो रौद्री ध्यात्वा ब्रह्मा सुयन्त्रित ।।११
इत्येता वैदिकी विद्या रौद्री गायत्रीमर्पिताम् ।
जपित्वा तु महादेवी रुद्रलोकनमस्कृताम् ।
प्रपन्नस्तु महादेव ध्यानयुक्तेन चेतसा । १२
ततस्तस्य महादेवो दिव्य योग पुन· स्मृतः ।
ऐश्वर्यं ज्ञानसम्पत्ति वैराग्य च ददौ पुन. ।।१३
अथाट्टहास मुमुचे भीषण दीप्तमीश्वरः ।
ततोऽस्य सर्वतो दीप्ता. प्रादुर्भूताः कुमारका. ।।१४

मति, स्मृति और बुद्धि, यह गाते हुए और बार-बार यही गायन करते हुए महादेवी आइये आइये यह कहते हुए वह अत्यन्त प्राञ्जलि होकर वहाँ स्थित हो गये ।। ८ ।। योग से विश्व को आवृत करके इस समस्त जगत् को वश में करो । अथवा आप महादेव के साथ रुद्राणी हो जाओगी । ब्राह्मणो के हित के लिये आप परमार्थ ही जाओगी ।। ९ ।। इसके अनन्तर इसको ध्यान करने वाले, पुत्र की इच्छा वाले परमेष्ठी को देव देवेश ने चार पादों वाली महेश्वरी को दे दिया । इसके पश्चात् उसको ध्यान के योग से परमेश्वरी जान लिया था ।। १० ।। लोकों के द्वारा नमस्कार करने के योग्य ब्रह्मा जी ने उस महेश्वरी के शरण मे जाकर इसके पश्चात् रौद्री गायत्री का ध्यान कर ब्रह्मा जी सुयन्त्रित हो गये ।। ११ ।। इस प्रकार से इस वैदिकी विद्या अर्पित रौद्री गायत्री का जप करके रुद्र लोक के द्वारा नमस्कृत महादेवी भली-भाँति आप में सलग्न हो गये थे और फिर ध्यान से युक्त चित्त से महादेव की प्रसन्नता मे प्राप्त हो गये थे

॥ १२ ॥ इसके अनन्तर महादेव ने पुनः दिव्य योग दिया और ऐश्वर्य, ज्ञान रूपी सम्पत्ति तथा वैराग्य प्रदान किया था ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त ईश्वर ने भीषण एवं दीप्त अट्टहास किया। इससे इसके सब ओर प्रादुर्भूत कुमार दीप्त हो गये ॥ १४ ॥

पीतमाल्याम्बरधराः पीतगन्धविलेपनाः ।
पीतोष्णीषशिरस्काश्च पीतास्याः पीतमूर्द्धजाः ॥१५
ततो वर्षसहस्रान्ते उषित्वा विमलौजसः ।
योगात्मानस्ततः स्नाता ब्राह्मणानां हितैषिणः ॥१६
धर्मयोगबलोपेता ऋषीणां दीर्घसत्रिणाम् ।
उपदिश्य तु ते योगं प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥१७
एवमेतेन विधिना प्रपन्ना ये महेश्वरम् ।
अन्येऽपि नियतात्मानो ध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः ॥१८
ते सर्वे पापमुत्सृज्य विरजा ब्रह्मवर्चसः ।
प्रविशन्ति महादेवं रुद्रन्ते त्वपुनर्भवाः ॥१९
ततस्तस्मिन् गते कल्पे पीतवर्णे स्वयम्भुवः ।
पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु सितकल्पो हि नामतः ॥२०
एकार्णवे तदा वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके ।
स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥२१

वे सभी कुमार पीत माल्य तथा अम्बर के धारण करने वाले थे और पीतवर्ण की गन्ध के अनुलेपन से युक्त थे। इनके मस्तक पर उष्णीष अर्थात् शिरोवेष्टन वस्त्र था वह भी पीत था, पीत मुख से युक्त तथा पीत ही केशों वाले थे ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर एक सहस्र वर्षों के अन्त में निवास करके विमल ओज वाले, योगात्मा और स्नान किये हुए तथा ब्राह्मणों के हितों के चाहने वाले धर्म के तथा योग के बल से उपेत वे सब दीर्घ सत्र का यजन करने वाले ऋषियों को अपना उपदेश देकर रुद्र ईश्वर योग में प्रविष्ट हो गये ॥ १६-१७ ॥ इस प्रकार से जो इस विधि से महेश्वर को प्रसन्न हुए तथा अन्य लोग भी ध्यान से युक्त नियत आत्मा वाले जितेन्द्रिय थे वे सभी अपने पापों से छूटकर विरज

घोर ब्रह्मवर्चस वे महादेव रुद्र में प्रवेश किया करते हैं और फिर उनका जन्म नहीं होता है ॥ १८ १९ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—इसके अनन्तर स्वयम्भू की पीतवर्ण वाले कल्प के समाप्त हो जाने पर फिर दूसरा कल्प प्रवृत्त हुआ जिसका नाम सित कल्प हुआ ॥ २० ॥ उस समय सर्वत्र एकमात्र समुद्र के दिव्य एक सहस्र वर्ष हो जाने पर प्रजा के सृजन की कामना करने वाले ब्रह्माजी परम दुःखित होते हुए चिन्ता करने लगे ॥ २१ ॥

तस्य चिन्तयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभो ।
कृष्ण समभवद्वर्णो ध्यायत परमेष्ठिन ॥२२
अथापश्यन्महातेजा प्रादुर्भूत कुमारकम् ।
कृष्णवर्ण महावीर्यं दीप्यमान स्वतेजसा ॥२३
कृष्णाम्बरवरोष्णीष कृष्णयज्ञोपवीतिनम् ।
कृष्णेन मौलिना युक्त कृष्णस्रगनुलेपनम् ॥२४
स त दृष्ट्वा महात्मानममर घोर मन्त्रिणम् ।
ववन्दे देवदेवेश विश्वेश कृष्णपिङ्गलम् ॥२५
प्राणायामपर श्रीमान् हृदि कृत्वा महेश्वरम् ।
मनसा ध्यानसयुक्त प्रपन्नस्तु यतीश्वरम् ।
अघोरेति ततो ब्रह्मा ब्रह्म एवानुचिन्तयन् ॥२६
एव वै ध्यायतस्तस्य ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
मुमाच भगवान् रुद्र अट्टहास महास्वनम् ॥२७
अथास्य पार्श्वत कृष्णा कृष्णस्रगनुलेपना ।
चत्वारस्तु महात्मान सम्बभूवु कुमारका ॥२८

इस तरह से चिन्ता करने वाले पुत्र की कामना से युक्त प्रभु परमेष्ठी का ध्यान मे सलग्न रहते-रहते ही कृष्णवर्ण हो गया ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर महान् तेज वाले ने प्रादुर्भाव होने वाले कृष्णवर्ण से युक्त महान् वीर्य वाले अपने तेज से देदीप्यमान कुमार को देखा ॥ २३ ॥ वह कुमार काले वस्त्र और शिरोवेष्टन वाला था तथा कृष्ण उपवीत धारण कर रहा था । उसका मस्तक भी कृष्ण था तथा कृष्णवर्ण की माला और विलेपन से युक्त था ॥ २४ ॥ उस महान् आत्मा

वाले घोर मन्त्र से युक्त अमर उसने देखकर कृष्ण पिङ्गल विश्वेश तथा देव देवेश उसको प्रणाम किया ॥ २५ ॥ प्राणायाम करने में परायण होकर श्रीमान् उसने हृदय में उसको स्थित करके ध्यान से संयुक्त यतियों के स्वामी महेश्वर को मन से प्रसन्न हुआ था और इसके पश्चात् यह अघोर है, ऐसा ब्रह्मा ने उस ब्रह्म का चिन्तन किया था ॥ २६ ॥ इस प्रकार से परमेष्ठी ब्रह्माजी के ध्यान करते हुए भगवान् रुद्र ने उस समय बहुत ही अधिक ध्वनि से युक्त महान् अट्टहास किया था ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् इसके पार्श्व प्रदेश में कृष्णवर्ण वाले तथा कृष्णवर्ण की माला और विलेपन से युक्त महान् आत्मा वाले चार कुमारों का सम्भव (जन्म) हुआ था ॥ २८ ॥

कृष्णाः कृष्णाम्बरोष्णीषाः कृष्णास्याः कृष्णवाससः ।
तैश्चाट्टहासः सुमहान् हुङ्कारश्चैव पुष्कलः ।
नमस्कारश्च सुमहान् पुनः पुनरुदीरितः ॥२९
ततो वर्षसहस्रान्ते योगात्तत् पारमेश्वरम् ।
उपासित्वा महाभागाः शिष्येभ्यः प्रददुस्ततः ॥३०
योगेन योगसम्पन्नाः प्रविश्य मनसा शिवम् ।
अमलं निर्गुणं स्थानं प्रविष्टा विश्वमीश्वरम् ॥३१
एवमेतेन योगेन ये चाप्यन्ये द्विजातयः ।
स्मरिष्यन्ति विधानज्ञा गन्तारो रुद्रमव्ययम् ॥३२
ततस्तस्मिन् गते कल्पे कृष्णरूपे भयानके ।
अन्यः प्रवर्त्तितः कल्पो विश्वरूपस्तु नामतः ॥३३
विनिवृत्ते तु संहारे पुनः सृष्टे चराचरे ।
ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ।
प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती ॥३४
विश्वमाल्याम्बरधरं विश्वयज्ञोपवीतिनम् ।
विश्वोष्णीषं विश्वगन्धं विश्वस्थानं महाभुजम् ॥३५
अथ तं मनसा ध्यात्वा युक्तात्मा वै पितामहः ।
ववन्दे देवमीशानं सर्वेशं सर्वगं प्रभुम् ॥३६

वे चारो उत्पन्न होने वाले कुमार एकदम कृष्ण वर्ण वाले थे। उनके वस्त्र और शिरोवेष्टन भी कृष्ण थे, कृष्ण वर्ण का ही उन सब का मुख था और कृष्ण वस्त्रधारी थे। उन्होंने सुमहान् अट्टहास और बहुत अधिक हुङ्कार एवं बार बार सुमहान् नमस्कार का उच्चारण किया था॥ २९॥ इसके अनन्तर जब एक सहस्र वर्ष समाप्त हो गये तब योग से उस परम ईश्वर की उपासना करके महाभाग वाले उन्होंने शिष्यों को दे दिया॥ ३०॥ योग से सम्पन्न होते हुए योग के बल से वे मन से अमल, निर्गुण विश्व स्वरूप ईश्वर के स्थान में प्रविष्ट हो गये॥ ३१॥ इस प्रकार से इसी योग से जो अन्य भी द्विजाति थे जो कि इस विधान के ज्ञाता थे वे अव्यय रुद्र के समीप में गमन करने वाले स्मरण करेंगे॥ ३२॥ इसके अनन्तर उस कृष्ण रूप वाले भयानक कल्प के समाप्त हो जाने पर फिर अन्य कल्प प्रवृत्त हुआ जिसका नाम विश्व रूप था॥ ३३॥ संहार के निवृत्त हो जाने पर और फिर इस चराचर के सृष्ट हो जाने पर पुत्र की कामना रखने वाले तथा ध्यान में संलग्न रहने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के महान् नाद (ध्वनि) वाली विश्व रूपा सरस्वती प्रादुर्भूत हुई अर्थात् सरस्वती ने जन्म ग्रहण किया था॥ ३४॥ विश्व माल्य को धारण करने वाले तथा विश्व के अम्बर के धारण करने वाले, विश्व यज्ञोपवीत के धारी, विश्व का उष्णीष धारण करने वाले, विश्वगन्ध, विश्व स्थान और महान् भुजा वाले उसका युक्तात्मा ब्रह्मा ने मन से ध्यान करके उस सर्वत्र गमन करने वाले, सब के स्वामी ईशान देव की वन्दना की॥ ३५ ३६॥

ओमीशान नमस्तेऽस्तु महादेव नमोऽस्तु ते।
एवं ध्यानगतं तत्र प्रणमन्तं पितामहम्।
उवाच भगवानीश प्रीतोऽहं ते किमिच्छसि॥३७
ततस्तु प्रणतो भूत्वा वाग्भिः स्तुत्वा महेश्वरम्।
उवाच भगवान् ब्रह्मा प्रीतः प्रीतेन चेतसा॥३८
यदिदं विश्वरूपन्ते विश्वगा विश्वमीश्वरम्।
एतद्वेदितुमिच्छामि कथाय परमेश्वर॥३९
कैषा भगवती देवी चतुष्पादा चतुर्मुखी।

चतुःश्रृङ्गी चतुर्वक्त्रा चतुर्दन्ता चतुःस्तनी ॥४०
चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथं स्मृता ।
किन्नामधेया कोऽस्यात्मा किंवीर्या वापि कर्मतः ॥४१

हे महादेव ! ओमीशान आपके लिये नमस्कार है इस प्रकार से ध्यान में संलग्न होने वाले एवं प्रणाम करते हुए पितामह से भगवान् ईश ने कहा—मैं तुम से बहुत ही प्रसन्न हूँ, बतलाओ तुम क्या चाहते हो ? ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त प्रणत होकर और अपनी वाणियों से महेश्वर की बहुत कुछ स्तुति करके परम प्रसन्न चित्त से ब्रह्माजी ने कहा ॥ ३८ ॥ जो आपका यह विश्व रूप है, विश्व में सर्वत्र गमन करने वाला और इस विश्व का ईश्वर स्वरूप है इसे मैं जानना चाहता हूँ कि यह परमेश्वर कौन है ? ॥ ३९ ॥ और मैं यह भी ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखता हूँ कि यह भगवती चार पादों वाली तथा चार मुखों वाली, चार सींग, चार मुख, चार दाँत एवं चार स्तनों वाली देवी कौन है जिसके चार हाथ हैं चार नेत्र है । यह विश्वरूपा कैसे कही गई है ? इसका क्या नाम है, इसकी आत्मा कौन हैं, इसका वीर्य (पराक्रम) क्या होता है और इसका कर्म क्या है, यह सभी मैं जानना चाहता हूँ ॥ ४०-४१ ॥

रहस्यं सर्वमन्त्राणां पावनं पुष्टिवर्द्धनम् ।
शृणुष्वैतत्परं गुह्यमादिसर्गे यथा तथम् ॥४२
अयं यो वर्त्तते कल्पो विश्वरूपस्त्वसौ स्मृतः ।
यस्मिन् भवादयो देवाः षड्विंशन्मनवः स्मृताः ॥४३
ब्रह्मस्थानमिदं चापि यदा प्राप्तं त्वया विभो ।
तदाप्रभृति कल्पश्च त्रयस्त्रिंशत्तमो ह्ययम् ॥४४
शतं शतसहस्राणामतीता ये स्वयम्भुवः ।
पुरस्तात्तव देवेश तान्शृणुष्व महामुने ॥४५
आनन्दस्तु स विज्ञेय आनन्दस्ते महालयः ।
गालव्यगोत्रतपसा मम पुत्रस्त्वमागतः ॥४६
त्वयि योगश्च साङ्ख्यश्च तपो विद्याविधिः क्रिया ।

ऋत सत्यञ्च यद्ब्रह्म अहिंसा सन्ततिक्रमाः ॥४७
ध्यान ध्यानवपु शान्तिर्विद्याऽविद्यामतिर्धृतिः।
कान्ति शान्ति स्मृतिर्मेधा लज्जा शुद्धि सरस्वती।
तुष्टि पुष्टि क्रिया चैव लज्जा क्षान्ति प्रतिष्ठिता ॥४८
षडविंशत्तद्गुणा ह्येषा द्वात्रिंशाक्षरसञ्ज्ञिता।
प्रकृति विद्धि ता ब्रह्म त्वत्प्रसूति महेश्वरीम् ॥४९

महेश्वर ने कहा—यह समस्त मन्त्रो का रहस्य है और यह पावन तथा पुष्टि के वर्धन करने वाला है। तुम अब मुझ से इस परम गोपनीय विषय को सुनो जो कि आदि सर्ग मे जैसा था ॥ ४२ ॥ जो यह कल्प इस समय वर्तमान है वह विश्वरूप इस नाम वाला कहा गया है जिसमें भवादि देव छब्बीस मनु कहे गये हैं ॥ ४३ ॥ हे विभो ! यह ब्रह्म-स्थान है जब कि आपने इसे प्राप्त किया है। तब से ही लेकर यह तेईसवाँ कल्प कहा गया है ॥ ४४ ॥ हे देवेश ! आपके सम्मुख ही जो सैकडो और सहस्रो स्वयम्भु बीत गये उनकी कथा बतलाता हूँ। उस समय तुम्हारा नाम आनन्द था ॥ ४५ ॥ तुम्हारा महात्म्य भी आनन्द ही होता है। गालव्य गोत्र तप से तुम मेरे पुत्रता को प्राप्त हुए हो ॥ ४६ ॥ तुममें योग, सांख्य, तप विद्या विधि, क्रिया, ऋत, सत्य जो ब्रह्म है वह, अहिंसा, सन्तति क्रम, प्रतिष्ठित हैं ॥ ४७ ॥ ध्यान-ध्यान का वपु, शान्ति, विद्या, अविद्यामति, धृति, कान्ति, शान्ति, स्मृति, मेधा, लज्जा, शुद्धि, सरस्वती, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, लज्जा और क्षान्ति ये सब तुम मे प्रतिष्ठित हैं ॥ ४८ ॥ ये छब्बीस गुण बत्तीस अक्षरो की सञ्ज्ञा से युक्त हैं। हे ब्रह्मन् ! उसको आपकी प्रसूति महेश्वरी प्रकृति समझना चाहिए ॥ ४९ ॥

सैषा भगवती देवी तत्प्रसूतिः स्वयम्भुव ।
चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रकीर्तिता।
प्रधान प्रकृति चैव यदाहुस्तत्त्वचिन्तका: ॥५०
अजामेता लोहिता शुक्लकृष्णा विश्व सप्रसृजमानां सुरूपाम्।
अजोऽहं वै बुद्धिमान्विश्वरूपा गायत्री गा विश्वरूपा हि बुद्धा ॥५१
एवमुक्त्वा महादेवः अट्टहासमथाकरोत्।

वलितास्फोटितरवं कहाकहनदन्तथा ॥५२
ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्याः सर्वरूपाः कुमारकाः ।
जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्द्धमुण्डश्च जज्ञिरे ॥५३
ततस्ते तु यथोक्तेन योगेन सुमहौजसः ।
दिव्य वर्षसहस्रन्तु उपासित्वा महेश्वरम् ॥५४
धर्मोपदेशं नियतं कृत्वा योगमयं दृढम् ।
शिष्टानां नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥५५

वह यह भगवती देवी स्वयम्भू की तत्प्रसूति है और यह चतुर्मुखी, जगद्योति, प्रकृति और गौ कही गई है । तत्वों के चिन्तन करने वाले पुरुष इसको प्रधान और प्रकृति कहते हैं ॥ ५० ॥ बुद्धिमान् ! मैं अज हूँ, यह अजा, लोहिता, कृष्ण शुक्ला, विश्व का संप्रजन करने वाली सुरूपा, विश्वरूप वाली, गौ और गायत्री जानी गई है ॥ ५१ ॥ महादेव ने इस प्रकार से कहकर अट्टहास किया और वलित एवं स्फोटितरव वाला कहकहे की ध्वनि की ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर उसके पार्श्व देश में जटी, मुण्डी शिखण्डी और अर्धमुण्ड दिव्य सर्वरूप कुमार उत्पन्न हुए ॥ ५३ ॥ इनके पश्चात् महान् ओज से युक्त यथोक्त योग के द्वारा उन्होंने दिव्य एक सहस्र वर्ष तक महेश्वर की उपासना की ॥ ५४ ॥ फिर योगमय नियत दृढ़ धर्मोपदेश करके शिष्टों में नियत आत्मा वाले ईश्वर रुद्र में प्रविष्ट हो गये ॥ ५५ ॥

॥ शार्व–स्तोत्र ॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयो विदुः।
कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं चेति चतुर्युगम् ॥१
एतत्सहस्रपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणः स्मृतम् ।
यामाद्यास्तु गणाः सप्त रोमवन्तश्चतुर्दश ॥२
सशरीराः श्रयन्ते स्म जनलोकं सहानुगाः ।
एवं देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जनं तपः ॥३
मन्वन्तरेष्वतीतेषु देवाः सर्वे महौजसः ।
ततस्तेषु गतेषूर्द्ध्वं सायुज्यं कल्पवासिनाम् ॥४

समेत्य देवैस्ते देवा प्राप्ते सङ्कालने तदा ।
महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते वै चतुर्द्दश ॥५
भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु वै तदा ।
शून्येषु तेषु लोकेषु महान्तेषु भुवादिषु ।
देवेष्वथ गतेषूर्द्ध्वं कल्पवासिषु वै जनम् ॥६
ततस्तान् सहसा ततो ब्रह्मा देवर्षिगणदानवान् ।
संस्थापयति वै सर्वान् दाहवृष्ट्या युगक्षये ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—मुनिगण भारतवर्ष में चार युग कहते हैं, कृत, त्रेता, द्वापर और तिष्य ये चार युग है ॥ १ ॥ इन युगों का एक सहस्र जब तक होता है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। यामादि सात गण और रोम वाले चौदह शरीर एवं अनुगों के साथ जनलोक का सेवन करते थे। इस प्रकार से देवों के अतीत हो जाने पर महर्लोक से जन और फिर तपलोक का सेवन करते हैं ॥ २-३ ॥ मन्वन्तरों के व्यतीत हो जाने पर महान् ओज से युक्त समस्त देव होते हैं। इसके पश्चात् कल्पवासियों में उनके ऊर्ध्व सायुज्य को प्राप्त हो जाने पर वे देव देवों के एकत्रित होकर उस समय सङ्कालन प्राप्त होने पर वे चौदहगण महर्लोक का परित्याग कर देते हैं ॥ ४-५ ॥ उस समय अवशिष्ट भूतादि स्थावरान्त, वे शून्य लोक, महान् भुवादि और देव जो कि कल्पवासी थे अर्द्धभाग में जनलोक में चले जाने पर इसके उपरान्त उस सहति से ब्रह्मा देव ऋषिगण और दानवों को संस्थापित करते हैं और युग के क्षय में सब की दाह वृष्टि से संस्थापना किया करते हैं ॥ ६-७ ॥

योऽतीत सप्तम कल्पो मया व परिकीर्तितः ।
समुद्रैः सप्तभिर्गाढमेकीभूतैर्महार्णव. ।
आसीदेकार्णवं घोरमविभाग तमोमयम् ॥८
मायर्यैकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधर. ।
जीमूताभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः ॥९
नारायणमुखोद्गीर्ण सोऽष्टम पुरुषोत्तम ।
अष्टबाहुर्महोरस्को लोकाना योनिरुच्यते ।

किमप्यचिन्त्यं युक्तात्मा योगमास्थाय योगवित् ॥१०
फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चसम् ।
महाभोगपतेर्भोगमन्वास्तीर्य महोच्छ्रयम् ।
तस्मिन्महति पर्यङ्के शेते वै कनकप्रभे ॥११
एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
आत्मारामेण क्रीडार्थं सृष्टं नाभ्यां तु पङ्कजम् ॥१२
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यवर्चसम् ।
वज्रदण्डं महोत्सेधं लीलया प्रभविष्णुना ॥१३
तस्यैवं क्रीडमानस्य समीपं देवमीढुषः ।
हेमब्रह्माण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।
चतुर्मुखो विशालाक्षः समागम्य यदृच्छया ॥१४

जो सातवाँ कल्प व्यतीत हो गया वह मैंने तुमको बतला दिया है। सात समुद्र जो गाढ़ एकीभूत महार्णव हैं उनसे एक अतिघोर तमोमय विभाग से रहित अर्णव ही गया था ॥ ८ ॥ उस एक समुद्र में मैंने शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले, मेघ की आभा के सदृश आभा से युक्त, कमल के समान नेत्रों वाले, किरीटधारी, लक्ष्मी के स्वामी हरि को देखा जो कि नारायण के मुख से उद्‌गीर्ण हुए और वह आठवें पुरुषोत्तम थे। उनके आठ भुजाऐं थीं, महान् चौड़ा वक्षःस्थल था और जो समस्त लोकों की योनि अर्थात् उद्भव स्थान कहे जाते हैं। योग के वेत्ता युक्त आत्मा वाले किसी अचिन्त्य का योग में स्थित होकर ध्यान करते थे ॥ ९-१० ॥ एक सहस्र फनों से युक्त अप्रतिम वर्चस वाले महाभोगपति के उस महान् उच्छ्रय वाले भोग को फैलाकर उस कनक के समान प्रभा वाले महान् पर्यङ्क पर शयन करते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार से वहाँ शयन करने वाले प्रभविष्णु विष्णु ने जो कि अपने आप में रमण करने वाले हैं उनने केवल क्रीड़ा के लिये अपनी नाभि में एककमल नाल की सृष्टि की थी॥१२॥ वह पङ्कज नाल सौ योजन के विस्तार वाला तथा तरुण सूर्य के समान वर्चस वाला था, इसका वज्र के सदृश दण्ड तथा इसकी महान् ऊँचाई थी, इसकी रचना प्रभविष्णु ने लीला से ही की थी ॥ १३ ॥ इस तरह क्रीड़ा करने वाले

उसके समीप में देव की उपासना करने वाले हेम ब्रह्माण्ड से उत्पन्न, सुवर्ण के समान वर्ण वाले, इन्द्रियों से परे ब्रह्माजी यदृच्छा से आये जो कि चार मुखों से युक्त, विशाल नेत्रों वाले थे ॥ १४ ॥

श्रिया युक्तेन मध्येन सुप्रभेण सुगन्धिना ।
त क्रीडमान पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा तु भेजिवान् ॥१५
स विस्मयमथागम्य शस्य सपूर्णया गिरा ।
प्रोवाच को भगान् शेते आश्रितो मध्यमम्भसाम् ॥१६
अथ तस्याच्युत श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभ वच
उदतिष्ठत पर्य्यङ्काद्विस्मयोत्फुल्ललोचन ॥१७
प्रत्युवाचोत्तर चैव क्रियते यच्च किञ्चन ।
द्यौरन्तरिक्ष भूतञ्च पर पदमह प्रभु ॥१८
तमेवमुक्त्वा भगवान् विष्णुः पुनरथाब्रवीत् ।
कस्त्व खलु सम यात समीप भगवान् कुत ।
कुतश्च भूयो गन्तव्य कुत्र वा ते प्रतिश्रय. ॥१९
को भवान् विश्वमूर्तिस्त्व कर्त्तव्य किञ्च ते मया ।
एव ब्रुवाण वैकुण्ठ प्रत्युवाच पितामह ॥२०
यथा भवास्तया चाहमादिकर्त्ता प्रजापति ।
नारायणसमाख्यात. सर्वं वै मयि तिष्ठति ॥२१

ब्रह्माजी ने श्री से युक्त, सुन्दर प्रभावाले, सुगन्ध से अन्वित नवीन कमल से क्रीडा करते हुए उनका दर्शन कर उनकी सेवा करना आरम्भ कर दिया ॥१५॥ इसके उपरान्त वह अत्यन्त आश्चर्य में भरकर शस्य सम्पूर्ण वाणी से बोले, इस जल के मध्य में आश्रय लेकर शयन करने वाले आप कौन हैं ? ॥१६॥ इसके अनन्तर भगवान् अच्युत उन ब्रह्माजी के इस शुभप्रश्न स्वरूप वचन को सुन कर विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाले होते हुए पर्यङ्क से उठ बैठे ॥१७। और उन्होंने ब्रह्माजी के प्रश्न का उत्तर दिया कि जो कुछ भी किया जाता है और अन्तरिक्ष (आकाश) एव भूत उन सबमें मैं परम पद प्रभु हूं ॥१८॥ उन ब्रह्मा जी से इस तरह भगवान् विष्णु ने कह कर फिर वे यह बोले, अन्य कौन हैं

जो यहाँ पर आये हो और आप कहाँ से आये हैं ? यहाँ आपका आगमन किस लिये हुआ है और फिर कहाँ जाना है तथा आपका आश्रय स्थान कौन सा है ? ॥१६॥ आप विश्वमूर्त्ति कौन हैं और मुझ से आप को क्या करना है ? इस प्रकार से बोलने वाले भगवान् विष्णु को पितामह ब्रह्माजी ने उत्तर दिया ॥२०॥ जिस प्रकार आप हैं वैसे ही आदि कर्त्ता प्रजापति मैं भी हूँ । मुझे नारायण इस नाम से कहा गया है और यह सभी कुछ मेरे अन्दर ही रहता है अर्थात् स्थिति प्राप्त करता है ॥२१॥

सविस्मयं परं श्रुत्वा ब्रह्मणा लोककर्तृणा ।
सोऽनुज्ञातो भगवता वैकुण्ठो विश्वसम्भवः ॥२२
कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम् ।
इमानष्टादशद्वीपान् ससमुद्रान् सपर्वतान् ।
प्रविश्य स महातेजाश्चातुर्वर्ण्यसमाकुलान् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् सप्तलोकान् सनातनान् ॥२३
ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान् विष्णुर्महायशाः ।
अहोऽस्य तपसो वीर्यं पुनः पुनरभाषत ॥२४
पर्य्यटन् विविधान् लोकान् विष्णुर्नानाविधाश्रमान् ।
ततो वर्षसहस्रान्तेनान्तं हि ददृशे तदा ॥२५
तदाऽस्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रारिकेतनः ।
अजातशत्रुर्भगवान् पितामहमथाब्रवीत् ॥२६
भगवन् आदि मध्यञ्च अन्तं कालदर्शोनं च ।
नाहमन्तं प्रपश्यामि ह्युदरस्य तवानघ ॥२७
एवमुक्त्वाब्रवीद्भूयः पितामहमिदं हरिः ।
भवानप्येवमेवाद्य ह्युदरं मम शाश्वतम् ।
प्रविश्य लोकान् पश्यैताननौपम्यान् द्विजोत्तम ॥२८

लोकों के कर्त्ता ब्रह्माजी ने परम आश्चर्य के साथ इस को सुन कर भगवान् ने विश्व सम्भव भगवान विष्णु को अनुज्ञात किया ॥२२॥ कौतूहल से वह महान् योगी ब्रह्मा के मुख में प्रविष्ट हो गये । उस महान् तेज वाले ने प्रवेश

करके समुद्रो और पर्वतो के सहित इन अठारह द्वीपो को चातुर्व्य से समाधुन एवं सनातन ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त सात लोको को सबरो ब्रह्मा के उदर में देखकर महान् यश वाले विष्णु ने मन मे सोचा, हो-हो, इमके तप का कितना आश्चर्यपूर्ण पराक्रम है ? इस के अनन्तर वे बार-बार बोले ॥३३-२४॥ विष्णु अनेक लोक और विविध भाँति के आश्रमो का पर्यटन करते रहे पर एक सहस्र वर्षो के अन्त मे भी उनका अन्त उन्होने नहीं देखा ॥२५॥ तब उस समय इनके मुख से पन्नगेन्द्रारि केतन अर्थात् पन्नग सर्पो के शिरोमणि के शत्रु गरुड के केतन वाले ने निकल कर अजात शत्रु अर्थात् ऐसे जिन का कोई शत्रु उत्पन्न ही न हुआ हो, भगवान् इसके अनन्तर पितामह ब्रह्माजी से बोले ॥२६॥ हे अनघ ? हे भगवान् ? आदि, मध्य और अन्तकाल और दिशा का अन्त तथा आपके उदर का अन्त मैं नही देख पारहा हूँ ॥२७॥ इस प्रकार से कह कर भगवान् हरि फिर पितामह से यह बोले-हे द्विजोत्तम ! ऐसे ही आप भी मेरे शाश्वत उदर मे प्रवेश करके उपमा मे रहित इन लोको को देखे ॥२८॥

मनः प्रह्लादनी वाणी श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च ।
श्रीपतेरुदरं भूय प्रविवेश पितामहः ॥२९
तानेव लोकान् गर्भस्थ पश्यन् सोऽचिन्त्यविक्रम ।
पर्यटित्वादिदेवस्य ददर्शान्तं न वै हरे ॥३०
ज्ञात्वागमन्तस्य पितामहस्य द्वाराणि सर्वाणि पिधाय विष्णु ।
विभुर्मन. कर्त्तुमियेष चाशु सुखं प्रसुप्तोऽस्मि महाजलौघे ॥३१
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितान्युपलक्ष्यते ।
सूक्ष्मं कृत्वात्मनो रूपं नाभ्या द्वारमविन्दत ॥३२
पद्मसूत्रानुमार्गेण ह्यनुगम्य पितामहः ।
उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः ।
विरराजारविन्दस्थ पद्मगर्भसमद्युति ॥३३
एतस्मिन्नन्तरे ताभ्यामेकैकस्य तु कार्त्स्न्यत ।
प्रवर्त्तमाने सहर्षे मध्ये तस्यार्णवस्य तु ॥३४
ततो ह्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वरः ।

शूलपाणिर्महादेवो हैमचीराम्बरच्छदः ।
आगच्छद् यत्र सोऽनन्तो नागभोगपतिर्हरिः ॥३५

उनकी अनेकों प्रसन्नता प्रदान करने वाली इस वाणी को सुनकर तथा उसका भली भाँति अभिनन्दन करके पितामहने श्रीपति के उदर में प्रवेश किया था ॥२६॥ चिन्तन करने के योग्य विक्रम वाले भगवान् हरि ने गर्भ में स्थित होते हुए उन्हीं लोकों को देखकर और चारों ओर पर्यटन करके आदि देव हरि का अन्त उन्होंने नहीं देखा ॥३०॥ उन पितामह के आगम को जान कर भगवन् विष्णु ने समस्त द्वारों को बन्द करके विभुने मन में यह करने की इच्छा की कि शीघ्र ही सुख पूर्वक इस महान् जलौध में शयन कर जाऊं ॥३१॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजी को समस्त द्वार पिहित दिखलाई दिये तब ब्रह्माजी ने अपने स्वरूप को सूक्ष्म बनाकर नाभि में द्वार प्राप्त किया था ॥३२॥ तब पितामह ने कमल सूत्र के अनुमार्ग के द्वारा अनुगमन करके फिर चतुरानन ने कमल से अपने रूप का उद्धार किया था। उस अरविन्द में स्थित होकर पद्म के गर्भ के समान द्युति वाले ब्रह्मा विशेष रूप से शोभित हुए ॥३३॥ इस बीच में उन दोनों में एक-एक को पूर्ण तथा हर्ष के उत्पन्न हो जाने से उस समुद्र के मध्य में पूर्ण समन्ताप हुआ था ॥३४॥ श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर अपरिमेय आत्मा वाले प्राणियों के स्वामी ईश्वर हैमचीराम्बर को धारण करने वाले शूल हाथ में लिये हुए महादेव वहाँ आगये जहाँ कि नागभोग के पति वह अनन्त हरि वर्त्तमान थे ॥३५॥

शीघ्रं विक्रमतस्तस्य पद्भ्यामत्यन्तपीडिताः ।
उद्धूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयबिन्दवः ।
अत्युष्णाश्चातिशीताश्च वायुस्तत्र ववौ भृशम् ॥३६

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं ब्रह्मा विष्णुमभाषत ।
अबिन्दवो हि स्थूलोष्णाः कम्पते चाम्बुजं भृशम् ।
एतं मे संशयं ब्रूहि किञ्चान्यत् त्वञ्चिकीर्षसि ॥३७

एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोद्भवम् ।
श्रुत्वाप्रतिमकर्माह भगवानसुरान्तकृत् ॥३८
किन्नु खल्वत्र मे नाभ्यां भूतमन्यत्कृतालयम् ।
वदन्ति प्रियमत्यर्थं विप्रियेपि च ते मया ॥३९
इत्येवं मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ।
किन्न्वत्र भगवांस्तस्मिन् पुष्करे जातसम्भ्रम ॥४०
किं मया यत् कृतं देव यन्मां प्रियमनुत्तमम् ।
भाषसे पुरुषश्रेष्ठ किमर्थं ब्रूहि तत्वत ॥४१
एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकयात्रान्तु तत्त्वगाम् ।
प्रत्युवाचाम्बुजाभास्को ब्रह्मा वेदनिधि प्रभु ॥४२

शीघ्र विक्रम करने वाले उसके पादों से अत्यन्त पीडित आकाश में शीघ्र मोटी जल की बिन्दु उद्भूत हुई थी। वे अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त शीतल थी। वहाँ पर वायु बहुत ही अधिक चलने लगी ॥ ३६ ॥ तब ब्रह्मा जी ने महान् आश्चर्य देखकर भगवान विष्णु से कहा—ये परम स्थूल एवं उष्ण जल की बूँदें इस कमल को बहुत ही अधिक कँपाती हैं। आप मेरे इस संशय को बतलाइये, आप और क्या करना चाहते हैं ? ॥ ३७ ॥ पितामह के मुख से उद्भूत इस वाक्य को सुनकर असुरों के अन्त करने वाले अप्रतिम अर्थात् अनुपम कर्म करने वाले भगवान बोले ॥ ३८ ॥ निश्चय ही मेरी इस नाभि में क्या अन्य प्राणी आलय करने वाले है ऐसा कहते हैं। मेरे द्वारा तुम्हारे अत्यन्त विप्रिय होने पर भी इसे अत्यन्त प्रिय ही कहते हैं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार से मन से ध्यान करके यह उत्तर बोले। क्या यहाँ पर आप इस कमल में सम्भ्रम वाले हो गये हैं ॥ ४० ॥ हे देव ! मैंने जो किया है हे पुरुष श्रेष्ठ ! उस अनुत्तम प्रिय को मुझे बोल रहे हैं आप किस लिये ऐसा कर रहे हैं ठीक-ठीक मुझे बतलाइये ॥ ४१ ॥ इस तरह बोलने वाले देवेश से अम्बुज की आभा वाले वेदों के निधि प्रभु ब्रह्मा जी ने तत्व वाली जो लोक यात्रा थी उसे बतलाया था ॥४२॥

योऽसौ तवोदरं पूर्वं प्रविष्टोऽहं त्वदिच्छया ।
यथा ममोदरे लोका. सर्वे दृष्टास्त्वया प्रभो ।
तथैव दृष्टा. कात्स्न्र्येन मया लोकास्तवोदरे ॥४३

ततो वर्षसहस्रान्ते उपावृत्तस्य मेऽनघ ।
नूनं मत्सरभावेन मां वशीकर्तुमिच्छता ।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि त्वया पुनः ॥४४
ततो मया महाभाग सञ्चिन्त्य स्वेन चेतसा ।
लब्धो नाभ्यां प्रवेशस्तु पद्मसूत्राद्विनिर्गमः ॥४५
माभूत्ते मनसोऽल्पोऽपि व्याघातोऽयं कथञ्चन ।
इत्येषानुगतिर्विष्णोः कार्याणामौपसर्गिकी ॥४६
यन्म यानन्तरं कार्यं मयाऽध्यवसितं त्वयि ।
त्वाञ्चाबाधितुकामेन क्रीडापूर्वं यदृच्छया ।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि मया पुनः ॥४७
न तेऽन्य थावमन्तव्यो मान्यः पूज्यश्च मे भवान् ।
सर्वं मर्षय कल्याण यन्मयाऽपकृतन्तव ।
तस्मान्मयोच्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो ॥४८
नाहं भवन्तं शक्नोमि सोढुन्तेजोमयं गुरुम् ।
स चोवाच वरं ब्रूहि पद्मादवतराम्यम् ॥४९

आपकी इच्छा से जो मैंने पहिले आप के उदर में प्रवेश किया था तब मैंने आपके उदर में पूर्ण रूप से, उसी रूप से समस्त लोक देखे जैसे कि है प्रभो ! आपने मेरे उदर में सम्पूर्ण लोक देखे थे ॥ ४३ ॥ हे अनघ ! फिर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त इधर-उधर वहाँ पर पर्यटन करने वाले मुझ को मात्सर्य के भाव से वश में करने की इच्छा वाले आपने शीघ्र ही समस्त द्वार घटित कर दिये अर्थात् बन्द कर दिये थे ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! इसके अनन्तर मैंने अपने चित्त से सोच-विचारकर नाभि में प्रवेश प्राप्त किया जिससे कि पद्मसूत्र से मेरा फिर विनिर्गम हुआ ॥ ४५ ॥ आपके मन को थोड़ा-सा भी किसी प्रकार का व्याघात न होवे, यह विष्णु के कार्यों की औपसर्गि की अनुगति होती है ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर जो मुझे करना चाहिए मैंने आप में अध्यवसित (निश्चित) कर लिया है। तुमको कोई भी बाधा न करने की इच्छा वाले मैंने यह इच्छा से क्रीड़ापूर्वक शीघ्र समस्त द्वार पुनः घटित कर दिये ॥ ४७ ॥ आपको इस विषय में

कुछ अन्य प्रकार की बात नही समझनी चाहिए। आप मेरे मान्य एवं पूजा करने के योग्य होते हैं। हे कल्याण स्वरूप! आपका जो भी मैंने कुछ अपकार किया है उसे क्षमा कीजिये। हे प्रभो! इसलिये मेरे द्वारा कहे हुए आप पद्म से अवतरण करें ॥ ४८ ॥ मैं तेजपूर्ण गुरु आपको सहन नही कर सकता हूँ। उन पर यह बोले—वर माँग लो, मैं पद्म से अवतरण करता हूँ ॥ ४९ ॥

पुत्रो भव ममारिघ्न मुद प्राप्स्यसि शोभनम्।
सत्य धनो महायोगी त्वमीड्य प्रणवात्मक ॥५०
अद्यप्रभृति सर्वेश श्वेतोष्णीपविभूपण।
पद्मयोनिरितीत्येव ख्यातो नाम्ना भविष्यसि।
पुत्रो मे त्व भव ब्रह्मन् सर्वलोकाधिप प्रभो ॥५१
तत स भगवान् ब्रह्मा वर गृह्य किरीटिन।
एव भवतु चेत्यक्त्वा प्रीतात्मा गतमत्सर ॥५२
प्रत्यासन्नमथायात वालार्काभ महाननम्।
भूतमत्यद्भुत दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत् ॥५३
अप्रमेयो महावक्त्रो दष्ट्री व्यस्तशिरो रुहः।
दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनैर्विश्वतोमुख ॥५४
लोकप्रभु स्वय साक्षाद्विकृतो मुञ्जमेखली।
मेढ्रेणोर्ध्वेन महता नदमानोऽतिभैरवम् ॥५५
कः खल्वेप पुमान् विष्णो तेजोराशिर्महाद्युति।
व्याप्य सर्वा दिशो द्याश्च इत एवाभिवर्त्तते ॥५६

भगवान् विष्णु ने कहा—हे अरिघ्न! मेरे पुत्र हो जाओ बहुत ही अच्छा आनन्द प्राप्त करोगे। सत्य धन वाले और महान् योगी आप प्रणव स्वरूप स्तुति करने के योग्य हैं। ५० ॥ हे सर्वेश! आज से लेकर श्वेत शिरोवेष्टन से विभूषित आप पद्मयोनि इस नाम से विख्यात हो जाओगे। हे प्रभो! हे ब्रह्मन्! हे समस्त लोकों के अधिप! तुम मेरे पुत्र हो जाओ ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर उन भगवान् ब्रह्मा जी ने किरीटी (विष्णु) के वरदान को ग्रहण करके "ऐसा ही होगा" यह कहकर प्रसन्न आत्मा वाले और मत्सरता से रहित हो

गये थे ॥ ५२ ॥ समीप में आये हुए बाल सूर्य के समान आभा वाले महान् आनन (मुख) से युक्त हुए अत्यन्त अद्भुत नारायण को देखकर बोले— ॥ ५३ ॥ अप्रमेय अर्थात् समझ में नहीं आने के योग्य, महान् मुख से युक्त दंष्ट्राधारी, व्यस्त बालों वाले, दश भुजाओं से युक्त, त्रिशूल के चिह्न वाले, नेत्रों से विश्वतोमुख, स्वयं लोकों के स्वामी, साक्षात् विकृत स्वरूप वाले, मूँज की मेखलाधारी, महान् ऊर्द्ध मेढ़ से ध्वनि करते हुए, हे विष्णो ! यह कौन ऐसा पुरुष है जो तेज की राशि और महाद्युति वाला है और समस्त दिशा में व्याप्त होकर इधर की ओर ही आ रहा है ॥ ५४-५५-५६ ॥

तेनैवमुक्तो भगवान् विष्णुर्ब्रह्माणम ब्रवीत् ।
पद्भयाम्तलनिपातेन यस्य विक्रमतोऽर्णवे ।
वेगेन महताकाशे व्यथिताश्च जलाशयाः ॥५७
छटाभिर्विष्णुतोऽत्यर्थं सिच्यते पद्म सम्भवः ।
घ्राणजेन च वातेन कम्पमानं त्वया सह ।
दोधूयते महापद्मं स्वच्छन्दं मम नाभिजम् ॥५८
स एष भगवानीशो ह्यनादिश्चान्तकृद्विभुः ।
भवानहञ्च स्तोत्रेण ह्युपतिष्ठाव गोध्वजम् ॥५९
ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम् ।
न भवान् न्यूनमात्मानं लोकानां योनिमुत्तमम् ॥६०
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं माञ्च वेत्ति सनातनम् ।
कोऽयं भोः शङ्करो नाम ह्यावयोर्व्यतिरिच्यते ॥६१
तस्य तत् क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा विष्णुरभाषत ।
मा मैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः ॥६२
मायायोगेश्वरो धर्मो दुराधर्षो वरप्रदः ।
हेतुरस्यात्र जगतः पुराणः पुरुषोऽव्ययः ॥६३

उनके द्वारा इस प्रकार से कहे गये भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा जी से कहा— जिससे विक्रम से पदों के तल निपातन से समुद्र में महान् वेग से, आकाश में समस्त जलाशय व्यथित हो गये हैं, छटाओं के द्वारा विष्णु से भी अधिक पद्म-

सम्भव सिच्यमान होते हैं और प्राण से उत्पन्न वायु से आपके साथ कम्पमान होकर मेरे नाभि से उत्पन्न इस स्वच्छन्द महान् पद्म को भी कँपा रहे हैं वह यह भगवान् ईश हैं जो अनादि और अन्त करने वाले विभु हैं। मैं और आप इन गोध्वज की स्तोत्र के द्वारा स्तुति करें ॥ ५७-५८-५९ ॥ इसके पश्चात् क्रोध-युक्त ब्रह्मा अम्बुज की आभा वाले केशव से बोले—आप उत्तम लोको की योनि, लोकों के करने वाले मुझको सनातन ब्रह्म को न्यूनात्मा नहीं जानते हैं। यह शङ्कर कौन है जो हम दोनों से भी अधिक बन रहा है ! ॥ ६०-६१ ॥ उनके उस क्रोध से उत्पन्न वाक्य को सुनकर विष्णु ने कहा—हे कल्याण ! ऐसा महान् आत्मा वाले की परिवाद (निन्दा) मत कहो ॥ ६२ ॥ यह महान् मायायोग का ईश्वर, धर्म दुराधर्ष, वर प्रदान करने वाले, इस जगत् के हेतु, पुराण और अव्यय पुरुष हैं ॥ ६३ ॥

जीवं खल्वेष जीवाना ज्योतिरेकं प्रकाशते ।
बालक्रीडनकैर्देवै क्रीडते शङ्करः स्वयम् ॥६४
प्रधानमव्ययं ज्योतिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः ।
अस्य चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः ।
यः कः स इति दुःखार्त्तैर्मृग्यते यतिभिः शिवः ॥६५
एष बीजी भवान् बीजमहं योनिः सनातनः ।
एवमुक्तोऽथ विश्वात्मा ब्रह्मा विष्णुमभाषत ॥६६
भवान्योनिरहं बीजं कथं बीजी महेश्वरः ।
एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्तं संशयं छेत्तुमर्हसि ॥६७
ज्ञात्वा चैव समुत्पत्तिं ब्रह्मणा लोकतन्त्रिणा ।
इदं परमसादृश्यं प्रश्नमभ्यवदद्धरिः ॥६८
अस्मान्महत्तरं गुह्यं भूतमन्यन्न विद्यते ।
महतः परमं धाम शिवमध्यात्मिना पदम् ॥६९
द्वैधीभावेन चात्मानं प्रविष्टन्तु व्यवस्थितः ।
निष्कलः सूक्ष्ममव्यक्तं सकलश्च महेश्वरः ॥७०

यह जीवों का निश्चय ही जीव है और एक ज्योति को प्रकाशित करते

हैं। यह देव शङ्कर स्वयं बच्चों के खिलौनों से क्रीड़ा किया करते हैं ॥ ६४ ॥ नित्य ही प्रसव के धर्म वाले इनके प्रधान, अव्यय, ज्योति, अव्यक्त, प्रकृति, तम ये नाम कहे जाते हैं। वह कौन है जो दुःखों के आर्त्त होने वाले यतियों के द्वारा खोजा जाया करता है? वह यही शिव हैं ॥ ६५ ॥ यह बीज वाले हैं, आप बीज हैं, मैं योनि हूँ जो कि सनातन हूँ। इस प्रकार से कहे गये विश्वात्मा ब्रह्म से बोले—॥ ६६ ॥ आप योनि हैं अर्थात् वह स्थान हैं जहाँ बीज पड़ा करता है, मैं बीज हूँ और महेश्वर बीज वाले हैं, यह मुझे बहुत बड़ा संशय हो रहा है इसलिये आप इस मेरे सन्देह का छेदन करने में समर्थ हों ॥ ६७ ॥ लोक-तन्त्री ब्रह्मा के द्वारा समुत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त कर भगवान हरि ने इस परम सा-दृश्य प्रश्न को बतलाया था ॥ ६८ ॥ इससे अधिक महान् अन्य कोई भी भूत नहीं है। शिव महान् का परम धाम और अध्यात्मवादियों का पद होता है ॥ ६९ ॥ अपने स्वरूप के दो विभाग कर प्रविष्ट होते हुए यह व्यवस्थित रहते हैं। सूक्ष्म अव्यक्त एक निष्कल स्वरूप है और दूसरा सकल अर्थात् कलाओं से युक्त महेश्वर स्वरूप होता है ॥ ७० ॥

अस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगहनस्य च ।
पुरा लिङ्गं भवद्बीजं प्रथमं त्वादिसर्गिकम् ॥७१
मयि योनौ समायुक्तं तद्बीजं कालपर्ययात् ।
हिरण्मयमपारन्तद्योन्यामण्डमजायत ॥७२
शतानि दशवर्षाणामण्डं चाप्सु प्रतिष्ठितम् ।
अन्ते वर्षसहस्रस्य वायुना तद्द्विधा कृतम् ॥७३
कपालमेकं द्यौर्जज्ञे कपालमपरं क्षितिः ।
उल्वन्तस्य महोत्सेधं योऽसौ कनकपर्वतः ॥७४
ततस्तस्मात् प्रबुद्धात्मा देवो देववरः प्रभुः ।
हिरण्यगर्भो भगवानहं जज्ञे चतुर्भुजः ॥७५
ततो वर्षसहस्रान्ते वायुना तद्द्विधा कृतम् ।
अताराकेन्दुनक्षत्रं शून्यं लोकमवेक्ष्य च ।
कोऽयमत्रे त्यभिध्याते कुमारास्तेऽभवंस्तदा ॥७६

प्रियदर्शनास्सुतनवो येऽनीता. पूर्वजास्तव ।
भूयो वर्षसहस्रान्ते तत एवात्मजास्तव ।
भुवनानलसङ्काशा. पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥७७

इस माया की विधि को जानने वाले तथा अगम्य एव गहन का पहिले आदि सर्गिक प्रथम लिङ्ग बीज हुआ जो कि आप है ॥ ७१ ॥ काल के पर्याय से वह बीज योनि स्वरूप मुत्र मे समायुक्त हुआ । वह उस समय योनि मे अपार हिरण्मय अण्ड के रूप मे उत्पन्न हो गया था ॥ ७२ ॥ वह अण्ड दश सहस्र वर्ष तक जल मे ही प्रतिष्ठित रहा फिर अन्त मे हजार वर्ष के बाद वह वायु के द्वारा दो कर दिया गया ॥ ७३ ॥ उसका एक कपाल अर्थात् आधा भाग ने द्यौ को उत्पन्न किया और दूसरे कपाल से क्षिति उत्पन्न हुई । उल्वन्त का महोत्सेध जो है वह यह कनक पर्वत है ॥ ७४ ॥ इसके पश्चात् उससे प्रबुद्ध आत्मा वाला देवो मे श्रेष्ठ प्रभु देव हिरण्यगर्भ आप और चार भुजाओं वाला मैं उत्पन्न हुआ ॥७५॥ फिर एक सहस्र वर्ष के अन्त मे वायु ने पुन' दो टुकड़े किये । तारा, सूर्य, चन्द्र से रहित शून्यलोक को देखकर यहाँ पर यह कौन है एसा अभिध्यान करने पर उस समय वे कुमार हुये ॥ ७६ ॥ देखने मे परम प्रिय, सुन्दर शरीर वाले आप के जो पहिले होने वाले पूर्वज थे वे ही एक सहस्र वर्षो के अन्त मे आपके अब आत्मज हैं । जो भुवन की अग्नि के समान तथा पद्मपत्र के तुल्य विशाल नेत्रों वाले हैं ॥ ७७ ॥

श्रीमान् सनत्कुमारस्तु ऋभुश्चै वोर्द्ध रेतसौ ।
सनातनश्च सनकस्तथैव च सनन्दन ।
उत्पन्ना समकाल ते बुद्धयाऽतीन्द्रियदर्शना ॥७८
उत्पना प्रतिघात्मानो जगदुश्च तदैव हि ।
नारप्स्यन्ते च कर्माणि तापत्रयविवर्जिता ॥७९
अस्य सौम्य बहुक्लेश जराशोकसमन्वितम् ।
जीवित मरण चैव सभवश्च पुन पुन ॥८०
स्वप्नभूत पुन. स्वर्ग दु खानि नरकास्तथा ।
विदित्वा चागम सर्वमवश्य भवितव्यताम् ॥८१

ऋभु सनत्कुमारश्च दृष्ट्वा तव वशे स्थितौ ।
त्रयस्तु त्रीन् गुणान् हित्वा आत्मजाः सनकादयः ।
वैवर्त्तेन तु ज्ञानेन निवृत्तास्ते महौजसः ॥८२
ततस्तेष्वपवृत्तेषु सनकादिषु वै त्रिषु ।
भविष्यसि विमूढस्तु मायया शङ्करस्य तु ॥८३
एवं कल्पे तु वैकल्पे संज्ञा नश्यति तेऽनघ ।
कल्पशेषाणि भूतानि सूक्ष्माणि पार्थिवानि च ॥८४
सा चैषा ह्यैश्वरी माया जगतः समुदाहृता ।
स एष पर्वतो मेरुर्देवलोक उदाहृतः ॥८५

उन कुमारों में श्रीमान् सनत्कुमार तो ऋभु और ऊर्द्ध्वरेता थे और सनातन, सनक एवं सनन्दन ये सब एक ही काल में उत्पन्न हुये थे और बुद्धि से अतीन्द्रिय दर्शन वाले थे ॥ ७८ ॥ ये प्रतिघात्मा उत्पन्न होते ही उसी समय कहने लगे कि तीनों तापों से रहित रहते हुए कुछ भी कर्मों को आरम्भ नहीं करेंगे ॥ ७९ ॥ इसके सौम्य और बहुत-से क्लेशों से पूर्ण तथा बुढ़ापा एवं शोक से युक्त जीवन और मरण को तथा बार-बार जन्म ग्रहण करना, स्वप्न के सदृश स्वर्ग में वास तथा दुःख एवं नरकों को जानकर तथा समस्त आगम और भवितव्यता का ज्ञान प्राप्त करके और ऋभु सनत्कुमार को आपके वश में रहने की स्थिति में देखकर तीन जो सनकादिकुमार थे वे गुणों को त्यागकर महान् ओज वाले वे तीनों वैवर्त्तमार्ग के ज्ञान से निवृत्त हो गये थे ॥ ८०—८१—८२ ॥ इसके अनन्तर उन तीनों सनकादिक के अपवृत्त हो जाने पर तुम शङ्कर की माया से विशेष रूप से मूढ़ हो जाओगे ॥ ८३ ॥ हे अनघ ! इस प्रकार से वैकल्प कल्प में आप की संज्ञा नष्ट हो जाती है और कल्प में शेष जो प्राणी हैं वे सूक्ष्म और पार्थिव हैं ॥ ८४ ॥ वह यह जगत् की ऐश्वरी माया कही गई है। और वह यह मेरु पर्वत जो है सो देवलोक बताया गया है ॥ ८५ ॥

तवैवेदं हि माहात्म्यं दृष्ट्वा चात्मानमात्मना ।
ज्ञात्वा चेश्वरसद्भावं ज्ञात्वा मामम्बुजेक्षणम् ॥८६
महादेवं महायोगं भूतानां वरदं प्रभुम् ।

प्रणवात्मानमासाद्य नमस्कृत्या जगद्गुरुम् ।
त्वाञ्च माञ्चैव सक्रुद्धो निःश्वासाभिर्दहेदयम् ॥८७
एवं ज्ञात्वा महायोग अभ्युत्तिष्ठन् महाबल. ।
अहं त्वामग्रतः कृत्वा स्तोष्येऽहमनलप्रभम् ॥८८
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा ततः स गरुडध्वजः ।
अतीतैश्च भविष्यैश्च वर्त्तमानैस्तथैव च ।
नामभिश्छान्दसैश्चैव इदं स्तोत्रमुदीरयत् ॥८९
नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे ।
नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः ॥९०
अमेढ्रायोर्द्धमेढ्राय नमो वैकुण्ठरेतसे ।
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय अपूर्वप्रथमाय च ॥९१
नमो हव्याय पूज्याय सद्योजाताय वै नमः ।
गह्वराय घनेशाय हैमचीराम्बराय च ॥९२

आपके ही इस माहात्म्य को तथा आत्मा से ही अपने आपको देखकर एवं ईश्वर के सद्भाव तथा अभ्युत्क्षेण मुझको जानकर महान् योग वाले प्राणियों को वर देने वाले प्रभु महादेव को जो कि प्रणव के स्वरूप वाले हैं, प्राप्त करके जगत् के गुरु को नमस्कार करके यह सक्रुद्ध होकर तुमको और मुझको निश्वास से निदग्ध कर देते हैं ॥८६॥८७॥ इस प्रकार से महान् बल वाले इन महायोग का ज्ञान प्राप्त करके अभ्युत्थित होता हुआ मैं तुमको आगे करके उस अनल के समान प्रभा वाले की स्तुति करूँगा ॥८८॥ श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर गरुडध्वज विष्णु ने ब्रह्माजी को आगे करके अतीत (गुजरे हुए) आगे आने वाले तथा वर्त्तमान नामों से और छान्दसों के द्वारा इस स्तोत्र का उच्चारण किया था ॥८९॥ सुन्दर व्रत वाले, अनन्त तेज से युक्त भगवान् आपके लिये नमस्कार है। क्षेत्र के अधिपति बीज वाले शूली के लिये नमस्कार है ॥९०॥ मेढ्र से रहित तथा ऊर्द्ध्व मेढ्र वाले वैकुण्ठरेता आपके लिये नमस्कार है। ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा अपूर्व प्रथम के लिये नमस्कार है ॥९१॥ हव्य पूज्य और सद्य उत्पन्न होने वाले के लिये नमस्कार है। गह्वर-घनेश और हैमचीराम्बर धारण करने वाले के लिये नमस्कार है ॥९२॥

नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवाय च ।
वेदकर्म्मावदानानां द्रव्याणां प्रभवे नमः ॥९३
नमो योगस्य प्रभवे सांख्यस्य प्रभवे नमः ।
नमो ध्रुवनिशीथानामृषीणां पतये नमः ॥९४
विद्युदशनिमेघानां गर्जितप्रभवे नमः ।
उदधीनाञ्च प्रभवे द्वीपानां प्रभवे नमः ॥९५
अद्रीणां प्रभवे चैव वर्षाणां प्रभवे नमः ।
नमो नदानां प्रभवे नदीनां प्रभवे नमः ॥९६
नमश्चौषधिप्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नमः ।
धर्म्माध्यक्षाय धर्म्माय स्थितीनां प्रभवे नमः ॥९७
नमो रसानां प्रभवे रत्नानां प्रभवे नमः ।
नमः क्षणानां प्रभवे कलानां प्रभवे नमः ॥९८
निमेष प्रभवे चैव काष्ठानां प्रभवे नमः ।
अहोरात्रार्द्धमासानां मासानां प्रभवे नमः ॥९९

हमारे सदृश प्राणियों के प्रभव स्थान के लिये नमस्कार है। वेद-कर्म और अवदान द्रव्यों के जन्म देने वाले के लिये नमस्कार है ॥९३॥ योग दर्शन के उत्पन्न करने वाले तथा सांख्य को प्रभव देने वाले के लिये नमस्कार है। ध्रुव निशीथ ऋषियों के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥९४॥ विद्युत्-वज्र और मेघों तथा गर्जन के प्रभव स्वरूप के लिये नमस्कार है। समस्त समुद्रों को जन्म देने वाले तथा सम्पूर्ण द्वीपों को उत्पन्न करने वाले के लिये नमस्कार है ॥९५॥ पर्वतों के प्रभव स्थान के लिये तथा वर्षों के उत्पत्ति स्वरूप वाले के लिये नमस्कार है। नद और नदियों के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥९६॥ औषधियों के तथा वृक्षों के प्रभु के लिये नमस्कार है। धर्म के अध्यक्ष तथा धर्म स्वरूप एवं समस्त स्थितियों के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥९७॥ समस्त रसों के तथा सम्पूर्ण रत्नों के स्वामी के लिये हमारा नमस्कार है। क्षण और कलाओं के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥९८॥ निमेष-काष्ठा अहोरात्र-अर्द्धमास और मासों के प्रभु के लिये हमारा नमस्कार है ॥९९॥

नम ऋतूनां प्रभवे सख्यायाः प्रभवे नम. ।
प्रभवे च परार्द्धस्य परस्य प्रभवे नमः ॥१००
नमः पुराणप्रभवे युगस्य प्रभवे नमः ।
चतुर्विधस्य सर्गस्य प्रभवेऽनन्तचक्षुषे ॥१०१
कल्पोदये निबद्धाना वार्त्ताना प्रभवे नमः ।
नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्मादिप्रभवे नमः ॥१०२
विद्याना प्रभवे चैव विद्यानां पतये नमः ।
नमो व्रताना पतये मन्त्राणा पतये नमः ॥१०३
पितृणा पतये चैव पशूना पतये नमः ।
वाग्वृषाय नमस्तुभ्यं पुराणवृषभाय च ॥१०४
सुचारुचारुकेशाय ऊर्द्ध चक्षु.शिराय च ।
नम. पशूना पतये गोवृषेन्द्रध्वजाय च ॥१०५

समस्त ऋतुओं के स्वामी तथा सम्पूर्ण सख्या के प्रभु के लिये नमस्कार है। परार्द्ध के प्रभु तथा पर के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥१००॥ पुराणो के प्रभु–युग के अधिपति और चारो प्रकार के सर्ग के स्वामी अनन्त चक्षु वाले के लिये हमारा नमस्कार है ॥१०१॥ कल्प के उदय के समय मे वार्त्ताओ के प्रभु के लिये नमस्कार है। इस विश्व के प्रभु तथा ब्रह्मादि के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥१०२॥ समस्त विद्याओ के स्वामी तथा प्रभु के लिये नमस्कार है। समस्त व्रतो के तथा सम्पूर्ण मन्त्रो के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥१०३॥ पितृगण के स्वामी एव पशुओ के प्रभु के लिये नमस्कार है। वाणी के वृषभ तथा पुराणो के वृषभ के लिये हमारा नमस्कार है ॥१०४॥ सुन्दर केशो वाले के लिये तथा ऊर्द्ध चक्षु एव शिर वाले के लिये नमस्कार है। पशुओ के पति तथा वृष एव इन्द्र ध्वज के लिये नमस्कार है ॥१०५॥

प्रजापतीना पतये सिद्धानां पतये नमः ।
गरुडोरगसर्पाणा पक्षिणा पतये नमः ॥१०६
गोकर्णाय च गोप्त्राय शङ्कुकर्णाय वै नमः ।
वाराहायाप्रमेयाय रक्षोधिपतये नमः ॥१०७

नमो ह्यप्सरसांपतये गणानां (पतये) ह्रीमये नमः ।
अम्भसां पतये चैव तेजसां पतये नमः ॥१०८
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये श्रीमते ह्रीमते नमः ।
बलाबलसमूहाय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च ॥१०९
दीर्घशृङ्गैक शृङ्गाय वृषभाय ककुद्मिने ।
नमः स्थैर्याय वपुषे तेजसे सुप्रभाय च ॥११०
भूताय च भविष्याय वर्त्तमानाय वै नमः ।
सुवर्च्चसेऽथ वीराय शूराय ह्यतिगाय च ॥१११
वरदाय वरेण्याय नमः सर्वगताय च ।
नमो भूताय भव्याय भवाय महते तथा ॥११२

समस्त प्रजापतियों के पति तथा समस्त सिद्धों के स्वामी के लिये नमस्कार है । गरुड़ तथा उरग एवं सर्पों के एवं पक्षियों के पति के लिये नमस्कार है ॥१०६॥ गोकर्ण-गोष्ठ और शंकु कर्ण के लिये नमस्कार है । वाराह–अप्रमेय और राक्षसों के अधिपति के लिये नमस्कार है ॥१०७॥ अप्सराओं के पति तथा गणों के स्वामी और ह्रीमय के लिये नमस्कार है । जलों के पति तथा तेजों के स्वामी के लिये हमारा नमस्कार है ॥१०८॥ श्री लक्ष्मी के स्वामी–श्रीमान् और ह्रीमान् के लिये नमस्कार है । बल तथा अबल के समूह स्वरूप एवं अक्षोभ्य और क्षोभण स्वरूप के लिये नमस्कार है ॥१०९॥ दीर्घशृङ्ग वाले, एक शृङ्ग वाले, ककुद वाले वृषभ के लिये नमस्कार है । स्थैर्य के वपु वाले तथा तेज स्वरूप एवं सुन्दर प्रभा वाले के लिये नमस्कार है ॥११०॥ भूत-भविष्य तथा वर्त्तमान के लिये नमस्कार है । सुन्दर वर्चस वाले वीर-शूर और अतिग के लिये नमस्कार है ॥१११॥ वरदान देने वाले, वरेण्य और सबमें निवास करने वाले के लिये नमस्कार है । भूत-भव्य-भव और महान् के लिये नमस्कार है ॥११२॥

जनाय च नमस्तुभ्यं तपसे वरदाय च ।
नमो वन्द्याय मोक्षाय जनाय नरकाय च ॥११३
भवाय भजमानाय इष्टाय याजकाय च ।

अभ्युदीर्णाय दीप्ताय तत्त्वाय निर्गुणाय च ॥११४
नम. पाशाय हस्ताय नम स्वाभरणाय च ।
हुताय अपहुताय प्रहुतप्रशिताय च ॥११५
नमोऽस्त्विष्टाय मूर्त्ताय ह्यग्निष्टोमर्त्विजाय च ।
नम ऋताय सत्याय भूताधिपतये नम. ॥११६
सदस्याय नमश्चैव दक्षिणावभृथाय च ।
अहिंसायाथ लोकाना पशुमन्त्रौषधाय च ॥११७
नमस्तुष्टिप्रदानाय त्र्यम्बकाय सुगन्धिने ।
नमोऽस्त्विन्द्रियपतये परिहाराय स्रग्विणे ॥११८
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतोऽक्षिमुखाय च ।
सर्वत पाणिपादाय रुद्रायाप्रमिताय च ॥११९

तप स्वरूप जनरूप और वरद के लिये नमस्कार है। वन्दना करने के योग्य-मोक्ष स्वरूप जन और नरक के लिये नमस्कार है ॥११३॥ भव भजमान इष्ट, याजक, अभ्युदीर्ण, दीप्त, तत्त्व, निर्गुण के लिये नमस्कार है ॥११४॥ पाश हस्त और स्वाभरण के लिये नमस्कार है। हुत, अपहुत, प्रहुत तथा प्रशित के लिये नमस्कार है ॥११५॥ इष्ट मूर्त्त और अग्नि सोम ऋत्विज के लिये हमारा नमस्कार है। ऋत एव सत्य तथा भूतो के अधिपति के लिये नमस्कार है ।११६। सदस्य के लिये तथा दक्षिणावभृथ के लिये नमस्कार है। अहिंसा के लिये तथा लोकों के पशु-मन्त्र एव औषध के लिये नमस्कार है ॥११७॥ तुष्टि के प्रदान करने वाले त्र्यम्बक और सुन्दर गन्ध वाले के लिये नमस्कार है। इन्द्रियों के पति, परिहार तथा स्रग्धारी के लिये नमस्कार है ॥११८॥ विश्व-विश्वरूप और विश्व से अक्षि मुख-सभी ओर हाथ और पद वाले, अप्रमित और रुद्र के लिये नमस्कार है ॥११९॥

नमो हव्याय कव्याय हव्यकव्याय वै नम. ।
नम. सिद्धाय मेध्याय चेष्टाय त्वव्ययाय च ॥१२०
सुवीराय सुघोराय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च ।
सुमेधसे सुप्रजाय दीप्ताय भास्कराय च ॥१२१

नमो नमः सुपर्णाय तपनीयनिभाय च ।
विरूपाक्षायत्र्यक्षाय पिङ्गलाय महौजसे ॥१२२
दृष्टिघ्नाय नमश्चैव नमः सौम्येक्षणाय च ।
नमो धूम्राय श्वेताय कृष्णाय लोहिताय च ॥१२३
पिशिताय पिशङ्गाय पिताय च निषङ्गिणे ।
नमस्ते सविशेषाय निर्विशेषाय वै नमः ॥१२४
नमो वै पद्मवर्णाय मृत्युघ्नाय च मृत्यवे ।
नमः श्यामाय गौराय कद्रवे रोहिताय च ॥१२५
नमः कान्ताय सन्ध्याभ्रवर्णाय बहुरूपिणे ।
नमः कपालहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने ॥१२६

हव्य और कव्य तथा हव्य-कव्य के लिये नमस्कार है। सिद्ध, मेध्य चेष्ट और अव्यय के लिये नमस्कार है ॥१२०॥ सुवीर, सूवीर, अक्षोभ्य क्षोभण, सुमेधा, सुप्रजा, दीप्त और भास्कर के लिये नमस्कार है ॥१२१॥ सुपर्ण और तपनीय के तुल्य के लिये नमस्कार है विरूपाक्ष, त्र्यक्ष, और महान् ओज वाले के लिये नमस्कार है ॥१२२॥ दृष्टि के हनन करने वाले के लिये नमस्कार है और सौम्य नेत्र वाले के लिये नमस्कार है। धूम्र, श्वेत, कृष्ण और लोहित के लिये हमारा नमस्कार है, ॥१२३॥ पिशित, पिशङ्ग, पीत और निषङ्ग वाले के लिये हमारा नमस्कार है विशेषता से युक्त तथा निर्विशेष के लिये नमस्कार है ॥१२४॥ पद्म जैसे वर्ण वाले, मृत्यु के नाश करने वाले तथा मृत्यु स्वरूप के लिये नमस्कार है। श्याम, गौर, कद्रु और रोहित के लिये नमस्कार है ॥१२५॥ कान्त सन्ध्या के समान अभ्र वर्ण वाले तथा बहुत, से रूप वाले के लिये नमस्कार है। कपाल हाथ में रखने वाले, दिशाओं के वस्त्र वाले अर्थात् नग्न या कपर्दी के लिये नमस्कार है ॥१२६॥

अप्रमेयाय शर्वाय ह्यवध्याय वराय च ।
पुरस्तात् पृष्ठतश्चैव विभ्राणाय कृशानवे ॥१२७
दुर्गाय महते चैव रोधाय कपिलाय च ।
अर्कप्रभशरीराय वलिने रंहसाय च ॥१२८

पिनाकिने प्रसिद्धाय स्फीताय प्रसृताय च ।
सुमेधसेऽक्षमालाय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥१२६
चित्राय चित्रवर्णाय विचित्राय धराय च ।
चेकितानाय तुष्टाय नमस्त्व निहिताय च ॥१३०
नम क्षान्ताय शान्ताय वज्रसहनाय च ।
रक्षोघ्नाय मखघ्नाय शितिकण्ठोर्द्ध्वरेतसे ॥१३१
अरिहाय कृतान्ताय तिग्मायुधधराय च ।
समोदाय प्रमोदाय इरिणायैव ते नमः ॥१३२
प्रणवप्रणवेशाय भक्ताना शर्मदाय च ।
मृगव्याधाय दक्षाय दक्षयज्ञहराय च ॥१३३

अप्रमेय—शर्व, ,अवध्य, वर, आगे और पीछे विभ्राण, कृशानु के लिये नमस्कार है ॥१२७॥ दुर्ग, महान्, रोध, कपिल, सूर्य की प्रभा से युक्त शरीर वाले के लिये , बली और रहम के लिय नमस्कार है ॥१२८॥ पिनाकी, प्रसिद्ध, स्फीत, प्रसृत, सुमेधा अक्षो की माला वाले, दिग्वासा तथा शिखण्डी के लिये नमस्कार है ॥१२६॥ चित्र चित्र वर्ण, विचित्र, धर, चेकिनान, तुष्ट और अनिहित के लिये हमारा नमस्कार है ॥१३०॥

क्षान्त, शान्त, वज्र सहनन, राक्षसो के हनन करने वाले, मखो के नाशक, शितिकण्ठ और उद्र्ध्वरेता के लिये नमस्कार है ॥१३१॥ शत्रुओ के नाशक, कृतान्त, तीक्ष्ण आयुधो के धारण करने वाले, मोह के सहित, प्रमोह स्वरूप और और इरिण के लिये नमस्कार है ॥१३२॥ प्रणव के प्रणवेश, भक्तो को कल्याण प्रदान करने वाले, मृगव्याध, दक्ष और दक्ष प्रजापति के यज्ञ के विध्वस करने वाले के लिये हमारा नमस्कार है॥१३३॥

सर्वभूताय भूताय सर्वेशातिशयाय च ।
पुरभेत्रे च शान्ताय सुगन्धाय वरेशवे ॥१३४
पुष्पवन्तस्वरूपाय भगनेत्रान्तकाय च ।
कणादाय वरिष्ठाय कामाङ्गदहनाय च ॥१३५

रवेः करालचक्राय नागेन्द्रदमनाय च ।
दैत्यानामन्तकायाथो दिव्याक्रन्दकराय च ॥१३६
श्मशानरतिनित्याय नमस्त्र्यम्बकधारिणे ।
नमस्ते प्राणपालाय धवमालाधराय च ॥१३७
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय च ।
नरनारीशरीराय देव्याः प्रियकराय च ॥१३८
जटिने दण्डिने तुभ्यं व्यालयज्ञोपवीतिने ।
नमोऽस्तु नृत्यशीलाय वाद्यनृत्यप्रियाय च ॥१३९
मन्यवे शीतशीलाय सुगीतिगायते नमः ।
कटककराय भीमाय चोग्ररूपधराय च ॥१४०

सर्वभूत, भूत, सर्वेश के अतिशय के लिये, पुर के भेदन करने वाले, शान्त सुगन्ध और नरेश के लिये नमस्कार है ॥१३४। पुष्पदन्त स्वरूप, भग नेत्रान्तक, कणाद, वरिष्ठ और काम के अङ्गों को दहन करने वाले के लिये नमस्कार है ॥१३५॥ सूर्य के कराल चक्र के लिये तथा नागेन्द्र के दमन के लिये, दैत्यों के अन्तक के लिये और दिव्यों को आक्रन्द करने वाले के लिये हमारा नमस्कार है ॥१३६॥ श्मशान रति के लिये तथा त्र्यम्बकधारी के लिये नमस्कार है। प्राणों के पालन करने वाले, धनकी माला के धारण करने वाले आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥१३७॥

प्रहीण शोक वाले अनेक भूतों के द्वारा परिवृत, नर और नारीके शरीर वाले तथा देवी के प्रिय करने वाले के लिये नमस्कार है ॥१३८॥ जटाओं के धारण करने वाले, दण्डधारी, व्यालों (सर्पों) के यज्ञोपवीत पहिनने वाले तुम्हारे लिये नमस्कार है। नृत्य करने के स्वभाव वाले तथा वाद्य एवं नृत्य पर प्यार करने वाले आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥१३९॥ मन्यु स्वरूप, शील के स्वभाव वाले तथा सुन्दर गीतों के गायन करने वाले, कटक कर, भीम और उग्ररूप धारण करने वाले के लिये हमारा नमस्कार है ॥१४०॥

विभीषणाय भीमाय भगप्रमथनाय च ।
सिद्धसङ्घातगीताय महाभागाय वै नमः ॥१४१

नमो मुक्ताट्टहासाय क्ष्वेडितास्फोटिताय च ।
नदते कूर्दते चैव नमः प्रमुदिताय च ॥१४२
नमोऽद्भुताय स्वपते धावते प्रस्थिताय च ।
ध्यायते जृम्भते चैव तुदते द्रवते नम ॥१४३
चलते क्रीडते चैव लम्बोदरशरीरिणे ।
नमः कृताय कम्पाय मुण्ड य विकराय च ॥१४४
नम उन्मत्तवेषाय किङ्किणीकाय वै नमः ।
नमो विकृतवेषाय क्रूरोग्रामर्षणाय च ॥१४५
अप्रमेयाय दीप्ताय दीप्तये निर्गुणाय च ।
नम प्रियाय वादाय मुद्रामणिधराय च ॥१४६
नमस्तोकाय तनवे गुणैरप्रतिमाय च ।
नमो गणाय गुह्याय अगम्यागमनाय च ॥१४७

विशेषरूप से भीषण, भीम, भग के प्रमथन करने वाले, सिद्धों के संघात (समुदाय) के द्वारा गान किये हुए तथा महाभाग के लिये हमारा नमस्कार है ॥१४१॥ अट्टहास को छोड़ने वाले, क्ष्वेडित से आस्फोटित कूर्दन करने वाले और प्रमुदित के लिये हमारा नमस्कार है ॥१४२॥ अद्भुत, शयन करने वाले, धारण करते हुए, प्रस्थान किये हुए, ध्यान करने वाले, जृम्भा लेते हुए, तुदन करते हुए और द्रवित होते हुए आपके लिये नमस्कार है ॥१४३॥ चलते हुए क्रीडा करते हुए लम्बोदर शरीर वाले, कृत्त, कम्प, मुण्ड और विकिर के लिये नमस्कार है ॥१४४॥

उन्मत्त वेष वाले, किङ्किणीक, विकृत वेष वाले क्रूर, उग्र और अमर्षण के लिये नमस्कार है ॥१४५॥ अप्रमेय दीप्त, दीप्त, निर्गुण, प्रिय, और मुद्रा मणि के धारण करने वाले आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥१४६॥ तोक, तनु और गुणों से अप्रतिम गण, गुह्य अगम्य और अगमन के लिये नमस्कार है ॥१४७

लोकधात्री त्विय भूमिः पादौ सज्जनसेवितौ ।
सर्वेषां सिद्धयोगानामधिष्ठानन्तवोदरम् ॥१४८
मध्येऽन्तरिक्षं विस्तीर्णन्तारागणविभूषितम् ।
तारापथ इवा भाति श्रीमान् हारस्तवोरसि ॥१४९

दिशो दश भुजास्ते वै केयूराङ्गदभूषिताः ।
विस्तीर्णपरिणाहश्च नीलाम्बुदचयोपमः ॥१५०
कण्ठस्ते शोभते श्रीमान् हेमसूत्रविभूषितः ।
दंष्ट्राकरालदुर्द्धर्षमनौपम्यं मुखं तव ॥१५१
पद्ममालाकृतोष्णीषं शीर्षण्यं शोभते कथम् ।
दीप्तिः सूर्ये वपुश्चन्द्रे स्थैर्ये भूर्ह्यनिलो बले ॥१५२
तैक्ष्ण्यमग्नौ प्रभा चन्द्रे खे शब्दः शैत्यमप्सु च ।
अक्षरोत्तमनिष्पन्दान् गुणानेतान्विदुर्बुधाः ॥१५३
जपो जप्यो महायोगी महादेवो महेश्वरः ।
पुरेशयो गुहावासी खेचरी रजनीचरः ॥१५४

यह लोकों की धात्री भूमि है और ये चरण सज्जनों के द्वारा सेवित हैं। समस्त सिद्धि योगों का आपका उदर अधिष्ठान है ॥ १४८ ॥ मध्य में विस्तीर्ण अन्तरिक्ष है जो कि तारागणों से विभूषित है। आपके उरस्थल में श्री से सम्पन्न हार तारापथ की भाँति शोभा देता है ॥ १४९ ॥ ये दश दिशाऐं आपकी भुजाऐं हैं जो कि केयूर और अङ्गदों से विभूषित हैं। नील अम्बुदों के समूह के समान विस्तीर्ण परिणाह है ॥ १५० ॥ आपका यह कण्ठ हेमसूत्र से विभूषित होकर परम शोभा वाला हो रहा है। दंष्ट्रा की करालता से दुर्धर्ष और उपमा से रहित आपका मुख है ॥ १५१ ॥ पद्मों की मालाओं से शिरोवेष्टन वाला शीर्षण्य किस प्रकार से शोभा दे रहा है जैसे सूर्य में दीप्ति, चन्द्र में वपु, स्थिरता में भूमि और बल में अनिल होता है ॥ १५२ ॥ अग्नि में तीक्ष्णता, चन्द्र में प्रभा, आकाश में ध्वनि और जल में शीतलता इन अक्षर और उत्तम निष्पन्द वाले गुणों को बुध लोग जानते हैं ॥ १५३ ॥ महादेव महेश्वर जप, जप्य, महान योगी, पुरेशय, गुहावासी, खेचर और रजनीचर हैं ॥ १५४ ॥

तपोनिधिर्गुहगुरुर्नन्दनो नन्दिवर्द्धनः ।
हयशीर्षो धराधाता विधाता भूतिवाहनः ॥१५५
बोद्धव्यो बोधनो नेता धूर्वहो दुष्प्रकम्पकः ।
बृहद्रथो भीमकर्मा बृहत्कीर्तिर्धनञ्जयः ॥१५६

घण्टाप्रियो ध्वजी छत्री पताकाध्वजिनीपतिः ।
कवची पट्टिशी शङ्खी पाशहस्तः परश्वभृत ॥१५७
अगमस्त्वनघः शूरो देवराजारिमर्दनः ।
त्वा प्रसाद्य पुराऽस्माभिर्द्विषन्तो निहता युधि ॥१५८
अग्निस्त्व चार्णवान् सर्वान् पिबन्नेव न तृप्यसे ।
क्रोधागार प्रसन्नात्मा कामहा कामदः प्रिय ॥१५९
ब्रह्मण्यो ब्रह्मचारी च गोघ्नस्त्व शिष्टपूजित ।
वेदानामव्ययः कोशस्त्वया यज्ञ प्रकल्पित ॥१६०
हव्यञ्च वेदं वहति वेदोक्त हव्यवाहन ।
प्रीते त्वयि महादेव वयं प्रीता भवामहे ॥१६१
भवानीशो नादिमान् धामराशिर्ब्रह्मा,
लोकानान्त्व कर्त्ता त्वादिसर्गः ।
साङ्ख्या प्रकृतिभ्य परम त्वा विदित्वा,
क्षीणध्यानास्ते न मृत्यु विशन्ति ॥१६२
योगेन त्वान्ध्यानिनो नित्ययुक्ताः,
ज्ञात्वा भोगान् सन्त्यजन्ते पुनस्तान् ।
येऽन्ये मर्त्यास्त्वा प्रपन्ना विशुद्धास्ते,
कर्मभिर्दिव्यभोगान् भजन्ते ॥१६३
अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्म स्वशक्तितः ।
कीर्तित तव माहात्म्यमपार परमात्मन ।
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१६४

यह महेश्वर तप की खान, गुरु के गुरु, नन्दन और नन्दिवर्धन हैं। हयशीर्ष, धरा के धाता, विधाता तथा भूति को वहन करने वाले हैं ॥ १५५ ॥ यह बोध करने के योग्य, बोधन, नेता, धूर्वह, दुष्प्रकम्पक, बृहद्रथ, भीम कर्म करने वाले, बृहत्कीर्ति और धनञ्जय हैं ॥ १५६ ॥ यह महेश्वर घण्टाप्रिय ध्वजी, छत्रधारी, पताकाध्वजिनी के स्वामी, कवचधारी, पट्टिशधारण करने वाले, शङ्खधारी, हाथ मे पाश ग्रहण करने वाले और परश्वभृत हैं ॥ १५७ ॥ यह

अगम, अनघ, शूर, देवराज के शत्रुओं को मर्दन करने वाले हैं। आपको प्रसन्न कर हमने युद्ध में पहिले शत्रुओं को मारा था ॥ १५८ ॥ आप अग्नि स्वरूप हैं समस्त समुद्रों का पान करते हुए भी तृप्त नहीं होते हैं। आप क्रोध के घर हैं, प्रसन्न आत्मा वाले हैं, काम के नाशक तथा काम के प्रदान करने वाले प्रिय हैं ॥ १५९ ॥ आप ब्रह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले, ब्रह्मचारी, गौओं का नियंत्रण करने वाले तथा शिष्ट पुरुषों के द्वारा पूजित हैं। आप वेदों के अव्यय-कोष हैं और आपने यज्ञ की कल्पना की है ॥ १६० ॥ हव्य वेद का वहन करता है और हव्य वाहन वेदोक्त का वहन करता है। हे महादेव ! आपके प्रसन्न होने पर हम सब प्रसन्न होते हैं ॥ १६१ ॥ आप भवानी के स्वामी, आदिमान् न होने वाले, धामों के समूह, लोकों के ब्रह्मा, आदिसर्ग और आप कर्त्ता हैं। सांख्य शास्त्र के ज्ञाता आपको प्रकृतियों से पर जान कर क्षीण ध्यान वाले वे मृत्यु में प्रवेश नहीं करते हैं ॥ १६२ ॥ ध्यान करने वाले योग के द्वारा आप में नित्य युक्त होते हुए जानकर फिर उन समस्त भोगों का त्याग कर देते हैं। जो अन्य मनुष्य आपकी शरणागति में जाते हैं वे विशुद्ध होकर कर्मों से दिव्य भोगों का सेवन किया करते हैं ॥ १६३ ॥ अप्रमेय तत्व को जैसे अपनी शक्ति से जानते हैं वैसे ही परमात्मा आपका अपार माहात्म्य का कीर्त्तन किया। आप जो भी कोई हों वह हों, हमारे लिये सर्वत्र शिव होवें। आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥ १६४ ॥

॥ प्रकर्ण २५—मधुकैटभ उत्पत्ति ॥

संपित्रन्निव तौ दृष्ट्वा मधुपिङ्गायतेक्षणः ।
प्रहृष्टवदनोऽत्यर्थमभवच्च स्वकीर्त्तनात् ॥१
उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशनः ।
पिनाकी खण्डपरशुर्भूतप्रान्तस्त्रिलोचनः ॥२
ततः स भगवान देवः श्रुत्वा वाक्यामृतं तयोः ।
जानन्नपि महाभागः प्रीतपूर्वमथाब्रवीत् ॥३
कौ भवन्तौ महात्मानौ परस्परहितैषिणौ ।
समेतावम्बुजाभाक्षौ तस्मिन् घोरे जलप्लवे ॥४

तावूचतुर्महात्मानौ सन्निरीक्ष्य परस्परम् ।
भगवन् किञ्च तथ्येन विज्ञातेन त्वया विभो ।
कुत्र वा सुखमानन्त्यमिच्छाचारमृते त्वया ॥५
उवाच भगवान् देवो मधुरश्लक्ष्णया गिरा ।
भो भो हिरण्यगर्भ त्वा त्वा च कृष्ण वदाम्यहम् ॥६
प्रीतोऽहमनया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया ।
भवन्तौ माननीयौ मे मम ह्यर्हतरावुभौ ।
युवाभ्यां किं ददाम्यद्य वराणां वरमुत्तमम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—उन दोनों को भली भाँति पान करते हुए की भाँति देखकर मधु पिङ्ग एवं आयत नेत्रों वाले महेश्वर अपने कौर्तन से अत्यन्त प्रहृष्ट मुख वाले हो गये ॥ १ ॥ उमा के स्वामी, विरूप नेत्रों वाले, दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस करने वाले पिनाकधारी, खण्ड परशु, भूत प्रान्त और तीन नेत्र वाले उन भगवान महादेव ने इन दोनों के वचनामृत को सुनकर फिर महाभाग जानते हुए भी प्रीति के साथ बोले—॥ २-३ ॥ इस घोर जल के विप्लव में परस्पर में हित के चाहने वाले महान् आत्मा वाले आप दोनों कौन हैं ? आप कमल के समान नेत्रों वाले यहाँ इकट्ठे होते कौन हैं ? ॥ ४ ॥ उन दोनों महात्माओं ने परस्पर में भली भाँति देखकर कहा—हे भगवान ! हे विभो ! तथ्य को जानने वाले आपके बिना अनन्त सुख इच्छाचार कहाँ हो सकता है ॥ ५ ॥ भगवान् देव मधुर और स्निग्ध वाणी से बोले—हे हिरण्यगर्भ ! हे कृष्ण ! मैं आप दोनों से कहता हूँ, मैं आपकी इस भक्ति से प्रसन्न हो गया हूँ जो कि शाश्वताक्षर से युक्त है। अब आप दोनों ही मेरे परम माननीय और अतियोग्य हो गये हैं। मैं आज इतना प्रसन्न हूँ कि वरों में अतिश्रेष्ठ क्या तुम दोनों का वरदान दूँ ॥ ६-७ ॥

तेनैवमुक्ते वचने ब्रह्माणं विष्णुरब्रवीत् ।
ब्रूहि ब्रूहि महाभाग वरो यस्ते विवक्षितः ॥८
प्रजाकामोऽस्म्यहं विष्णो पुत्रमिच्छामि धूर्वहम् ।
ततः स भगवान् ब्रह्मा वरेप्सु पुत्रनिष्प्सया ॥६

अथ विष्णुरुवाचेदं प्रजाकामं प्रजापतिम् ।
वीरमप्रतिमं पुत्रं यत्त्वमिच्छसि धूर्वहम् ॥१०
पुत्रत्वेनाभियुङ्क्ष्व त्वं देवदेवं महेश्वरम् ।
स तस्य वाक्यं संपूज्य केशवस्य पितामहः ॥११
ईशानं वरदं रुद्रमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
उवाच पुत्रकामस्तु वाक्यान्नि सह विष्णुना ॥१२
यदि मे भगवान् प्रीतः पुत्रकामस्य नित्यशः ।
पुत्रो मे भव विश्वात्मन् स्वतुल्यो वापि धूर्वहः ॥
नान्यं वरमहं वव्रे प्रीते त्वयि महेश्वर ॥१३
तस्य तां प्रार्थनां श्रुत्वा भगवान् भगनेत्रहा ।
निष्कल्मषममायश्च बाढमित्यब्रवीद्वचः ॥१४

उनके द्वारा इस प्रकार से कहने पर विष्णु भगवान् ब्रह्माजी से बोले—हे महाभाग ! बोलो-बोलो जो भी वर आपको विवक्षित हो। ८ ॥ हे विष्णो ! मैं प्रजा की कामना रखने वाला हूँ। मैं धुरी का वहन करने वाला पुत्र चाहता हूँ। इसके पश्चात् पुत्र की लिप्सा से वर की चाहना रखने वाले वह भगवान् ब्रह्माजी बोले ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर प्रजा की इच्छा वाले प्रजापति से भगवान् विष्णु ने यह कहा—कि जो आप परम वीर और अनुपम धुरी के वहन करने वाला पुत्र चाहते हो तो आप देवों के देव महेश्वर को ही पुत्रत्व के रूप में अभियुक्त करें। तब पितामह ने केशव भगवान् के इस वचन का आदर किया ॥ १०-११ ॥ कृताञ्जलि होकर वर देने वाले ईशान रुद्र को प्रणाम करके विष्णु के साथ ही पुत्र की कामना रखने वाले ब्रह्माजी ये वाक्य बोले ॥ १२ ॥ यदि आप मुझ पर पूर्णतया प्रसन्न हैं तो नित्य ही पुत्र की कामना रखने वाले मेरे हे विश्वात्मन् ! आप पुत्र होवें अथवा अपने ही सदृश धुरी का वहन करने वाला पुत्र दो। मैं इसके अतिरिक्त कोई भी वरदान नहीं चाहता हूँ। हे महेश्वर ! आप जब प्रसन्न हैं तो यही वरदान मुझे देवें। १३ ॥ ब्रह्माजी की इस प्रार्थना को सुनकर भग के नेत्रों का हनन करने वाले भगवान् महेश्वर बिना किसी कल्मष तथा माया के 'अच्छा यही होगा' यह वचन बोले ॥ १४ ॥

यदा कार्यसमारम्भे कस्मिश्चित्तव सुव्रत ।
अनिष्पत्तौ च कार्यस्य क्रोधस्त्वा समुपेष्यति ।
आत्मैकादश ये रुद्रा विहिता प्राण हेतव ।।१५
सोऽहमेकादशात्मा वै शूलहस्त सहानुग. ।
ऋषिर्मित्रो महात्मा वै ललाटाद्भविता तदा ।।१६
प्रसादमतुल कृत्वा ब्रह्मणस्तादृश पुरा ।
विष्णु पुनरुवाचेद ददामि च वरन्तव ।।१७
स होवाच महाभागो विष्णुर्भवमिद वच. ।
सर्वमेतत् कृत देव परितुष्टोऽसि मे यदि ।
त्वयि मे सुप्रतिष्ठाऽस्तु भक्तिरम्बुदवाहन ।।१८
एवमुक्तस्ततो देवस्तमभाषत केशवम् ।
विष्णो शृणु यथा देव प्रीतोऽहन्तव शाश्वत ।।१९
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च जङ्गम स्थावरञ्च यत् ।
विश्वरूपमिद सर्वं रुद्रनारायणात्मकम् ।।२०
अहमग्निर्भव न् सोमो भवान् रात्रिरह दिनम् ।
भवानृतमह सत्य भवान् ऋतुरह फलम् ।।२१

हे सुव्रत ! जब तुम्हारे किसी कार्य के समारम्भ मे कार्य की सिद्धि न होने पर आपको क्रोध आवेगा तब अपने एकादश रुद्र जो प्राणो के हेतु स्वरूप बनाये हैं वह मैं एकादश स्वरूप वाला हाथ मे शूल धारण किये हुए अनुचरो के साथ महात्मा ऋषि मित्र उस समय ललाट से होऊँगा ।। १५-१६ ।। उस समय ब्रह्मा के ऊपर इस प्रकार का अतुल प्रसाद करके फिर विष्णु भगवान् से यह बोले—मैं आपको वरदान देता हूँ ।। १७ ।। तब महाभाग वह विष्णु भव अर्थात् महेश्वर से यह वचन बोले–हे देव ! यह सब किया गया है यदि मुझ पर आप अत्यन्त परितुष्ट एव प्रसन्न हैं तो हे अम्बुद वाहन ! आप मे मेरी सुप्रतिष्ठित भक्ति होवे ।। १८ ।। इसके अनन्तर इस प्रकार से कहे हुए महादेव ने केशव से कहा—हे विष्णो ! हे शाश्वत ! हे देव ! आप सुनो मैं आप से बहुत ही प्रसन्न हूँ ।। १९ ।। प्रकाश और अप्रकाश, स्थावर और जङ्गम जो यह विश्व का रूप है

वह सब रुद्र और नारायण के स्वरूप वाला ही है ।। २० ।। मैं अग्नि हूँ तो आप सोम हैं । आप रात्रि हैं तो मैं दिन हूँ । आप ऋत हैं तो मैं सत्य हूँ, आप ऋतु हैं तो मैं फल हूँ ।। २१ ।।

भवान् ज्ञानमहं ज्ञेयं यज्जपित्वा सदा जनाः ।
मां विशन्ति त्वयि प्रीते जनाः सुकृतकारिणः ।
आवाभ्यां सहिता चैव गतिर्नान्या युगक्षये ।।२२
आत्मानं प्रकृतिं विद्धि मां विद्धि पुरुषं शिवम् ।
भवानर्द्ध शरीरं मे त्वहन्तव यथैव च ।।२३
वामपार्श्वमहम्मह्यं श्यामं श्रीवत्सलक्षणम् ।
त्वञ्च वामेतरं पार्श्वं त्वहं वै नीललोहितः ।।२४
त्वञ्च मे हृदयं विष्णो तव चाहं हृदि स्थितः ।
भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्त्ताहमधिदैवतम् ।।२५
तदेहि स्वस्ति ते वत्स गमिष्याम्यम्बुदप्रभ ।
एवमुक्त्वा गतो विष्णोर्देवोऽन्तर्द्धानमीश्वरः ।।२६
ततः सोऽन्तर्हिते देवे संप्रहृष्टस्तदा पुनः ।
अशेत शयने भूप प्रविश्यान्तर्जले हरिः ।।२७
तं पद्मं पद्मगर्भाभं पद्माक्षः पद्मसम्भवः ।
सम्प्रहृष्टमना ब्रह्मा भेजे ब्राह्मं तदासनम् ।।२८

आप ज्ञान हैं तो मैं ज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य वस्तु हूँ । जिसका जप करके सर्वदा मनुष्य जो सुकृत करने वाले हैं आपके प्रसन्न होने पर मुझ में प्रवेश किया करते है । हम दोनों के सहित ही गति है और युग के क्षय में अन्य कोई भी गति नहीं होती है ।। २२ ।। अपने आपको प्रकृति समझो और मुझे शिव को पुरुष जानलो । आप मेरे आधे शरीर हैं और इसी प्रकार से मैं आपका भी आधा शरीर हूँ ।। २३ ।। मैं वाम पार्श्व हूँ और मेरे लिये श्याम श्रीवत्स का लक्षण है । और आप वाम से इतर अर्थात् दक्षिण पार्श्व हैं और मैं नील लोहित हूँ ।। २४ ।। हे विष्णो ! आप मेरे हृदय हैं और मैं आपके हृदय में स्थित हूँ । आप समस्त कार्यों के कर्त्ता हैं और मैं उन सब का अधिदैवत हूँ ।। २५ ।। हे

वत्स ! हे अम्बुद प्रभ ! सो अब आइये, आपका कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। इस प्रकार से कहकर विष्णु के देव ईश्वर अन्तर्धान हो गये ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् महादेव के अन्तर्हित हो जाने पर वह भगवान् विष्णु फिर अत्यन्त प्रसन्न होकर हे भूप ! हरि ने जल मे अन्दर प्रवेश किया और अपनी शैया मे शयन करने लगे ॥ २७ ॥ पद्म के समान नेत्र वाले पद्म से समुत्पन्न, सम्प्रहृष्ट मन वाले ब्रह्माजी ने पद्मगर्भ की आभा वाले उस ब्राह्म आसन का सवन किया ॥ २८ ॥

अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्यप्रतिमावुभौ ।
महाबलौ महासत्त्वौ भ्रातरौ मधुकैटभौ ॥२९
ऊचतुश्च व वचन भक्ष्यो वै नौ भविष्यसि ।
एवमुक्त्वा तु तौ तस्मिन्नन्तर्द्धान गतावुभौ ॥३०
दारुणन्तु तयोर्भाव ज्ञात्वा पुष्करसम्भव. ।
माहात्म्यं चात्मनो बुद्धा विज्ञातुमुपचक्रमे ॥३१
कर्णिकाधटन भूयो नाभ्यजानाद्यदा गतिम् ।
तत' स पद्मनालेन अवतीर्य्य रसातलम् ।
कृष्णा जिनोत्तरामङ्गन्ददर्शोऽन्तजले हरिम् ॥३२
स च त बोधयामास विबुद्ध चेदमब्रवीत् ।
भूतेभ्यो मे भय देव त्रायस्वोत्तिष्ठ शङ्कुरु ॥३३
तत स भगवान् विष्णुः सप्रहासमरिन्दम. ।
न भेतव्य न भेऽत्रमित्युवाच मुनि' स्वयम् ॥३४
तस्मात्पूर्व त्वया चोक्त भूतेभ्यो मे महद्भयम् ।
तस्माद्भूतादिवावर्यस्तौ दैत्यौ त्व नाशयिष्यसि ॥३५

इसके अनन्तर बहुत लम्बे समय के पश्चात् वहाँ पर भी अप्रतिम, महाबल वाले महासत्व से युक्त दो भाई मधु और कैटभ यह वचन बोले कि हमारे भक्ष्य होओगे इतना कहकर वे दोनों वहाँ फिर अन्तर्धान हो गये । २९-३० ॥ पुष्कर सम्भव ब्रह्माजी ने उन दोनों के इस दारुण भाव को जानकर और अपना माहात्म्य समझ कर इसके जानने का उपक्रम किया ॥ ३१ ॥ फिर

जब कर्णिका घटन गति को नहीं जाना तो इसके उपरान्त उनने कमल नाल के द्वारा रसातल में अवतरण किया और वहाँ जल के भीतर कृष्णाजिन के उत्तरा सङ्ग वाले हरि का दर्शन किया ॥ ३२ ॥ वहाँ उन्होंने उनको बताया और विशेष रूप वृद्ध होने वाले उनसे यह कहा — हे देव ! मुझे भूतों से भय होता है, आप उठिये, मेरी रक्षा कीजिए और मेरा कल्याण करिये ॥ ३३ ॥ इसके पश्चात् भगवान् विष्णु जो कि शत्रुओं के दमन करने वाले हैं, हास के सहित बोले—आप को डरना नहीं चाहिए और डरो मत, यह वचन स्वयं मुनि ने कहे ॥ ३४ ॥ इससे पूर्व आपने कहा था कि भूतों से मुझे महान् भय हो रहा है सो भूतादि वाक्यों के द्वारा आप उन दोनों दैत्यों का नाश कर देंगे ॥ ३५ ॥

भूर्भुव.स्वस्ततो देवं विविशुस्तमयोनिजम् ।
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा तमेवासीनमागतम् ॥३६
गते तस्मिंस्ततोऽनन्त उद्गीर्य भ्रातरौ मुखात् ।
विष्णुं जिष्णुश्च प्रोवाच ब्रह्माणमभिरक्षताम् ।
मधुकैटभयोर्ज्ञात्वा तयोरागमनं पुनः ॥३७
चक्राते रूप साहश्यं विष्णोर्जिष्णोश्च सत्तमौ ।
कृतसादृश्यरूपौ तौ तावेवाभिमुखौ स्थितौ ॥३८
ततस्तौ प्रोचतुर्दैत्यौ ब्रह्माणं दारुणं वचः ।
अस्माकं युध्यमानानां मध्ये वै प्राश्निको भव ॥३९
ततस्तौ जलमाविश्य संस्तम्भ्यापः स्वमायया ।
चक्रतुस्तुमुलं युद्धं यस्य येनेप्सितं तदा ॥४०
तेषान्तु युध्यमानानां दिव्यं वर्षशतङ्गतम् ।
न च युद्धमदोत्सेको ह्यन्योन्य सन्यवर्तत ॥४१
लक्षणद्वयसंस्थानाद्रूपवन्तौ स्थितेङ्गितौ ।
साहश्याद्व्याकुलमना ब्रह्मा ध्यानमुपागमत् ॥४२

इसके अनन्तर "भूर्भुवः स्व." ये उस अयोनिज देव के अन्दर प्रविष्ट हो गये। इसके पश्चात् उनने प्रदक्षिणा की और उसी आसन पर पुनः आ गये और बैठ गये ॥ ३६ ॥ इसके पश्चात् उस अनन्त में दो भाई मुख से उदगी-

होकर विष्णु और जिष्णु से बोले ब्रह्मा की रक्षा करो क्योंकि पुनः उन दोनों मधु और कैटभ का आगमन जान लिया था ॥ ३७ ॥ विष्णु और जिष्णु के रूप की समानता उन दोनों ने बनाली थी और सादृश्य रूप वाले होकर उन दोनों के ही सामने में स्थित हो गये थे ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों दैत्य ब्रह्माजी से बोले और अत्यन्त दारुण वाक्य कहे कि हमारे युद्ध करने वालों के मध्य मे प्रासिनक बन जाओ ॥ ३९ ॥ इसके पश्चात् वे दोनों जल में प्रविष्ट होकर अपनी माया से उन्होंने जल को स्तम्भित कर दिया और फिर वहाँ उन दोनों ने उस समय तुमुल युद्ध जैसा भी जितने चाहा किया था ॥ ४० ॥ उनको वहाँ युद्ध करते हुए दिव्य एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये और अन्योन्य का युद्ध करने के मद की अधिकता का अभिमान कम नहीं हुआ ॥ ४१ ॥ लक्षण द्वय के संस्थान से रूप वाले वे स्थित इङ्गित वाले थे। उन दोनों के समान रूपता से व्याकुल मन वाले ब्रह्माजी ध्यान में स्थित हो गये थे ॥ ४२ ॥

स तयोरन्तरं बुद्ध्वा ब्रह्मा दिव्येन चक्षुषा ।
पद्मकेसरजं सूक्ष्मं बबन्ध कवचन्तयोः ।
आमेखलञ्च गात्रञ्च ततो मन्त्र मुदाहरन् ॥४३
जपतस्त्वभवत्कन्या विश्वरूपसमुत्थिता ।
पद्मेन्दुवदनप्रख्या पद्महस्ता शुभा सती ।
तां दृष्ट्वा व्यथितौ दैत्यौ भयाद्वर्णविवर्जितौ ॥४४
तत प्रोवाच तां कन्यां ब्रह्मा मधुरया गिरा ।
काऽत्र त्वमवगन्तव्या ब्रूहि सत्यमनिन्दिते ॥४५
साम्ना सपूज्य सा कन्या ब्रह्माणं प्राञ्जलिस्तदा ।
मोहिनीं विद्धि मां मायां विष्णोः सन्देशकारिणीम् ॥४६
त्वया सङ्कीर्त्यमानाऽहं ब्रह्मन् प्राप्ता त्वरायुता ।
अस्याः प्रीतमना ब्रह्मा गौणं नाम चकार ह ॥४७
मया च व्याहृता यस्मात्त्वञ्चैव समुपस्थिता ।
महाव्याहृतिरित्येव नाम ते विचरिष्यति ॥४८
उत्थिता च शिरो भित्त्वा सावित्री तेन चोच्यते ।

एकात्मंशात्तु यस्मात्त्वमनेकांशा भविष्यसि ।।४६

तब ब्रह्माजी ने उन दोनों का अन्तर समझ कर उन दोनों के पद्म केशर से उत्पन्न सूक्ष्म कवच बाँध दिया था । मेखला और गात्र तक इसके पश्चात् मन्त्र का उच्चारण किया ।। ४३ ।। इसके अनन्तर जप करते हुए उनके विश्व-रूप से समुत्थित एक कन्या हुई जो कि पद्म हाथ में ग्रहण किये हुए और सती तथा पद्म एव चन्द्र के समान मुख वाली थी। वे दोनों दैत्य उसे देखकर बहुत ही व्यथित तथा भय से वर्ण विवर्जित हो गये ।। ४४ ।। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने मधुर वाणी से उस कन्या से कहा—हे अनिन्दिते ! आप कौन है ? और मैं आपको क्या समझूँ ? आप सत्य-सत्य मुझे बतलाने की कृपा करें ।। ४५ ।। तब उस कन्या ने सामवेद से ब्रह्मा की पूजा करके और प्राञ्जलि होकर कहा—मुझको आप विष्णु भगवान् की सन्देश का पालन करने वाली मोहिनी समझ लीजिए ।। ४६ ।। हे ब्रह्मन् ! आपके द्वारा संकीर्त्यमान होती हुई मैं यहाँ बहुत ही शीघ्रता से प्राप्त हुई हूँ । तब प्रसन्न मन वाले ब्रह्माजी ने इनका गौण नाम किया ।। ४७ ।। क्योंकि आप मेरे द्वारा व्याहृत हुई हैं और अब यहाँ उपस्थित हो गई हैं इस लिये अब से आपका नाम महाव्याहृति संसार में प्रचलित हो जायगा ।। ४८ ।। वह शिर का भेदन करके उत्थित हुई थी इसलिये वह सावित्री इस नाम से भी कही जाती है । क्योंकि बिना अंश वाली एक है इसलिये अनेक अंश वाली भी हो जाँयगी ।। ४९ ।।

गौणानि तावदेतानि कर्मजान्यपराणि च ।
नामानि ते भविष्यन्ति मत्प्रसादात् शुभानने ।।५०
ततस्तौ पीड्यमानौ तु वरमेनमयाचताम् ।
अनावृतं नौ मरणं पुत्रत्वञ्च भवेत्तव ।।५१
तथेत्युक्त्वा ततस्तूर्णमनयद्यमसादनम् ।
अनयत् कैटभं विष्णुर्जिष्णुश्चाप्यनयन्मधुम् ।।५२
एवन्तौ निहतौ दैत्यौ विष्णुना जिष्णुना सह ।
प्रीतेन ब्रह्मणा चाथ लोकानां हितकाम्यया ।।५३
पुत्रत्वमीशेन यथा ह्यात्मा दत्तो निबोधत ।

विष्णुना जिष्णुना सार्द्धं मधुकैटभयोस्तथा ।
सम्पराये व्यतिक्रान्ते ब्रह्मा विष्णुमभाषत ।।५४
अद्य वर्षशतं पूर्णं ममय. प्रत्युपस्थित. ।
सक्षेपसप्लवद्घोर स्वस्थानं यामि चाप्यहम् ।।५५
स तस्य वचसा देव सहारमकरोत्तदा ।
मही निस्थावरा कृत्वा प्रकृतिस्थाश्च जङ्गमान् ।।५६

ये आपके गौण नाम हैं और दूसरे कर्मों से उत्पन्न होने वाले भी नाम होते हैं। हे शुभानने ! मेरे प्रसाद से इस प्रकार आपके बहुत से नाम होंगे ।। ५० ।। इसके अनन्तर पीडित होते हुए उन दोनों ने यह वरदान माँगा हम दोनों का मरण अनावृत हो और आपका पुत्रत्व होवे ।। ५१ ।। इसके अनन्तर ऐसा ही हो, यह कहकर हित की कामना से शीघ्र ही यमालय को प्राप्त कर दिया विष्णु कैटभ को और जिष्णु मधु को ले गये ।। ५२ ।। इस प्रकार से विष्णु और जिष्णु के हाथ वे दोनों दैत्य मारे गये थे। तब प्रसन्न ब्रह्माजी ने लोकों के हित की कामना से यह सब किया था ।। ५३ ।। अब जिस तरह से अपने आपको पुत्रत्व के रूप में ईश ने दिया था वह समझ लो। तब विष्णु और जिष्णु के साथ युद्ध में मधु और कैटभ के व्यतिक्रान्त हो जाने पर ब्रह्माजी ने विष्णु से कहा—।। ५४ ।। आज सौ वर्ष का पूरा समय समाप्त हो गया है और अब मैं भी सक्षेप तथा सप्लव से घोर अपने स्थान को जाता हूँ ।। ५५ ।। उसके इस वचन से देव ने तब सहार कर दिया था। इस भूमि को बिना स्थावर वाली तथा जङ्गमों को प्रकृति में स्थित कर दिया था ।। ५६ ।।

यदि गोविन्द भद्रन्ते क्षिप्तस्ते यादसा पति ।
ब्रूहि यत् करणीय स्यान्मया ते लक्ष्मि वर्द्धन ।।५७
बाढ शृणु त्व हेमाभ पद्मयोने वचो मम ।
प्रसादो यस्त्वया लब्ध ईश्वरात् पुत्रलिप्सया ।।५८
तन्तया मफल कृत्वा मत्तोऽभूदनृणो भवान् ।
चतुर्विधानि भूतानि सृज त्व विसृजस्व वा ।।५९
अवाप्य सज्ञाङ्गोविन्दात् पद्मयोनि. पितामहः ।

प्रजाः स्रष्टुमनास्तेपे तप उग्रं ततो महत् ॥६०
तस्यैवन्तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्त्तत ।
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधो व्यवर्द्धत ॥६१
सक्रोधाविष्टनेत्राभ्यामपतन्नश्रु बिन्दवः ।
ततस्तेभ्योऽश्रु बिन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः ॥६२
महाभागा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरभ्यलङ्कृताः ।
प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः ॥६३

हे गोविन्द ! हे लक्ष्मिवर्धन ! आपका कल्याण हो, आपने समुद्र का क्षेप कर दिया है, अब मुझे बतलाइये कि मुझे क्या करना चाहिए ॥ ५७ ॥ विष्णु ने कहा—अच्छा, हे पद्मयोनि ! हे हेमाभ ! आप अब मेरा वचन श्रवण करो कि आपने महेश्वर से पुत्र की कामना से वरदान प्राप्त करने का प्रसाद लाभ किया था ॥ ५८ ॥ अब आप मुझ से अनृण हो गये हैं और उस वरदान को सफल बनाइये । आप अब चार प्रकार के प्राणियों का सृजन करें अथवा विशेष रूप से सृजन करने का कार्य करें ॥ ५९ ॥ इस प्रकार से पद्मयोनि पितामह ने गोविन्द से संज्ञा प्राप्त करके प्रजा के सृजन करने के मन वाले होकर फिर वहाँ महान् उग्र तपश्चर्या करने का आरम्भ कर दिया था ॥ ६० ॥ जब इस तरह से ब्रह्माजी बहुत समय तक तप करते रहे और कुछ भी उसका फल नहीं हुआ तो फिर उनको महान् दुःख उत्पन्न हुआ और उस दुःख से क्रोध बढ़ गया था ॥ ६१ । जब ब्रह्माजी के नेत्र क्रोध से पूर्णतया आविष्ट हो गये तो फिर उनसे आँसुओं की बूँदें निकल पड़ीं थीं । तब फिर उन अश्रु बिन्दुओं से वात, पित्त और कफ के स्वरूप वाले महाभाग, महान् सत्त्व, स्वस्तिकों से अलंकृत होते हुए महान् विष वाले तथा फैले हुए केशों वाले सर्प प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ ६२-६३ ॥

सर्पांस्तथाग्रजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत ।
अहो धिक् तपसा मह्यं फलमीदृशकं यदि ।
लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम ॥६४
तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा ।

मूर्च्छाभितापेन तदा जहौ प्राणान् प्रजापति ॥६५
तस्याप्रतिमवीर्यस्य दहात् कारुण्यपूर्वकम् ।
आत्मैकादश ते रुद्रा प्रोद्भूता रुदतस्तथा ।
रोदनात् खलु रुद्रास्ते रुद्रत्व तेन तेषु तत् ॥६६
ये रुद्रा खलु ते प्राणा ये प्राणास्ते तदात्मका ।
प्राणा प्राणभृता ज्ञेया सर्वभूतेष्ववस्थिता ॥६७
अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुना चरितस्य च ।
तस्य प्राणान् ददौ भूयस्त्रिशूली नीललोहित ।
ललाटात् पद्मयोनेस्तु प्रभुरेकादशात्मक ॥६८
ब्रह्मण सोऽददात् प्राणानात्मज स तदा प्रभु ।
प्रहृष्टवदनो रुद्र किंचित् प्रत्यागतासवम् ।
अभ्यभाषत्तदा देवो ब्रह्माण परम वच ॥६९
उवाचस्व मा ब्रह्मन् स्मत्तु महसि चात्मन ।
मा च वेत्यात्मज रुद्र प्रसाद कुरु मे प्रभो ॥७०

ब्रह्माजी ने सबसे पूर्व उत्पन्न होने वाले उन सर्पों को देखकर अपने आपको बहुत कुछ बुरा समझा था, अहो ! इस मेरे तप को धिक्कार है । यह मुझ ऐसा उसका फल मिला है कि मैंने सबसे पूर्व यह लोकों के विनाश करने वाली प्रजा ही आदि मे उत्पन्न की है ॥६४॥ उस समय ब्रह्माजी को बहुत ही तीव्र मूर्छा हो गई जो कि क्रोध और अमर्ष से ही पैदा हुई थी । तब प्रजापति ने उस मूर्छा के अभिताप से अपने प्राणों का परित्याग कर दिया था ॥६५॥ उनके उस अप्रतिम वीर्य वाले के देह से करुणा के साथ एकादश रुद्र रुदन करते हुए उत्पन्न हुए । क्योंकि वे रोदन कर रहे थे इसलिये ही उनमे रुद्रत्व के नाम की प्रसिद्धि हुई थी ॥६६॥ जो रुद्र हैं वे प्राण हैं और जो प्राण हैं वे तदात्मक हैं । समस्त भूतो म अवस्थित प्राणधारियों के उन्हे प्राण समझना चाहिए ॥६७॥ अत्यन्त उग्र महत्त्व और साधु से चरित उनके प्राणों को नीललोहित त्रिशूली ने फिर दे दिया था जो कि पद्मयोनि ब्रह्माजी के ललाट से एकादशात्मक प्रभु उत्पन्न हुए थे ॥६८॥ उस आत्मज प्रभु ने ब्रह्माजी को प्राणों को दिया था ।

और कहा—हे प्रभो ! आप मुझको अपना आत्मज रुद्र समझें और मुझ पर प्रसन्नता करें ॥७०॥

श्रुत्वा त्विदं वचस्तस्य प्रभूतञ्च मनोगतम् ।
पितामहः प्रसन्नात्मा नेत्रे फुल्लाम्बुजप्रभैः ॥७१
ततः प्रत्यागतप्राणः स्निग्धगम्भीरया गिरा ।
उवाच भगवान् ब्रह्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ॥७२
भो भो वद महाभाग आनन्दयसि मे मनः ।
को भवान् विश्वभूतिस्त्वं स्थित एकादशात्मकः ॥७३
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणाऽनन्ततेजसा ।
ततः प्रत्यवदद्रुद्रो ह्यभिवाद्यात्मजैः सह ॥७४
यत्ते वर मह ब्रह्मन् याचितो विष्णुना सह ।
पुत्रो मे भव देवेति त्वत्तुल्यो वापि धूर्वहः ॥७५
लोकेषु विश्रुतैः कार्यं सर्वैविश्वात्मसम्भवैः ।
विषादन्त्यज देवेश लोकांस्त्वं स्रष्टुमर्हसि ॥७६
एवं स भगवानुक्तो ब्रह्मा प्रीतमनाभवत् ।
रुद्रं प्रत्यवदद्भूयो लोकान्ते नीललोहितम् ॥७७

ब्रह्माजी ने इस परम सुन्दर वचन को सुनकर जिसे कि मन में वे चाहते ही थे, पितामह को बहुत ही प्रसन्नता हुई और उनके नेत्र विकसित कमलों के समान हो गये थे ।।७१।। इसके अनन्तर प्रत्यागत प्राणों वाले भगवान् ब्रह्मा विशुद्ध सुवर्ण की कान्ति के समान कान्ति वाले होकर अत्यन्त स्निग्ध और गम्भीर वाणी से बोले ।।७२।। हे महाभाग ! आप मेरे मन को बहुत ही आनन्दित कर रहे हैं । आप अब मुझे बतलाइये कि एकादश स्वरूप वाले विश्व की भूति स्वरूप आप कौन हैं ? ।।७३।। इस प्रकार से भगवान् ब्रह्मा के द्वारा कहे गये जो कि ब्रह्माजी अनन्त तेज से उस समय युक्त थे, भगवान् रुद्र ने अपने आत्मजों के साथ ब्रह्माजी को प्रणाम करके उत्तर दिया था ।।७४।। हे ब्रह्मन् ! आपने भगवान् विष्णु के साथ मुझसे जो वरदान माँगा था कि आप स्वयं या आपके ही तुल्य धुरी को वहन करने वाला मेरा पुत्र होवे ।।७५।। हे देवेश !

आप लोकों में समस्त विश्वात्म सम्भव एवं विश्रुतों के द्वारा जो कार्य लोकों के सृजन का करना चाहते हैं उसे अब विषाद को त्याग कर करें ॥७६॥ इस तरह से कहे हुए ब्रह्माजी के मन को बड़ी प्रसन्नता हुई और फिर भगवान ब्रह्मा लोकान्त में नील लोहित रुद्र से कहने लगे ॥७७॥

साहाय्यं मम कार्लार्थं प्रजाः सृज मया सह ।
बीजो त्वं सर्वभूतानां तत्प्रपन्नस्तथा भव ।
बाढमित्येव तां वाणीं प्रतिजग्राह शङ्कर ॥७८
ततः स भगवान् ब्रह्मा कृष्णाजिनविभूषित ।
मनोऽग्रे सोऽसृजद्देवो भूतानां धारणां ततः ।
जिह्वा सरस्वतीञ्चैव ततस्तां विश्वरूपिणीम् ॥७९
भृगुमङ्गिरसं दक्षं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
वसिष्ठञ्च महातेजा ससृजे सप्त मानसान् ॥८०
पुत्रानात्मसमानन्यान् सोऽसृजद्विश्वसम्भवान् ।
तेषां भूयोऽनुमार्गेण गावो वक्त्राद्विजज्ञिरे ॥८१
ओङ्कारप्रमुखान् वेदानभिमान्याश्च देवता ।
एवमेतान् यथाप्रोक्तान् ब्रह्मा लोकपितामह ॥८२
दक्षाद्यान् मानसान् पुत्रान् प्रोवाच भगवान् प्रभु ।
प्रजा सृजत भद्रं वो रुद्रेण सह धीमता ॥८३
अनुगम्य महात्मानं प्रजानां पतयस्तदा ।
वयमिच्छामहे देव प्रजा स्रष्टुं त्वया सह ।
ब्रह्मणस्त्वेष सन्देशस्तव चैव महेश्वर ॥८४

आप अब मेरी सहायता करें और मेरे साथ में रहकर मेरे कार्य के लिए प्रजा का सृजन करो। आप समस्त प्राणियों के बीज हैं। अब आप उसी रूप मे प्रपन्न हो जावें। तब तो 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा'—इस प्रकार से भगवान् शङ्कर ने ब्रह्माजी की इस वाणी को ग्रहण कर लिया था ॥७८॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने जो कि कृष्णाजिन से विभूषित थे, सबसे आगे मन का सृजन किया फिर देव ने प्राणियों की धारणा का सृजन किया। इसके उपरान्त विश्व

रूपिणी जिह्वा तथा सरस्वती की सृष्टि की थी ॥७६॥ इसके अनन्तर भृगु, अङ्गिरा, दक्ष, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ इन सात मानस पुत्रों को महान् तेज वाले ब्रह्माजी ने उत्पन्न किया ॥८०॥ फिर उसने अपने ही तुल्य अन्य विश्व-सम्भव पुत्रों का सृजन किया फिर उनके अनुमार्ग से मुख से गौओं को जन्म दिया ॥८१॥ लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने ओङ्कार की प्रमुखता वाले वेदों को तथा अन्य देवताओं को और इस प्रकार से यथाप्रोक्त इन सबको उत्पन्न किया। ॥८२॥ भगवान् प्रभु ने इन सृजन किए हुए दक्ष आदि मानस पुत्रों से कहा—आप सब धीमान् रुद्र के साथ प्रजा का सृजन करो। आपका कल्याण होगा ॥ ॥८३॥ तब उस समय प्रजाओं के पति सब महान् आत्मा वाले के पास जाकर पहुँचे और कहा—हे देव ! हम सब आपके साथ प्रजा का सृजन करने की इच्छा करते हैं। हे महेश्वर ! यह ब्रह्माजी का तथा आपका सन्देश है ॥८४॥

तैरेवमुक्तो भगवान् रुद्रः प्रोवाच तान् प्रभुः।
ब्रह्मणश्चात्मजा मह्यं प्राणान् गृह्य च वै सुराः ॥८५
कृत्वाग्रजाग्रजानेतान् ब्राह्मणानात्मजान्मम।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् सप्तलोकान्ममात्मकान्।
भवन्तः स्रष्टुमर्हन्ति वचनान्मम स्वस्ति वः ॥८६
तेनैवमुक्ताः प्रत्यूचुः रुद्रमाद्यन्त्रिशूलिनम्।
यथाज्ञापयसे देव तथा तद्वै भविष्यति ॥८७
अनुमान्य महादेवं प्रजानां पतयस्तदा।
ऊचुर्दक्षं महात्मानं भवान् श्रेष्ठः प्रजापतिः।
त्वां पुरस्कृत्य भद्रन्ते प्रजाः स्रक्ष्यामहे वयम् ॥८८
एवमस्त्विति वै दक्षः प्रत्यपद्यत भाषितम्।
तैः सह स्रष्टुमारेभे प्रजाकामः प्रजापतिः।
सर्गस्थिते ततः स्थाणौ ब्रह्मा सर्गमथासृजत् ॥८९
अथास्य सप्तमेऽतीते कल्पे वै सम्बभूवतुः।
ऋभुः सनत्कुमारश्च तपो लोकनिवासिनौ।
ततो महर्षीनन्यान् स मानसानसृजत् प्रभुः ॥९०

उनके द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर भगवान् रुद्र ने उनसे कहा—आप सब देवता ब्रह्माजी के पुत्र हो सो तुम सब मेरे लिये प्राणों को ग्रहण करो। मेरे आत्मज आगे जन्म लेने वाले इन अग्रज ब्राह्मणों को पहिले करके मेरे स्वरूप वाले ब्रह्मादि से स्तम्ब पर्यन्त सात लोकों की आप लोग सृष्टि करने के योग्य होते हैं। मेरे इस वचन से आपका कल्याण होगा ॥८५॥८६॥ इस तरह रुद्र के द्वारा कहे गये उन्होंने आद्य त्रिशूली रुद्र से कहा—हे देव! जैसी भी आप आज्ञा प्रदान करते हैं वही सब किया जायगा ॥८७॥ तब समस्त प्रजापतियों ने महादेव का सम्मान करके महात्मा दक्ष से कहा कि आप सबमें परम श्रेष्ठ प्रजापति हैं। हम सब आपको ही आगे करके प्रजा का सृजन करेंगे। आपका भद्र हो ॥८८॥ तब दक्ष प्रजापति ने कहा—ऐसा ही होगा और प्रजा की कामना वाले दक्ष ने उन सबके साथ सृष्टि करने को काम का आरम्भ कर दिया। सर्व के स्थित होने वाले स्थाणु में फिर ब्रह्माजी ने सर्ग का सृजन किया था ॥८९॥ इसके अनन्तर सप्तम कल्प के अतीत हो जाने पर तपोलोक के निवास करने वाले ऋभु और सनत्कुमार उत्पन्न हुए। फिर इसके पश्चात् प्रभु ने अन्य मानस महर्षियों का सृजन किया था ॥९०॥

॥ प्रकर्ण २६—स्वरोत्पत्ति वर्णन ।

अहो विस्मयनीयानि रहस्यानि महामते।
त्वयोक्तानि यथातत्त्व लोकानुग्रहकारणात् ॥१
तत्र वै संशयो मह्यमवता (वा) रेषु शूलिनः।
किं कारण महादेव कलिं प्राप्य सुदारुणम्।
हित्वा युगानि पूर्वाणि अवतार करोति वै ॥२
अस्मिन्मन्वन्तरे चैव प्राप्ते वैवस्वते प्रभो।
अवतार कथञ्चक्रे एतदिच्छामि वेदितुम् ॥३
न तेऽस्त्यविदित किञ्चिदिह लोके परत्र च।
भक्तानामुपदेशार्थं विनयात् पृच्छतो मम।
कथय स्व महाप्राज्ञ यदि श्राव्य महामतम् ॥४
एव पृष्टोऽथ भगवान् वायुर्लोकहिते रतः।

इदमाह महातेजा वायुर्लोकनमस्कृतः ।।५
एतद्गुप्ततमं लोके यन्मान्त्वं परिपृच्छसि ।
तत्सर्वं श्रृणु गाधेय उच्यमानं यथाक्रमम् ।।६
पुरा ह्येकार्णवे वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके ।
स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ।।७

श्री सूतजी ने कहा—हे महामते ! अहो ! आपने तो विस्मय करने के योग्य रहस्यों को बतला दिया है और वह भी लोकों पर अनुग्रह करके यथातत्त्व वर्णन किया है ।।१।। उसमें भगवान् शूली के अवतारों में हमको बड़ा संशय होता है । क्या कारण है कि महादेव पूर्व युगों को छोड़कर इस सुदारुण कलियुग को प्राप्त कर अवतार ग्रहण करते हैं ।।२।। हे प्रभो ! इस वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर कैसे अवतार लिये । यह सब हम जानने की इच्छा रखते हैं ।।३।। आपको तो कोई भी बात इस लोक की हो चाहे परलोक की हो अविदित नहीं है । भक्तों के उपदेश के लिये विनय के साथ पू ने वाले मुझको हे महाप्राज्ञ ! यह सब बतलाइये, यदि यह महामत श्रवण कराने के योग्य है तो अवश्य श्रवण कर लें ।।४।। श्री लोमशजी ने कहा—इस प्रकार से पूछे गये भगवान् वायुदेव जो कि सर्वदा लोक के हित में अनुराग रखने वाले थे, महान् तेज वाले लोकों के द्वारा नमस्कृत वायुदेव ने यह कहा ।।५।। यह लोक में परम गोपनीय विषय है जो कि आप मुझसे इस समय पूछ रहे हैं । हे गाधेय ! वह सब यथाक्रम कहा हुआ मुझसे श्रवण करो ।।६।। पहिले एकार्णव के हो जाने पर दिव्य एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये तब प्रजा के सृजन करने की कामना वाले ब्रह्माजी अत्यन्त दुःखित होकर चिन्ता करने लगे ।।७।।

तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतः कुमारकः ।
दिव्यगन्धः सुधापेक्षी दिव्यां श्रुतिमुदीरयन् ।।८
अशब्दस्पर्शरूपान्तामगन्धां रसवर्ज्जिताम् ।
श्रुतिं ह्युदीरयन् देवो यामविन्दच्चतुर्मुखः ।।९
ततस्तु ध्यानसंयुक्तस्तप आस्थाय भैरवम् ।
चिन्तयामास मनसा त्रितयं कोऽन्वयन्त्विति ।।१०

तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूत तदक्षरम् ।
अशब्दस्पर्शरूपञ्च रसगन्धविवर्जितम् ॥११
अथोत्तम स लोकेषु स्वमूर्तिञ्चापि पश्यति ।
ध्यायन्वै स तदा देवमथैन पश्यते पुन ॥१२
त श्वेतमथ रक्तञ्च पीत कृष्ण तदा पुन. ।
वर्णस्थ तत्र पश्येत न स्त्री न च न पु सकम् ॥१३
तत्सर्वं सुचिर ज्ञात्वा चिन्तयन् हि तदक्षरम् ।
तस्य चिन्तयमानस्य कण्ठादुत्तिष्ठतेऽक्षर' ॥१४

इस तरह चिन्ता मे मग्न रहते हुए उसके कुमार प्रादुर्भूत हुए जो कि दिव्य गन्ध वाले और मुखापेक्षी थे तथा दिव्य श्रुति का उच्चारण कर रहे थे ॥ ॥८॥ चतुर्मुख देव ने शब्द-स्पर्श और रूप से रहित अन्त वाली तथा गन्धहीन एव रस वर्जित श्रुति का उच्चारण करते हुए लाभ किया था ॥९॥ इसके पश्चात् ध्यान मे सयुक्त होकर भैरव तपश्चर्या मे स्थित होकर मन से सोचने लगे कि यह वितय कौन है ॥१०॥ उनके चिन्तन करते हुए शब्द स्पर्श रूप से रहित तथा रस और गन्ध से वर्जित वह अक्षर प्रादुर्भूत हुआ ॥११॥ इसके अनन्तर उसने लोकों मे अपनी मूर्ति को देखा । तब देव का ध्यान करते हुए पुन' इस देव को ही देखा ॥१२॥ पहिले श्वेत फिर रक्त-पीत तथा कृष्ण वर्ण मे स्थित उसको वहाँ देखा, न तो वहाँ कोई स्त्री थी और न कोई पुरुष ही था। ॥१३॥ उस सबका बहुत समय तक ध्यान करके और उस अक्षर का चिन्तन करते हुए उसके चिन्तन करने वाले के कण्ठ से अक्षर उठता है ॥१४॥

एकमात्रो महाघोप श्वेतवर्ण. सुनिर्मल ।
स ओकारो भवेद्वेदः अक्षर वै महेश्वर ॥१५
ततश्चिन्तयमानस्य त्वक्षर वै स्वयम्भुव ।
प्रादुर्भूतन्तु रक्तन्तु स देवः प्रथम स्मृत. ॥१६
ऋग्वेद प्रथम तस्य त्वग्निमीले पुरोहितम् ।
एता दृष्ट्वा ऋच ब्रह्मा चिन्तयामास वै पुनः ।
तदक्षरं महातेजा किमेतदिति लोककृत् ॥१७

तस्य चिन्तयमानस्य तस्मिन्नथ महेश्वरः ।
द्विमात्रमक्षरं जज्ञे ईशित्वेन द्विमात्रिकम् ॥१८
ततः पुनर्द्विमात्रं तु चिन्तयामास चाक्षरम् ।
प्रादुर्भूतं च रक्तं तच्छेदने गृह्य सा यजुः ॥१९
इषे त्वोर्ज्जेत्वा वायवस्थ देवो वः सविता पुनः ।
ऋग्वेद एकमात्रस्तु द्विमात्रन्तु यजुः स्मृतम् ॥२०
ततो वेदं द्विमात्रं तु दृष्ट्वा चैव तदक्षरम् ।
द्विमात्रं चिन्तयन् ब्रह्मा त्वक्षरं पुनरीश्वरः ॥२१

एकमात्र–महाघोष–श्वेत वर्ण वाला तथा सुनिर्मल वह ओङ्कार अक्षर को महादेव ने वेद समझा था ॥१५॥ उस अक्षर का चिन्तन करने वाले स्वयम्भू के रक्त प्रादुर्भूत हुआ और वह प्रथम देव कहा गया है ॥१६॥ उसके प्रथम ऋग्वेद को "अग्निमीले पुरोहितम्" इस ऋचा को ब्रह्माजी ने देखा और फिर चिन्तन में लग गये, महान् तेज वाले तथा लोकों के कर्त्ता ने विचार किया कि यह अक्षर क्या है ? ॥१७॥ इस प्रकार से उसके चिन्तन करते हुए महेश्वर ने उससे ईशत्व से दो मात्रा वाला द्विमात्र अक्षर उत्पन्न किया ॥१८॥ इसके पश्चात् फिर द्विमात्र अक्षर का चिन्तन किया । फिर उसके छेदन में रक्त वर्ण वाला यजुः प्रादुर्भूत हुआ ॥१९॥ जिसकी ऋचा यह है—"इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थ देवो वः सविता पुनः" । ऋग्वेद तो एकमात्र है और यजु द्विमात्र कहा गया है ॥२०॥ इसके पश्चात् वेद को द्विमात्र देखकर फिर ईश्वर ब्रह्मा उस अक्षर को द्विमात्र चिन्तन करने में संलग्न हो गये थे ॥२१॥

तस्य चिन्तयमानस्य चोङ्कारः सम्बभूव ह ।
ततस्तदक्षरं ब्रह्मा ओङ्कारं समचिन्तयत् ॥२२
अथापश्यत्ततः पीतामृचं चैव समुत्थिताम् ।
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ॥२३
ततस्तु स महातेजा दृष्ट्वा वेदानुपस्थितान् ।
चिन्तयित्वा च भगवांस्त्रिस्तथ्यं यत्त्रिरक्षरम् ।
त्रिवर्णं यत् त्रिपत्रणमोङ्कारं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥२४

ततश्चैव त्रिसयोगात् त्रिवर्णं तु तदक्षरम् ।
लक्ष्यालक्ष्यप्रदृश्य च सहित त्रिदिव त्रिकम् ।।२५
त्रिमात्र त्रिपद चैव त्रियोग चैव शाश्वतम् ।
तस्मात्सदक्षर ब्रह्मा चिन्तयामास वै प्रभु ।।२६
तस्मात्तदक्षर सोऽथ ब्रह्मरूप स्वयम्भुव ।
चतुर्दशमुख देव पश्यते दीप्ततेजसम् ।
तमोङ्कार स कृत्वादौ विज्ञेय स स्वयम्भुव ।।२७
चतुर्मुखमुखात्तस्मादजायन्त चतुर्दश ।
नानावर्णा स्वरा दिव्यमाद्य तच्च तदक्षरम् ।
तस्मात् त्रिषष्टिवर्णा वै अकारप्रभवा स्मृता ।।२८।।

इस प्रकार से उनके चिन्तन करते हुए ओङ्कार समुत्पन्न हुआ । इसके पश्चात् उस अक्षर ओङ्कार का ब्रह्माजी ने चिन्तन किया था ।।२२।। इसके अनन्तर समुत्थित पीन वर्ण वाली ऋचा को देखा जिसका स्वरूप है—"अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य दातये" ।।२३।। इसके पश्चात् उस महान तेज वाले ने समुपस्थित वेदों को देखकर भगवान ने तीनों सन्ध्याओं में जो त्रिरक्षर था उसका चिन्तन किया जोकि तीन वर्ण वाला त्रिपवण ब्रह्म की सज्ञा से युक्त ओङ्कार था ।।२४।। इसके पश्चात् तीन के सयोग से तीन वर्ण वाला वह अक्षर लक्ष्य और अलक्ष्य से प्रदृश्य, हित के सहित, त्रिदिव, त्रिक, त्रिमात्र, त्रिपद, त्रियोग और शाश्वत वह अक्षर था उसका प्रभु ब्रह्माजी ने चिन्तन किया था ।।२५।।२६।। इससे वह स्वयम्भू के ब्रह्म रूप उस अक्षर को चतुर्दश मुख वाले देव को जोकि दीप्त तेज वाला था देखा । उसने उस ओङ्कार को आगे करके उसे स्वयम्भू का ही जानना चाहिए ।।२७।। उस चतुर्मुख (ब्रह्मा) के मुख से चौदह उत्पन्न हुए और नाना वर्ण वाले स्वर तथा आद्य वह दिव्य अक्षर उत्पन्न हुए । इससे अकार प्रभव तिरेसठ वर्ण कहे गये हैं ।।२८।।

तत्र साधारणार्थाय वर्णानान्तु स्वयम्भुव ।
अकाररूप आदौ तु स्थित स प्रथम स्वर ।।२९
ततस्तेभ्य स्वरेभ्यस्तु चतुर्दश महामुखा ।
मनव सम्प्रसूयन्ते दिव्या मन्वन्तरे स्वरा ।।३०

चतुर्दशमुखो यश्च अकारो ब्रह्मसंज्ञितः ।
ब्रह्मकल्पः समाख्यातः सर्ववर्णः प्रजापतिः ॥३१
मुखात्तु प्रथमात्तस्य मनुः स्वायम्भुवः स्मृतः ।
अकारस्तु स विज्ञेयः श्वेतवर्णः स्वयम्भुवः ॥३२
द्वितियात्तु मुखात्तस्य आकारो वै मुखः स्मृतः ।
नाम्ना स्वारोचिषो नाम वर्णः पाण्डुर उच्यते ॥३३
तृतीयात्तु मुखात्तस्य इकारो यजुषां वरः ।
यजुर्मयः स चादित्यो यजुर्वेदो यतः स्मृतः ॥३४
ईकारः स मनुर्ज्ञेयो रक्तवर्णः प्रतापवान् ।
ततः क्षत्रं प्रवर्त्तन्ति तस्माद्रक्तस्तु क्षत्रियः ॥३५

इसके अनन्तर वर्णो के साधारण अर्थ के लिये स्वयम्भू का अकार रूप आदि में स्थित हुआ जोकि प्रथम स्वर कहा जाता है ॥२९॥ इसके उपरान्त उन स्वरों से चौदह महामुख मनु उत्पन्न होते हैं जोकि मन्वन्तर में दिव्य स्वर हैं ॥३०॥ चतुर्दश मुख वाला जो अकार है वह ब्रह्म की संज्ञा से युक्त है ब्रह्म-कल्प अर्थात् ब्रह्म के ही सदृश, सर्व वर्ण और प्रजापति कहा गया है ॥३१॥ उसके प्रथम मुख से स्वायम्भुव मनु कहा गया है वह अकार तो स्वयम्भू का श्वेत वर्ण जानना चाहिए ॥३२॥ द्वितीय उसके मुख से आकार मुख कहा गया है वह नाम स्वारोचिष है और उसका वर्ण पाण्डुर कहा गया है ॥३३॥ उसके तीसरे मुख से यजु में श्रेष्ठ इकार है। वह आदित्य यजुर्मय है इसीसे वह यजुर्वेद कहा गया है ॥३४॥ ईकार प्रताप वाला रक्तवर्ण से युक्त मनु जानने के योग्य है। इससे क्षत्र प्रवृत्त होता है। इसीलिये क्षत्रिय रक्त होता है ॥३५॥

चतुर्थात्तु मुखात्तस्य उकारः स्वर उच्यते ।
वर्णतस्तु स्मृतस्ताम्रः स मनुस्तामसः स्मृतः ॥३६
पञ्चमात्तु मुखात्तस्य ऊकारो नाम जायते ।
पीतको वर्ण तश्चैव मनुश्चापि चरिष्णवः ॥३७
ततः षष्ठान्मुखात्तस्य ओङ्कारः कपिलः स्मृतः ।
वरिष्ठश्च ततः षष्ठो विजयः स महातपाः ॥३८

सप्तमात्त् मुखात्तस्य ततो वैवस्वतो मनुः ।
ऋकारश्च स्वरस्तत्र वर्णेन कृष्ण उच्यते ॥३९
अष्टमात्तु मुखात्तस्य ॠकार श्यामवर्णतः ।
श्यामाक्षरसवर्णश्च तत सावर्णिरुच्यते ॥४०॥
मुखात्तु नवमात्तस्य लृकारो नवम स्मृत ।
धूम्रो वर्णतश्चापि धूम्रश्च मनुरुच्यते ॥४१
दशमात्तु मुखात्तस्य लृकार प्रभुरुच्यते ।
समश्चैव सवणश्च वभौ सावर्णिको मनु ॥४२

उसके चतुर्थ मुख से उकार स्वर कहा जाता है। यह वर्ण से ताम्र कहा गया है और वह तामस मनु प्रसिद्ध हुआ है ॥३६॥ उसके पचम मुख से ऊकार नाम वाला उत्पन्न होता है। यह वर्ण स पीत तथा चरिष्णु मनु कहा गया है ॥३७॥ इसके पश्चात् उसके छठे मुख से ओङ्कार हुआ जो कपिल कहा गया है। वह षड सब मे वरिष्ठ विजय और महान् तप वाला है ॥३८॥ उसके सप्तम मुख से वैवस्वत मनु हुए जिसका स्वर ऋकार है और वर्ण कृष्ण कहा जाता है ॥३९॥ उसके अष्टम मुख से ॠकार हुआ वर्ण श्याम है। श्यामाक्षर सवर्ण होता है इसी लिये वह सावर्णी कहा जाता है ॥४०॥ नवम मुख से उसके लृकार हुआ जो नवम कहा गया है। वह वर्ण से धूम्र होता है और धूम्र मनु ही कहा जाता है ॥४१॥ उसके दशम मुख से लृकार होता है और प्रभु कहा जाता है। वह सम और सवर्ण है इसी लिये सावर्णिक मनु इस नाम से कहा गया है ॥४२॥

मुखादेकादशात्तस्य एकारो मनुरुच्यते ।
पिशङ्गा वर्णतश्चैव पिशङ्गो वर्ण उच्यते ॥४३
द्वादशात्तु मुखात्तस्य ऐकारो नाम उच्यते ।
पिशङ्गो भस्मवर्णाभ पिशङ्गो मनुच्यते ॥४४
त्रयोदशान्मुखात्तस्य ओकारो वर्ण उच्यते ।
पञ्चवर्णसमायुक्त ओकारो वर्ण उत्तम. ॥४५
चतुर्दशमुखात्तस्य औकारो वर्ण उच्यते ।
कर्बुरो वर्णतश्चैव मनु सावर्णिरुच्यते ॥४६

इत्येते मनवश्चैव स्वरा वर्णाश्च कल्पतः ।
विज्ञेया हि यथातत्त्वं स्वरतो वर्णतस्तथा ।।४७
परस्परसवर्णाश्च स्वरा यस्माद् वृता हि वै ।
तस्मात्तेषां सवर्णत्वाद न्वयस्तु प्रकीर्तितः ।।४८
सवर्णाः सदृशाश्चैव यस्माज्जातास्तु कल्पजाः ।
तस्मात् प्रजानां लोकेऽस्मिन् सवर्णाः सर्वसन्धयः ।।४९
भविष्यन्ति यथाशैलं वर्णाश्च न्यायतोऽर्थतः ।
अभ्यासात्सन्धयश्चैव तस्माज्ज्ञेयाः स्वरा इति ।।५०

एकादश मुख से उसके एकार हुआ जो मनु कहा जाता है। वर्ण से यह पिशङ्ग होता है इसी लिये पिशङ्ग इस नाम से कहा जाता है ।।४३।। उसके बारहवें मुख से ऐकार नाम वाला हुआ । वह पिशङ्ग और भस्म के वर्ण की आभा के समान आभा वाला था इसे पिशङ्ग मनु कहा जाता है ।।४४।। उसके तेरहवें मुख से ओकार वर्ण उत्पन्न हुआ है । यह पञ्च वर्णों से युक्त उत्तम वर्ण ओकार है ।।४५।। उसके चौदहवें मुख से औकार वर्ण हुआ । वह वर्ण से कर्बुर और सावार्णी मनु कहा जाता है ।।४६।। ये मनु स्वर और वर्ण कल्प से जानने चाहिए । ये स्वर और वर्ण से ही यथातत्व और हैं ।।४७।। क्योंकि स्वर पर स्वर में सर्वाङ्गत हुए हैं । इसीलिये उनके सवर्ण होने से अन्वय कहा गया है ।।४८।। ये सवर्ण और कल्प में होने वाले सदृश उत्पन्न हुए हैं । इसलिये इस लोक में प्रजाओं के सर्व सन्धि वाले ये सवर्ण होते हैं ।।४९।। यथाशैल न्याय से और अर्थ से ये होंगे । अभ्यास से सन्धियाँ भी हैं इसी से इन्हें स्वर जानना चाहिए ।।५०।।

।। प्रकर्ण २७—ऋषि वंश कीर्त्तन ।।

भृगोः ख्यातिर्विजज्ञेऽथ ईश्वरौ सुखदुःखयोः ।
शुभाशुभप्रदातारौ सर्वप्राणभृतामिह ।
देवौ धाताविधातारौ मन्वन्तर विचारणौ।।१
तयोर्ज्येष्ठा तु भगिनी देवी श्रीर्लोकभाविनी ।

सा तु नारायण देवं पतिमासाद्य शोभनम् ।
नारायणात्मजौ साध्वी बलोत्साहौ व्यजायत ।।२
तस्यास्तु मानसा पुत्रा ये चान्ये दिव्यचारिणः ।
ये वहन्ति विमानानि देवाना पुण्यकर्मणाम् ।।३
द्वे तु कन्ये स्मृते भार्ये विधातुर्धातुरेव च ।
आयतिर्नियतिश्चैव तयोः पुत्रौ दृढव्रतौ ।।४
पाण्डुश्चैव मृकण्डुश्च ब्रह्मकोशौ सनातनौ ।
मनस्विन्या मृकण्डोश्च मार्कण्डेयो बभूव ह ।।५
सुतो वेदशिरास्तस्य मूर्द्धन्यायामजायतः ।
पीवर्यां वेदशिरस पुत्रा वंशकरा स्मृता. ।
मार्कण्डेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः । ६
पाण्डोश्च पुण्डरीकाया द्युतिमानात्मजोऽभवत् ।
उत्पन्नौ द्युतिमन्तश्च सृजवानश्च तावुभौ ।
तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च भार्गवाणा परस्परम् ।
स्वायम्भुवेऽन्तरेऽतीते मरीचेः शृणुत प्रजाः ।।७

श्री सूतजी ने कहा—भृगु से ख्याति ने सुख दुःख के स्वामी समस्त प्राणधारियों को शुभ तथा अशुभ को ग्रहण करने वाले, मन्वन्तर के विचार करने वाले धाता और विधाता दो देव उत्पन्न किये थे ।। १ ।। उनकी ज्येष्ठ भगिनी लोकभाविनी श्री देवी थी । उसने नारायण देव को अपना पति प्राप्त किया जो कि परम शोभन थे । उस साध्वी देवी से नारायण के पुत्र बल और उत्साह उत्पन्न हुए ।। २ ।। उसके अन्य दिव्यचारी मानस पुत्र थे जो कि पुण्य-कर्म करने वाले देवो क विमानों का वहन किया करते हैं ।। ३ ।। दो कन्याऐं हुईं जो विधाता और धाता की भार्या हुई थी । उन दोनो के आयति और नियति नाम वाले दृढव्रत दो पुत्र हुए ।। ४ ।। पाडु और मृकण्डु ब्रह्मकोश तथा सनातन हुए । मनस्विनी मे मृकण्डु से मार्कण्डेय उत्पन्न हुए ।। ५ ।। उसका पुत्र वेदशिरा हुआ जो मूर्द्धन्या मे उत्पन्न हुआ था । वेदशिरा से पीवरी मे वंश चलाने वाले पुत्र कहे गये हैं । ये सब वेद के पारगामी ऋषिगण मार्कण्डेय प्रसिद्ध हुए ।। ६ ।।

पाण्डु से पुण्डरीका में द्युतिमान आत्मज हुआ। द्युतिमान और सृजमान दो पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनों के पुत्र और पौत्र आपस में भार्गवों के हुए। स्वायम्भुव के अन्तर व्यतीत हो जाने पर अब मरीचि की प्रजा के विषय में श्रवण करिये ॥ ७ ॥

पत्नी मरीचेः सम्भूतिर्विजज्ञे सात्मसम्भवम् ।
प्रजायते पूर्णमासं कन्याश्चेमा निबोधत ।
तुष्टिः पृष्टिस्त्विषा चैव तथा चापचितिः शुभा ॥८
पूर्णमासः सरस्वत्यां द्वौ पुत्रवुदपादयत् ।
विरजश्चैव धर्मिष्ठं पर्वसश्चैव तावुभौ ॥९
विरजस्यात्मजो विद्वान् सुधामा नाम विश्रुतः ।
सुधामसुतवैराजः प्राच्यान्दिशि समाश्रितः ॥१०
लोकपालः सुधर्मात्मा गौरीपुत्रः प्रतापवान् ।
पर्वसः सर्वगणानां प्रविष्टः स महायशाः ।.११
पर्वसः पर्वसायान्तु जनयामास वै सुतौ ।
यज्ञवामञ्च श्रीमन्तं सुतं काश्यपमेव च ।
तयोर्गोत्रकरौ पुत्रौ तौ जातौ धर्मनिश्चितौ ॥१२
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी जज्ञे तावात्मसम्भवौ ।
पुत्रौ कन्याश्चतस्रश्च पुण्यास्ता लोकविश्रुताः ॥१३
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ।
तथैव भरताग्निश्च कीर्त्तिमन्तञ्च तावुभौ ॥१४

मरीचि की पत्नी सम्भूति नाम वाली थी उसने अपत्य पुत्र उत्पन्न किया जो पूर्णमास उत्पन्न होता है। और उसके जो कन्याऐं हुईं उन्हें समझ लो। तुष्टि, पुष्टि, त्विषा, अत्यचिति और शुभा ये कन्याऐं हुईं ॥ ८ ॥ पूर्णमास ने सरस्वती में ही पुत्र उत्पन्न किये थे जिनका नाम विरज और धर्मिष्ठ पर्वस था। ये दोनों पुत्र थे ॥ ९ ॥ विरज का पत्र बड़ा विद्वान सुधामा इस नाम से विश्रुत था। सुधामा का पुत्र वैराज था जो कि पूर्व दिशा का आश्रय लेकर स्थित रहता था ॥ १० ॥ लोकपाल, सुधर्मात्मा और प्रताप वाला गौरी पुत्र पर्वस

समस्त गणो मे प्रविष्ट हुआ और वह महान यश वाला था ॥ ११ ॥ पर्वत ने पर्वसा मे दो पुत्र उत्पन्न किये । श्रीमान यशवाम और दूसरा सुत काश्यप था । उन दोनो के गोत्र कर वे धर्म निश्चित पुत्र हुए ॥ १२ ॥ अङ्गिरा की पत्नी स्मृति ने दो पुत्र पैदा किए और चार परम पवित्र तथा लोक विश्रुत कन्या उत्पन्न की थी ॥ १३ ॥ जिन कन्याओं के नाम सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति या तथा दो पुत्र कीर्त्तिमान और भरताग्नि थे ॥ १४ ॥

अग्ने पुनन्तु पर्जन्य सहूती सुपुवे प्रभुम् ।
हिरण्यरोमा पर्जन्यो मारीच्यामुदपादयन् ।
आभूतसप्लवस्थायी लोकपाल· स वै स्मृतः ॥१५
जज्ञे कीतिमतश्चापि धेनुका तावकल्मषौ ।
वरिष्ठ धृतिमन्तञ्चाप्युभावङ्गिरसा वरौ ॥१६
तयो पुत्राश्च पौत्राश्च येऽतीता वै सहस्रशः ।
अनसूयापि जज्ञे तान् पञ्चात्रे यानकल्मषान् ॥१७
कन्याञ्चैव श्रुति नाम माता शङ्खपदस्य या ।
कर्दमस्य तु या पत्नी पुलहस्य प्रजापते ॥१८
सत्यनेत्रश्च हव्यश्न आपोमूर्तिः शनीवरः ।
सोमश्च प चमस्तेपामासीन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
यामेऽतीते महातीताः प चात्रेया प्रकीर्तिताः ॥१९
तेपा पुत्राश्च पौत्राश्च ह्यत्रिणा यं माहत्मना ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे यामे शतशोऽथ सहसश ॥२०
प्रीत्या पुलस्त्यभार्याया दत्तालिस्तत्सुतोऽभवन् ।
पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्य· स्मृत स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
मध्यमो देवबाहुश्च विनीतो नाम ते त्रय. ॥२१

अग्नि मे सहूती ने प्रभु पर्जन्य पुत्र का प्रसव किया था । पर्जन्य ने मरीचि मे हिरण्यरोमा उत्पन्न किया जो कि यह आभूत सप्लव तक स्थायी रहने वाला लोकपाल कहा गया है ॥ १५ ॥ धेनुका ने कीर्तिमान से दो कल्मष-हीन पुत्र उत्पन्न किये । वरिष्ठ और धृतिमान ये दोनो आङ्गिरसो मे परमश्रेष्ठ

थे ॥ १६ ॥ उन दोनों के सहस्रों पुत्र तथा पौत्र थे जो अतीत हैं। अनसूया ने भी अकल्मष पाँच अत्रियों को जन्म दिया ॥ १७ ॥ और एक कन्या उत्पन्न की जिसका नाम श्रुति था और जो शङ्खपद की माता थी जो प्रजापति पुलह कर्दम की पत्नी थी ॥ १८ ॥ पाँचों के नाम—सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति, शनिवर और पाँचवां सोम उनमें से था जो कि स्वायम्भुव अन्तर में थे। याम के व्यतीत होने पर ये पाँच आत्रेय जो कहे गये हैं सहातीत हो गये थे ॥ १९ ॥ उनके पुत्र और पौत्र महात्मा अत्रि ने स्वायम्भुवान्तर याम में सैंकड़ों तथा सहस्रों उत्पन्न किये थे ॥ २० ॥ पुलस्त्य की भार्या प्रीति में उसका पुत्र दत्ताग्नि हुआ था। पूर्व जन्म में स्वायम्भुव अन्तर में वह अगस्त्य कहा गया है। मध्यम देव बाहु और विनीत नाम वाला, ऐसे वे तीन हैं ॥ २१ ॥

स्वसा यवीयसी तेषां सद्वती नाम विश्रुता।
पर्जन्यजननी शुभ्रा पत्नी त्वग्नेः स्मृता शुभा ॥२२
पौलस्त्यस्य ऋषेश्चापि प्रीतिपुत्रस्य धीमतः।
दत्ताले. सुषुवे पत्नी सुजङ्घादीन् बहून् सुतान्।
पौलस्त्या इति विख्याताः स्मृताः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥२३
क्षमा तु सुषुवे पुत्रान् पुलहस्य प्रजापतेः।
ते चाग्निवर्चसः सर्वे येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता ॥२४
कर्दमश्चाम्बरीषश्च सहिष्णुश्चेति ते त्रयः।
ऋषिर्धनकपीवांश्च शुभा कन्या च पीबरी ॥२५
कर्दमस्य श्रुतिः पत्नी आत्रेय्य जनयत्सुतान्।
पुत्रं शङ्खपदं चैव कन्यां काम्यां तथैव च ॥२६
स वै शङ्खपदः श्रीमान् लोकपालः प्रजापतिः।
दक्षिणस्यां दिशि रतः काम्यां दत्वा प्रियव्रते ॥२७
काम्या प्रियव्रताल्लेभे स्वायम्भुवसमान् सुतान्।
दशकन्याद्वयं चैव यैः क्षत्रं सम्प्रवर्तितम् ॥२८

उनकी भगिनी छोटी सद्वती नाम वाली प्रसिद्ध है। जो पर्जन्य की शुभ्रा माता और अग्नि की शुभ्रा पत्नी कही गयी है ॥ २२ ॥ पुलस्त्य ऋषि के भी

प्रीति पुत्र धीमान दत्तात्रि की पत्नी ने सुजङ्घादि बहुत-से पुत्रों का प्रसव किया था। वे सब स्वायम्भुवान्तर में पौलस्त्य इस नाम से विख्यात तथा कहे गये थे॥ २३॥ क्षमा ने प्रजापति पुलह के पुत्रों को उत्पन्न किया। वे सब ही अग्निवर्चस थे जिनकी कीर्त्ति लोकों में प्रतिष्ठित है॥ २४॥ वे कर्दम, अम्बरीष और सहिष्णु ये तीन हैं और धनक पीवान ऋषि तथा पीवरी शुभ कन्या थी॥ २५॥ कर्दम की पत्नी श्रुति आत्रेयी ने पुत्रों को जन्म दिया। पुत्र शङ्खपद था तथा काम्या कन्या थी॥ २६॥ वह श्रीमान शङ्खपद लोकों का पालक और प्रजापति था। दक्षिण दिशा में रत होकर काम्या को प्रियव्रत के लिये दे दिया था। काम्या ने प्रियव्रत से स्वायम्भुव के समान पुत्रों की प्राप्ति की थी। पुत्र दश थे और दो कन्या उनमें थी जिन्होंने यहाँ क्षत्र को सम्प्रवृत किया था॥ २७-२८॥

पुत्रो धनकपीवांश्च सहिष्णुर्नाम विश्रुतः।
यशोधारी विजज्ञे वै कामदेव सुमध्यम ॥२६
क्रतोः क्रतुसम पुत्रो विजज्ञे सन्तति शुभा।
नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्द्ध रेतस.।
षष्ट्येतानि सहस्राणि वालखिल्या इति श्रुताः ॥३०
अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम्।
आभूतसम्प्लवात्सर्वे पतङ्गसहचारिण' ॥३१
स्वसारौ तु यवीयस्यौ पुण्यात्मसुमती च ते।
पर्वसस्य स्नुषे ते वै पूर्णमाससुतस्य वै ॥३२
ऊर्जायान्तु वसिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे।
ज्यायसी च स्वसा तेषां पुण्डरीका सुमध्यमा ॥३३
जननी सा द्युतिमत पाण्डोस्तु महिषी प्रिया।
अस्यां त्विमे यवीयांसो वासिष्ठाः सप्त विश्रुताः ॥३४
रज' पुत्रोऽर्द्धबाहुश्च सवनश्चाधनश्च यः।
सुतपाः शुक्ल इत्येते सर्वे सप्तर्षय. स्मृताः ॥३५
रजसो वाप्यजनयन्मार्कण्डेयी यशस्विनी।

प्रतीच्यां दिशि राजन्य केतुमन्तं प्रजापतिम् ।।३६
गोत्राणि नामभिस्तेषां वासिष्ठानां महात्मनाम् ।
स्वायम्भुवेन्तरेऽतीतास्त्वग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ।।३७
इत्येष ऋषिसर्गस्तु सानुबन्धः प्रकीर्त्तितः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या चाप्यग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ।।३८

पुत्र धनक वीवान् था जो सहिष्णु के नाम से विश्रुत हुआ। यशोधारी ने सुमध्यम कामदेव को उत्पन्न किया ।। २६ ।। ऋतु का ऋतु के तुल्य ही पुत्र हुआ और वह शुभा सन्तति थी । इनकी कोई भी भार्या नहीं थी और न इनका कोई पुत्र ही था क्योंकि वे सभी ऊर्द्ध रेता थे । ये सब साठ हजार थे जो वालखिल्य इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे ।। ३० ।। सूर्य को परिवृत करके ये अरुण के आगे जाया करते हैं और भूत संप्लव से लेकर ये सब पतङ्ग (सूर्य) के ही सहचरण करने वाले होते हैं ।। ३१ ।। भगिनी दो छोटी थीं जिनका नाम पुण्या और आत्म सुमति था । वे दोनों पर्वस की स्नुषा थी जो कि पूर्णमास का पुत्र था ।। ३२ ।। ऊर्जा में वसिष्ठ के सात पुत्र उत्पन्न हुए और ज्यायसी (बड़ी) उनकी बहिन सुमध्यमा पुण्डरीका थी ।। ३३ ।। वह द्युतिमान् की माता थी और पाण्डु की प्यारी रानी थी । इसमें ये यवीयान् सात वासिष्ठ प्रसिद्ध हुए थे ।। ३४ ।। रज, पुत्र, अर्द्धबाहु, सवन, अधन सुतपा और शुक्ल ये सब सप्तर्षि कहे गये हैं ।। ३५ ।। यशस्विनी मार्कण्डेयी रज से जनन किया। प्रतीची दिशा में प्रजापति राजन्य केतुमान् को उत्पन्न किया ।। ३६ ।। उन महात्मा वासिष्ठों के नामों से गोत्र हैं । ये स्वायम्भुव अन्तर में अतीत हो गये हैं । अब अग्नि की प्रजा का श्रवण करो ।। ३ ।। यह ऋषियों का सर्ग अनुबन्ध के सहित कह दिया गया है । अब विस्तार से तथा आनुपूर्वी के साथ अग्नि की प्रजा को सुनो ।। ३८ ।।

।। प्रकर्ण २८—अग्नि वंश वर्णन ।।

योऽसावग्निरभिमानी ह्यासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात्स्वाहा व्यजायत ।।१
पावकः पवमानश्च पावमानश्च यः स्मृतः ।

शुचिः शौरस्तु विज्ञेयः स्वाहापुत्रास्त्रयस्तुते ॥२
निर्म्मथ्य पवमानस्तु शुचि शौरस्तु यः स्मृतः ।
पावका वैद्युताश्चैव तेषा स्थानानि यानि वै ॥३
पवमानात्मजश्चैव कव्यवाहन उच्यते ।
पावकात् सहरक्षस्तु हव्यवाहः शुचेः सुतः ॥४
देवाना हव्यवाहोऽग्निः पितृणा कव्यवाहनः ।
सहरक्षोऽसुराणान्तु त्रयाणान्तु त्रयोऽग्नयः ॥५
एतेषा पुत्रपौत्रास्तु चत्वारिंशन्नवैव तु ।
वक्ष्यामि नामतस्तेषा प्रविभाग पृथक् पृथक् ॥६
वैद्युतो लौकिकाग्निस्तु प्रथमो ब्रह्मणः सुत. ।
ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः ॥७

स्वायम्भुवान्तर में जो यह अग्नि था वह बहुत अभिमान वाला था। यह ब्रह्माजी का मन से उत्पन्न होने वाला मानस पुत्र था उससे स्वाहा उत्पन्न हुई ॥ १ ॥ यह पावक, पवमान और पावमान, इन नामों से कहा गया है। *शुचि, शौर और विज्ञेय ये तीन स्वाहा के पुत्र थे ॥ २ ॥* पवमान निर्मंथन करके शुचि और शौर जो कहा गया है। पावक और वैद्युत उनके ये स्थान हैं ॥ ३ ॥ पवमान का आत्मज कव्यवाहन कहा जाता है। पावक से सहरक्ष और शुचि का पुत्र हव्यवाह था ॥ ४ ॥ देवो का जो अग्नि है वह हव्यवाह होता है और पितृगण का जो अग्नि होता है वह कव्यवाहन कहा जाता है। सहरक्ष नामक जो अग्नि है वह असुरो का कहा गया है। इस प्रकार इन तीनो के पृथक्-पृथक् तीन ये अग्नि होते हैं ॥ ५ ॥ इनके जो पुत्र तथा पौत्र हैं वे उनचास हैं। *उनके पृथक्-पृथक् प्रविभाग नाम से बतलाये जायेंगे ॥ ६ ॥* वैद्युत नामक जो अग्नि है वह लौकिक अग्नि है और प्रथम ब्रह्मा का पुत्र है। ब्रह्मौदन अग्नि उसका पुत्र है जो भरत इस नाम से प्रसिद्ध हुआ है ॥ ७ ॥

वैश्वानरमुखस्तस्य महः काव्यो ह्यपा रस ।
अमृतोऽथर्वणा पूर्वं मथितः पुष्करोदधौ ।
सोऽथर्वा लौकिकाग्निस्तु दध्यङ्चाथर्वण. सुत. ॥८

अथर्वा तु भृगुर्ज्ञेयोऽप्यङ्गिराऽथर्वणः सुतः ।
तस्मात् स लौकिकाग्निस्तु दध्यङ्चाथर्वणः सुतः ॥६
अथ यः पवमानोऽग्निर्निर्मन्थाः कविभिः स्मृतः ।
स ज्ञेयो गार्हपत्योऽग्निस्तयः पुत्रद्वयं स्मृतम् ॥१०
शंस्यस्त्वाहवनीयोऽग्निर्यः स्मृतो हव्यवाहनः ।
द्वितीयस्तु सुतः प्रोक्तः शुक्रोऽग्निर्यः प्रणीयते ॥११
तथा सभ्यावसथ्यौ वै शंस्यस्याग्नेः सुतावुभौ ।
शंस्यास्तु षोडश नदोश्चकमे हव्यवाहनः ।
योऽसावाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः ॥१२
कावेरीं कृष्णवेणीञ्च नर्मदां यमुनान्तथा ।
गोदावरीं वितस्ताञ्च चन्द्रभागामिरावतीम् ॥१३
विपाशां कौशिकीञ्चैव शतद्रुं सरयून्तथा ।
सीतां सरस्वतीञ्चैव ह्लादिनीं पावनीं तथा ॥१४

उसका वैश्वानरमुख, मह, काव्य और अपांरस, अमृत ये नाम हैं पहिले अथर्वणों ने पुष्करोदधि में मथन किया था । वह अथर्वा लौकिक अग्नि है जो दध्यङ्चाथर्वण का पुत्र है ॥ ८ ॥ अथर्वा भृगु को समझना चाहिए । अङ्गिरा अथर्वण का पुत्र है । उससे वह लौकिक अग्नि दध्यङ् चाथर्वण पुत्र है ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर जो पवमान अग्नि है वह कवियों के द्वारा निर्मन्था कहा गया है । वह गार्हपत्य अग्नि जानना चाहिए । उससे दो पुत्र कहे गये हैं ॥१०॥ जो अग्नि हव्यवाहन कहा गया है वह आहवनीय अग्नि कहे जाने के योग्य है । दूसरा जो सुत कहा गया है जो शुक्र अग्नि प्रणीत किया जाता है ॥ ११ ॥ उसी प्रकार से शंस्याग्नि के सभ्य और अवसथ्य ये दो पुत्र हैं । शंस्य तो सोलह हैं । हव्य वाहन ने नदी को चाहा । जो यह आहवनीय अग्नि है वह द्विजों के द्वारा अभिमानी कहा गया है ॥ १२ ॥ कावेरी, कृष्ण वेणी, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी, शतद्रु, सरयू, सीता, सरस्वती, ह्लादिनी तथा पावनी ये नदियों के सोलह स्थान हैं ॥ १४ ॥

तासु षोडशधात्मानं प्रविभज्य पृथक् पृथक् ।

आत्मान व्यदधात्तासु धिष्णीष्वथ बभूव स ॥१५
धिष्ण्यो दिव्यभिचारिण्यस्तासूत्पन्नास्तु धिष्णय ।
धिष्णीषु जज्ञिरे यस्माद्धिष्णयस्तेन कीर्त्तिता ॥१६
इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्णीष्वेव विजज्ञिरे ।
तेषा विहरणीया ये उपस्थेयाश्च येऽग्नय ।
तान् शृणुध्व समासेन कीर्त्यमानान् यथा तथा ॥१७
ऋतु· प्रवाहणोऽग्नीध्र पुरस्ताद्धिष्णयोऽपरे ।
विधीयन्ते यथास्थान सौत्येऽह्नि सवनक्रमात् ॥१८
अनिर्देश्यान्यवाच्यानामग्नीना शृणुत क्रमम् ।
सम्राडग्नि कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिक ॥१९
सम्राडग्नि स्मृता ह्यष्टौ उपतिष्ठन्ति तान् द्विजा ।
अधस्तात्पर्षदन्यस्तु द्वितीय सोऽत्र दृश्यते ॥२०
प्रतद्वोचे नभो नाम चत्वारि स विभाव्यते ।
ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ॥२१

इन उपर्युक्त सोलह नदियो मे अपने आपको सोलह म पृथक्-पृथक् विभाग करके उनमे अपने आपको कर दिया और वह धिष्णीपु हो गया ॥१५। उनमे धिष्ण्य दिव्यभिचारिण्य जो उत्पन्न हुए वे धिष्णय हुए। क्योकि वे धिष्णी पुत्रों म उत्पन्न हुए थे इससे वे धिष्णय कहे गये हैं ॥ १६ ॥ इतने ये नदी पुत्र हैं जो धिष्णीपु मे ही उत्पन्न हुए थे। उनमे विहार करने के योग्य जो उपस्थेय अग्नि हैं अब उनको सक्षेप से कहे जाने वालों को यथा तथा श्रवण करो ॥१७॥ ऋतु प्रवाहण, अग्नीध्र और पहिले दूसरे धिष्णि सौत्य दिवस मे सवन के क्रम से यथा स्थान किये जाते हैं ॥ १८ ॥ अनिर्देश्य अन्य वाच्य अग्नियो के क्रम को सुनो। द्वितीयोत्तर वैदिक जो कृशानु होता है वह सम्राट् अग्नि है ॥ १९ ॥ आठ सम्राट् अग्नि कहे गये हैं जिनका कि द्विज उपस्थान किया करते हैं। नीचे अन्य पर्षद् तो यहाँ पर वह द्वितीय दिखलाई देता है ॥ २० ॥ प्रतद्वोचे नभो नाम वाला वह चार विभावित होता है। ब्रह्म ज्योति वसु नाम वाला वह ब्रह्म स्थान में कहा जाता है ॥ २१ ॥

हव्यसूर्य्याद्यसंसृष्टः शामित्रे स विभाव्यते ।
विश्वस्याथ समुद्रोग्निर्ब्रह्मस्थाने स कीर्त्यते ॥२२
ऋतुधामा च सुज्योतिरौदुम्बर्य्यां स कीर्त्यते ।
ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ॥२३
अजैकपादुपस्थेयः स वै शालामुखीयकः ।
अनुद्देश्योप्यहिर्बुध्न्यः सोऽग्निर्गृहपतिः स्मृतः ॥२४
शंस्यस्यैव सुताः सर्वे उपस्थेया द्विजैः स्मृताः ।
ततो विहरणीयांश्च वक्ष्याम्यष्टौ तु तत्सुतान् ॥२५
ऋतुप्रवाहणोऽग्नीध्रस्तत्रस्था धिष्णयोऽपरे ।
विह्रियन्ते यथास्थानं सौत्योह्नि सवनक्रमात् ॥२६
पौत्रेयस्तु ततो ह्यग्निः स्मृतो यो हव्यवाहनः ।
शान्तिश्चाग्निः प्रचेतास्तु द्वितीयः सत्य उच्यते ॥२७
तथाग्निर्विश्वदेवस्तु ब्रह्मस्थाने स उच्यते ।
अवक्षुरच्छावाकस्तु भुवः स्थाने विभाव्यते ॥२८

हव्य सूर्यादि से असंसृष्ट वह शामित्र कर्म में प्रकट होता है। विश्वस्याथ समुद्र अग्नि वह ब्रह्म स्थान में कीर्त्तित किया जाता है ॥ २२ ॥ ऋतु धामा और सुज्योति अग्नि जो होता है वह औदुम्बरी में कहा जाता है। ब्रह्म ज्योति वसु नाम वाला वह ब्रह्म स्थान में कहा जाता है ॥ २३ ॥ अजैक पादुपस्थेय शालामुखीयक वह अनुद्देश्य भी अहिर्बुध्न्य वह अग्नि गृहपति कहा गया है ॥ २४ ॥ ये सब शंस्य के ही पुत्र हैं और द्विजों के द्वारा उपस्थान करने के योग्य कहे गये हैं। अब इसके अनन्तर विहरणीय आठ उसके पुत्र हैं उन्हें बतलाते है ॥ २५ ॥ ऋतु, प्रवहण, अग्नीध्र और वहाँ पर स्थित दूसरे धिष्णि जो यथा स्थान बिहरणीय होते हैं और सौत्य दिवस में सवन के क्रम से हुआ करते हैं ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् पौत्रेय जो हव्यवाहन कहा गया है, शान्ति और प्रचेता अग्नि द्वितीय सत्य कहा जाता है ॥ २७ ॥ तथा विश्वदेव अग्नि जो है वह तो ब्रह्म स्थान में कहा जाता है। अवक्षु और अच्छावाक तो भुवः स्थान में विभावित (प्रकट) होता है ॥ २८ ॥

उशीराग्नि सवीयँस्तु नैधीय सविभाव्यते ।
अष्टमस्तु व्यरत्तिस्तु मार्जालीय प्रकीर्त्तित ॥२९
धिष्ण्या विहरणीया ये सौम्येनान्येन चैव हि ।
तयोर्य. पावको नाम स चापा गर्भ उच्यते ॥३०
अग्नि सोऽवभृथो ज्ञेय सम्यक् प्राप्याप्सु हूयते ।
हृच्छयस्तत्सुतो ह्यग्निर्जठरे यो नृणा स्थित ॥३१
मन्युमान् जाठरस्याग्नेर्विद्वानग्नि सुत स्मृत ।
परस्परोच्छ्रित सोऽग्निर्भूताना ह विभुमहान् ॥३२
पुत्र सोऽग्नेमन्युमतो घोर सवर्त्तक स्मृत ।
पिबन्नप स वसति समुद्रे वडवामुखः ॥३३
समुद्र वासिन पुत्र. सहरक्षो विभाव्यते ।
सहरक्षसुत क्षामो गृहाणि स दहेन्नृणाम् ॥३४
क्रव्यादोऽग्नि सुतस्तस्य पुरुषानत्ति यो मृतान् ।
इत्येते पावकस्याग्ने पुत्रा ह्येव प्रकीर्तिता ॥३५

सवीर्य उशीराग्नि ता नैधीय सम्भावित होता है । जो आठवाँ व्यरत्ति है वह तो मार्जालीय कहा गया है ॥ २९ ॥ जो धिष्ण्य विहरणीय अन्य सौम्य के द्वारा होते है उनमें एक पावक नाम वाला है वह अपा गर्भ कहा जाया करता है ॥ ३० ॥ वह अवभृथ अग्नि जानना चाहिए जो भली भाँति प्राप्य जलो म हूयमान किया जाता है । उसका पुत्र हृच्छय अग्नि होता है जो मनुष्यों के जठर मे स्थित होता है ॥ ३१ ॥ जठर की रहने वाली जाठर अग्नि का विद्वान् मन्युमान् अग्नि सुत कहा गया है । परस्पर मे उच्छ्रित वह अग्नि भूतो का महान् विभु होता है ॥ ३२ ॥ वह मन्युमान् अग्नि का पुत्र घोर सम्वर्त्तक कहा गया है । वह जल का पान करता हुआ वडवामुख समुद्र में निवास किया करता है ॥ ३३ ॥ समुद्र मे निवास करने वाले का पुत्र सहरक्ष विभावित होता है । सहरक्ष का पुत्र क्षाम होता है वह मनुष्यो के घरों को जला दिया करता है ॥ ३४ ॥ क्रव्याद अग्नि उसका पुत्र है जो मरे हुए मनुष्यों के शव का भोजन किया करता है । इतने ये पावक अग्नि के पुत्र हैं जो कि इस प्रकार से कहे गये हैं ॥ ३५ ॥

ततः शुचेस्तु यैः सोरैर्गन्धर्वैरसुरावृतैः ।
मथितो यस्त्वरण्यां वै सोऽग्निरग्निः समिध्यते ॥३६
आयुर्नामाथ भगवान् पशौ यस्तु प्रणीयते ।
आयुषो महिमान् पुत्रः स शावान्नामतः सुतः ॥३७
पाकयज्ञेष्वभिमानी सोऽग्निस्तु सवनः स्मृतः ।
पुत्रश्च सवनस्याग्नेरद्भुतः स महायशाः ॥३८
विविचिस्त्वद्भुतस्यापि पुत्रोऽग्नेः स महान् स्मृतः ।
प्रायश्चित्तेऽथ भीमानां हुतं भुंक्ते हविः सदा ॥३९
विविचेस्तु सुतो ह्यर्को योऽग्निस्तस्य सुतास्त्विमे ।
अनीकवान् वासृजवांश्च रक्षोहा पितृकृत्तथा ।
सुरभिर्वसुरत्नादौ प्रविष्टो यश्च रुक्मवान् ॥४०
शुचेरग्नेः प्रजा ह्येषा वह्नयस्तु चतुर्दश ।
इत्येते वह्नयः प्रोक्ताः प्रणीयन्तेऽध्वरेषु ये ॥४१
आदिसर्गे ह्यतीता वै यामैः सह सुरोत्तमैः ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिनः ॥४२

इसके अनन्तर शुचि सौरि का जिन असुरावृत गन्धर्वों के द्वारा अरणी में मथन किया हुआ अग्नि है वह अग्नि समिद्ध किया जाता है ॥ ३६ ॥ वह भगवान् आयु नाम वाला होता है जो पशु में प्रणीत किया जाता है । आयु नामक अग्नि का पुत्र महिमान् पुत्र है वह शावान् नाम वाला पुत्र कहा गया है ॥ ३७ ॥ पाक यज्ञों में जो अभिमानी अग्नि है वह सवन कहा गया है । सवन अग्नि का पुत्र वह महान् यश वाला अद्भुत होता है ॥ ३८ ॥ अद्भुत अग्नि का भी पुत्र विविचि होता है जो कि महान् कहा गया है । वह भीमों के प्रायश्चित्त में सर्वदा हवन किये हुए हवि को खाया करता है ॥ ३९ ॥ विविचि अग्नि का पुत्र अर्क है उसके पुत्र ये होते हैं जिनके नाम अनीकवान्, वासृजवान्, रक्षोहा, पितृ कृत् और सुरभि हैं जो रुक्मवान् वसुरत्नादि में प्रविष्ट हो गया है ॥ ४० ॥ ये शुचि नामक अग्नि की प्रजा हैं और चौदह वह्नि हैं । ये वह्नि कहे गये हैं जो कि अध्वरों में प्रणीत होते हैं ॥ ४१ ॥ सुरोत्तम यामों के साथ

आदि सर्ग में अतीत हुए हैं जो स्वायम्भुव अन्तर में पहिले जो अग्नि थे वे अभिमानी थे ॥ ४२ ॥

एते विहरणीयास्तु चेतनाचेतनेष्विह ।
स्थानाभिमानिनो लोके प्रागासन् हव्यवाहना ॥४३
काम्यनैमित्तिकाजस्रेष्वेते वर्मस्ववस्थिता ।
पूर्वमन्वन्तरेऽतीते शुक्लैर्यामैं सुतैं सह ।
देवैर्महात्मभि पुण्य प्रथमस्यान्तरे मनो ॥४४
इत्येतानि मयोक्तानि स्थानानि स्थानिनश्च ह ।
तैरेव तु प्रसङ्ख्यातमतीतानागतेष्वपि ॥४५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षण जातवेदसाम् ।
सर्वे तपस्विनो ह्येते सर्वे ह्यवभृथा स्तथा ।
प्रजाना पतय सर्वे ज्योतिष्मन्तश्च ते स्मृता ॥४६
स्वारोचिषादिषु ज्ञेया सावर्ण्यन्तेषु सप्तसु ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैं ॥४७
वर्त्तन्ते वर्त्तमानैश्च देवैरिह सहाग्नय ।
अनागतैं सुरैं सार्द्धं वर्त्तन्तेऽनागताग्नय ॥४८
इत्येष विनयोऽग्नीना मया प्रोक्तो यथातथम् ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च पितॄणा वक्ष्यते तत ॥४९

ये सब यहाँ पर चेतन और अचेतनो मे विहरणीय अग्नि हैं। ससार में स्थानाभिमानी हव्यवाहन पहिल थे ॥ ४३ ॥ ये सब कामना वाले काम्य-कर्म तथा नैमित्तिक एव अजस्र कर्मों मे अवस्थित रहा करते हैं। पहिले अतीत मन्वन्तर मे शुक्ल याम पुत्रो के साथ तथा मनु के जो कि प्रथम था उसके अन्तर मे पुण्यशील महात्मा और देवा के साथ था ॥ ४४ ॥ ये सब मैंने स्थानियो के स्थान बतला दिये हैं उनके द्वारा ही अतीत और अनागतो मे भी प्रमख्यात हैं ॥ ४५ ॥ समस्त मन्वन्तरो म जातवेदो के लक्षण कहे गये हैं। य सब तपस्वी और सभी अवभृथ थे । ये सब प्रजाओ के पति और ज्योतिष्मान् कहे गये हैं ॥ ४६ ॥ स्वारोचिष आदि और सावर्ण्य अन्त वाले सातो मन्व तरो मे सब में

अनेक रूप और विविध प्रयोजनों के द्वारा जानने के योग्य होते हैं ॥ ४७ ॥ ये अग्नि वर्त्तमान देवों के साथ रहते हैं और अनागत सुरों के साथ अनागताग्नि होते हैं ॥ ४८ ॥ इतना यह मैंने अग्नियों का विनय यथातथ (ठीक-ठीक) कह दिया है। अब इसके आगे विस्तार के साथ तथा आनुपूर्वी के साथ पितृगणों का बतलाया जायगा ॥ ४९ ॥

॥ प्रकर्ण २९—देववंश वर्णन ॥

ब्रह्मणः सृजतः पुत्रान् पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
अम्भांसि जज्ञिरे तानि मनुष्यासुरदेवताः ॥१
पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे पितरोऽस्य वै ।
तेषान्निसर्गः प्रागुक्तो विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥२
देवासुरमनुष्याणां दृष्ट्वा देवोऽस्यभाषत ।
पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे वोपयक्षिनाः ॥३
मध्वादयः षड्तवस्तान् पितॄन परिचक्षते ।
ऋतवः पितरो देवा इत्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥४
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेष्वपि ।
एते स्वायम्भुवे पूर्वमुत्पन्ना ह्यन्तरे शुभे ॥५
अग्निष्वात्ताः स्मृता नाम्ना तथा वर्हिषदश्चवै ।
अयज्वानस्तथा तेषामासन् वै गृहमेधिनः ।
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्ते वै पितरोऽनाहिताग्न यः ॥६
यज्वानस्तेषु ये ह्यासन् पितरः सोमपीथिनः ।
स्मृता वर्हिषदस्ते वै पितरस्त्वग्निहोत्रिणः ।
ऋतव. पितरो देवाः शास्त्रेऽस्मिन्निश्चयो मतः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—पूर्व स्वायम्भुव अन्तर में पुत्रों के सृजन करने वाले ब्रह्मा जी के मनुष्य असुर और देवों ने उन जलों को उत्पन्न किया ॥ १ ॥ पितृ की भाँति मन्यमान इससे पितर उत्पन्न हुए। उनका निसर्ग तो इसके पूर्व में ही कह दिया गया है किन्तु अब इस समय उसका विस्तार कहा जाता है ॥२॥ देवासुर मनुष्यों का सर्ग देखकर देव बोले—पितृ की भाँति मन्यमान ने उपा-

क्षित उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥ मधु आदि ये छै ऋतुऐं हैं उनको पितृ कहते हैं। 'ऋतु पितर और देव है' इस प्रकार वाली यह वैदिकी श्रुति है ॥ ४ ॥ समस्त व्यतीत हुए तथा अनागत मन्वन्तरों में भी शुभ स्वायम्भुव मन्वन्तर में ये सब पहिले उत्पन्न हुये हैं ॥ ५ ॥ य नाम से अग्निष्वात्त तथा बर्हिषद कहे गये हैं। उनके अयज्वा गृहमेधी थे। जो अनादित अग्नि थे वे अग्निष्वात्त कहे गये हैं ॥ ६ ॥ उनमें जो यज्वा थे वे सोमपाथी पितर थे। वे अग्निहोत्री पितर बर्हिषद कहे गये हैं। ऋतु पितर और देव हैं, यह इस शास्त्र में निश्चित मत होता है ॥ ७ ॥

मधुमाधवौ रसौ ज्ञेयौ शुचिशुक्रौ तु शुष्मिणौ।
नभश्चैव नभस्यश्च जीवावेतावुदाहृतौ ॥८
इषश्चैव तथोर्जश्च सुधावन्तावुदाहृतौ।
सहश्चैव सहस्यश्च मन्युमन्तौ तु तौ स्मृतौ।
तपश्चैव तपस्यश्च घोरावेतौ तु शंशिरो ॥९
कालावस्थास्तु षट् तेषाम्मासाख्या वै व्यवस्थिता।
त इमे ऋतव प्रोक्ताश्चेतनाचेतनास्तु वै ॥१०
ऋतवो ब्रह्मण पुत्रा विज्ञेयास्तेऽभिमानिन।
मासार्द्धमासस्थानेषु स्थान च ऋतवोर्त्तवाः ॥११
स्थानाना व्यतिरेकेण ज्ञेया स्थानाभिमानिनः।
अहोरात्र च मासाश्च ऋतवश्चायनानि च ॥१२
संवत्सराश्च स्थानानि कालावस्थाभिमानिन।
निमेषाश्च कला काष्ठा मुहूर्त्ता वै दिनक्षपा ॥१३
एतेषु स्थानिनो ये तु कालावस्थास्ववस्थिता।
तन्मयत्वात्तदात्मानस्तान् वक्ष्यामि निबोधत ॥१४

मधु और माधव रस जानने के योग्य हैं। शुचि और शुक्र शुष्मी हैं। नभ और नभस्य ये दोनो जीव उदाहृत हुए हैं। ८ ॥ इष और ऊर्ज ये दोनो सुधावान् कहे गये हैं। सह और सहस्य ये दोनों मन्युमान् कहे गये हैं। तप और तपस्य ये दोनो घोर शिशिर कहे गये हैं ॥ ९ ॥ उनके काल की अवस्था छै होती हैं जो कि मासों के नाम से व्यवस्थित हैं। वे ही ये ऋतु, चेतन और अचे-

तन कही गई हैं ॥ १० ॥ ऋतुऐं अभिमानी ब्रह्मा के पुत्र हैं ऐसा जानना चाहिए। मासार्धमास स्थानों में ऋतुओं का स्थान है ॥ ११ ॥ स्थानाभिमानी के स्थानों के व्यतिरेक से ही अहोरात्र, मास, ऋतु और आयतन होते हैं ॥१२॥ कालावस्थाभिमानी के सम्वत्सर स्थान होते हैं। इसी प्रकार से निमेष, कला, काष्ठा, मुहूर्त्त, दिन और क्षपा स्थान होते है ॥ १३ ॥ इनमें जो स्थानी हैं वे सब कालावस्थाओं में अवस्थित हैं। तन्मय होने से वे तदात्मा होते हैं उनको अब कहता हूँ सो भलीभाँति समझ लो ॥ १४ ॥

पर्वण्यास्तिथयः सन्ध्याः पक्षा मासार्द्धसंज्ञिताः।
द्वावर्द्धमासौ मासस्तु द्वौ मासावृतुरुच्यते ॥१५
ऋतुत्रयं चायनं द्वे अयने दक्षिणोत्तरे।
संवत्सरः सुमेरुस्तु स्थानान्येतानि स्थानिनाम् ॥१६
ऋतवः सुमेरुपुत्रा विज्ञेया ह्यष्टधा तु षट्।
ऋतुपुत्राः स्मृताः पंच प्रजास्त्वार्त्तवलक्षणाः ॥१७
यस्माच्चैवार्त्तवेयास्तु जायन्ते स्थाणुजङ्गमाः।
आर्त्तवाः पितरश्चैव ऋतवश्च पितामहाः ॥१८
सुमेरुात्तु प्रसूयन्ते म्रियन्ते च प्रजातयः।
तस्मात् स्मृतः प्रजानां वै सुमेरुः प्रपितामह ॥१९
स्थानेषु स्थानिनो ह्येते स्थानात्मानः प्रकीर्तिताः।
तदाख्यास्तन्मयत्वाच्च तदात्मनाश्च ते स्मृताः ॥२०
प्रजापतिः स्मृतो यस्तु स तु संवत्सरो मतः।
संवत्सरः स्मृतो ह्यग्निः ऋतमित्युच्यते द्विजैः ॥२१

पर्वण्य तिथियाँ होती हैं। सन्ध्या पक्ष मास का अर्धभाग है, इस संज्ञा वाला होता है। दो अर्धमास ही एक मास होता है अर्थात् दो पक्षों का एक मास होता है। और इसी प्रकार से दो मासों का एक ऋतु होता है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है और वे दक्षिण तथा उत्तर इस नाम से दो अयन होते हैं। दो अयनों का एक सम्वत्सर होता है। स्थानियों के ये ही स्थान होते हैं ॥ १५–१६ ॥ ऋतु सुमेरु के पुत्र जानने चाहिए वे आठ प्रकार से छै होते हैं। ऋतुओं के पुत्र आर्त्तव लक्षण वाले पाँच होते हैं ॥ १७ ॥ क्योंकि वे

आर्त्तेय स्थाणु जङ्गम उत्पन्न होते हैं। आर्तव पितर हैं और ऋतु पितामह होते है ॥ १८ ॥ ये सब सुमेरु से प्रसूत होते हैं और प्रजाति करते हैं। इसी-लिये सुमेरु जो होता है वह प्रजाओं का प्रपितामह कहा गया है ॥ १९ ॥ ये स्थानो मे स्थानी और स्थानात्मा कहे गये हैं। तन्मय होने से उसी नाम से आख्यात और तदात्मा कहे गये हैं ॥ २० ॥ जो इनका प्रजापति कहा गया है वह सम्वत्सर माना गया है। सम्वत्सर अग्नि कहा गया है और द्विजो के द्वारा ऋत भी वह कहा जाता है ॥ २१ ॥

ऋतात्तु ऋतवो यस्माज्जज्ञिरे ऋतवस्तत ।
मासा षड्तवो ज्ञेयास्तेषा प चार्त्तवा सुता ॥२२
द्विपदाश्चतुष्पदाश्चैव पक्षिसंसर्पतामपि ।
स्थावराणा च प चाना पुष्प कालार्त्तव स्मृतम् ॥२३
ऋतुत्वमार्त्तवत्व च पितृत्व च प्रकीर्तितम् ।
इत्येते पितरो ज्ञेया ऋतवश्चार्त्तवाश्च ये ॥२४
सर्वभूतानि तेभ्योऽथ ऋतुकालाद्विजज्ञिरे ।
तस्मादेतेऽपि पितर आर्त्तवा इति न श्रुतम् ॥२५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु स्थिता कालाभिमानिन ।
स्थानाभिमानिनो ह्येते तिष्ठन्तीह प्रसयमात् ॥२६
अग्निष्वात्ता बर्हिषद पितरो द्विविधा' स्मृता ।
जज्ञाते च पितृभ्यस्तु द्वे कन्ये लोकविश्रुते ॥२७
मेना च धारिणी चैव याभ्या विश्वमिद धृतम् ।
पितरस्ते निजे कन्ये धर्मार्थं प्रददु शुभे ।
त उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चैव ते उभे ॥२८

ऋत इस नाम से ही उससे ऋत उत्पन्न हुए हैं। मास छे ऋतुऐं समयनी चाहिए और उनके पाँच आर्त्तव पुत्र होते हैं ॥ २२ ॥ द्विपद चतुष्पद पक्षी, ससर्पण करने वाले और स्थावर इन पाँचो को पुष्प कालार्त्तव कहा गया है ॥ २३ ॥ ऋतुत्व, आर्त्तवत्व और पितृत्व कहा गया है। ये सब ऋतु और जो आर्त्तव हैं वे सब पितर जानने के योग्य होते हैं ॥ २४ ॥ उनसे ही समस्त

प्राणी ऋतु काल से उत्पन्न हुए हैं। इसलिये ये आर्त्तव भी पितर हैं ऐसा हमने सुना है ॥ २५ ॥ समस्त मन्वन्तरों में ये कालाभिमानी तथा स्थानाभिमानी प्रसंयम से यहाँ रहा करते हैं ॥ २६ ॥ अग्निष्वात्त और बर्हिषद ऐसे ये दो प्रकार के पितर कहे गये हैं। इन पितरों से लोक प्रसिद्ध दो कन्याऐं उत्पन्न हुई थी ॥ २७ ॥ जिनका नाम मेना और धारिणी है। जिन दोनों के द्वारा ही यह समस्त विश्व धारण किया हुआ होता है। पितरों ने वे अपनी दोनों कन्याओं को धर्म के लिए दे दिया था। वे शुभ दोनों ही ब्रह्मवादिनी तथा योगिनी थीं ॥ २८ ।

अग्निष्वात्तास्तु ये प्रोक्तास्तेषां मेना तु मानसी ।
धारणी मानसी श्चैव कन्या बर्हिषदां स्मृता ॥२६
मेरोस्तु धारणीं नाम पत्न्यर्थ व्यसृजन् शुभाम् ।
पितरस्ते बर्हिषदः स्मृता ये सोमपीथिनः ॥३०
अग्निष्वात्तास्तु तां मेनां पत्नीं हिमवते ददुः ।
स्मृतास्ते वै तु दौहित्रास्तद्दौहित्रान् निबोधत ॥३१
यस्ते हिमवतः पत्नी मैनाकं सान्वसूयत ।
गङ्गा सरिद्वरा चैव पत्नी या लवणोदधेः ।
मैनाकस्यानुजः क्रौञ्चः क्रौञ्चद्वीपो यतः स्मृतः ॥३२
मेरोस्तु धारणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम् ।
मन्दरं सुषुवे पुत्रं तिस्रः कन्याश्च विश्रुताः ॥३३
वेला च नियतिश्चैव तृतीया चायतिः पुनः ।
धातुश्चैवायतिः पत्नी विधातुर्नियतिः स्मृता ॥३४
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वन्तयोर्वै कीर्तिताः प्रजाः ।
सुषुवे सागराद्वेला कन्यामेकामनिन्दिताम् ॥३५
सार्वाणिना च सामुद्री पत्नी प्राचीनबर्हिषः ।
सवर्णा साथ सामुद्री दशप्राचीनबर्हिषः ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥३६

जो अग्निष्वात्त कहे गये हैं उनकी मेना मानसी है और धारणी तथा

मानसी कन्या बर्हिपदों की है ॥ २९ ॥ मेरु के लिये धारणी नाम वाली शुभ कन्या को पत्नी बनाने के लिये देदी । वे बर्हिपद पिता जो थे वे सोमपीथि कहे गये हैं ॥ ३० ॥ अग्निष्वात्तों ने उस मेना कन्या को हिमवान् को पत्नी बनाने के लिये दे दिया था । वे दौहित्र कहलाये गये हैं अब उसके दौहित्रों को जान लो ॥ ३१ ॥ हिमाचल की पत्नी मेना ने मैनाक का प्रसव किया । सरिताओं मे श्रेष्ठ जो गङ्गा थी वह लवणोदधि की पत्नी थी । मैनाक का छोटा भाई क्रौञ्च था जिससे क्रौञ्चद्वीप कहा गया है ॥ ३२ ॥ मेरु पर्वत की पत्नी धारणी थी जिसने दिव्य ओषधियो से युक्त मन्दर गिरि को पुत्र रूप मे उत्पन्न किया और तीन प्रसिद्ध कन्यायें भी उत्पन्न की थीं ॥ ३ ॥ जिन तीनो कन्याओं के वेला, नियति और तीसरी आयति ये नाम थे । आयति धाता की पत्नी हुई, विधाता की पत्नी नियति कही गई है ॥ ३४ ॥ स्वायम्भुव अन्तर मे पूर्व मे उन दोनों की सन्तति कहदी गई है । वेला ने सागर से एक अनिन्दित अर्थात् बहुत अच्छी कन्या का प्रसव किया था । सावर्णि के द्वारा प्र चीन बर्हिष की सामुद्री पत्नी हुई । यह सवर्णा थी इसलिये सामुद्री थी । दश प्राचीन बर्हिष थे । वे सब धनुर्वेद के पारङ्गत प्रचेतस नाम वाले थे ॥ ३५-३६ ॥

॥ देववंश वर्णन ॥

त्रेतायुगमुखे पूर्वमासन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
देवा यामा इति ख्याता पूर्वं ये यज्ञसूनवः ॥१
अजिता ब्रह्मण पुत्रा जिता जिदजिताश्च ये ।
पुत्रा' स्वायम्भुवस्यैते शुक्रनाम्ना तु मानसा' ॥२
तृप्तिमन्तो गणा ह्येते देवानान्तु त्रय. स्मृता ।
छन्दोगास्तु त्रयस्त्रिशत्सर्वे स्वायम्भुवस्य ह ॥३
यदुर्ययातिर्द्वौ देवौ दीधय स्रवसो मति ।
विभासश्च कतुश्चैव प्रजातिर्विंशतो द्युति' ॥४
वायसो मङ्गलश्चैव यामा द्वादश कीर्तिताः ।
अभिमन्युरुग्रदृष्टि. समयोऽथ शुचिश्रवा. ।
केवलो विश्वरूपश्च सुपक्षो मधुपस्तथा ॥५

तुरीयोनिर्हृपुश्चैव युक्तो ग्रावाजिनस्तु ते ।
यमिनो विश्वदेवाद्यं यविष्ठोऽमृतवानपि ॥६
अजिरो विभुर्विभावश्च मृलिकोऽथ दिदेहकः ।
श्रुतिश्रृणो बृहच्छुक्रो देवा द्वादश कीर्तिताः ॥७

त्रेतायुग मुख में पहिले स्वायम्भुव अन्तर में जो देव थे वे यामा इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं और जो पहिले यज्ञ सूनु थे ॥ १ ॥ ब्रह्मा के अजित पुत्र थे और जित और जिदजिता जो पुत्र थे ये स्वायम्भुव के थे और शुक्र नाम से मानस पुत्र हुए थे ॥ २ ॥ ये तृप्तिमन्त देवों के तीन गण कहे गये हैं और छान्दोग तो संख्या में तैंतीस सब हैं जो स्वायम्भुव के होते हैं ॥ ३ ॥ यदु और ययाति दो देवता, दीधय, स्रवस, मति, विभास, ऋतु, प्रजापति, विशत, द्युति, वायस, मङ्गल ये बारह याम कहे गये हैं । अभिमन्यु, उग्र, दृष्टि, समय, शुचिश्रवा, केवल, विश्वरूप, सुपक्ष, मधुप, तुरीय, निर्हृपु, युक्त और ग्रावाजिन ये यामिन हैं । विश्वदेवाद्य, यविष्ठ, अमृतवान्, अजिर, विभु, विभाव, मृलिक, दिदेहक, श्रुति श्रृण, बृहच्छुक्र ये द्वादश देव कीर्तित हुए हैं ॥ ४-५-६-७ ॥

आसन् स्वायम्भुवस्यैते अन्तरे सोमपायिनः ।
त्विषिमन्तो गणा ह्येते वीर्यवन्तो महाबलाः ॥८
तेषामिन्द्रः सदा ह्यासीद्विश्वभुक् प्रथमो विभुः ।
असुरा ये तदा तेषामासन् दायादबान्धवाः ॥९
सुपर्णयक्षगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
अष्टौ ते पितृभिः सार्द्धं नासत्या देवयोनयः ॥१०
स्वायम्भुवेऽन्तरेऽतीताः प्रजास्त्वासां सहस्रशः ।
प्रभावरूपसम्पन्ना आयुषा च बलेन च ॥११
विस्तरादिह नोच्यन्ते मा प्रसङ्गो भवत्विह ।
स्वायम्भुवो निसर्गश्च विज्ञेयः साम्प्रतं मनुः ॥१२
अतीते वर्त्तमानेन दृष्टो वैवस्वतेन सः ।
प्रजाभिर्देवताभिश्च ऋषिभिः पितृभिः सह ॥१३
तेषां सप्तर्षयः पूर्वमासन्ये तान् निबोधत ।

भृग्वङ्गिरा मरीचिश्च पुलस्त्य. पुलह क्रतु ।।१४
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च सप्त स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
अग्नीध्रश्चातिवाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसु. ।।१५
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य. सवन' पुत्र एव च ।
मनोः स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः ।।१६

ये सब स्वायम्भुव अन्तर मे सोमपायी थे। ये त्विषिमान्, महान् बल वाले और वीर्यशील गण थे ।। ८ ।। उनमे इन्द्र सदा विश्व का भोग करने वाला प्रथम विभु था। जो असुर थे वे उनके दाय प्राप्त करने वाले बान्धव थे ।। ९ ।। सुवर्ण, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच उरग, राक्षस ये आठ पितृगण के साथ नासत्य देवयोनि है ।। १० ।। स्वायम्भुव अन्तर मे इनकी सहस्रों प्रजा व्यतीत हो गई जो कि प्रभाव, रूप आयु और बल मे सम्पन्न थे ।। ११ ।। यहाँ उनका पूर्ण विस्तार से वर्णन नही किया जाता है। यहाँ उसका प्रसङ्ग न होवे। स्वायम्भुव निसर्ग अब मनु जानना चाहिए ।। १२ ।। अतीत मे वर्त्तमान वैवस्वत ने उसे देखा था जो कि प्रजाओं के, देवताओ के, ऋषियो के और पितरो के साथ में था ।। १३ ।। उनमे सप्तर्षि पहले जो थे अब उनके विषय मे समझ लो भृगु, अङ्गिरा, मरीचि पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि और वसिष्ठ ये सात स्वायम्भुव अन्तर मे थे। अग्नीध्र अतिबाहु, मेधा मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान् द्युतिमान्, हव्य, सवन और पुत्र ये स्वायम्भुव मनु के महान् ओज वाले दश पुत्र थे ।। १४-१५-१६ ।

वायुप्रोक्ता महासत्त्वा राजानः प्रथमेऽन्तरे ।
सासुरन्तरसगन्धर्व सयक्षोरगराक्षसम् ।
सपिशाचमनुष्यश्च सुपर्णाप्सरसाङ्गणम् ।।१७
नो शक्यमानुपूर्व्येण वक्तु वर्षशतैरपि ।
वहुत्वान्नामधेयाना सङ्ख्या तेषा कुले तथा ।।१८
या वै व्रजकुलाख्यास्तु आसन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
कालेन वहुनातीता अयनाब्दयुगक्रमै. ।।१९
क एष भगवान् कालः सर्वभूतापहारकः ।

कस्य योनिः किमादिश्च किन्तत्वं स किमात्मजः ॥२०
किमस्य चक्षु का मूर्त्तिः के चास्यावयवाः स्मृताः ।
किंनामधेयः कोऽस्यात्मा एतत् प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥२१

प्रथम मन्वन्तर में वायु के द्वारा कहे हुए महान् सत्त्व वाले राजा थे । वह सुरों के सहित, गन्धर्वों से युक्त, यक्ष, उरग और राक्षसों के सहित, पिशाचों से युक्त तथा मनुष्यों के सहित और सुपर्ण तथा अप्सराओं के गण से युक्त था ॥ १७ ॥ बहुत, से नामों की संख्या उनके कुल में थी क्योंकि बहुत सारे नाम थे उन सब का आनुपूर्वी के साथ वर्णन करने का कार्य सौ वर्ष में भी पूर्ण नहीं किया जा सकता है ॥ १८ ॥ जो प्रजा-कुल के नाम वाले स्वायम्भुव मन्वन्तर में थे वे अयन वर्ष और युग के क्रम से बहुत अधिक काल में अतीत हो गये हैं ॥१६॥ ऋषियों ने कहा—यह भगवान् काल जो कि समस्त प्राणियों के अपहरण करने वाला है, कौन है ? किसकी यह योनि है ? इसके आदि में क्या था ? इस का वास्तविक तत्त्व क्या है ? और यह किस का आत्मज है ? ॥ २० ॥ इसके नेत्र क्या हैं ? इसकी मूर्त्ति कैसी है ? और इसके अन्य शरीरावयव कैसे कहे गये हैं ? इसका नाम क्या है ? इसकी आत्मा क्या है ? हम सब यह बात आप से पूछ रहे हैं, कृपा कर हमें आप यह सब बताइये ॥ २१ ॥

श्रूयतां कालसद्भावः श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
सूर्ययोनिर्निमेषादिः सङ्ख्याचक्षुः स उच्यते ॥२२
मूर्त्तिरस्य त्वहोरात्रे निमेषावयवश्च सः ।
संवत्सरशतं त्वस्य नाम चास्य कलात्मकम् ।
साम्प्रतानागतातीतकालात्मा स प्रजापतिः ॥२३
पञ्चानां प्रविभक्तानां कालावस्थां निबोधत ।
दिनार्द्धमासमासैस्तु ऋतुभिस्त्वयनैस्तथा ॥२४
संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ॥२५
वत्सरः पञ्चमस्तेषां कालः स युगसंज्ञितः ।
तेषान्तु तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत ॥२६

श्रीसूतजी ने कहा— अब आप सब लोग इस काल का सद्भाव मुझसे श्रवण करें और उसको सुनकर हृदय में अवधारण भी करें। इसकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान सूर्य हैं। इसकी सन्ध्या चक्षु निमेष आदि होते हैं जोकि कहा जाता है ॥२२॥ अहोरात्र अर्थात् दिन और रात्र ही इसकी मूर्त्ति है और निमेष ही इसकी मूर्त्ति के अवयव होते हैं। कलात्मक सौ सम्वत्सर ही इसका नाम होता है। वर्त्तमान भूत और भविष्य के स्वरूप वाला वह प्रजापति है ॥२३॥ प्रकृष्ट रूप से विभज्य पाँचों को ही काल की अवस्था जान लो जोकि पाँच विभाग दिन अर्धमास (पक्ष) ऋतु-मास और अयन ये होते हैं इन्हीं पाँचों का विभाग है और उसी से काल की अवस्था होती है ॥२४॥ सम्वत्सर प्रथम होता है—दूसरा परिवत्सर तृतीय इद्वत्सर और चौथा अनुवत्सर तथा पञ्चम वत्सर होता है। उनका जो काल होता है वही युग इस संज्ञा से युक्त होता है। अब उनका मैं तत्त्व बतलाता हूँ आप लोग उसे भली भाँति समझ लेवें ॥२५॥२६॥

ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः ।
आदित्यो यस्त्वसौ सारः कालाग्निः परिवत्सरः ॥२७
शुक्लकृष्णा गतिश्चापि अपां सारमयः खगः ।
स इडावत्सरः सोमः पुराणे निश्चलो मतः ॥२८
यश्चायं तपते लोकांस्तनुभिः सप्तसप्तभिः ।
आशुकर्त्ता च लोकस्य स वायुरिति वत्सरः ॥२९
अहङ्कारात् रुदन् रुद्रः सद्भूतो ब्रह्मणश्च यः ।
स रुद्रो वत्सरस्तेषां विज्ञेयो नीललोहितः ।
तेषां हि तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत ॥३०
अङ्गप्रत्यङ्गसंयोगात् कालात्मा प्रपितामहः ।
ऋक्साम यजुषां योनिः पञ्चानां पतिरीश्वरः ॥३१
सोऽग्निर्यजुश्च सोमश्च स भूतः स प्रजापतिः ।
प्रोक्तः संवत्सरश्चेति सूर्यो योऽग्निर्मनीषिभिः ॥३२
यस्मात् कालविभागानां मासर्त्वयनयोरपि ।

ग्रहनक्षत्रशीतोष्णवर्षायुः कर्मणां तथा ।
योजितः प्रविभागानां दिवसानाञ्च भास्करः ॥३३

जो ऋतु अग्नि कहा गया है वह सम्वत्सर माना गया है। यह आदित्य का सार है, कालाग्नि परिवत्सर होता है ॥२७॥ शुक्ल कृष्ण गति है और जलों का सारमय खग है। वह इड़ावत्सर सोम है जो कि पुराण में निश्चय किया गया है ॥२८॥ जो यह सप्त-सप्त तनुओं से लोकों को तपता है वह लोक का आशुकर्त्ता वायु है और वत्सर होता है ॥२९॥ अहङ्कार से रुदन करता हुआ रुद्र ब्रह्म से सद्भूत हुआ। वह रुद्र उनका नीललोहित वत्सर उत्पन्न हुआ। अब मैं उनका कहा गया तत्त्व बतलाता हूँ जिसे आप समझ लेवें ॥३०॥ अङ्गों और प्रत्यङ्गों के संयोग से कालात्मा अर्थात् काल के स्वरूप वाला प्रपितामह है जो कि ऋक्-साम और यजु का जन्मस्थान है और पाँचों का पति ईश्वर है ॥३१॥ वह अग्नि यजु और सोम है वह प्रजापति है। जो सम्वत्सर कहा गया है और मनीषियों के द्वारा जो अग्नि सूर्य कहा गया है ॥३२॥ क्योंकि काल के विभागों का, मास, ऋतु और अयन का तथा ग्रह, नक्षत्र, शीत, उष्ण वर्षा, आयु, कर्मों का और प्रविभाग दिवसों का भास्कर ही योजित है ॥३३॥

वैकारिकः प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्रः प्रजापतिः ।
एकेनैकोऽथ दिवसो मासोऽयर्तुः पितामहः ॥३४
आदित्यः सविता भानुर्जीवनो ब्रह्मसत्कृतः ।
प्रभवश्चात्य यश्चैव भूतानां तेन भास्करः ॥३५
ताराभिमानी विज्ञेयस्तृतीयः परिवत्सरः ।
सोमः सर्वौषधिपतिर्यस्मात्स प्रपितामहः ॥३६
आजीवः सर्वभूतानां योगक्षेमकृदीश्वरः ।
अवेक्षमाणः सततं बिभर्ति जगदंशुभिः ॥३७
तिथीनां पर्वसन्धीनां पूर्णिमादर्शयोरपि ।
योनिर्निशा करो यश्च योऽमृतात्मा प्रजापतिः ॥३८
तस्मात् स पितृमान् सोम ऋग्यजुश्छन्दआत्मकः ।

प्राणापानसमानाद्यैर्व्यानोदानात्मकैरपि ॥३९
कर्मभि प्राणिना लोके सर्वचेष्टाप्रवर्तक ।
प्राणापानसमानाना वायूनाञ्च प्रवर्तक ॥४०

वैकारिक–प्रसन्न अत्मा वाला, ब्रह्मा पुत्र प्रजापति हैं । एक दिन, माम और ऋतु पितामह वह ॥३४॥ आदित्य, सविता भानु, जीवन और ब्रह्मा के द्वारा सत्कार प्राप्त होने वाला, प्रभव और प्राणियों का अप्यय वह होता इसीसे भास्कर कहा जाता है ॥३५॥ ताराभिमानी तीसरा परिवत्सर जानना चाहिए । सोम समस्त ओषधियों का स्वामी होता है इसी कारण से वह प्रपितामह होता है या कहा गया है ॥३६॥ यह समस्त जीवों का आजीव है योग क्षेम के करने वाला और ईश्वर है । सर्वदा निरीक्षण करता हुआ इस जगत् का किरणों के द्वारा भरण किया करता है ॥३७॥ तिथियों का तथा पर्व सन्धियों का एव पूर्णिमा और दर्शक का भी जो निशाकर योनि होता है और जो अमृतात्मा एव प्रजापति है ॥३८॥ उससे वह पितृमान ऋक् यजु और छन्द स्वरूप वाला सोम प्राणापान समानादि तथा व्यान और उदानात्मक कर्मों के के द्वारा लोक में प्राणियों की समस्त चेष्टाओं का प्रवर्त्तक होता है और प्राण अपान एव समान वायुओं का प्रवर्त्तक होता है ॥३९॥४०॥

पञ्चानाञ्चेन्द्रियमनोबुद्धिस्मृति जलात्मनाम् ।
समानकालकरण क्रिया. सम्पादयन्निव ॥४१
सर्वात्मा सर्वलोकानामावहः प्रवहादिभि ।
विधाता सर्वभूताना क्षमी नित्य प्रभञ्जन ॥४२
योनिरग्नेरपा भूमे रवेश्चन्द्रमसश्च य ।
वायु. प्रजापतिर्भूत लोकात्मा प्रपितामह ॥४३
प्रजापति मुखैर्देवैः सम्यगिष्टफलार्थिभिः ।
त्रिभिरेव कपालैस्तु अम्बकैरोषधिक्षये ।
इज्यते भगवान् यस्मात्तस्मात्त्र्यम्बक उच्यते ॥४४
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगती चैव या स्मृता ।
त्र्यम्बका नामत प्रोक्ता योनय सवनस्य ताः ॥४५

ताभिरेकत्वभूताभिस्त्रिविधाभिः स्ववीर्यतः ।
त्रिसाधनपुरोडाशस्त्रि कपालः स वै स्मृतः ।।४६
इत्येतत्पञ्चवर्षं हि युगं प्रोक्तं मनीषिभि, ।
यच्चैव पञ्चधात्मा वै प्रोक्तः संवत्सरो द्विजैः ।
सैकं षट्कं विजज्ञेऽथ मध्वादीनृतवः किल ।।४७

पाँचों इन्द्रिय, मन, बुद्धि, स्मृति और जलात्मकों का समान काल करने वाला तथा क्रियाओं को मानों सम्पादन करता हुआ- सर्वात्मा और प्रवहादि के द्वारा समस्त लोकों का आवहन करने वाला तथा समस्त भूतों का विधाता और क्षमी प्रभञ्जन नित्य होता है ।।४१।।४२।। जो अग्नि, जल, भूमि, सूर्य और चन्द्रमा का जन्म स्थान योनि है वह वायु भूतों का प्रजापति, लोकात्मा और प्रपितामह है ।।४३।। भली भाँति इष्ट फलों के अर्थी प्रजापति प्रधान देवों के द्वारा तथा तीनों ही कपालों के द्वारा और ओषधि क्षयमें अम्बकों के द्वारा भगवान् का यजन किया जाता है इसी कारण से वह त्र्यम्बक इस नाम से कहे जाते हैं ।।४४।। गायत्री, त्रिष्टुप् जगती जो कही गई हैं और नाम से त्र्यम्बका कही गई है वे सवन की योनि हैं ।।४६। एकत्वभूत उन तीनों प्रकार वाली से अपने वीर्य से तीन साधन के पुरोडाश वाला है इसी लिये वह त्रिकपाल कहा गया है ।।४८।। यह इतना पाँच वर्ष का मनीषियों ने युग कहा है और यही पञ्च प्रकार के स्वरूप वाला द्विजों के द्वारा सम्वत्सर कहा गया है । वह एक षट्क पैदा किया जोकि मधु आदि ऋतुऐं हैं ।।४७।।

ऋतुपुत्रार्त्तवः पञ्च इति सर्गः समासतः ।
इत्येष पवमानो वै प्राणिनां जीवितानि तु ।।४८
नदी वेगसमायुक्तं कालो धावति संहरन् ।
अहोरात्रकरस्तस्मात् स वायुरभवत्पुनः ।।४९
एते प्रजानां पतयः प्रधानाः सर्वदेहिनाम् ।
पितरः सर्वलोकानां लोकात्मानः प्रकीर्तिताः ।।५०
ध्यायतो ब्रह्मणो वक्त्रादुद्यन् समभवद्भवः ।
ऋषिर्विप्रो महादेवो भूतात्मा प्रपितामहः ।।५१

ईश्वर. सर्व भूताना प्रणवायोपपद्यते ।
आत्मवेशेन भूतानामङ्गप्रत्यङ्गसम्भव ॥५२
अग्निः सवत्सर सूर्यश्चन्द्रमा वायुरेव च ।
युगाभिमानी कालात्मा नित्य सक्षेपकृद्विभु ।
उन्मादकोऽनुग्रहकृत्तस्त इद्वत्सर उच्यते ॥५३
रुद्राविष्टो भगवता जगत्यस्मिन् स्वतेजसा ।
आश्रयाश्रयसयोगात्तानुभिर्नाम भिस्तथा ॥५४

ऋतुओ के पुत्र आर्त्तव पाँच हैं । सक्षेप से यही सर्ग होता है । यह प्राणियो के जीवनो का पवमान होता है ॥४८॥ नदी के वेग के समान ही काल सबका सहार करता हुआ दौडा करता है, अहोरात्र करने वाला है इससे वह फिर वायु हो गया था ॥४६॥ ये सब प्रजाओं प्रधान पति हैं, और समस्त देहधारियों के पति है और समस्त लोको के पितर है अतएव वे लोकात्मा प्रतिष्ठित हुए हैं ॥५२॥ ध्यान मे स्थित ब्रह्माजी के मुख से भव उत्पन्न हुए थे जो कि ऋषि, विप्र, महादेव भूतात्मा और प्रपितामह हैं । ॥५०॥ समस्त प्राणियो के ईश्वर प्रणव के लिये उपपन्न होते हैं । आत्म वेश से भूतो के अङ्ग प्रत्यङ्ग के सम्भव होते हैं ॥५२॥ अग्नि सम्वत्सर, सूर्य, चन्द्रमा और वायु ये युगाभिमानी काल के स्वरूप वाले विभु और नित्य ही सक्षेप करने वाले होते हैं उन्मादक और अनुग्रह करने वाले हैं वह इद्वत्सर कहे जाते हैं । ५३॥ आश्रयाश्रय के सयोग से तनुओ से तथा नामो के द्वारा इह जगती तल में भगवान के द्वारा अपने तेज रुद्राविष्ट होते हैं ॥५४॥

ततस्तस्य तु वीर्येण लोकानुग्रहकारकम् ।
द्वितीय भद्रसयोग सन्ततस्यैककारकम् ॥५५
देवत्वञ्च पितृत्वञ्च कालत्वञ्चास्य यत्परम् ।
तस्माद्ध सर्वथा भद्रस्तद्वद्‌भिरभिपूज्यते ॥५६
पति. पतीना भगवान् प्रजेशाना प्रजापति. ।
भवन सर्वभूताना सर्गेषा नीललोहित. ।
ओषधी प्रतिसन्धत्ते रुद्र क्षीणा पुन पुन ॥५७

इत्येषां यदपत्यं वै न तच्छक्यं प्रमाणतः ।
बहुत्वात् परिसङ्ख्यातुं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥५८
इमं वंशं प्रजेशानां महतां पुण्यकर्मणाम् ।
कीर्त्तयन् स्थिरकीर्त्तीनां महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥५९

इसके अनन्तर उसके वीर्य से लोकों पर अनुग्रह करने वाला सन्तत का एक करने वाला द्वितीय भद्र संयोग होता है ॥ ५५ ॥ देवत्व, पितृत्व और इसका कालत्व यत्पर है उससे सर्वथा भद्र उसी के भाँति विद्वानों के द्वारा अभिपूजित होते हैं ॥ ५६ ॥ भगवान् पतियों के भी पति और प्रजा के ईशों के भी प्रजापति तथा समस्त प्राणियों जन्म स्थान एवं नील लोहित हैं। रुद्र पुनः पुनः क्षीण हुई ओषधियों का सन्धान करते हैं ॥ ५७ ॥ इनकी जो सन्तति है वह प्रमाण के स्वरूप में कही नहीं जा सकती है। बहुत होने के कारण उसकी परिसंख्या भी नहीं की जा सकती है क्योंकि पुत्र और पौत्रों का कुछ भी अन्त नहीं है ॥ ५८ ॥ महान् एवं पुण्य कर्म वाले इन प्रजेशों का जो यह वंश है जिनकी कि कीर्त्ति स्थिर है उसका कीर्त्तन करते हुए महती सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥

॥ प्रकर्ण ३०—युगधर्म निरूपण ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रणवस्य विनिश्चयम् ।
ओङ्कारमक्षरं ब्रह्म त्रिवर्णश्चादितः स्मृतम् ॥१
यो यो यस्य यथा वर्णो विहितो देवतास्तथा ।
ऋचो यजूंषि सामानि वायुरग्निस्तथा जलम् ॥२
तस्मात्तु अक्षरादेव पुनरन्ये प्रजज्ञिरे ।
चतुर्दश महात्मानो देवानां ये तु दैवताः ॥३
तेषु सर्वगतश्चैव सर्वगः सर्वयोगवित् ।
अनुग्रहाय लोकानामादिमध्यान्त उच्यते ॥४
सप्तर्षयस्तथेन्द्रा ये देवाश्च पितृभिः सह ।
अक्षरान्निःसृताः सर्वे देवदेवान्महेश्वरात् ॥५
इहामुत्र हितार्थाय वदन्ति परमं पदम् ।

पूर्वमेव मयोक्तस्ते कालस्तु युगसंज्ञितः ॥६
कृत त्रेता द्वापरश्च युगादि कलिना सह ।
परिवर्त्तमानैस्तैरेव भ्रममाणेषु चक्रवत् ॥७
देवतास्तु तदोद्विग्ना कालस्य वशमागता ।
न शक्नुवन्ति तन्मान सस्थापयितुमात्मना ॥८

श्री वायुदेव ने कहा—इसके आगे अब हम प्रणव का विनिश्चय कहेंगे। ओङ्कार जो अक्षर ब्रह्म है और यह आदि से तीन वर्ण वाला कहा गया है ॥१॥ जो-जो जिसका जैसा भी वर्ण और देवता विहित किया गया है वैसा ही ऋक्, यजु साम, वायु, अग्नि और जल होता है ॥ २ ॥ उस अक्षर में ही फिर अन्य उत्पन्न हुए हैं। वे चौदह महान् आत्मा वाले हैं जो कि देवों के भी देवता होते हैं ॥ ३ ॥ उनमें सर्वगत, सवग और सर्वयोग का वेत्ता लोकों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये आदि, मध्य तथा अन्त कहा जाता है ॥ ४ ॥ महर्षि, इन्द्र और जो देव हैं वे पितरों के साथ सब अक्षर देवों के देव महेश्वर से ही नि सृत हुए हैं ॥ ५ ॥ यहाँ और परलोक में हितार्थ के लिये परम पद कहते हैं। मैंने युग की सज्ञा से युक्त काल पहिले ही बतला दिया है ॥ ६ ॥ कृतयुग, त्रेता, द्वापर युगादि इस कलियुग के साथ परिवर्त्तमान उनके द्वारा ही चक्र की भाँति भ्रममाण होने पर तब देवगण अत्यन्त उद्विग्न होकर इस काल के वश में आ गये और अपने से उस मान की सस्थापना न कर सके हैं ॥ ७-८ ॥

तदा ते वाग्यता भूत्वा आदौ मन्वन्तरस्य वै ।
ऋषयश्चैव देवाश्च इन्द्रश्चैव महातपा ॥९
समाधाय मनस्तीव्र सहस्र परिवत्सरान् ।
प्रपन्नास्ते महादेव भीता कालस्य वै तदा ॥१०
अय हि कालो देवेशश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुख ।
कोऽस्य विद्यान्महादेव अगाधस्य महेश्वर ॥११
अथ दृष्ट्वा महादेवस्त तु कालञ्चतुर्मुखम् ।
न भेतव्यमिति प्राह वो व काम प्रदीयताम् ॥१२
सत्कारिष्याम्यह सर्वं न वृथाय परिश्रम ।

पूर्वमेव मयोक्तस्ते कालस्तु युगसंज्ञित. ॥६
कृत त्रेता द्वापरश्च युगादि कलिना सह ।
परिवर्त्तमानैस्तैरेव भ्रममाणेषु चक्रवत् ॥७
देवतास्तु तदोद्विग्ना कालस्य वशमागता. ।
न शक्नुवन्ति तन्मान सस्थापयितुमात्मना ॥८

श्री वायुदेव ने कहा—इसके आगे अब हम प्रणव का विनिश्चय कहेंगे। ओङ्कार जो अक्षर ब्रह्म है और यह आदि से तीन वर्ण वाला कहा गया है ॥१॥ जो-जो जिसका जैसा भी वर्ण और देवता विहित किया गया है वैसा ही ऋक्, यजु साम, वायु, अग्नि और जल होता है ॥ २ ॥ उस अक्षर मे ही फिर अन्य उत्पन्न हुए हैं। वे चौदह महान् आत्मा वाले हैं जो कि देवो के भी देवता होते हैं ॥ ३ ॥ उनमे सर्वगत, सवग और सर्वयोग का वेत्ता लोकों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये आदि, मध्य तथा अन्त कहा जाता है ॥ ४ ॥ महर्षि, इन्द्र और जो देव हैं वे पितरो के साथ सब अक्षर देवो के देव महेश्वर से ही नि सृत हुए हैं ॥ ५ ॥ यहाँ और परलोक मे हितार्थ के लिये परम पद कहते हैं। मैंने युग की सज्ञा से युक्त काल पहिले ही बतला दिया है ॥ ६ ॥ कृतयुग, त्रेता द्वापर युगादि इन कलियुग के साथ परिवर्त्तमान उनके द्वारा ही चक्र की भाँति भ्रममाण होने पर तब देवगण अत्यन्त उद्विग्न होकर इस काल के वश मे आ गये और अपने से उस मान की सस्थापना न कर सके हैं ॥ ७-८ ॥

तदा ते याग्यता भूत्वा आदौ मन्वन्तरस्य वै ।
ऋषयश्चैव देवाश्च इन्द्रश्चैव महातपा ॥९
समाधाय मनस्तीव्र सहस्र परिवत्सरान् ।
प्रपन्नास्ते महादेव भीताः कालस्य वै तदा ॥१०
अय हि कालो देवेशश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुख ।
कोऽस्य विद्यान्महादेव अगाधस्य महेश्वर ॥११
अथ दृष्ट्वा महादेवस्त तु कालञ्चतुर्मुखम् ।
न भेतव्यमिति प्राह को व काम प्रदीयताम् ॥१२
तर्करिष्याम्यह ह्येवं न वृथाय परिश्रम ।

उवाच देवो भगवान् स्वयङ्कालः सुदुर्जयः ॥१३
यदेतस्य मुखं श्वेतं चतुर्जिह्वं हि लक्ष्यते ।
एतत् कृतयुगं नाम तस्य कालस्य वै मुखम् ।
असौ देवः सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा वैवस्वतो मुख. ॥१४

उस समय वे वाग्यत अर्थात् मौन होकर मन्वन्तर के आदि में देवता, ऋषिगण और महान् तप वाला इन्द्र सहस्रों परिवत्सर पर्यन्त तीव्र मन को समाहित करके तब काल से डरे हुए महादेव के शरण में प्राप्त हुए ॥ ९-१० ॥ यह चार मूर्त्ति तथा चार मुखों वाला देवों का ईश काल था । हे महेश्वर ! हे महादेव ! अगाध इसको कौन जानता है ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर उस चार मुखों वाले काल को महादेव जी ने देखकर कहा—डरो मत । आपका क्या काम है मुझे बताओ । १२ ॥ सुदुर्जय स्वयं भगवान् कालदेव ने कहा—वह सब मैं तुम्हारा कार्य करूँगा । यह तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ नहीं होगा ॥ १३ ॥ जो यह इसका श्वेत मुख जो कि चार जिह्वा वाला लक्षित होता है यह कृतयुग नाम वाला उस काल का मुख है । यह सुरों में श्रेष्ठ ब्रह्मा देव है और वैवस्वत मुख है ॥ १४ ॥

यदेतद्रक्तवर्णाभं तृतीयं वः स्मृतं मया ।
त्रिजिह्वं लेलिहानं तु एतत् त्रेतायुगं द्विजाः ॥१५
अत्र यज्ञप्रवृत्तिस्तु जायते हि महेश्वरात् ।
ततोऽत्र इज्यते यज्ञस्तिस्रो जिह्वाख्ययोऽग्नयः ।
इष्ट्वा चैवाग्नयो विप्राः कालजिह्वा प्रवर्त्तते ॥१६
यदेतद्वै मुखं भीमं द्विजिह्वं रक्तपिङ्गलम् ।
द्विपादोऽत्र भविष्यामि द्वापरं नाम तद्युगम् ॥१७
यदेतत् कृष्णवर्णाभं तुरीयं रक्तलोचनम् ।
एकजिह्वं पृथु श्यामं लेलिहानं पुनः पुनः ॥१८
ततः कलियुगं घोरं सर्वलोकभयङ्करम् ।
कल्पस्य तु मुखं ह्येतच्चतुर्थं नाम भीषणम् ॥१९
न मुखं नापि निर्वाणं तस्मिन् भवति वै युगे ।

उवाच देवो भगवान् स्वयङ्कालः सुदुर्जयः ॥१३
यदेतस्य मुखं श्वेतं चतुर्जिह्वं हि लक्ष्यते ।
एतत् कृतयुगं नाम तस्य कालस्य वै मुखम् ।
असौ देवः सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा वैवस्वतो मुखः ॥१४

उस समय वे वाग्यत अर्थात् मौन होकर मन्वन्तर के आदि में देवता, ऋषिगण और महान् तप वाला इन्द्र सहस्रों परिवत्सर पर्यन्त तीव्र मन को समाहित करके तब काल से डरे हुए महादेव के शरण में प्राप्त हुए ॥ ९-१० ॥ यह चार मूर्ति तथा चार मुखों वाला देवों का ईश काल था । हे महेश्वर ! हे महादेव ! अगाध इसको कौन जानता है ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर उस चार मुखों वाले काल को महादेव जी ने देखकर कहा—डरो मत । आपका क्या काम है मुझे बताओ । १२ ॥ सुदुर्जय स्वयं भगवान् कालदेव ने कहा—वह सब मैं तुम्हारा करूँगा । यह तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ नहीं होगा ॥ १३ ॥ जो यह इसका श्वेत मुख जो कि चार जिह्वा वाला लक्षित होता है यह कृतयुग नाम वाला उस काल का मुख है । यह सुरों में श्रेष्ठ ब्रह्मा देव है और वैवस्वत मुख है ॥ १४ ॥

यदेतद्रक्तवर्णाभं तृतीयं वः स्मृतं मया ।
त्रिजिह्वं लेलिहानं तु एतत् त्रेतायुगं द्विजाः ॥१५
अत्र यज्ञप्रवृत्तिस्तु जायते हि महेश्वरात् ।
ततोऽत्र इज्यते यज्ञस्तिस्रो जिह्वास्त्रयोऽग्नयः ।
इष्ट्वा चैवाग्नयो विप्राः कालजिह्वा प्रवर्त्तते ॥१६
यदेतद्वै मुखं भीमं द्विजिह्वं रक्तपिङ्गलम् ।
द्विपादोऽत्र भविष्यामि द्वापरं नाम तद्युगम् ॥१७
यदेतत् कृष्णवर्णाभं तुरीयं रक्तलोचनम् ।
एकजिह्वं पृथु श्यामं लेलिहानं पुनः पुनः ॥१८
ततः कलियुगं घोरं सर्वलोकभयङ्करम् ।
कल्पस्य तु मुखं ह्येतच्चतुर्थं नाम भीषणम् ॥१९
न मुखं नापि निर्वाणं तस्मिन् भवति वै युगे ।

कालग्रस्ता प्रजा चापि युगे तस्मिन् भविष्यति ॥२०
ब्रह्मा कृतयुगे पूज्यस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते ।
द्वापरे पूज्यते विष्णुरहम्पूज्यश्चतुर्ष्वपि ॥२१

तो यह रक्त वर्ण की आभा वाला मेरे द्वारा आपका तृतीय कहा गया है तीन जीभ वाला इसको चाटता हुआ हे द्विजो ! वह त्रेतायुग है ॥ १५ ॥ यहाँ पर भगवान् महेश्वर से यज्ञ करने म प्रवृत्ति होती है। तब से यहाँ यज्ञ का याजन किया जाता है। तीन जीभ और तीन ही अग्नि हैं। हे द्विजो ! अग्नि यजन करके काल जिह्वा की प्रवृत्ति होती है ॥ १६ ॥ यह जो दो जीभ वाला रक्त एव पिङ्गल वर्ण वाला भयानक मुख है यहाँ दो पाद वाला हो जाऊँगा। यह द्वापर नाम वाला युग है ॥ १७ ॥ यह जो चतुर्थ कृष्ण वर्ण की आभा वाला रक्त लोचन एक जीभ वाला अधिक दयाम को बार-बार चाटने वाला है वह घोर समस्त लोकों को भयङ्कर कलियुग है । यह चौथा कल्प का भीषण मुख है ॥ १८ ॥ इस युग म न तो कोई सुख ही होता है और न निर्वाण (मोक्ष) ही होता है। इस युग मे प्रजा भी सब काल से ग्रस्त रहा करेगी ॥ २० ॥ कृतयुग मे ब्रह्मा पूजा के योग्य होते हैं। त्रेता मे यज्ञ कहा जाता है। द्वापर में विष्णु पूजे जाते हैं और मैं चारों म पूज्य होता हूँ ॥ २१ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च यज्ञश्च कालस्यैव कलात्रयः ।
सर्वेष्वेव हि कालेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः ॥२२
अह जनो जनयिता (वः) कालः कालप्रवर्त्तक ।
युगकर्ता तथा चैव पर परपरायण ॥२३
तस्मात् कलियुग प्राप्य लोकाना हितकारणात् ।
अभयार्थश्च देवानामुभयोर्लोकयोरपि ॥२४
तदा भव्यश्च पूज्यश्च भविष्यामि सुरोत्तमाः ।
तस्मादभय न कार्य च कलि प्राप्य महौजसः ॥२५
एवमुक्तास्तत सर्वा देवता ऋषिभि. सह ।
प्रणम्य शिरसा देव पुनरूचुर्जगत्पतिम् ॥२६
महातेजा महाबाहो महावीर्यो महाद्युति ।

भीषणः सर्वभूतानां कथं कालश्चतुर्मुखः ॥२७
एष कालश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्मुखः ।
लोकसंरक्षणार्थाय अतिक्रामति सर्वशः ॥२८

ब्रह्मा, विष्णु और यज्ञ ये तीनों काल की ही कलाऐं हैं। समस्त कालों में चतुर्मूर्त्ति महेश्वर होते हैं ॥ २२ ॥ मैं जन हूँ हमारा जनन करने वाला काल है जो काल का प्रवर्त्तक होता है तथा वह युग का करने वाला और पर परायण होता है ॥ २३ ॥ इससे लोकों के हित कारण से कलियुग को प्राप्त करके दोनों लोकों में देवों का अभयार्थ हूँ ॥ २४ ॥ हे सुरोत्तमो ! तब उस समय मैं भव्य और पूज्य हो जाऊँगा। इससे महान् ओज वालो ! कलियुग को पाकर कुछ भी भय नहीं करना चाहिए ॥ २५ ॥ इस प्रकार से ऋषियों के साथ समस्त देव कहे गये और उन्होंने शिर से देव को प्रणाम करके फिर वे जगत् के पति से बोले ॥ २६ ॥ देवर्षियों ने कहा—महान् तेज वाला, महान् काय वाला और महान् वीर्य वाला तथा महाद्युति से युक्त समस्त प्राणियों के लिये भीषण काल चार मुखों वाला कैसे हुआ है ॥ २७ ॥ श्री महादेव जी ने कहा—यह काल चार मूर्तियों वाला, चार दाढ़ों वाला और चार मुख वाला लोकों के संरक्षण के लिये सभी ओर से अतिक्रमण करता है ॥ २८ ॥

नासाध्यं विद्यते चास्य सर्वस्मिन् सचराचरे ।
कालः सृजति भूतानि पुनः संहरति क्रमात् ॥२९
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे ।
तस्मात्तु सर्वभूतानि कालः कलयते सदा ॥३०
विक्रमस्य पदान्यस्य पूर्वोक्तान्येकसप्ततिः ।
तानि मन्वन्तराणीह परिवृत्तायुगक्रमात् ॥३१
एकं पदं परिक्रम्य पदानामेकसप्ततिः ।
यदा कालः प्रक्रमते तदा मन्वन्तरक्षयः ॥३२
एवमुक्त्वा तु भगवान् देवर्षिपितृदानवान् ।
नमस्कृतश्च तैः सर्वैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥३३
एवं स काले भगवान् देवर्षिपितृदानवान् ।

पुन पुन संहरते सृजते च पुन पुन ॥३४
अतो मन्वन्तरे चैव देवर्षिपितृदानवैं ।
पूज्यते भगवानीशो भयात् कालस्य तस्य वै ॥३५

समस्त चराचर में इसका कुछ भी असाध्य नहीं होता है । यह काल ही प्राणियों का सृजन किया करता है और यही क्रम से उनका संहार करता है ॥ ९ ॥ सभी काल के वश में जाने वाले होते हैं किन्तु यह काल किसी के भी वश में रहने वाला नहीं होता है । इसीलिये समस्त प्राणियों का यह काल सदा कलन किया करता है ॥ ३० ॥ इसके विक्रम के इकहत्तर पद है जो पहिले कह गये हैं । वे यहाँ परिवृत्त युगों के क्रम से मन्वन्तर होते हैं ॥ ३१ ॥ एक पद का परिक्रम करके जो कि इकहत्तर पद हैं । जब काल प्रक्रमण किया करता है तब मन्वन्तर का क्षय होता है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार से भगवान् ने देवर्षि पितृ और मानवों से कहा और उनके कहने के पश्चात् उन सबके द्वारा नमस्कृत होकर वहीं पर ही अन्तर्धान हो गए ॥ ३३ ॥ इस प्रकार से वह भगवान् काल में देव, ऋषि पितर और मानवों का पुन पुन सृजन किया करते हैं और बार बार संहार भी किया करते है ॥ ३४ । इसीलिये उस काल के भय से मन्वन्तर में देवर्षि पितृ दानवों के द्वारा भगवान् ईश पूजे जाते हैं ॥ ३५ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कलौ कुर्यात्तपो द्विज ।
पतस्य महादेव तस्य पुण्यफल महत् ।
तस्माद् वा दिव गत्वा अवतीर्य च भूतले ॥३६
ऋषयश्चैव देवाश्च कलिम्प्राप्य सुदारुणम् ।
तप इच्छन्ति भूयिष्ठ कर्तुं धर्मपरायणा ।
अवतारान् कलि प्राप्य करोति च पुन पुन ॥३७
एव कालान्तरे सर्वे मेऽतीता वै सहस्रश ।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् देवराजर्षयस्तथा ॥३८
देवापि पौरवो राजा मनुश्चेक्ष्वाकुवशजा ।
महायोगबलोपेता कालान्तरमुपासते ॥३९
क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्तिष्ये त्रेतायुगे कृते ।

सप्तर्षिभिश्चैव सार्द्ध भाव्ये त्रेतायुगे पुनः ।
गोत्राणां क्षत्रियाणाञ्च भविष्यास्ते प्रकीर्तिताः ॥४०
द्वापरान्ते प्रतिष्ठन्ते क्षत्रिया ऋषिभिः सह ।
कृते त्रेतायुगे चैव तथा क्षीणे च द्वापरे ।
नराः पातकिनो ये वै वर्त्तन्ते ते कलौ स्मृताः ॥४१
मन्वन्तराणां सप्तानां सान्तानार्थां श्रुतिः स्मृतिः ।
एवमेतेषु सर्वेषु युगक्षयक्रमस्तथा ॥४२

इसीलिये द्विज को इस कलियुग में समस्त प्रयत्नों से तपश्चर्या करनी चाहिए। महादेव की शरणागति में जाने वाले को उसके पुण्य का महान् फल होता है । इससे देवता स्वर्ग में जाकर फिर इस भूतल में अवतरित होते हैं ॥ ३६ ॥ ऋषिगण और देववृन्द इस सुदारुण कलियुग को पाकर धर्म परायण होते हुए बहुत अधिक तप करने की इच्छा किया करते हैं और इस कलियुग को प्राप्त करके पुनः पुनः अवतारों को किया करते हैं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार से कालान्तर में हजारों ही जो सब हैं वे अतीत हो गये हैं । इसी तरह से इस वैवस्वत अन्तर में देवराजर्षि अतीत हो गये हैं ॥ ३८ ॥ देवापि पौरव राजा मनु और इक्ष्वाकु के वंश में जन्मने वाले जो कि महान् योग के बल से युक्त थे कालान्तर की उपासना करते हैं ॥ ३६ ॥ उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर त्रेतायुग के तिष्य होने पर फिर सप्तर्षियों के साथ भाव्य त्रेता युग में गोत्र और क्षत्रियों के भविष्य प्रकीर्त्तित किये गये हैं ॥ ४० ॥ द्वापर के अन्त में ऋषियों के साथ क्षत्रिय प्रतिष्ठित होते हैं । कृतयुग, त्रेतायुग तथा द्वापर युग के क्षीण हो जाने पर इस कलियुग में मनुष्य जो हैं वे सब पातकी होते हैं ऐसा कहा गया है ॥ ४१ ॥ सात मन्वन्तरों की सान्तानार्थ श्रुति और स्मृति है । तथा इसी प्रकार से इन सब में युगों के क्षय होने का क्रम होता है ॥ ४२ ॥

परस्परं युगानाञ्च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भवः ।
यथा वै प्रकृतिस्तेभ्यः प्रवृत्तानां यथा क्षयम् ॥४३
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते ।
क्रियन्ते कुलटाः सर्वाः क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ।

दिव गतानह तुभ्य कीर्त यिष्ये निबोधत ॥४४
ऐडमिक्ष्वाकुवशस्य प्रकृति परिचक्षते ।
राजान श्रेणिबन्धास्तु तथान्ये क्षत्रिया भुवि ॥४५
ऐडवशेऽथ सम्भूता यथा चेक्ष्वानवो नृपा ।
तेभ्य एव शत पूर्ण कुलानामभिषेचितम् ॥४६
तावदेव तु भोजाना विस्तरो द्विगुण स्मृत ।
भोजन्तु त्रिशत क्षत्र चतुर्द्धा तद्यथादिशम् ॥४७
तेष्वतीतास्तु राजानो ब्रुवतस्तान्निबोधत ।
शत वै प्रतिविन्ध्याना हैहयाना तथा शतम् ॥४८
धार्त्तराष्ट्रास्त्वेकशत अशीतिर्जनमेजया ।
शत वै ब्रह्मदत्ताना कुलाना वीर्यिणा शतम् ॥४९

परस्पर मे युगो का और ब्रह्म क्षत्र का उद्भव होता है उनके लिये जैसी प्रवृत्ति होती है और प्रवृत्तो का जैसे क्षय होता है तथा जमदग्नि के पुत्र राम के द्वारा समस्त क्षत्रियो का निविशेष हो जाने पर इस भूमि के अधिप क्षत्रियो ने समस्त स्त्रियाँ कुलटा करदी थी उन दिवगतो के विषय मे हम कहेगे सो तुम श्रवण करो ॥ ४३ ४४ ॥ इक्ष्वाकु वश की ऐड प्रकृति बतल ई जाती है । राजा लोग श्रेणी मे बद्ध तथा भूमि पर अन्य क्षत्रिय हुए ॥ ४५ ॥ ऐड वश मे जिस प्रकार से इक्ष्वाकु वश वाले राजा हुए थे उनके ही सैकडो कुल यहाँ अभिषिक्त हुए थे ॥ ४६ ॥ तभी फिर भोज वश वालो का दुगुना विस्तार कहा गया है। भोज वश के तीन सौ क्षत्रिय चारो ओर सब दिशाओ में थे ॥ ४७ ॥ उनके समाप्त होने पर जो राजा लोग व्यतीत हुए उनके विषय में बोलते हुए मुझस श्रवण करो। सौ प्रतिविन्ध्यो के तथा सौ वश हैहयो के हुए ॥ ४८ ॥ धार्त राष्ट्र एक सौ राजा हुए और अस्सी जनमेजय के वशज हुए। फिर सौ ब्रह्मदत्तो के वश वाले तथा वीर्यी कुलो के एक सौ राजा हुए थे ॥४९॥

तत शतन्तु पौन्लाना शत काशिकुशादय ।
तथापर सहस्रन्तु येऽतीता शशबिन्दव ।
इजानास्तेऽश्वमेधैस्तु सर्वे नियुतदक्षिणै ॥५०

एवं संक्षेपतः प्रोक्ता न शक्या विस्तरेण तु ।
वक्तुं राजर्षयः कृत्स्ना येऽतीतास्तैर्युगैः सह ॥५१
एते ययातिवंशस्य बभूवुर्वंशवर्द्धनाः ।
कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते ये लोकान् धारयन्ति वै ॥५२
लभन्ते च वरान् पञ्च दुर्लभान् ब्रह्मलौकिकान् ।
आयुः पुत्रा धनं कीर्तिरैश्वर्यं भूतिरेव च ॥५३
धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य धीमताम् ।
तथोक्ता लौकिकाश्चैव ब्रह्मलोकं व्रजन्ति वै ॥५४
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥५५
कृते वै प्रक्रियापादश्चतुःसाहस्र उच्यते ।
तस्माच्चतुःशतं सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥५६

इसके अनन्तर पौल वंश वालों के सौ और काशि कुशादिक सौ हुए । इसके पीछे दूसरे हजारों हुए और शशबिन्दु वाले अतीत हुए ये सब अश्वमेध यज्ञों का यजन करने वाले थे जिन यज्ञों में नियुतों की संख्या मे दक्षिणा दी गई थी ॥ ५० ॥ इस तरह से हमने इन सब का वर्णन संक्षेप में ही किया है क्योंकि इनका विस्तार के साथ वर्णन किया नहीं जा सकता है । जो राजर्षि समस्त उन युगों के साथ अतीत हो गये हैं उनका भी विस्तार से कथन नहीं हो सकता है ॥ ५१ ॥ ये सब ययाति राजा के वंश के बढ़ाने वाले हुए थे । उन द्युतिमानों के विषय में वर्णन किया गया है जो लोकों को धारण करते हैं ॥ ५२ ॥ अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्म लौकिक पाँच वरों को प्राप्त किया करते हैं । ये पाँच वर आयु, पुत्र, धन, कीर्त्ति और ऐश्वर्य विभूति हैं ॥ ५३ ॥ इन धीमानों के पञ्च वर्ग के ध्यान से तथा धारण एवं श्रवण करने से यथोक्त लौकिक भी वे ब्रह्मलोक को जाया करते हैं ॥ ५४ ॥ कृतयुग चार सहस्र वर्षों का था उसकी उतनी ही शती संध्या थी और सन्ध्यांश भी उसी प्रकार का था ॥ ५५ ॥ कृत में प्रक्रिया पाद चार सहस्र वाला कहा जाता है । उसका चार शत सन्ध्या तथा उसी प्रकार का सन्ध्यांश था ॥ ५६ ॥

त्रेतादीनि महस्राणि सख्यया मुनिभि· सह ।
तस्यापि त्रिशती सन्ध्या सन्ध्याशस्त्रिशत स्मृतः ॥५७
अनुपङ्गपादस्त्रेतायास्त्रिसाहस्त्रस्तु सङ्ख्यया ।
द्वापर द्वे सहस्रे तु वर्षाणा सम्प्रकीर्तितम् ॥५८
तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्याशो द्विशतस्तथा ।
उपोद्घातस्तृतीयस्तु द्वापरे पाद उच्यते ॥५९
कलि वर्षसहस्रन्तु प्राहु सख्याविदो जना ।
तस्यापि शतिका सन्ध्या सन्ध्याश. शतमेव च । ६०
सहारपाद सख्यातश्चतुर्थो वै कलौ युगे ।
ससन्ध्यानि सहाशानि चत्वारि तु युगानि वै ॥६१
एतद्द्वादशसाहस्र चतुर्युगमिति स्मृतम् ।
एव पादे सहस्राणि श्लोकाना पञ्च पञ्च च ॥६२
सन्ध्यासन्ध्याशकैरेव द्वे सहस्रे तथाऽपरे ।
एव द्वादशसाहस्र पुराण कवयो विदु ॥६३
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पाद तथा युगम् ।
यथा युग चतुष्पाद विधात्रा विहितं स्वयम् ।
चतुष्पाद सुराणान्तु ब्रह्मणा विहित पुरा ॥६४

त्रेतादि युग मुनियो के साथ सख्या से सहस्र थे । उसकी त्रिशती सध्या तथा त्रिशत वाला सन्ध्याश कहा गया है ॥ ५७ ॥ त्रेता का अनुपङ्ग पाद सख्या से तीन सहस्र वाला था । द्वापर मे दो सहस्र वर्ष कहे गये हैं ॥ ५८ ॥ उस द्वापर युग की भी द्विशती सन्ध्या तथा सन्ध्याश भी दो सौ वाला था । उपोद्घात तीसरा द्वापर म पाद कहा जाता है ॥ ५९ ॥ सख्या के ज्ञाता विद्वज्जन कलियुग को एक सहस्र वर्ष वाला बताते हैं । उसकी भी सन्ध्या एक सौ वाली शतिका है और उसका सन्ध्याश भी उसी प्रकार वाला एक सौ का है । कलियुग मे चतुर्थ सहार पाद होता है । इस तरह सन्ध्या के साथ तथा अशों के सहित चार युगों का वर्णन किया गया है ॥ ६१ । यह बारह सहस्र का चतुर्युग होता है जिसको कि अब बतलाया गया है । इसी प्रकार से पादो मे

श्लोकों के पाँच-पाँच सहस्र हैं ॥ ६२ ॥ तथा सन्ध्या और सन्ध्यांशकों के द्वारा दूसरे दो सहस्र होते हैं इस तरह से कवि लोग पुराणों को बारह सहस्र वाले कहा करते हैं ॥ ६३ ॥ जिस तरह वेद चार पादों वाला है उसी प्रकार से युग भी चार पादों वाला होता है। जिस तरह विधाता ने स्वयं युग को चार पाद वाला बनाया है उसी तरह से पहिले ब्रह्माजी ने सुरों के भी चतुष्पाद का निर्माण किया था ॥ ६४ ॥

॥ प्रकर्ण ३१—स्वायम्भुव-वंश-कीर्तन ॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ।
तुल्याभिमानिनः सर्वे जायन्ते नामरूपतः ॥१
देवाश्च विविधा ये च तस्मिन् मन्वन्तरेऽधिपाः ।
ऋषयो मानवाश्चैव सर्वे तुल्याभिमानिनः ॥२
महर्षिसर्गः प्रोक्तो वै वंशं स्वायम्भुवस्य तु ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कीर्त्यमानं निबोधत ॥३
मनोः स्वायम्भुवस्यासन् दश पौत्रास्तु तत्समाः ।
यैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपसमन्विता ॥४
ससमुद्राकरवती प्रतिवर्षन्निवेशिता ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा ॥५
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य तु ।
प्रजासर्गतपोयोगैस्तैरियं विनिवेशिता ॥६
प्रियव्रतात् प्रजावन्तः वीरान् कन्या व्यजायत ।
कन्या सा तु महाभागा कर्द्दमस्य प्रजापतेः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अतीत और अनागत मन्वन्तरों में सब में यहाँ पर सब नाम और रूप से तुल्याभिमानी उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥ अनेक देव जो कि उस मन्वन्तर में अधिप थे ऋषिवृन्द और मानवगण ये सभी तुल्य अभिमान वाले थे ॥ २ ॥ स्वायम्भुव का वंश महर्षियों का सर्ग कह दिया गया है। अब विस्तार के साथ तथा आनुपूर्वी से वर्णन किये जाने वाले का श्रवण करो ॥३॥ स्वायम्भुव मनु के उसी के समान दश पुत्र थे जिनके द्वारा यह सातों द्वीपों से

समन्वित समस्त पृथ्वी परिपूर्ण है ॥ ४ ॥ यह भूमि प्रतिवर्ष निवेशित होती हुई समुद्र तथा आकरों वाली है। स्वायम्भुव मन्वन्तर मे पहिले आद्य त्रेतायुग मे उस समय यह पृथ्वी इसी तरह से युक्त थी ॥ ५ ॥ राजा प्रियव्रत के पुत्र तथा स्वायम्भुव मनु के पौत्रो के द्वारा यह प्रजा का सर्ग, तपश्चर्या और योग से निवेशित की गई थी ॥ ६ ॥ राजा प्रियव्रत से जो कि प्रजा वाला एव वीर था कन्या उत्पन्न हुई थी वह कन्या महान् भाग्य वाली थी जो प्रजापति कर्दम को ब्याही गई थी ॥ ७ ॥

कन्ये द्वे शतपुत्राश्च सम्राट् कुक्षिश्च ते उभे ।
तयोर्वै भ्रातर. शूरा. प्रजापतिसमा दश ॥८
अग्नीध्रश्च वपुष्मांश्च मेधा मेधातिथिर्विभुः ।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य. सवन सर्व एव च ॥९
प्रियव्रतोऽभिषिच्यंतान् सप्त सप्तसु पार्थिवान् ।
द्वीपेषु तेषु धर्मेण द्वीपास्ताश्च निबोधत ॥१०
जम्बूद्वीपेश्वर चक्रे अग्नीध्रन्तु महाबलम् ।
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथि कृत ॥११
शाल्मलौ तु वपुष्मन्त राजानमभिषिक्तवान् ।
ज्योतिष्मन्त कुशद्वीपे राजान कृतवान् प्रभु ॥१२
द्युतिमन्तञ्च राजान क्रौञ्चद्वीपे समादिशत् ।
शाकद्वीपेश्वरञ्चापि हव्यश्चक्रे प्रियव्रतः ॥१३
पुष्कराधिपतिञ्चापि सवन कृतवान् प्रभु· ।
पुष्करे सवनस्यापि महावीत· सुतोऽभवत् ।
धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवता वरौ ॥१४

दो कन्या, सौ पुत्र और सम्राट् कुक्षि वे दोनो थे, उन दोनों के प्रजापति के समान शूर भाई दश थे ॥ ८ ॥ उनके नाम ये हैं—अग्नीध्र, वपुष्मान्, मेधा, मेधातिथि, विभु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन और सर्व ये दश हैं ॥९॥ राजा प्रियव्रत ने सात इन राजाओं का सात द्वीपों में अभिषेक करके उन द्वीपों में धर्म नियुक्त कर दिया था, उन द्वीपों के विषय मे अब श्रवण करो ॥१०॥

जम्बूद्वीप में महान् बल वाले अग्नीध्र को वहाँ का स्वामी बनाया था। प्लक्ष द्वीप में उसने मेधातिथि को वहाँ का राजा नियुक्त किया था ।। ११ ।। शाल्मलि द्वीप में वपुष्मान् को राजा अभिषिक्त किया था। कुश द्वीप में ज्योतिष्मान् को प्रियव्रत प्रभु ने राजा बनाया था ॥ १२ ॥ क्रौञ्चद्वीप में द्युतिमान् को राजा होने की आज्ञा दी थी। प्रियव्रत ने शाकद्वीप में हव्य को वहाँ का राजा बनाया था ।। १३ ।। पुष्कर द्वीप में सवन का अभिषेक किया था। पुष्कर द्वीप में सवन का भी महावीत नाम वाला पुत्र हुआ था। और एक धातकि पुत्र था ये दोनों पुत्र पुत्रवानों में परम श्रेष्ठ थे ।। १४ ।।

महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ।
नाम्ना तु धातकेश्चापि धातकीखण्ड उच्यते ।।१५
हव्यो व्यजनयत् पुत्रान् शाकद्वीपेश्वरान् प्रभुः ।
जलदञ्च कुमारञ्च सुकुमारं मणीचकम् ।
वसुमोदं सुमोदाकं सप्तमञ्च महाद्रुमम् ।।१६
जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते ।
कुमारस्य च कौमारं द्वितीयं परिकीर्तितम् ।।१७
सुकुमारं तृतीयन्तु सुकुमारस्य कीर्तितम् ।
मणीचकस्य चतुर्थं मणीचकमिहोच्यते ।।१८
वसुमोदस्य वै वर्षं पञ्चमं वसुमोदकम् ।
मोदाकस्य तु मोदाकं वर्षं षष्ठं प्रकीर्तितम् ।।१९
महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तमन्तु महाद्रुमम् ।
एषान्तु नामभिस्तानि सप्तवर्षाणि तत्र वै ।।२०
क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै ।
कुशलो मनुगश्चोष्णः पीवरश्चान्धकारकः ।
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै ।।२१

महावीत महात्मा ने उस नाम से वर्ष स्थापित किया था और धातकि के नाम से भी धातकीखण्ड कहा जाता है ।। १५ ।। हव्य ने शाक द्वीप के स्वामी पुत्रों को उत्पन्न किया था। ये सात पुत्र थे जिनके नाम, जलद, कुमार,

सुकुमार, मणिचक, वसुमोद, सुमोदाक और सातवाँ महाद्रुम है। ये सातो पुत्रो के नाम हैं ॥ १६ ॥ जनद का जलद प्रथम वर्ष कहा जाता है। कुमार का कौमार दूसरा वर्ष कहा गया है ॥ १७ ॥ तृतीय सुकुमार का सुकुमार इसी नाम वाला वर्ष कहा गया है। मणिचक का चौथा मणीचक वर्ष है इसी नाम से कहा जाता है ॥ १८ ॥ पाचवाँ वसुमोदका वसुमोदक और मादाक वा छठा मोदाक वर्ष कहा गया है ॥१६॥ सातवाँ महाद्रुम के नाम का महाद्रुम वर्ष है। ये इनके नामो से सात वर्ष होते हैं ॥ २० ॥ क्रौञ्चद्वीप के स्वामी द्युतिमान् के पुत्र हुए उनके नाम कुशल मनुग उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि ये द्युतिमान् राजा के पुत्र हुए थ ॥ २१ ॥

तेषा स्वनामभिर्देशा क्रौञ्चद्वीपाश्रया शुभा ।
उष्णस्योष्ण स्मृतो देश पीवरस्यापि पीवर ॥२२
अन्धकारकदेशस्तु अन्धकारश्च कीर्त्यते ।
मुनेस्तु मुनिदेशो वै दुन्दुभेर्दुन्दुभि स्मृत. ।
एते जनपदा सप्त क्रौञ्चद्वीपे तु भास्वरा ॥२३
ज्योतिष्मत कुशद्वीपे सप्त ते सुमहौजस ।
उद्भिदो वेणुमाश्चैव स्वैरथो लवणो धृतिः ।
षष्ठ प्रभाकरश्चैव सप्तम कपिल स्मृत ॥२४
उद्भिद प्रथम वर्ष द्वितीय वेणुमण्डलम् ।
तृतीय स्वैरथाकार चतुर्थं लवण स्मृतम् ॥२५
पञ्चम धृतिमद्वर्षं षष्ठ वर्ष प्रभाकरम् ।
सप्तम कपिल नाम कपिलस्य प्रकीर्तितम् ॥२६
तेषा द्वीपा कुशद्वीपे तत्सनामान एव तु ।
आश्रमाचारयुक्ताभि. प्रजाभि समलकृता ॥२७
शाल्मलस्येश्वरा सप्त पुत्रास्ते तु वपुष्मत ।
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभ सप्तमस्तथा ॥२८

इन सातों द्युतिमान् के पुत्रो के अपने २ नामो से क्रौञ्चद्वीप के अन्दर आश्रय वाले शुभ देश हुए। उष्ण का उष्ण, पीवर का पीवर इस नाम वाला

देश था ॥२२॥ अन्धकारक के देश का नाम भी अन्धकार ही कहा जाता है। मुनि का मुनि देश और दुन्दुभि का दुन्दुभि इसी नाम वाला देश था। ये सात जनपद क्रौञ्च द्वीप में परम भास्वर अर्थात् देदीप्यमान थे ॥२३॥ इसी तरह कुश द्वीप में महान् ओज वाले ज्योतिष्मान् के सात पुत्र हुए। उद्भिद, वेणुमान्, स्वैरथ, लवण, धृति, छठा प्रभाकर और सातवाँ कपिल कहा गया है ॥२४॥ उद्भिद ने प्रथम वर्ष-वेणुमण्डल, दूसरा-तृतीय स्वैरथाकार-चौथा लवण-पाँचवाँ धृतिमान्-छठा प्रभाकर और सप्तम कपिल इस नाम वाला वर्ष था जो कि इन्हीं नामों से सब प्रसिद्ध हैं ॥२५॥२६॥ उनके कुश द्वीप में द्वीप उन्हीं के समान हुए थे जो कि आश्रम एवं आचार से युक्त प्रजाओं से समलंकृत थे ॥२७॥ शाल्मलि द्वीप के वपुष्मान् के सात पुत्र हुए जो उसी द्वीप के अधिप हुए थे। श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, मानस और सुप्रभ ये नाम वाले थे ॥२८॥

श्वेतस्य श्वेतदेशस्तु रोहितस्य च रोहितः।
जीमूतस्य च जीमूतो हरितस्य च हारितः ॥२६
वैद्युतो वैद्युतस्यापि मानस स्यापि मानसः।
सुप्रभः सुप्रभस्यापि सप्तैते देशपालकाः ॥३०
सप्तद्वीपे तु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपादनन्तरम्।
सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरा नृपाः ॥३१
ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषां सप्तवर्षाणि तानि वै।
तस्माच्छान्तभयाच्चैव शिशिरस्तु सुखोदयः।
आनन्दश्च ध्रुवश्चैव क्षेमकश्च शिवस्तथा ॥३२
तानि तेषां सनामानि सप्तवर्षाणि भागशः।
निवेशितानि तैस्तानि पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥३३
मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तैः सप्तद्वीपनिवासिभिः।
वर्णाश्रमाचारयुक्ताः प्लक्षद्वीपे प्रजाः कृताः ॥३४
प्लक्षद्वीपादिकेष्वेव शाकद्वीपान्तरेषु वै।
ज्ञेयः पन्चसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागशः ॥३५

श्वेत का श्वेत देश था तथा रोहित का रोहित, जीमूत का जीमूत,

हरित का हारित, वैद्युन का वैद्युत, मानस का मानस और सुप्रभ का सुप्रभ देश था और ये सातो पुत्र देशो के पालक थे जो कि देश उन्ही सातो के नामो से प्रसिद्ध हैं ।।२६।।३०।। जम्बू द्वीप के बाद मे मान द्वीप कहूँगा । मेधा तिथि के सात पुत्र हुए थे जो कि प्लक्ष द्वीप के स्वामी राजा हुए थे ।।३१।। उनमे जो सबसे बडा था वह शान्तमय था । उनके भी सात पुत्र हुए थे । फिर शान्तमय के पीछे शिशिर, सुखोदय आनन्द, ध्रुव, क्षेमक और सातवाँ शिव ये नाम वाले सात पुत्र थे ।।३२।। उन सातो के नामो से ही विभाग पूर्वक सात वर्ष हुए। उन्होने पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर मे उन सातो को निवेशित किया था ।।३३।। मेधा तिथि के उन सात द्वीपो मे निवास करने वाले पुत्रो ने वर्णो तथा आश्रमो के आचार से युक्त प्लक्ष द्वीप मे प्रजा का सृजन किया था ।।३४।। प्लक्ष द्वीपादि मे तथा शाक द्वीपान्तरो मे पाँचों मे वर्णाश्रम के विभाग से धर्म जानने के योग्य है ।।३५।।

सुखमायुश्च रूपञ्च बलं धर्मश्च नित्यशः ।
पञ्चस्वेतेषु द्वीपेषु सर्व साधारण स्मृतम् ।।३६
सप्तद्वीपपरिक्रान्त जम्बूद्वीप निबोधत ।
आग्नीध्र ज्येष्ठदायाद कन्यापुत्रं महाबलम् ।
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्त जम्बूद्वीपेश्वर नृपम् ।।३७
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजसः ।
ज्येष्ठो नाभि रिति ख्यातस्तस्य किम्पुरुषोऽनुज ।।३८
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः ।
रम्यः स्यात्पञ्चमः पुत्रो हरिन्मान् षष्ठ उच्यते ।।३९
कुरुस्तु सप्तमस्तेषा भद्राश्वो ह्यष्टम स्मृतः ।
नवम केतुमालस्तु तेषा देशान्निबोधत ।।४०
नाभेस्तु दक्षिण वर्षं हिमाह्वन्तु पिता ददौ ।
हेमकूट तु यद्वर्ष ददौ किम्पुरुषाय तत् ।।४१
नैषध यत् स्मृत वर्षं हरिवर्षाय तद्ददौ ।
मध्यम यत्सुमेरोस्तु स ददौ तदिलावृते ।।४२

सुख, आयु, रूप, बल और धर्म नित्य ही इन पाँचों द्वीपों में समस्त साधारण रूप में स्थित कहे गये हैं ॥३६॥ सात द्वीपों से परिक्रान्त जम्बू द्वीप को जानना चाहिए। राजा प्रियव्रत ने आग्नीध्र, ज्येष्ठदायाद, कन्या पुत्र और महाबल को उस जम्बू द्वीप में वहाँ का राजा अभिषिक्त करके बनाया था ।३७। उसके पुत्र भी प्रजापति के समान ही ओज वाले हुए थे। उनमें जो सबसे बड़ा ज्येष्ठ था वह 'नाभि'—इस नाम से प्रसिद्ध था। उसका छोटा भाई किम्पुरुष था ॥३८॥ तीसरा हरिवर्ष, चौथा इलावृत, पाँचवाँ रम्य और षष्ठ हरिन्मान् तथा सातवाँ कुरु एवं अष्टम भद्राश्व कहा गया है, नवम केतुमल था। अब उनके देशों के विषय में बतलाया जाता है उसका श्रवण करो ॥३६॥४०॥ पिता ने नाभि को हिम नाम वाला दक्षिण देश दिया था और जो हेमकूट वर्ष था वह किम्पुरुष को दिया था ॥४१॥ नैषध जो वर्ष था वह हरिवर्ष को दिया और जो सुमेरु के मध्यम था वह उसने इलावृत को दे दिया था ॥४२॥

नीलन्तु यत् स्मृतं वर्षं रम्यायैतत् पिता ददौ।
श्वेतं यदुत्तरं तस्मात् पित्रा दत्तं हरिन्मते ॥४३
यदुत्तरं श्रृङ्गवतो वर्षं तत् कुरवे ददौ।
वर्षं माल्यवतश्चापि भद्राश्वाय न्यवेदयत् ॥४४
गन्धमादनवर्षन्तु केतुमाले न्यवेदयत्।
इत्येतानि महान्तीह नववर्षाणि भागशः ॥४५
आग्नीध्रस्तेषु सर्वेषु पुत्रांस्तानभ्यषिञ्चत।
यथाक्रमं स धर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः ॥४६
इत्येतैः सप्तभिः कृत्स्नाः सप्तद्वीपा निवेशिताः।
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य तु ॥४७
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि तु।
तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥४८
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च।
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः।
न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वेव तु सर्वशः ॥४९

जो नील इस नाम वाला वर्ष था, वह पिता ने रम्य नाम वाले पुत्र को दिया। जो श्वेत था उसे पिता के द्वारा हरिन्मान् को दिया गया था ॥४३॥ जो शृङ्गवान् के उत्तर मे वर्ष था उसे कुरु नामक पुत्र को दिया। माल्यवान् का जो वर्ष था वह भद्राश्व को दिया गया ॥४४॥ गन्धमादन नाम वाला वर्ष केतुमाल को दे दिया था। ये सब महान् भाग से नौ वर्ष हैं ॥४५॥ उन सबमें आग्नीध्र ने उन पुत्रों को अभिषिक्त कर दिया था और सबको क्रम के अनुसार ही दिया गया फिर वह धर्मात्मा स्वयं तपश्चर्या में स्थित हो गया था ॥४६॥ इन सातों मे समस्त सप्त द्वीप निवेशित किये थे, ये सब प्रियव्रत के पुत्र थे तथा स्वायम्भुव मनु के पौत्र थे ॥४७॥ जो किम्पुरुष आदि शुभ आठ वर्ष थे, उनको स्वभाव से ही बिना किसी प्रयत्न के सुख प्राप्त सिद्धि थी ॥४८॥ वहाँ उनमें किसी भी प्रकार का विपर्यय नहीं था और वहाँ पर जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु से उत्पन्न होने वाला कुछ भी भय नहीं होता था। उनमें कोई भी धर्म तथा अधर्म की बात भी नहीं थी और उनमे कोई भी उत्तम-मध्यम तथा अधम होने वाली बात भी नहीं थी। उनमे कोई भी युग की अवस्था नहीं थी और सभी को किसी भी क्षेत्र मे ऐसा नहीं होता था ॥४९॥

नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्वे तन्निबोधत।
नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मेरुदेव्यां महाद्युतिं।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥५०
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः।
सोऽभिषिच्याथ भरतं पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः ॥५१
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्।
तस्मात्तद्भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ॥५२
भरतस्यात्मजो विद्वान् सुमतिर्नाम धार्मिकः।
बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः सन्ययोजयत्।
पुत्रसंक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः ॥५३
तेजसस्तु सुतश्चापि प्रजापतिरमित्रजित्।
तेजसस्यात्मजो विद्वानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ॥५४
परमेष्ठी सुतस्तस्य निधने तस्य शोभनः।

प्रतीहारकुले तस्य नाम्ना जज्ञे तदन्वयात् ।
प्रतिहर्त्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमतः ।।५५
उन्नेता प्रतिहर्त्तुस्तु भुवस्तस्य सुतः स्मृतः ।
उद्गीथस्तस्य पुत्रोऽभूत्प्रताविश्चापि तत्सुतः ।।५६

अब मैं नाभि के सर्ग को बतलाऊँगा उसको हिमाह्व में आप लोग श्रवण करें। नाभि ने जो कि महान् द्युति से युक्त था, मेरुदेवी में पुत्र को उत्पन्न किया था। उसका नाम ऋषभ था जो समस्त क्षत्रियों का पूर्वज तथा राजाओं में परम श्रेष्ठ था ।।५०।। फिर ऋषभ से भरत उत्पन्न हुआ जो सौ पुत्रों में सबसे बड़ा था। वह भरत भी अपने पुत्र को राज्यासन पर अभिषिक्त करके स्वयं संन्यास की अवस्था में स्थित हो गया था ।। ५१ ।। हिम नाम वाला दक्षिण जो वर्ष था वह भरत के लिये दिया था। इसी से उसके नाम से यह भारतवर्ष ऐसा प्रसिद्ध हुआ जिसे बुध लोग भली-भाँति जानते हैं ।।५२।। भरत का पत्र सुमति नाम वाला परम धार्मिक और महान् विद्वान् था। वह राज्य सारा उसी को भरत ने दे दिया था। जब पुत्र ने राज्यश्री को संक्रामित कर लिया तो फिर राजा ने संन्यास लेकर तपस्या के लिये वन गमन कर दिया ।।५३।। तेज का पुत्र प्रजापति अमित्रजित था। तैजस का आत्मज विशेष विद्वान् इन्द्र-द्युम्न इस नाम से संसार में प्रसिद्ध था ।।५४।। और शोभन परमेष्ठी पुत्र उसके निधन होने पर प्रतीहार कुल में उसके नाम से उसके अन्वय से उत्पन्न हुआ था और वह प्रतिहर्त्ता–इस नाम से विख्यात हुआ। उस बुद्धिमान् प्रतिहर्त्ता के उन्नेता और उसके भुव सुत हुआ। उद्गीथ नाम वाला उसका पुत्र हुआ और उसका भी पुत्र प्रतावि हुआ था ।।५५।।५६।।

प्रतावेस्तु विभुः पुत्रः पृथुस्तस्य सुतो मतः ।
पृथोश्चापि सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः ।।५७
गयस्य तु नरः पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट् ।
विराट्सुतो महावीर्यो धीमांस्तस्य सुतोऽभवत् ।।५८
धीमतश्च महान् पुत्रो महतश्चापि भौवनः ।
भौवनस्य सुतस्त्वष्टा अरिजस्तस्य चात्मजः ।।५९

अग्निजस्य रजः पुत्र शतजिद्रजसो मन ।
तस्य पुत्रशत त्वासीद्राजान सर्व एव ते ॥६०
विश्वज्योति प्रधाना यैस्तैरिमा वर्द्धिता प्रजा ।
तैरिद भारतं वर्षं सप्तखण्ड कृतं पुरा ॥६१
तेषा वशप्रसूतैस्तु भुक्तेय भारती धरा ।
कृतत्रेतादियुक्तानि युगाख्यान्येकसप्तति ॥६२
येऽनीतास्तैर्युगैं सार्द्ध राजानस्ते तदन्वया ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्व शतशोऽथ सहस्रश ॥६३
एप स्वायम्भुव सर्गो येनेद पूरित जगत् ।
ऋषिभिर्देवतैश्चापि पितृगन्धर्वराक्षसैः ॥६४
यक्षभूतपिशाचैश्च मनुष्यमृगपक्षिभिः ।
तेषा सृष्टिरियं लोके युगैं सह विवर्त्तते ॥६५

प्रताचि का पुत्र विभु और इसका पुत्र पृथु हुआ । पृथु का पुत्र नक्त हुआ और नक्त का आत्मज गय नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥५७॥ गय का पुत्र नर हुआ और नर का आत्मज विराट नाम वाला उत्पन्न हुआ था । विराट् का पुत्र महावीर्य हुआ तथा उसका पुत्र धीमान् उत्पन्न हुआ ॥५८॥ धीमान् का सुत महान् और महान् का पुत्र भौवन नामक उत्पन्न हुआ था । भौवन का सुत त्वष्टा और इसका पुत्र अरिज नाम वाला उत्पन्न हुआ ॥५९॥ अरिज का पुत्र रज हुआ और शतजित रज का पुत्र हुआ । उसके सौ पुत्र उत्पन्न हुए वे सभी राजा हुए थे ॥६०॥ ये सब विश्व ज्योति के प्रधान वाले थे और उनके द्वारा ये सन्तति पर्याप्त रूप से वर्द्धित हुई थी, उन्होने ही इस भारतवर्ष को सात खण्डों वाला पहिले किया था ॥६१॥ उनके वश में प्रसूत होने वालो के द्वारा इस भारत की भूमि का पूर्ण रूप मे भोग किया गया । कृत त्रेतादि से युक्त इकहत्तर युग नाम वाले पर्यन्त इस भारती भूमि को भुक्त किया था ॥६२॥ उन युगो के साथ जो राजा अतीत हो गए थे वे उस अन्वय (वश) वाले थे जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले सैंकडो और सहस्रों की सख्या मे हुए थे ॥६३॥ यह स्वायम्भुव सर्ग है जिससे यह समस्त जगतीतल पूरित हो रहा है जिनमें ऋषि, देवता, पितृगण, गन्धर्व और राक्षस सभी है । इनके अतिरिक्त यक्ष, भूत, पिशाच,

मनुष्य, मृग और पक्षी आदि सब हैं। इनकी यह सृष्टि लोक में युगों के साथ विनिर्मित होती है ॥६५॥

॥ भुवन विन्यास ॥

यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन् स्वायम्भुवादयः ।
चतुर्दशैते मनवः प्रजासर्गे भवन्त्युत ॥१
ऐतद्वेदितु मिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।
एतत् श्रुत्वा वचस्तेषामब्रवील्लोमहर्षणः ॥२
पौराणिकस्तदा सूत ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
एतद्विस्तरतो भूयस्तानुवाच समाहितः ॥३
पुण्यतीर्थे हिमवतो दक्षिणस्याचलस्य हि ।
पूर्वपश्चायतस्यास्य दक्षिणेन द्विजोत्तमाः ॥४
तथा जनपदानां च विस्तरं श्रोतुमर्हथ ।
अत्र वो वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः ॥५
इदं तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभफलोदयम् ।
उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत् ॥६
वर्षं यद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा ।
भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ।
निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम् । ७

ऋषियों ने कहा—जो यह भारतवर्ष है जिसमें स्वायम्भुवादि चौदह मनु प्रजा के सर्ग में होते है ॥१॥ हे सत्तम ! हम इसे जानना चाहते हैं सो आप यह हमें बतलाइये। ऋषिगण के इस वचन को सुनकर लोमहर्षण महर्षि उनसे कहने लगे ॥२॥ उस समय में महात्मा ऋषियों से पौराणिक सूतजी फिर पूर्ण तथा समाहित होकर यह सब विषय विस्तारपूर्वक उनसे बोले ॥३॥ श्रीसूत जी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! पूर्वपश्चायत् इस दक्षिण हिमवान् पर्वत के पुण्य तीर्थ में दक्षिण की ओर से जो जनपद हैं उनका पूरा विस्तृत वर्णन आप सब सुनने के योग्य होते है। यहाँ पर भारतवर्ष में जो प्रजा है वह

आपके सामने मैं वर्णन करूँगा ॥६।१२॥ शुभ और अशुभ के फल का उदय स्वरूप यह तो मध्यम चित्र होता है जोकि समुद्र के उत्तर म और हिमाचल के दक्षिण म है ॥६॥ यह जो वर्ष है इसका नाम भारत है और यहाँ जो प्रजा निवास किया करती है वह भारती प्रजा कही जाती है। प्रजाओं के भरण करने के कारण से मनु भी भरत ऐसा कहा गया है। निरुक्ति करने क वचन से भी यह वर्ष कहा गया है ॥७॥

ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ॥८
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदाः प्रकीर्तिताः ।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥९
इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥१०
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ॥११
आयतो ह्याकुमारिक्यादागङ्गाप्रभवाच्च वै ।
तिर्यगुत्तरविस्तीर्णः सहस्राणि नवैव तु ॥१२
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु नित्यशः ।
पूर्वे किराता ह्यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः ॥१३
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्त्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥१४॥

इससे यहाँ स्वर्ग मोक्ष और मध्य था त गम्यमान होता है अर्थात् प्राप्त किया जाता है। अन्यत्र भूमि में मनुष्यों का निश्चय ही कर्म का विधान नहीं होता है ॥८॥ इस भारतवर्ष के नौ भेद कहे गये हैं जोकि समुद्र के अन्तरित हैं ऐसा समझना चाहिए और वे परस्पर में अगम्य होते हैं ॥६॥ इन्द्रद्वीप कशेरु-ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण और यह जो उनमें सागर से संवृत नवम द्वीप है यह द्वीप दक्षिणोत्तर में एक सहस्र योजन वाला होता है ॥१०।११॥ यह कुमारी से गङ्गा प्रभव तक लेकर आयत है और टेढ़ा

उत्तर में नौ सहस्त्र विस्तीर्ण होता है ।।१२।। यह द्वीप नित्य ही अन्तों में म्लेच्छों से उपविष्ट है । पूर्व में इसके अन्त में किरात लोग हैं और पश्चिम में यवन कहे गये हैं ।।१३।। मध्य में इसके भाग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं, जोकि इज्या, युद्ध, वाणिज्य आदि के द्वारा अपना वर्त्तन करते हुए व्यवस्थित रहते हैं ।।१४।।

तेषां संव्यवहारोऽयं वर्त्तते तु परस्परम् ।
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु ।।१५
सङ्कल्पपञ्चमानां तु आश्रमाणां यथाविधि ।
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी । १६
यस्त्वयं नवमो द्वीपस्तिर्यगायत उच्यते ।
कृत्स्नं जयति यो ह्येनं स सम्राडिह कीर्त्यते ।।१७
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षो विराट् स्मृतः ।
स्वराडन्यः स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरम् ।।१८
सप्त चास्मिन् सुपर्वाणो विश्रुताः कुलपर्वताः ।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ।।१९
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगाः ।
अभिजाताः सर्वगुणा विपुलाश्चित्रसानवः ।।२०
मन्दरः पर्वत श्रेष्ठो वैहारो दर्दुरस्तथा ।
कोलाहलः ससुरसः मैनाको वैद्युतस्तथा ।।२१

उनका परस्पर में ऐसा सुन्दर व्यवहार रहता है कि वर्णों का अपने अपने कर्मों में धर्म, अर्थ और काम से युक्त व्यवहार रहता है ।१५।। सङ्कल्प पञ्चम आश्रमों की विधि के अनुसार यहाँ पर जिन में स्वर्ग तथा अपवर्ग के लिये मानवो प्रवृत्ति रहा करती है ।।१६। जो यह नवमद्वीप है वह तिर्यक् (टेढ़ा) आयत है ऐसा कहा जाता है । इस पूरे को जो जीत कर शासन किया करता है वही यहाँ पर सम्राट कहा जाता है ।।१ ।। यह लोक तो सम्राट् और अन्तरिक्ष विराट कहा गया है और जो अन्य लोक हैं वह स्वराट्

कहे गये हैं। उसका विस्तार फिर कहा जायगा ॥१८॥ इसमें सात सुपर्वा कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं जिनके नाम महेन्द्र,मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष पर्वत, विन्ध्य और पारियात्र हैं। ये ही सात कुल पर्वत कहे गये हैं ॥१६॥ इन सात कुल पर्वतों के समीप मे रहने वाले सहस्रों अन्य पर्वत हैं जोकि अभिजात [सुन्दर-नूतन] समस्त गुणों से युक्त, विपुल और चित्र शिखरों वाले हैं ॥२०॥ मन्दर पर्वतों मे बहुत ही श्रेष्ठ पर्वत है। वैहार, दर्दुर, कोलाहल, ससुरस, मैनाक, वैद्युत पर्वत हैं ॥२१॥

पातन्धमो नाम गिरिस्तथा पाण्डुर पर्वत ।
गन्तुप्रस्थ कृष्णगिरिर्गोधनो गिरिरेव च ॥२२
पुष्पगिर्युज्जयन्तौ च शैलो रैवतकस्तथा ।
श्रीपर्वतश्च काञ्चन कूटशैलो गिरिस्तथा ॥२३
अन्ये तेभ्य परिज्ञाता ह्रस्वा स्वल्पोपजीविन ।
तैर्विमिश्रा जनपदा आर्यम्लेच्छाश्च नित्यश ॥२४
पीयन्त यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धु सरस्वती ।
शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ॥२५
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहू ।
गोमती धुतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ॥२६
कौशिकी च तृतीया तु निश्चीरा गण्डकी तथा ।
इक्षुर्लोहित इत्येता हिमवत्पाद नि.सृता ॥२७॥
वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च ।
वर्णाशा चन्दना चैव सदीरा महती तथा ॥२८
परा चर्मण्वती चैव विदिशा वेत्रवत्यपि ।
शिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्राश्रया स्मृता ॥२६

इसके अतिरिक्त पातन्धम नाम वाला गिरि है तथा पाण्डुर पर्वत है, गन्तुप्रस्थ, कृष्णगिरि, गोधनगिरि, पुष्पगिरि, उज्जयन्त, रैवतक, श्रीपर्वत, कार, कूटशैल गिरि हैं ॥२२॥ उन से अन्य जो पर्वत हैं वे छोटे और स्वल्प उपयोगी परिज्ञात हुए हैं। जनपद उन से मिले हुए हैं जो नित्य ही आर्य और

म्लेच्छों से युक्त रहते हैं ।। २३-२४ ।। जिसके द्वारा ये नदियाँ पाई जाती हैं उन नदियों के नाम—गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, इरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका, कुहू, गोमती, धुतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, तृतीया, निश्चीरा, गण्डकी, इक्षु और लोहित ये सब नदियाँ हिमवान् के पाद से निकली हुई हैं ।। २५-२६-२७ ।। वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वर्णाशा, चन्दना, सतीरा, महती, परा, चर्मवती, विदिशा, वेत्रवती, क्षिप्रा, अवन्ती—ये पारियात्राश्रया कही गई हैं ।।२८-२९।।

शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुमहाद्रुमा ।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च ।।३०
तमसा पिप्पला श्रोणी करतोया पिशाचिका ।
नीलोत्पला विपाशा च जम्बुला वालुवाहिनी ।।३१
सितेरजा शुक्तिमती मक्रुणा त्रिदिवा क्रमात् ।
ऋक्षपादात् प्रसूतास्ता नद्यो मणिनिभोदकाः ।।३२
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या मद्रा च निषधा नदी ।
वेन्वा वैतरणी चैव शितिबाहुः कुमुद्वती ।।३३
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तशिला तथा ।
विन्ध्यपादप्रसूताश्च नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ।।३४
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वैण्यथ वञ्जुला ।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च तथापगा ।
दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनिःसृताः ।।३५

और शोण महान् नद है तथा नर्मदा, सुमहाद्रुमा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, श्रोणी, करतोया, पिशाचिका, नीलोत्पली, विपाशा, जम्बुला, वालुवाहिनी, सितेरजा, शुक्तिमती, मक्रुणा, त्रिदिवा, ये सब नदियाँ ऋक्षपाद नामक पर्वत के पाद से प्रसूत होने वाली और मणि के समान सब कुछ जल वाली नदियाँ हैं ।। ३०-३१-३२ ।। तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, मद्रा, निषधा नदी, वेन्वा, वैतरणी, शितिबाहु, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तशिला ये समस्त नदियाँ विन्ध्याचल के पाद से प्रसूत होने वाली और शुभ तथा परम

पवित्र जल वाली हैं ॥ ३३-३४ ॥ गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणी, वञ्जुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, कावेरी ये समस्त नदियाँ दक्षिण पथ की ओर वाली तथा सह्याद्रि पर्वत के पाद से निकली हुई हैं ॥ ३५ ॥

कृतमाला ताम्रवर्णा पुष्पजात्युत्पलावती ।
मलयाभिजातास्ता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ॥३६
त्रिसामा ऋतुकुल्या च इक्षुला त्रिदिवा च या ।
लाङ्गुलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः ॥३७
ऋषीका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ।
कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥३८
सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वा गङ्गाः समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः ॥३९
तासां नद्युपनद्योऽपि शतशोऽथ सहस्रशः ।
तास्त्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ॥४०
शूरसेना भद्रकारा बोधाः शतपथेश्वरैः ।
वत्साः किसष्णाः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ॥४१
अथ पार्श्वे तिलङ्गाश्च मगधाश्च वृकैः सह ।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्तिताः ॥४२

कृतमाला, ताम्रवर्णा, पुष्पजाती, उत्पलावती, ये समस्त नदियाँ मलयाचल से उत्पन्न होने वाली तथा शुभ एवं शीतल जल वाली हैं ॥ ३६ ॥ त्रिसामा, ऋतुकुल्या, इक्षुला, त्रिदिवा, लाङ्गुलिनी, वंशधरा, महेन्द्र तनया अर्थात् ये सब महेन्द्राचल से उत्पन्न होने वाली नदियाँ कही गई हैं ॥ ३७ ॥ ऋषीका, सुकुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कृपा, पलाशिनी ये सब नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से प्रसूत होने वाली हैं ॥ ३८ ॥ ये सभी नदियाँ पुण्य अर्थात् परम पवित्र हैं, सरस्वती हैं और सब गङ्गा एवं समुद्र में जाने वाली हैं। ये सब विश्व की माताएँ और जगती तल के समस्त पापों का हरण करने वाली कही गई हैं ॥ ३९ ॥ इन नदियों से निकलने वाली उपनदियाँ भी सैकड़ों तथा सहस्रों ही हैं। वे ये सब कुरुपाञ्चाल, शाल्व और सजाङ्गला हैं ॥ ४० ॥ शूरसेना,

भद्रकारा और शतपथेश्वरों के द्वारा बोधा वत्सा, किसष्णा, कुल्या, कुन्तला, काशिकोसला हैं ॥ ४१ ॥ इसके अनन्तर पार्श्व में ही तिलङ्ग, मगध जो कि वृकों के सहित हैं, मध्यदेश में ये प्रायः जनपद कहे गये हैं ॥ ४२ ॥

सह्यस्य चोत्तरार्द्धे तु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामिह कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥४३
तत्र गोवर्द्धनो नाम सुरराजेन निर्मितः ।
रामप्रियार्थं स्वर्गोऽयं वृक्षा ओषधयस्तथा ॥४४
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिताः ।
अन्तःपुरवनोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरम. ॥४५
वाह्लीका वाढधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
अपरीताश्च शूद्राश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिकाः ॥४६
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः ।
शका ह्रदाः कुलिन्दाश्च परिता हारपूरिकाः ॥४७
रमटा रद्धकटकाः केकया दशमानिकाः ।
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ॥४८
काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बराः प्रियलौकिकाः ।
पीनाश्चैव तुषाराश्च पह्लवा बाह्यतोदराः ॥४९
आत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्चः कसेरुकाः ।
लम्पाका स्तनपाश्चैव पीडिका जुहुडैः सह ।५०
अपगाश्चालिमद्राश्च किरातानाञ्च जातयः ।
तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तङ्गणास्तथा ॥५१
चूलिकाश्चाहुकाश्चैव पूर्णदर्वास्तथैव च ।
एते देशा ह्युदीच्याश्च प्राच्यान् देशान्निबोधत ॥५२

सह्य पर्वत के उत्तरार्द्ध में जहाँ कि गोदावरी नदी है पृथ्वी में और समस्त इस भूमण्डल में यह प्रदेश बहुत ही सुन्दर है ॥ ४३ ॥ वहाँ पर गोवर्द्धन पर्वत है जो कि सुरराज के द्वारा विनिर्मित किया गया है। यह राम की प्रिया के लिये स्वर्ग है तथा यहाँ पर वृक्षादि एवं ओषधियाँ सब भरद्वाज मुनि

ने ही उसके प्रिय करने के लिये अवतरित किये हैं। अन्तपुर वन वा उद्देश उसने परम सुन्दर उत्पन्न किया है ॥ ४४ ४५ ॥ वाह्लीक, वाढधान, आभीर कालतोयक, अपरीत, पह्लव और चम खण्डिक शूद्र जात वाले लोग होते हैं। गान्धार यवन, सिंधु सौवीर, भद्रक, शक ह्रद, कुलिन्द, परित, हारपूरिक रमट, रद्ध कटिक केकय दशमानिक य क्षत्रियोपनिवेश तथा वैश्य एवं शूद्र कुल हैं ॥ ४६ ४७ ४८ ॥ काम्बोज दरद, बर्बर, प्रियलौकिक, पीन तुषार पह्लव और वाह्यनोदर हैं। आत्रेय, भरद्वाज, प्रस्थल, कसेरुक लम्पाक, स्तनपा तथा जुहुडो के सहित पीडिक, अपग और अलिमद्र ये सब किरातों की जातियाँ होती हैं। तोमर, हसमाग, काश्मीर, तङ्गण चूलिक वाहुक तथा पूर्ण दर्वा य सब देश उत्तर के हैं अर्थात् उत्तर दिशा मे हाने वाले प्रदेश हाते है। अब प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा म होने वालो को श्रवण करो ॥ ४९ ५० ५१-५२ ॥

अन्ध्रवाका सुजरका अन्तर्गिरिवहिर्गिरा ।
तथा प्रवङ्गवङ्ग या मालदा मालवर्तिन ॥५३
ब्रह्मोत्तरा प्रविजया भार्गवा गयमर्थका ।
प्राग्ज्योतिषाश्च मुण्डाश्च विदेहास्ताम्रलिप्तका ।
माला मगधगोविन्दा प्राच्या जनपदा स्मृता ॥५४
अथापरे जनपदा दक्षिणापथ वासिन ।
पाण्ड्याश्च केरलाश्चव चोल्या कुल्यास्तथैव च ॥५५
सतुका मूषिकाश्चव कुमना वनवासिका ।
महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सर्वश ॥५६
अभीरा सह चैषीका आटव्याश्च वराश्च ये ।
पुलिन्द्रा विन्ध्यमूलीका वैदर्भा दण्डकै सह ॥५७
पौनिका मौनिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धना ।
नैणिका कुन्तला आन्ध्रा उद्भिदा नलकालिका ॥५८
दाक्षिणात्याश्च वै देशा अपरास्तान्निबोधत ।
शूर्पारकारा कोलवना दुर्गा कालीतकै सह ॥५९
पुलयाश्च सुरालाश्च रूपसास्तापसै सह ।
तथा तुरसिताश्चैव सर्व चव परक्षरा ॥६०

अन्धवाक सुजरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिर, प्रवङ्ग वङ्ग, मालदा, मालवर्त्ती, ब्रह्मोत्तर, प्रविजय, भार्गव, गेयमर्थक, प्राग्ज्योतिष, मुण्ड, विदेह, ताम्रलिसक, माला, मगध और गोविन्द ये सब जन पद प्राची दिशा में कहे गये हैं ॥ ५३ ५४ ॥ इनके अनन्तर दक्षिणापथ वासी जनपद हैं जिनके नाम पाण्डय, केरल, चौल्य कुल्य, सेतुक, मूषिक, कुमन, वनवासिक है। महाराष्ट्र, माहिषक, कलिङ्ग, अभीर, चैषीक, आटव, वरा, पुलिन्द्र, विन्ध्य भूलीक और दण्डकों के सहित वैदर्भ, पौनिक, मौनिक, अस्मक, भोगवर्द्धन, नैर्णिक, कुन्तल, आन्ध्र, उद्भिद और नलकालिक ये सब दक्षिणात्य प्रदेश होते हैं। इनके अतिरिक्त जो दूसरे हैं अब उनका श्रवण करो। शूर्पाकार, कोलवन, कालीतक, पुलेय, सुराल, रूपस, तापस, तुरसित ये सब परक्षर हैं ॥ ५५-५६।५७-५८-५९-६० ॥

नासिक्याद्याश्च ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः।
भानुकच्छाः समा हेयाः सहसा शाश्वतैरपि ॥६१
कच्छीयाश्च सुराष्ट्रश्च अनर्त्ताश्चार्बुदैः सह।
इत्येते सम्परीताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः ॥६२
मालवाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह ॥६३
तोसलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिकास्तथा।
तुमुरास्तुम्बुराश्चैव षट्सुरा निषधैः सह ॥६४
अनुपास्तुण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवन्तयः।
एते जनपदाः सर्वे विन्ध्य पृष्ठनिवासिनः ॥६५
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये।
निगर्हरा हंसमार्गाः क्षुपणास्तङ्गणाः खसाः ॥६६
कुशप्रावरणाश्चैव हूणा दर्वाः सहूदकाः।
त्रिगर्त्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ॥६७
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुष्टयम्।
तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टान्निबोधत ॥६८

नासिक से आद्य लेकर जो नर्मदा के अन्तर मे है वे शाश्वतो के द्वारा सहसा भानुकच्छ के समान हेय हैं । कच्छीय, सुराष्ट्र, आवर्त्त, अर्बुद ये सब सम्परीत होते हैं । अब विन्ध्य वासियो को श्रवण करो । मालव, करूष, मेकल, उत्कल, उत्तमर्ण दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, तोसल, कोसल, त्रैपुर तथा वैदिक, तुमुर, तुम्बुर, पटमुर, निषध, अनुप, तुण्डिकेर, वीतिहोत्र, अवन्ती ये समस्त जनपद विन्ध्य के पृष्ठ पर निवास करने वाले हैं ॥ ६१-६२-६३-६४-६५ ॥ इसके आगे जो पर्वताश्रयी देश है उन्हे बतलाया जाता है निगर्हर, हंसमार्ग, क्षुपण, तङ्गण, खस, कुशप्रावरण, हूण, दर्व सहूरक, त्रिगर्त, मालव, किरात, तामस ये पर्वतो पर आश्रय वाले प्रदेश हैं । कवि लोग भारतवर्ष मे चार युग कहते हैं उनके नाम कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चार होते हैं । उनका निसर्ग बतलायेंगे । ऊपर से जानलो ॥ ६६-६७-६८ ॥

॥ प्रकर्ण ३३–ज्योतिष प्रचार (१) ॥

अथ प्रमाण मूर्द्धञ्च वर्ण्यमान निबोधत ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पंचमम् ।
अनन्तधातवो ह्येते व्यापकास्तु प्रकीर्तिता· ॥१
जननी सर्वभूताना सर्वभूतधरा धरा ।
नानाजनपदाकीर्णा नानाधिष्ठानपत्तना ॥२
नाननदनदीशैला नैकजातिसमाकुला ।
अनन्ता गीयते देवी पृथिवी बहुविस्तरा ॥३
नदीनदसमुद्रस्थास्तथा क्षुद्राश्रया स्थिता ।
पर्वताकाशसस्थाश्च अन्तर्भूमिगताश्चया ॥४
आपोऽनन्ताश्च विज्ञेयास्तथाग्नि· सर्वलौकिक· ।
अनन्तः पठ्यते चैव व्यापक सर्वसम्भवः ॥५
तथाकाशमनालम्बं रम्य नानाश्रय स्मृतम् ।
अनन्त प्रथित सर्व वायुश्चाकाशसम्भव ॥६
आप पृथिव्यामुदके पृथिवी चोपरि स्थिता ।
आकाशञ्चापरमद्यः पुनर्भूमि· पुनर्जलम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब आप लोग अधःप्रमाण और ऊर्द्ध जो कि मेरे द्वारा वर्ण्यमान होगा उसका श्रवण करें। पृथिवी, वायु, आकाश, जल और पाँचवीं ज्योति ये अनन्त धातुऐं हैं जो व्यापक कही गई हैं ॥ १ ॥ समस्त प्राणियों के जनन करने वाली जननी तथा सम्पूर्ण भूतों को धारण करने वाली धरा होती है जो कि अनेक प्रकार के जनपदों से आकीर्ण है तथा विविध प्रकार के अधिष्ठान एवं नगरों वाली है ॥ २ ॥ इस धरा में नाना भाँति के नद, नदी तथा पर्वत हैं और अनेक प्रकार की जातियों से यह समाकुल हो रही है। यह पृथिवी देवी अनन्त एवं बहुत विस्तार वाली गाई जाती है ॥ ३ ॥ नदी, नद और समुद्र में रहने वाले तथा छोटे-छोटे आश्रमों में स्थित, पर्वत एवं आकाश में रहने वाले तथा इस भूमण्डल के अन्दर में रहने वाले जल भी अनन्त हैं उन्हें भी बिना अन्त वाले जानना चाहिए। इसी भाँति समस्त लोक में रहने वाला यह अग्नि भी व्यापक एवं सर्व सम्भव तथा अनन्त पढ़ा जाता है ॥ ४-५ ॥ इसी प्रकार से यह आकाश बिना अवलम्ब वाला, सुन्दर एवं अनेकों का आश्रय कहा गया है। यह सब अनन्त प्रथित है। और वायु आकाश से उत्पन्न होने वाला है ॥ ६ ॥ जल पृथिवी में है और जल के ऊपर यह पृथ्वी स्थित है। आकाश ऊपर है फिर नीचे जल है और फिर भूमि है ॥ ७ ॥

एवमन्तमनन्तस्य भौतिजस्य न विद्यते।
पुरा सुरैरभिहितं निश्चितन्तु निबोधत ॥८
भूमिजलमथाकाशमिति ज्ञेया परम्परा।
स्थितिरेषा तु विज्ञेया सप्तमेऽस्मिन् रसातले ॥९
दशयोजनसाहस्रमेकभौमं रसातलम्।
साधुभिः परिविख्यातमेकैकं बहुविस्तरम् ॥१०
प्रथममतलञ्चैव सुतलन्तु ततः परम्।
ततः परतरं विद्याद्वितलं बहुविस्तरम् ॥११
ततो गभस्तलं नाम परतश्च महातलम्।
श्रीतलञ्च ततः प्राहुः पातालं सप्तमं स्मृतम् ॥१२
कृष्णभौमञ्च प्रथमं भूमिभागश्च कीर्त्तितम्।

पाण्डुभौम द्वितीयन्तु तृतीय रक्तमत्तिकम् ॥१३
पीतभौमश्चतुर्थन्तु पचम शर्करातलम् ।
षष्ठ शिलामयञ्चैव सौवर्णं सप्तमन्तलम् ॥१४

इस प्रकार से इस भौतिक की अनन्तता है और इसका अन्त कभी नहीं होता है। पहिले देवों ने जो कहा है अब आप जो भी निश्चित है उसका श्रवण करो ॥ ८ ॥ भूमि, जल तथा आकाश यह इनकी परम्परा होती है जो कि जानने के योग्य है। इस सप्तम रस तल में यह स्थिति जानने के योग्य होती है ॥ ९ ॥ दश सहस्र योजन वाला यह एक भौम रसातल है। साधु पुरुषों के द्वारा यह एक-एक बहुत विस्तार से युक्त परिविख्यात है ॥ १० ॥ इनमें जो प्रथम है वह अतल नाम वाला है। इसके आगे सुतल होता है। इसके भी आगे बहुत विस्तार वाला वितल होता है ॥ ११ ॥ इस के आगे गभस्तल नाम वाला है और फिर आगे महातल है। इस के आगे श्रीतल कहा गया है और पाताल सातवाँ कहा गया है ॥ १२ ॥ प्रथम भाग कृष्ण भौम है जो कि भूमिका भाग कीर्तित किया गया है। पाण्डु भूमि वाला पाण्डु भौम दूसरा भाग है। तीसरा रक्त भूमि वाला अर्थात् जिसमें लाल मिट्टी है ऐसा भाग है। पीतभौम चौथा भाग होता है। पाचवाँ भाग शर्करा तल वाला होता है और छठवाँ भाग शिलाओं से पूर्ण है तथा सातवाँ भाग सौवर्ण होता है अर्थात् हेममय है ॥ १३-१४ ॥

प्रथमे तु तले ख्यातमसुरेन्द्रस्य मन्दिरम् ।
नमुचेरिन्द्रशत्रोर्हि महानादस्य चालयम् ॥१५
पुरञ्च शकुकर्णस्य कबन्धस्य च मन्दिरम् ।
निष्कुलादस्य च पुर प्रहृष्टजनसकुलम् ॥१६
राक्षसस्य च भीमस्य शूलदन्तस्य चालयम् ।
लोहिताक्षकलिङ्गाना नगर श्वापदस्य तु ॥१७
धनञ्जयस्य च पुर माहेन्द्रस्य महात्मन. ।
कालियस्य च नागस्य नगर कलसस्य च ॥१८
एव पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।

तले ज्ञेयानि प्रथमे कृष्णभौमे न संशयः ॥१६
द्वितीयेऽपि तले विप्रा दैत्येन्द्रस्य सुरक्षसः ।
महाजम्भस्य च तथा नगरं प्रथमस्य तु ॥२०
हयग्रीवस्य कृष्णस्य निकुम्भस्य च मन्दिरम् ।
शंखाख्येयस्य च पुरं नगरं गोमुखस्य च ॥२१

इनमें जो प्रथम तल है उसमें असुरों के स्वामी का मन्दिर ख्यात है । इन्द्र के शत्रु महानाद वाले नमुचि का यह आलय है ॥ १५ ॥ शंकुकर्ण का नगर है और कबन्ध का मन्दिर है । और निष्कुल से इसका पुर परम प्रहृष्ट मनुष्यों से संकुल अर्थात् घिरा हुआ है ॥ १६ ॥ अत्यन्त भीम अर्थात् भयानक शूलदन्त राक्षस का आलय है । लोहिताक्षक लिङ्गों का और श्वापद का नगर है ॥ १७ ॥ माहेन्द्र महात्मा धनञ्जय का नगर है तथा कालिय नाग का और कलस का वहाँ पर नगर है ॥ १८ ॥ इस प्रकार से वहाँ पर नाग दानव और राक्षसों के सहस्रों नगर हैं । ये सब कृष्णभौम प्रथम तल में ही जानने के योग्य होते हैं और इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ १६ ॥ हे विप्रो ! द्वितीय तल में भी दैत्यों के स्वामी राक्षस प्रथम महाजम्भ का नगर है ॥ २० ॥ और फिर वहाँ हयग्रीव, कृष्ण, और निकुम्भ का मन्दिर है । शंख नाम वाले और गोमुख का पुर एवं नगर है ॥ २१ ॥

राक्षसस्य च नीलस्य मेघस्य क्रथनस्य च ।
पुरञ्च कुहवादस्य महोष्णीषस्य चालयम् ॥२२
कम्बलस्य च नागस्य पुरमश्वतरस्य च ।
कद्रुपुत्रस्य च पुरं तक्षकस्य महात्मनः ॥२३
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
द्वितीयेऽस्मिन् तले विप्राः पाण्डुभौमे न संशयः ॥२४
तृतीये तु तले ख्यातं प्रह्लादस्य महात्मनः ।
अनुह्लादस्य च पुरं दैत्येन्द्रस्य महात्मनः ॥२५
तारकाख्यस्य च पुरं पुरं त्रिशिरसस्तथा ।
शिशुमारस्य च पुरं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥२६

च्यवनस्य च विज्ञेय राक्षसस्य च मन्दिरम् ।
राक्षसेन्द्रस्य च पुर कुम्भिलस्य खरस्य च ॥२७
विराधस्य च क्रूरस्य पुरमुल्कामुखस्य च ।
हेमकस्य च नागस्य तथा पाण्डुरकस्य च ॥२८

इसके अतिरिक्त वहाँ पर नील, मेघ और क्रथन राक्षस का पुर है तथा कुरपाद और महोष्णीष का आलय है ॥ २२ ॥ कम्बल नाग का और अश्वतर का पुर है । कद्रू के पुत्र महान् आत्मा वाले तक्षक का नगर है ॥ २३ ॥ इस प्रकार से वहाँ पर नाग, दानव और राक्षसो के सहस्रो ही पुर हैं । हे विप्रो ! इस द्वितीय तल मे ऐसे अनेक नगर हैं जो कि पाण्डुभौम इस नाम वाला है । इसमे भी तनिक सशय नही है ॥ २४ ॥ तीसरे तल मे महात्मा प्रह्लाद का पुर प्रसिद्ध है तथा महात्मा दैत्येन्द्र अनुह्लाद का नगर है ॥ २५ ॥ वहाँ पर इसके अतिरिक्त तारक नाम वाले का पुर, त्रिशिरा का पुर, और हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से समाकुल शिशुमार का पुर है ॥ २६ ॥ वहाँ पर च्यवन राक्षस का मन्दिर है सो जान लेना चाहिए तथा राक्षसेन्द्र कुम्भिल और खर का पुर भी है ॥२७॥ तथा अत्यन्त क्रूर विराध का पुर और उल्कामुख का पुर है । एव हेमक, नाग तथा पाण्डुरक के भी वहाँ पर पुर हैं ॥ २८ ॥

मणिमन्त्रस्य च पुर कपिलस्य च मन्दिरम् ।
नन्दस्य चोरगपतेर्विशालस्य च मन्दिरम् ॥२९
एव पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
तृतीयेऽस्मिस्तले विप्रा पीतभौमे न सशय ॥३०
चतुर्थे दैत्यसिंहस्य कालनेमेर्महात्मन ।
गजकर्णस्य च पुर नगर कुञ्जरस्य च ॥३१
राक्षसेन्द्रस्य च पुर सुमालेर्बहुविस्तरम् ।
मुञ्जस्य लोकनाथस्य वृकवक्त्रस्य चालयम् ॥३२
बहुयोजनसाहस्र बहुपक्षिसमाकुलम् ।
नगर वैनतेयस्य चतुर्थेऽस्मिन् रसातले ॥३३
पञ्चमे शर्कराभौमे बहुयोजनविस्तृते ।

विरोचनस्य नगरं दैत्यसिंहस्य धीमतः ॥३४
वैदूर्य्यस्याग्निजिह्वस्य हिरण्याक्षस्य चालयम् ।
पुरञ्च विद्युज्जिह्वस्य राक्षसस्य च धीमतः ॥३५

वहाँ तीसरे तल में मणिमन्त्र का पुर तथा कपिल का मन्दिर है। उरगों के स्वामी नन्द का एवं विशाल का मन्दिर है ॥ २९ ॥ हे विप्रो इस तृतीय तल में, जो कि पीतभौम है, नाग, दानव और राक्षसों के सहस्रों ही पुर एवं मन्दिर हैं इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ३० ॥ अब आगे चौथे तल में दैत्यों में सिंह महात्मा कालनेमि के, गजकर्ण के तथा कुञ्जर के पुर एवं मन्दिर हैं ॥ ३१ ॥ तथा राक्षसेन्द्र सुमालि का बहुत विस्तार वाला पुर है। मुञ्ज लोकनाथ वृत्रवक्त्र के आलय हैं ॥ ३२ ॥ इस चतुर्थ रसातल में बहुत से सहस्र योजन के विस्तार वाला और बहुत से पक्षियों समाकुल घिरा हुआ वैनतेय का सुरम्य नगर है ॥ ३३ ॥ पाँचवाँ जो शर्करा भौम तल है उसमें जो कि बहुत योजनों के विस्तार वाला है दैत्यों में सिंह के समान एवं बुद्धिमान् विरोचन का नगर है ॥ ३४ ॥ वैदूर्य, अग्नि जिह्व और हिरण्याक्ष का आलय (घर) है तथा धीमान् राक्षस विद्युज्जिह्व का पुर भी है ॥ ३५ ॥

महामेघस्य च पुरं राक्षसेन्द्रस्य शालिनः ।
कम्मरिस्य च नागस्य स्वस्तिकस्य जयस्य च ॥३६
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
पञ्चमेऽपि तथा ज्ञेयं शर्करानिलये सदा ॥३७
षष्ठे तले दैत्यपतेः केसरेर्नगरोत्तमम् ।
सुपर्णणः सुलोम्नश्च नगरं महिषस्य च ।
राक्षसेन्द्रस्य च पुरमुत्क्रोशस्य महात्मनः ॥३८
तत्रास्ते सुरसापुत्रः शतशीर्षो मुदा युतः ।
कश्यपस्य सुतः श्रीमान् वासुकिर्नाम नागराट् ॥३९
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
षटे तलेऽस्मिन् विख्याते शिलाभौमे रसातले ॥४०
सप्तमे तु तले ज्ञेयं पाताले सर्वपश्चिमे ।

पुर वन्ने प्रमुदित नरनारीसमाकुलम् ॥४१
असुराशीविषैं पूर्णमुद्धृतैर्दैवशत्रुभि ।
मुचुकुन्दस्य दैत्यस्य तत्र वै नगर महत् ॥४२

राक्षसेन्द्र एव शाली महामेघ का पुर है। तथा इसी तल मे कमरि, नाग स्वस्तिक तथा जय के भी पुर हैं ॥३६॥ इस प्रकार से पाँचवें शर्करा नितय म नाग, दानव तथा राक्षसो के सहस्रो ही पुर स्थित हैं सो जानलेने चाहिए ॥३७॥ अब छठा तल जो है इसमे दैत्यो के पति केसरी का उत्तम नगर है। एव सुपर्वा, सलोमा और महिष के नगर हैं। राक्षसेन्द्र महात्मा उत्क्रोश का नगर है ॥३८। वहाँ पर छठे तत्र मे सुरसा का पुत्र और शतशीर्ष बड़ी ही प्रसन्नता से युक्त है और वहाँ कश्यपका पुत्र श्रीमान् नागराट् वासुकि नाम वाला है ॥३९॥ इस छठे शिलाभौम विख्यात रसातल म नाग, दानव और राक्षसो के हजारो ही पुर हैं ॥४०॥ अब सातवें तल मे जोकि सब से पीछे वाला है पाताल नाम वाले मे नर और नारियो से समाकुल वलि का बहुत ही प्रमुदित नगर है ॥४१॥ वहाँ पर असुर और आशीविषो से पूर्ण और उद्धृत देवो के शत्रुओ से युक्त मुचुकुन्द दैत्य का एक बहुत बडा नगर है ॥४२॥

अनेकैर्दितिपुत्राणा समुदीर्णैर्महापुरैः ।
तथैव नागनगरैर्ऋद्धिमद्भि सहस्रश ॥४३
दैत्याना दानवानाञ्च समुदीर्णैर्महापुरैः ।
उदीर्णैं राक्षसावासैरनेकैश्च समाकुलम् ॥४४
पातालान्ते च विप्रेन्द्रा विस्तीर्णे बहुयोजने ।
आस्ते रक्तारविन्दाक्षो महात्मा ह्यजरामर ॥४५
धौतशङ्खोदरवपुर्नीलवासा महाभुज ।
विशालभोगो द्युतिमाश्चित्रमालाधरो वली ॥४६
रुक्मश्मश्रूज्ज्वलरवदातेन दीप्तास्येन विराजता ।
प्रमुमुखसहस्रेण शोभते वै स कुण्डली ॥४७
स जिह्वामालया देवो लोलज्वालानलार्चिषा ।
ज्वालामालापरिक्षिप्त कैलाम इव लक्ष्यते ॥४८

स तु नेत्रसहस्रेण द्विगुणेन विराजता ।
बालसूर्याभिताम्रेण शोभते स्निग्धमण्डलः ॥४९

वहाँ सप्तम तल में अनेक दिति के पुत्रों के समुदीर्ण महान् पुरों से, तथा नागों के नगरों से जोकि बहुत ही ऋद्धिमान् हैं और संख्या में भी सहस्रों हैं, दैत्य और दानवों के समुदीर्ण महान् पुरों से तथा उदीर्ण राक्षसों के आवास स्थानों से जोकि बहुत से हैं यह सप्तम तल समाकुल हैं ।।४३।।४४।। हे विप्रेन्द्रो बहुत योजनों के विस्तार वाले इस पतालान्त में महात्मा अजरामर रक्तार विन्दाक्ष है ।।४५।। वहाँ धौत शङ्खोरवपु, नीलवासा, महाभुज, विशालभोग, द्युतिमान्, चित्रमालाधर, बली, रुक्मश्रृङ्ग से अवदात (श्वेत) दीप्तमुख से विराजमान सहस्र मुख से प्रभुकुण्डली शोभा देता है ।।४६।।४७।। वहाँ पर वह देव लोल (चंचल) ज्वाला के अनल की अर्चि वाली जिह्वाओं की माला से परिक्षिप्त कैलास की भाँति दिखाई देते हैं ।।४८।। वहाँ पर वह दुगुने सहस्र नेत्रों की शोभा से जोकि बाल सूर्य की अभिताम्रता के सदृश है स्निग्धमण्डल शोभायमान होते हैं ।।४९।।

तस्य कुन्देन्दुवर्णस्य अक्षमाला विराजते ।
तरुणादित्यमालेव श्वेतपर्वतमूर्द्धनि ॥५०
जटाकरालो द्युतिमान् लक्ष्यते शयनासने ।
विस्तीर्ण इव मेदिन्यां सहस्रशिखरो गिरिः ॥५१
महाभोगैर्महाभागैर्महानागैर्महाबलैः ।
उपास्यते महातेजा महानागपतिः स्वयम् ॥५२
स राजा सर्वनागानां शेषो नाम महाद्युतिः ।
सा वैष्णवी ह्यहितनुर्मर्यादायां व्यवस्थिता ॥५३
सप्तैवमेते कथिता व्यवहार्या रसातलाः ।
देवासुरमहानागराक्षसाध्युषिताः सदा ॥५४
अतः परमनालोक्यमगम्यं सिद्धसाधुभिः ।
देवानामप्यविदितं व्यवहारविवर्जितम् ॥५५
पृथिव्यम्भ्यग्निवायूनां नभसश्च द्विजोत्तमाः ।
महत्त्वमेवमृषिभिर्वर्ण्यते नात्र संशयः ॥५६

कुन्द और इन्दु के समान वर्ण वाले उसकी अक्षमाला विराजमान है। वह ऐसी प्रतीत होती है जैसे हिमाच्छन्न दिव्य श्वेत पर्वत के शिखर पर तरुण सूर्यों की माला हो ।।५०।। जटाओं से कराल द्युति वाले उस अपने शयनासन पर ऐसे दिखाई देते हैं जैसे भूमि पर सहस्र शिखरों वाला कोई पर्वत फैला हुआ हो ।।५१।। वह महान् नागों का स्वामी महान् भाग वाले और महान् भोग वाले तथा महान् बल वाले महान् नागों के द्वारा महान् तेज से युक्त स्वय उपास्यमान होते हैं ।।५२।। वह समस्त नागों के राजा है और महान् द्युति वाले शेष नाम वाले हैं। वह अहि की तनु अर्थात् शरीर वैष्णवी अर्थात् विष्णु से सम्बन्ध रखने वाली है जोकि मर्यादा में व्यवस्थित है ।।५३।। ये सातों ही व्यवहार के योग्य रसातल कहे गये हैं। ये सब सर्वदा देव, असुर, महानाग और राक्षसों के निवास भूमि बने हुए हैं ।।५४।। इससे आगे स्थान देखने तथा गमन करने के अयोग्य है जिसमें कि बड़े सिद्ध और साधु भी नहीं जासकते हैं। यह आगे क्या है इसे देवगण भी नहीं जानते हैं और व्यवहार से सर्वथा रहित ही है ।।५५।। हे द्विजोत्तमो ! ऋषियों के द्वारा पृथिवी, अग्नि जल, वायु और आकाश का महत्व इसी प्रकार से वर्णन किया जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।५६।।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् ।
सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु ।
प्रकाशतः स्वभाभिस्तौ मण्डलाभ्यां समाश्रितौ ।।५७
समानाच्च समुद्राणां द्वीपानान्तु स विस्तरः ।
विस्तरार्द्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यतः ।।५८
पर्याप्तपारिमाण्यन्तु चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः ।
पर्याप्तपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ।।५९
अवति त्रीनिमान् लोकान् यस्मात् सूर्यं परिभ्रमन् ।
अवधातु प्रकाशाख्यो ह्यवनात्स रविः स्मृतः ।।६०
अत परं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः ।
महितत्वा महीशब्दो ह्यस्मिन् वर्षे निपात्यते ।।६१

अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भन्तु सुविस्तरम् ।
मण्डलं भास्करस्याथ योजनानां निबोधत ॥६२
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु ।
विस्तारात्त्रिगुणश्चास्य परिणाहोऽथ मण्डलम् ।
विष्कम्भो मण्डलस्यैव भास्कराद्द्विगुणः शशी ॥६३

इससे आगे सूर्य और चन्द्रमा की गति के विषय में बतलाऊँगा । ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा जब तक भ्रमण किया करते हैं वे दोनों मण्डलों से समास्थित होते हुए अपनी प्रभा से प्रकाशित होते हैं ॥५७॥ सात समुद्रों का और द्वीपों का वह विस्तार है पृथिवी का तो उस विस्तार का अर्धभाग है जोकि बाह्य से अन्य में होता है ॥५८॥ चन्द्र और आदित्य पर्याप्त के पारिमाण्य को प्रकाशित किया करते हैं और पर्याप्त के पारिमाण्य से तुल्य ही दिव कहा गया है ॥५९॥ वह सूर्य परिभ्रमण करता हुआ तीनों लोकों की जिस कारण रक्षा किया करता है वह अव धातु प्रकाश नाम वाला है और अवन करने से ही वह रवि कहा गया है ॥६०॥ इससे आगे अब चन्द्र और सूर्य का प्रमाण कहा जाता है । महित्व के कारण से मही यह शब्द इस वर्ष में निपातित किया जाता है ॥६१॥ इस भारतवर्ष का सुविस्तार विष्कम्भ है अनन्तर भास्कर के मण्डल के योजन समझलो ॥ ॥६२॥ भास्कर का विस्तार नौ योजन सहस्र अर्थात् नौ योजन वाला है । इसके विस्तार से तिगुना इसके मण्डल का ही विष्कम्भ है । भास्कर से दुगुना चन्द्रमा है ॥६३॥

अतः पृथिव्यां वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः सह ।
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलञ्च यत् ॥६४
इत्येतदिह सङ्ख्यातं पुराणं परिमाणतः ।
तद्वक्ष्यामि प्रसङ्ख्याय साम्प्रतैरभिमानिभिः ॥६५
अभिमानिव्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह ।
देवा ये वै ह्यतीतास्ते रूपैर्नामभिरेव च ॥६६
तस्मात्तु साम्प्रतै र्देवै र्वक्ष्यामि वसुधातलम् ।
दिवस्तु सन्निवेशो वै साम्प्रतैरेव कृत्स्नशः ॥६७

शतार्द्ध कोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नत स्मृता ।
तस्या चार्धप्रमाणेन मेरोर्वै चातुरन्तरम् ॥६८॥
पृथिव्या चार्धविस्तारो योजनाग्रात्प्रकीर्तित ।
मेरुमध्यात् प्रतिदिश कोटिरेकादश स्मृता ॥६९॥
तथा शतसहस्राणि एकोननवति पुन ।
पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्या चार्धविस्तर ॥७०

इसलिए पृथिवी का प्रमाण योजनो के साथ बतलाता हूँ । सात द्वीपों और सप्त समुद्रो वाली का विस्तार और जो मण्डल है वह यहाँ पर परिमाण से पुराण ने संख्या की है । वह आजकल के होने वाले अभिमानियों के द्वारा प्रसंख्या के लिये बतलाता हूँ ॥५४॥६५॥ जो अभिमान करने वाले व्यतीत हो गये वे यहाँ आज के समय म होने वालो के तुल्य ही थे । जो देवता थे व भी न मा और अपने रूपो से सब व्यतीत हो गये हैं ॥६६॥ इससे साम्प्रत अर्थात् इस समय मे होने वाले दवो से वसुधा तल को बतलाता हूँ । साम्प्रतो के द्वारा ही पृणत्व न दिव का सन्निवेश होता है ॥६७॥ यह पृथ्वी पूर्णतया पचास करोड विस्तार वाली कही गई । उसके अर्ध प्रमाण स मेरु का चातुरन्तर होता है ॥६८॥ पृथिवी का आधा विस्तार योजनाग्र से प्रकीर्तित होता है । मेरु के मध्य से प्रतिदिशा मे ग्यारह करोड कहे गये हैं ॥६९॥ सौ हजार नवासी और पचास सहस्र पृथिवी का अर्ध विस्तार है । ७०॥

पृथिव्या विस्तर कृत्स्न योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्र कोटयस्तु विस्तार सख्यात स चतुर्दिशम् ॥७१
तथा शतसहस्राणमकोनाशीतिरुच्यत ।
सप्तद्वीपसमुद्राया पृथिव्यास्त्वथ विस्तर ॥७२
विस्ताराात त्रिगुणश्चैव पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ।
गणित योजनाग्रन्तु कोटयस्त्वेकादश स्मृता ॥७३
तथा शतसहस्रन्तु सप्तत्रिंशाधिकानि त ।
इत्येतद्वै प्रसङ्ख्यात पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ॥७४
तारकासन्निवेशस्य दिवि यावद्धि मण्डलम् ।

पर्यासः सन्निवेशस्न भूमस्तावत्तु मण्डलम् ।।७५
पर्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ।
सप्तानामपि लोकानामेतन्मानं प्रकीर्तितम् ।।७६
पर्यासपारिमाण्येन मण्डलानुगतेन च ।
उपर्युपरि लोकानां छत्रवत्परिमण्डललम् ।।७७

पृथिवी का विस्तार पूर्णत. योजनों के द्वारा समझना चाहिए। चारों दिशाओं में अर्थात् सभी ओर तीन करोड़ विस्तार संख्यात किया गया है ।।७१।। सात द्वीप और सात समुद्र वाली इस पृथिवी का विस्तार सौ हजार उन्यासी कहा जाता है। ७२।। इस विस्तार से तिगुना पृथिवी के अन्त का मण्डल होता है। योजनाग्र से गिना गया है और ग्यारह करोड़ कहे गये हैं ।।७३। उसी प्रकार से सैंतीस अधिक सौ सहस्र यहपृथिव्यन्त का मण्डल प्रसंख्यात किया गया है ।।७४।। दिव में तारकाओं के सन्निवेश का जितना मण्डल है सन्निवेश का पर्यास और भूमि का मण्डल उतना ही है।।७५।। इसलिये पर्यास के पारिमाण्य से भूमि का दिव के ही तुल्य होता है ऐसा कहा गया है। सातों लोकों का यह मान कहा गया है ।।७६।। पर्यास के परिमाण्य से और मण्डल के अनुगत से लोकों के ऊपर ऊपर छत्र की तरह परिमण्डल होता है ।।७७।।

संस्थितिर्विहिता सर्वा येषु तिष्ठन्ति जन्तवः ।
एतदण्डकटाहस्य प्रमाणं परिकीर्त्तितम् ।।७८
अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ।
भूर्लोकश्च भुवश्चैव तृतीयः स्वरिति स्मृतः ।
महर्लोको जनश्चैव तपः सत्यश्च सप्तमः ।।७९
एते सप्त कृता लोकाश्छत्राकारा व्यवस्थिताः ।
स्वकैरावरणैः सूक्ष्मैर्धार्यमाणाः पृथक् पृथक् ।।८०
दशभागाधिकाभिश्च ताभिः प्रकृतिभिर्बहिः ।
धार्यमाणा विशेषैश्च समुत्पन्नैः परस्परम् ।।८१
अस्याण्डस्य समन्ताच्च सन्निविष्टो घनोदधिः ।
पृथिवीमण्डलं कृत्स्नं घनतोयेन धार्यते ।।८२

घनोदधिपरेणाथ धार्य्यते घनतेजसा ।
बाह्यतो घनतेजस्तु तिर्य्यगूर्द्धन्तु मण्डनम् ॥८३॥
समन्ताद्घनवातेन धार्य्यमाण प्रतिष्ठितम् ।
घनवातात्त धाकाशमाकाशञ्च महात्मना ॥८४

जिनमें जन्तुगण निवास करते हैं उनका सन्निवेश विहित हुई और इस अण्ड कटाह का प्रमाणभी कह दिया गया है ॥७८॥ इस अण्ड के भीतर ये लोक हैं, सात द्वीप हैं और यह पृथ्वी है। तीनों लोकों में भूर्लोक, भुव लोक और तीसरा स्वर्लोक है ऐसा कहा गया है। महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सातवा सत्य लोक है ॥७६॥ ये सात लोक किये गये और छत्र के आकार वाले व्यव-स्थित होते हैं। ये सातों अपने २० आवरणों से जाति अति सूक्ष्म हैं पृथक्-पृथक् धार्य्यमाण हैं। ८०॥ बाहिर देशभाग प्रविक उन प्रकृतियों से और विशेष समुत्थों से परस्पर में ये धार्य्यमाण होते हैं। ८१॥ इस अण्ड के चारों ओर घना समुद्र सन्निविष्ट होता है। इस समस्त भूमण्डन का घन जल से धारण किया जाता है। ८२। इस घनोदधि के परे घन तेज से धारण किया जाता है। बाहिर में घन तेज का तिर्यक् और ऊर्द्ध्व मण्डल होता है। ८३॥ चारों ओर घन वात के द्वारा यह धार्य्यमाण होता हुआ प्रतिष्ठित होता है घन वात से आकाश और महान् आत्मा वाले से आकाश प्रतिष्ठित होता है ॥८४॥

भूतादिना वृत्त सर्वं भूतादिर्महता वृत ।
वृतो महाननन्तेन प्रधानेनाऽव्ययात्मना ॥८५
पुराणि लोकपालाना प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ।
ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाण परिवक्ष्यते ॥८६
मेरो प्राच्या दिशि तथा मानसस्यैव मूर्द्ध नि ।
वस्वौकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता ॥८७
दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
वैवस्वतो निवसति यम सयमन पुरे ॥८८
प्रतीच्यान्तु पुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्द्ध नि ।
सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्याथ धीमत ॥८६

दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
तुल्यः माहेन्द्रपुर्य्या तु सोमस्यापि विभावरी ॥९०
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्द्दिशम् ।
स्थिता धर्म्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च ॥९१

यह सब भूतादि के द्वारा वृत है और यह सब भूत आदि महान् अर्थात् महत् से वृत होता है और वह महान् अव्यक्तात्मा एवं अनन्त प्रधान के द्वारा आवृत होता है ॥८४॥ अब लोकपालों के पुरों को क्रम के अनुसार बताया जायगा और ज्योतिर्गण के प्रचार का प्रमाण भी बताया जायगा ॥८६॥ प्राची अर्थात् पूर्व दिशा में मानस के मूर्धापर मेरु है जिसके ओकसार वाली हेम परिष्कृत माहेन्द्री है ॥८७॥ मानस के मस्तक पर ही मेरु के दक्षिण में संयमनपुर में वैवस्वत यम निवास किया करता है ॥८८॥ और मानस के मूर्धापर मेरु के पश्चिम दिशा में धीमान वरुण देव की परमरम्य सुखा नाम वाली नगरी है ॥८९॥ मानस के ही मूर्धापर उत्तर दिशा में मेरु के माहेन्द्र पुरी के तुल्य ही सोम की विभावरी पुरी है ॥९०॥ मानस के उत्तर पृष्ठ पर चारों दिशाओं में लोकपाल धर्म की व्यवस्था करने के लिये तथा लोकों के संरक्षण करने के वास्ते स्थित रहा करते हैं ॥९१।

लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने ।
काष्ठागतस्य सूर्य्यस्य गतिर्या तां निबोधत ॥९२
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्य्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ।
ज्योतिषाञ्चक्रमादाय सततं परिगच्छति ॥९३
मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः ।
वैवस्वते संयमने उदयस्तत्र उच्यते ॥९४
सुखायामर्द्धरात्रञ्च मध्यगः स्याद्रविर्यदा ।
सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ॥९५
विभायामर्द्धरात्रं स्यान्माहेन्द्य्रामस्तमेति च ।
तदा दक्षिणपूर्वेषामपराह्णो विधीयते ॥९६
दक्षिणापर देश्यानां पूर्व्वाह्णः परिकीर्त्यते ।

तेपामपररात्रञ्च ये जना उत्तरापथे ॥९७
देशा उत्तरपूर्वा ये पूर्वरात्रगत् तान् प्रति ।
एवमेवोत्तरेष्वर्को भवनेषु विराजते ॥९८

लोकपालो के ऊपर के भाग मे मेरु ओर से दक्षिण अयन मे काष्ठागत सूर्य की जो गति होती है उसे आप लोग समझ लेवें ॥९२॥ दक्षिण प्रक्रम मे सूर्य फेंके हुए तीर की भाँति दौड लगाता है और निरन्तर ज्योतिर्गण के चक्र को लेकर चारो ओर जाया करता है ॥९३॥ जिस समय भगवान् भुवन भास्कर अमरावती मे मध्यगामी होते हैं तब वहाँ पर वैवस्वत सयमन मे उदय कहा जाता है ॥९४॥ जब रविदेव मध्यगामी होते हैं तब सुखापुरी मे अर्धरात्रि होती है। सुखा मे और इसके अनन्तर वारुणी मे उत्तिष्ठ मान होते हुए वह दिखलाई दिया करते है ॥९५॥ विभा मे आधीरात होती है और माहेन्द्री वह अस्ताचलगामी होते है । तब दक्षिण पूर्व वालो का अपराह्न किया जाता है ॥९६॥ दक्षिणा परदेश वालों का पूर्वाह्न परिकीर्त्तित होता है । उनके अपर मे रात्रि होती है जो जन उत्तरापथ मे निवास किया करते हैं ॥९७॥ जो देश उत्तर पूर्व होते हैं उनके प्रति पूर्वरात्रि होती है । इसी प्रकार से ही उत्तर भुवनो मे सूर्यदेव विराजमान हुआ करते है ॥९८॥

सुखायामथ वारुण्या मध्याह्ने चार्य्यमा यदा ।
विभावर्य्यां सोमपुर्य्यामुत्तिष्ठति विभावसु ॥९९
रात्र्यर्द्धं चामरावत्यामस्तमति यमस्य च ।
सामपुर्यां विभायान्तु मध्याह्ने स्याद्दिवाकरः ॥१००
महेन्द्रस्यामरावत्यामुत्तिष्ठति यदा रवि ।
अर्द्धरात्र सयमने वारुण्यामस्तमेति च ॥१०१
स शीघ्रमेति पर्य्येति भास्करोऽलातचक्रवत् ।
भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि गगने रवि ॥१०२
एव चतुर्पु द्वीपेषु दक्षिणान्तेन सर्पति ।
उदयास्तमनेनासावुत्तिष्ठति पुन पुन ॥१०३
पूर्वाह्ने चापराह्ने तु द्वौ द्वौ देवालयो तु स. ।

तपत्येकन्तु मध्याह्ने तैरेव तु सरश्मिभिः ॥१०४
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्नं तपन् रविः ।
अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ॥१०५

सुखा में तथा वारुणी में मध्याह्न में जब अर्यमान होते हैं तब विभावरी में और सोमपुरी में विभावसु उत्थित होते हैं अर्थात् उगते हैं ॥ ९९ ॥ उस समय अमरावती में रात्रि का आधा भाग होता है और यम के यहाँ अस्ताचल-गामी हुआ करते हैं। सोमपुरी और विभा में मध्याह्न में दिवाकर हुआ करते हैं ॥ १०० ॥ जिस समय महेन्द्र की अमरावती में सूर्य उदित हुआ करते हैं तब संयमन में आधी रात होती है और वारुणी में अस्त होते हैं ॥ १०१ ॥ वह भास्कर अलात के चक्र की भाँति शीघ्र ही आया करते हैं जाते हैं। आकाश में नक्षत्रों के भ्रममाण होते हुए सूर्य भ्रमण किया करते हैं ॥ १०२ ॥ इस प्रकार से चारों द्वीपों में दक्षिणान्त से प्रसर्पण किया करते हैं। उदय और अस्त मन के द्वारा यह बार-बार उत्थित हुआ करते हैं ॥ १०३ ॥ पूर्वाह्न में और अप-राह्न में वह दो-दो देवालय वाले होते हैं। एक को तो मध्याह्न में तपते हैं और वह उन्हीं रश्मियों के द्वारा वर्धमान होने वालियों से उदित होते हुए मध्याह्न तक सूर्य तपन किया करते हैं इसके पश्चात् ह्रास को प्राप्त होती हुई किरणों से वह अस्ताचल को चले जाया करते हैं ॥ १०४-१०५ ॥

उदयास्तमयाभ्यां हि स्मृते पूर्वापरे दिशौ ।
यावत्पुरस्तात्तपति तावत् पृष्ठे तु पार्श्वयोः ॥१०६
यत्रोद्यन् दृश्यते सूर्यस्तेषां स उदयः स्मृतः ।
यत्र प्रणाशमायाति तेषामस्तः स उच्यते ॥१०७
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे ।
विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च ।
ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥१०८
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं भास्करस्य च ।
उच्छ्रायस्य प्रमाणेन ज्ञेयमस्तमनोदयम् ॥१०९
शुक्लच्छायोग्निरापश्च कृष्णच्छाया च मेदिनी ।

विदूरभावादर्कस्य उद्यतस्य विरश्मिता ।
रक्ताभावो विरश्मित्वाद्रक्तत्वाच्चाप्यनुष्णता ॥११०
लेखयावस्थित सूर्यो यत्र यत्र तु दृश्यते ।
ऊर्द्ध गतः सहस्रन्तु योजनाना स दृश्यते ॥१११
प्रभा हि सौरी पादेन अस्तङ्गच्छति भास्करे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद् रात् प्रकाशते ॥११२

इस प्रकार से उदय और अस्तमयो के द्वारा पूर्वापर दिशाऐं कही गई हैं । जब तक आगे वह तपते हैं तब तक पृष्ठ मे पार्श्व का होना होता है ॥ १०६ ॥ जहाँ पर उगते हुए सूर्यदेव दिखलाई देते हैं उनका वह उदय कहा गया है । जहाँ पर वह प्रकाश को प्राप्त होते हैं उनका वह अस्त कहा जाया करता है ॥ १०७ ॥ सब वर्षों के उत्तर मे मेरु होता है और लोकालोक पर्वत सब के दक्षिण मे होता है । सूर्य के विशेष दूर हो जाने से तथा भूमि की रेखा से आवृत होने से उसकी किरणें ह्रियमान हो जाया करती हैं । इसी कारण से वह रात्रि मे दिखलाई नहीं दिया करते हैं ॥ १०८ ॥ ग्रह नक्षत्र और ताराओ का तथा भास्कर का दर्शन उच्छ्राय के प्रमाण से जानना चाहिए । जो अनोदय होता है वही अस्त कहा जाता है ॥ १०६ ॥ अग्नि और जल शुक्ल छाया वाले हैं और मेदिनी कृष्ण छाया वाली होती है । विशेष दूरी के भाव के होने के कारण से ही उद्यत सूर्य की विरश्मिता होती है अर्थात् किरणो के दर्शन का अभाव रहा करता है जब उसकी विरश्मिता होती है तो उसमे रक्तता का अभाव रहा करता है और लालिमा के भाव का अभाव होने से उष्णता का भी अभाव रहता है ॥ ११० ॥ लेखा से अवस्थित सूर्य जहाँ-जहाँ पर भी दिखलाई देता है तो वह सहस्रो योजन ऊपर गया हुआ दिखलाई दिया करता है ॥१११॥ भगवान् भुवन भास्कर के अस्त मे गमन करने पर सौरी प्रभा पाद से अग्नि मे आविष्ट हो जाया करती है इस लिये रात्रि मे दूर से प्रकाशित होती है ॥११२॥

उदितस्तु पुनः सूर्यः अस्तमाग्नेयमाविशत् ।
सयुक्तो वह्निना सूर्यस्ततः स तपते दिवा ॥११३
प्राकाश्यञ्च तथौष्ण्यञ्च सूर्याग्नेयी च तेजसी ।

परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ।।११४
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तथा तस्मिंश्च दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति तथा सूर्ये रात्रिराविशते त्वपः ।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ।।११५
अस्तं याति पुनः सूर्ये दिनं वै प्रविशत्यपः ।
तस्माच्छुक्ला भवन्त्यापो नक्तमह्नः प्रवेशनात् ।।११६
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ।
उदयास्तमनेऽर्कस्य अहोरात्रं विशत्यपः ।।११७
दिनं सूर्यप्रकाशाख्यं तामसी रात्रिरुच्यते ।
तस्माद्व्यवस्थिता रात्रिः सूर्यविक्ष्यमहः स्मृतम् ।।११८
एवं पुष्करमध्येन यदा सर्पति भास्करः ।
त्रिंशांशकन्तु मेदिन्या मुहूर्तेनैव गच्छति ।।११९

पुनः जब वह उदित होता है तो सूर्य आग्नेय अस्त में आविष्ट हो जाता है और वह्नि से संयुक्त होता हुआ वह सूर्य फिर दिन में तपा करता है ।।११३।। प्रकाश का होना तथा उष्णता का होना ये दोनों ही सूर्य तथा अग्नि के तेज होते हैं। ये दोनों परस्पर में अनुप्रवेश करके ही दिन और रात्रि में आप्यायित्त हुआ करते हैं ।। ११४ ।। भूमि के उत्तर अर्धभाग में तथा दक्षिण में सूर्य के उत्थित होने पर रात्रि जल में आविष्ट हो जाती है। इसी लिये जल दिवारात्रि के प्रवेशन से ताम्र हो जाते हैं ।। ११५ ।। फिर सूर्य के अस्तंगत हो जाने पर दिन जल में प्रविष्ट हो जाया करता है। इसी लिये जल शुक्ल हो जाते हैं। रात्रि दिन के प्रवेशन होने के कारण से ही ऐसा हुआ करता है ।। ११६ ।। इस क्रम के योग से भूमि के अर्ध दक्षिणोत्तर में सूर्य के उदयास्तमान वेला में अहोरात्र जल में प्रवेश किया करते हैं ।। ११७ ।। जो सूर्य के प्रकाश के नाम वाला होता है वही दिन कहा जाया करता है और जो तामसी अर्थात् प्रकाश के अभाव में अन्धकार से पूर्ण होती है वह रात्रि के नाम वाली कही जाया करती है। इससे रात्रि की व्यवस्था होती है और जो सूर्यविक्ष्य है अर्थात् जिस समय में सूर्य देखने के योग्य होता है वह दिन कहा गया है ।। ११८ ।। इस प्रकार से जब

सूर्य पुष्कर के मध्य से सर्पण किया करता है तो पृथ्वी का त्रिशांश मुहूर्त भर में ही चला जाता है ॥ ११९ ॥

योजनाग्रान्मुहूर्त्तस्य इमा सङ्ख्या निबोधत ।
पूर्ण शतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु सा स्मृता ॥१२०
पञ्चाशत्तु तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ।
मौहूर्त्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते ।१२१
एतेन गतियोगेन यदा काष्ठान्तु दक्षिणाम् ।
पर्य्यागच्छेत्तदादित्यो माघे काष्ठान्तमेव हि ॥१२२
सर्पते दक्षिणायान्तु काष्ठाया तन्निबोधत ।
नवकोट्य प्रसङ्ख्याता योजनै. परिमण्डलम् ॥१२३
तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
अहोरात्रात्पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते ॥१२४
दक्षिणाद्विनिवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रवि ।
क्षीरोदस्य समुद्रस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन् ॥१२५
मण्डल विषुवच्चापि योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्र कोट्यस्तु विस्तीर्णा विषुवच्चापि सा स्मृता ॥१२६

योजनाग्र मे मुहूर्त्त की इस सख्या को समझ लो । वह पूर्ण तो सहस्रो की इकत्तीस कही गई है ॥ १२० ॥ तथा अन्य पचास सहस्र अधिक सूर्य की यह मुहूर्त वाली गति का विधान किया जाता है ॥ १२१ ॥ इसी गति के योग से जब दक्षिण दिशा को सूर्य पर्यागमन किया करता है तब सूर्य माघ मे दिशा के अन्त को ही प्राप्त होता है ॥ १२२ ॥ दक्षिण दिशा मे जब गमन किया करता है इसे भी समझ लो । नौ करोड योजनो से परिमण्डल प्रसख्यात होता है ॥ १२३ ॥ तथा सौ सहस्र चालीस और पाँच अहोरात्र से सूर्य की यह गति होती है ऐसा विधान किया जाता है ॥ १२४ ॥ दक्षिण मे जिस समय यह सूर्य विनिवृत्त होता हुआ विषुवस्थ हो जाता है और क्षीरोद समुद्र के उत्तरान्त दिशाओं म भ्रमण करता हुआ आता है ॥ १२५ ॥ विषुवत्‌ का जो मण्डल होता है योजनो के द्वारा उसे भी जान लो । विषुवत्‌ भी तीन करोड विस्तीर्ण कही गई है ॥ १२६ ॥

तथा शतसहस्राणामशीत्येकाधिका पुनः ।
श्रवणे चोत्तरां काष्ठाञ्चित्रभानुर्यदा भवेत् ।
शाकद्वीपस्य षष्ठस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन् ॥१२७
उत्तरायाञ्च काष्ठायां प्रमाणं मण्डलस्य च ।
योजनाग्रात्प्रसंख्याता कोटिरेका तु सा द्विजैः ॥१२८
अशीतिर्नियुतानीह योजनानां तथैव च ।
अष्टपञ्चाशतञ्चैव योजनान्यधिकानि तु ॥१२९
नागवीथ्युत्तरावीथी अजवीथी च दक्षिणा ।
मूलं चैव तथाषाढे ह्यजवीथ्युदयास्त्रयः ।
अभिजित्पूर्वतः स्वातिर्नागवीथ्युदयास्त्रयः ॥१३०
काष्ठयोरन्तरं यच्च तद्वक्ष्ये योजनैः पुनः ।
एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशोत्तरं शतम् ॥१३१
त्रयस्त्रिंशदधिकाश्चान्ये त्रयस्त्रिंशच्च योजनैः ।
काष्ठयोरन्तरं ह्येतद्योजनाग्रात् प्रतिष्ठितम् ॥१३२
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अन्तरे दक्षिणोत्तरे ।
ते तु वक्ष्यामि सख्याय योजनैस्तन्निबोधत ॥१३३

इसी प्रकार से सौ सहस्र और एकाधिक अस्सी श्रवण में उत्तर दिशा में जब सूर्य होता है तो वह शाकद्वीप षष्ठ की उत्तरान्त दिशाओं का विचरण करता हुआ ही होता है ॥ १२७ ॥ उत्तर दिशा में मण्डल का प्रमाण जो होता है वह द्विजों के द्वारा योजनाग्र से एक करोड़ प्रसंख्यात किया गया है ॥ १२८ ॥ यहाँ पर योजनों के अस्सी नियुत और अट्ठावन अधिक योजन होते हैं ॥१२९॥ नागवीथी, उत्तरावीथी और अजवीथी ये दक्षिण मूल और आषाढ़ में अजवीथी ये तीन उदय होते हैं। अभिजित नक्षत्र से पूर्व स्वाति में नागवीथी तीन उदय होते हैं ॥ १३० ॥ दिशाओं में जो अन्तर होता है उनको पुनः योजनों के द्वारा बतलाया जायगा। यह सौ हजार एक सौ इकत्तीस और अन्य तैंतीस अधिक अर्थात् तैंतीस योजनों के द्वारा योजनाग्र से दिशाओं का अन्तर प्रतिष्ठित होता है ॥ १३१-१३२ ॥ दिशाओं में और लेखाओं में जो दक्षिणोत्तर अन्तर हुआ

करते हैं उनकी संख्या करके योजनों के द्वारा बतलाया जायगा उन्हें भी आप लोग समझ लेवें ॥ १३३ ॥

एकैकमन्तरन्तस्या नियुतान्येकसप्ततिः ।
सहस्राण्यतिरिक्ताश्च ततोऽन्या पञ्चसप्तति ॥१३४
लेखयो काष्ठयोश्चैव वाह्याभ्यन्तरयो स्मृतम् ।
अभ्यन्तरन्तु पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे ॥१३५
वाह्यतो दक्षिण चैव सततन्तु यथाक्रमम् ।
मण्डलाना शत पूर्णमशीत्यधिकमुत्तरम् ॥१३६
चरते दक्षिणे चापि तावदेव विभावसु ।
प्रमाण मण्डलस्याथ योजनाग्रान्निबोधत ॥१३७
एकविंशद्योजनाना सहस्राणि समासत ।
शते द्वे पुनरप्यन्ये योजनाना प्रकीर्तिते ॥१३८
एकविंशतिभिश्चैव योजनैरधिकैर्हि ते ।
एतत्प्रमाणमाख्यात योजनैर्मण्डल हि तत् ॥१३९
विष्कम्भो मण्डलस्यैष तिर्यक् स तु विधीयते ।
प्रत्यहञ्चरते तानि सूर्यो वै मण्डलक्रमम् ॥१४०

उसका एक-एक का अन्तर एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर नियुत हैं । सहस्र अतिरिक्त हैं इसके बाद भी अन्य पिचहत्तर हैं ॥ १-४ ॥ लेखाओं तथा बाह्याभ्यन्तर दिशाओं मे यह अन्तर कहा गया है । और अभ्य तर तो उत्तरायण म मण्डलो का परिगमन करता है ॥ १३५ ॥ वायु से दक्षिण मे निरन्तर क्रम के अनुसार एकसौ अस्सी मण्डलो के उत्तर मे तथा उसी प्रकार मे दक्षिण म भी विभावसु विचरण किया करता है । मण्डल का प्रमाण भी योजनाग्र से समझ लो ॥ १३६-१३७ ॥ सक्षेप से इक्कीस सहस्र तथा फिर अन्य दोसौ योजन कहे गये हैं । १३८ ॥ इक्कीस अधिक योजनो के द्वारा मण्डल का प्रमाण कहा गया है ॥ १३९ ॥ मण्डल का जो विष्कम्भ होता है वह तिर्यक् (तिरछा) विधान किया जाता है । सूर्य प्रतिदिन मण्डल क्रम पूर्वक उनका विचरण किया करता है ॥ १४० ॥

कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं निवर्त्तते ।
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्त्तते ॥१४१
तस्मात् प्रकृष्टां भूमिञ्च कालेनाल्पेन गच्छति ।
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्त्तैर्दक्षिणोत्तरे ॥१४२
त्रयोदशार्द्धमृक्षाणामह्नानुचरते रविः ।
मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥१४३
कुलालचक्रमध्यस्तु यथा मन्दं प्रसर्पति ।
तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः ॥१४४
त्रयोदशार्द्धमर्द्धेन ऋक्षाणां चरते रविः ।
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पां निगच्छति ॥१४५
अष्टादशमुहूर्त्तस्तु उत्तरायणपश्चिमम् ।
अहर्भवति तत्रापि चरते मन्दविक्रमः ॥१४६
त्रयोदशार्द्धमर्धेन ऋक्षाणाञ्चरते रविः ।
मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥१४७
ततो मन्दतरं ताभ्याञ्चक्रं भ्रमति वै यथा ।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै यथा ॥१४८
त्रिंशन्मुहूर्त्तानि वाहुरहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन् ।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि सः ॥१४९

कुलाल (कुम्हार) का चक्र पर्यन्त जिस तरह शीघ्र ही लौट आता है उसी प्रकार से दक्षिण प्रक्रम मे सूर्य भी शीघ्र निवृत हो जाता है ॥१४१॥ इससे इस प्रकृष्ट भूमि को अल्पकाल में ही जाता है। सूर्य बारह मुहूर्त्तों में ही दक्षिणोत्तर में शीघ्र चला जाया करता है ॥१४०॥ दिन मे सूर्य नक्षत्रों के त्रयोदशार्थ का अनुसरण किया करता है और अठारह मुहुर्त्तों में रात्रि में नक्षत्रों का चरण किया करता है ॥१४३॥ जिस प्रकार से कुम्हार के चक्र का मध्य भाग मन्द गति से प्रसर्पण किया करता है वैसे ही उदगयन में सूर्य देव भी मन्द विक्रम वाले हुए चला करते हैं ॥१४४॥ नक्षत्रों के त्रयोदशार्ध के अर्ध से सूर्य चरण किया करता है। इसी कारण से अल्प भूमि को भी बहुत अधिक काल

मे जाया करता है ।।१४४।। अठारह मुहूर्तों मे उत्तरायण पश्चिम में दिन हुआ करता है उसमे भी वह बहुत धीमी गति वाला होता हुआ विचरण किया करता है ।। १४६ ।। सूर्य नक्षत्रों के अपोदगार्य को अर्ध मे चरण किया करता है। रात्रि मे अठारह मुहूर्तों मे नक्षत्रों का चरण किया करता है ।। १४७ ।। इसके अनन्तर उन दोनो मे जिस प्रकार कुम्भ और मन्द चक्र भ्रमण किया करता है और मृत्पिण्ड की भांति मध्य मे स्थित ध्रुव जैसे भ्रमण करता है ।। १४८ ।। तीस मुहूर्तों को ही अहोरात्र कहते हैं। ध्रुव भ्रमण करता हुआ दोनों दिशाओं के मध्य मे वह मण्डलों का भ्रमण किया करता है ।। १४९ ।।

कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्त्तते ।
ध्रुवस्तथा हि विज्ञेयस्तत्रैव परिवर्त्तते ।।१५०
उभयो काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु ।
दिवा नक्तञ्च सूर्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गति ।।१५१
उत्तरे प्रक्रमे त्विन्दोर्दिवा मन्दा गति. स्मृता ।
तत्रैव च पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्यस्य वै गति ।।१५२
दक्षिण प्रक्रमे चैव दिवा शीघ्र विधीयते ।
गति सूर्यस्य नक्त वै मन्दा चापि तथा स्मृता ।।१५३
एव गतिविशेषेण विभजन् राज्यहानि तु ।
तथा विचरत मार्ग समेन विषमेण च । १५४
लोकालोके स्थिता ये त लोकपालाश्चतुर्दिशम् ।
अगस्त्यश्चरते तेषामुपरिष्टाज्जवेन तु ।
भजन्नसावहोरात्रमवन्नुतिविशेषणैः ।।१५५
दक्षिणे नागवीथ्याया लोकालोकस्य चोत्तरम् ।
लोकसन्तारको ह्येष वैश्वानरपथाद्वहि ।।१५६
पृष्ठे यावत् प्रभा सौरी पुरस्तात् सम्प्रकाशते ।
पार्श्वयो पृष्ठतस्तावल्लोकालोकस्य सर्वत ।।१५७

जिस प्रकार कुलाल के चक्र की नाभि वहीं पर ही रहा करती है ध्रुव को भी उसी प्रकार का मान लेना चाहिए। वह वहीं पर ही परिवर्त्तन किया

करता है ॥ १५० ॥ दोनों दिशाओं के मध्य में मण्डलों का भ्रमण करने वाले रात और दिन सूर्य की गति भी मन्द और शीघ्रता वाली हो जाती है ॥१५१॥ उत्तर प्रक्रम में चन्द्रमा की गति दिन में मन्द कही गई है। उसी भाँति रात में सूर्य की गति शीघ्रता वाली हुआ करती है ॥ १५२ ॥ दक्षिण प्रक्रम में दिन में शीघ्र होने का विधान होता है। रात्रि में सूर्य की गति मन्द उसी भाँति कही गई है ॥ १५३ ॥ इस प्रकार से गति विशेष के द्वारा रात और दिन का विभाग करते हुए सम और विषम के द्वारा उसी प्रकार मार्ग का विचरण किया करता है ॥ १५४ ॥ लोकालोक में जो स्थित हैं वे चारों दिशाओं में लोकपाल हैं। उनके ऊपर अगस्त्य वेग से चरण करते हैं जो कि इस प्रकार से गति विशेषणों से रात दिन सेवन करने वाले हैं ॥ १५५ ॥ दक्षिण में नागवीथी में लोकालोक पर्वत के उत्तर में वैश्वानर पथ से बाहिर यह लोक सन्तारक है ॥ १५६ ॥ पृष्ठ में सौरी अर्थात् सूर्य की प्रभा जब तक आगे भली-भाँति प्रकाशित होती है लोकालोक के पीछे और पार्श्वों में सब ओर तब तक प्रकाश दिया करती है ॥ १५७ ॥

योजनानां सहस्राणि दशोर्द्ध्वन्तूच्छ्रितो गिरिः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च सर्वतः परिमण्डलः ॥१५८
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह।
अभ्यन्तरं प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः ॥१५९
एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्त्वतः परम्।
लोकालोक एकधा तु निरालोकस्त्वनेकधा ॥१६०
लोकालोकन्तु सन्धत्ते यस्मात् सूर्यः परिग्रहम्।
तस्मात्सन्ध्येति तामाहुरुषाव्युष्टयोर्यदन्तरम्।
उषा रात्रिः स्मृता विप्रैर्व्युष्टिश्चापि त्वहः स्मृतम् ॥१६१
सूर्यं हि ग्रसमानानां सन्ध्याकाले हि रक्षसाम्।
प्रजापतिनियोगेन शापस्तेषां दुरात्मनाम्।
अक्षयत्वञ्च देहस्य प्रापिता मरणं तथा ॥१६२
तिस्रः कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः।

।।१६३

अथ सूर्यस्य तेषाञ्च युद्धमासीत् सुदारुणम् ।
ततो ब्रह्मा च देवाश्च ब्राह्मणाश्चैव सत्तमा ।
सन्ध्येति समुपासन्त क्षेपयन्ति महाजलम् ।।१६४
ओङ्कारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
तेन दह्यन्ति ते दैत्या वज्रभूतेन वारिणा ।।१६५

यह गिरि दश सहस्र योजन उच्छ्रित ऊपर को है और सब ओर से परिमण्डल प्रकाशयुक्त तथा अप्रकाश वाला है ।। १५८ ।। लोकालोक गिरि के भीतर नक्षत्र, चन्द्र और सूर्य तथा ताराओं के गणों के साथ समस्त ग्रह प्रकाश दिया करते हैं। १५९ ।। इतना ही लोक है और इसके आगे तो निरालोक ही है। लोकालोक तो एक प्रकार का ही होता है और निरालोक अनेक प्रकार वाला होता है ।। १६० ।। जिस कारण से सूर्य लोकालोक के परिग्रह का सन्धान करता है इसी लिए उषा और व्युष्टि का जो अन्तर होता है उसको सन्ध्या कहा करते हैं। विप्रों के द्वारा उषा को रात्रि और व्युष्टि को दिन कहा गया है ।। १६१ ।। सन्ध्या के समय में सूर्य का ग्रास करने वाले उन दुरात्मा राक्षसों को प्रजापति के नियोग से शाप है देह का अक्षयत्व तथा वे मरण को प्राप्त कराये गये थे ।। १६२ ।। मन्देहा नाम वाले विख्यात राक्षस तीन करोड़ हैं जो दिन दिन में उगने वाले सूर्य की प्रार्थना करते हैं। ये दुरात्मा ताप देते हुए सूर्य को खाना चाहते हैं ।। १६३ ।। इसके अनन्तर उनका और सूर्य का महादारुण युद्ध हुआ था। तब ब्रह्माजी, देवगण, और सत्तम ब्राह्मण सन्ध्या इसकी उपासना करते हुए महाजल का क्षेप किया करते हैं ।। १६४ ।। ओङ्कार ब्रह्म से संयुक्त और गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित वह जल है। उस वज्रभूत जल से वे दैत्य दग्ध होते हैं ।। १६५ ।।

ततः पुनर्महातेजा महाद्युतिपराक्रमः ।
योजनानां सहस्राणि ऊर्द्ध्वं मुत्तिष्ठते शतम् ।।१६६
ततः प्रयाति भगवान् ब्राह्मणैः परिवारितः ।

वालखिल्यैश्च मुनिभिः कृतार्थैः समरीचिभिः ॥१६७
काष्ठानिमेषा दश पंच चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलान्तम् ।
त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्त्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ॥१६८
ह्रासवृद्धी त्वह र्भागैर्दिवसानां यथाक्रमम् ।
सन्ध्या मुहूर्तमानन्तु ह्रासे वृद्धौ समा स्मृता ॥१६९
लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्त्तागते तु वै ।
प्रातस्तनः स्मृतः कालो भागस्त्वह्नः स पंचमः ॥१७०
तस्मात् प्रातस्तनात्कालात् त्रिमुहूर्त्तस्तु सङ्गवः ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्त स्तु तस्मात्कालाच्च सङ्गवात् ॥१७१
तस्मान्मध्यन्दिनात् कालादपराह्ण इति स्मृतः ।
त्रय एव मुहूर्त्तास्तु तस्मात् कालाच्च मध्यमात् ॥१७२

इसके अनन्तर महान् तेज से युक्त और महान् द्युति तथा पराक्रम वाले सहस्र शत योजन ऊर्ध्व में उत्थित होते हैं ॥ १६६ ॥ इसके पश्चात् वालखिल्य मुनि, कृतार्थ मरीचि और ब्राह्मणों के द्वारा परिवारित भगवान् प्रयाण करते हैं ॥ १६७ ॥ दश और पांच निमेषों की काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओं से कलान्त होता है और तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है तथा तीस मुहूर्त्तों की रात्रि तथा दिन सम होते हैं ॥ १८ ॥ दिन के भागों से यथाक्रम दिनों की ह्रास और वृद्धि होती है । मुहूर्त के मान तक सन्ध्या ह्रास और वृद्धि में सम कही गई है ॥ १६९ ॥ इसके अनन्तर तीन मुहूर्त आदित्य के आगत होने पर लेखा प्रभृति होती हैं । जो प्रातस्तन होता है वह काल कहलाता है वह दिवस का पांचवां भाग होता है ॥ १७० ॥ उस प्रातस्तन काल से तीन मुहूर्त वाला सङ्गव होता है । उस सङ्गव काल से तीन मुहूर्त वाला मध्याह्न होता है ॥ १७१ ॥ उस मध्यन्दिन काल से अपराह्ण यह कहा गया है । उस मध्यम काल से तीन ही मुहूर्त्त होते हैं ॥ १७२ ॥

अपराह्णे व्यतीपाते कालः सायाह्न उच्यते ।
दशपञ्चमुहूर्त्ताद्वै मुहूर्त्तास्त्रय एव च ॥१७३
दशपंचमुहूर्त्त वै अहर्विषुवति स्मृतम् ।

दशपचमुहूर्त्ताढ्यं रात्रिन्दिवमिति स्मृतम् ।।१७४
वर्द्धते ह्रसते चैव अयने दक्षिणोत्तरे ।
अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसत त्वह ।।१७५
शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवन्तद्विभाव्यत ।
अहोरात्र कलाश्चैव सप्त साम समश्नुते ।।१७६
तथा पचदशाहानि पक्ष इत्यभिधीयते ।
द्वौ पक्षौ च भवेन्मासो द्वौ मासावन्तरावृतु ।
ऋतुत्रयमयन स्याद्द्वऽयन वर्षमुच्यते ।।१७७
निमेषादिकृत काल काष्ठाया दश पच च ।
कलायास्त्रिंशत काष्ठा मात्राशोतिस्तथात्मिका ।।१७८
शतघ्नैकोनकास्त्रिंशन्मात्रात्रिंशत् षडुत्तरा ।
द्विषष्टिभाक् त्रयस्त्रिंशन्मात्रायाश्च चला भवेत् ।।१७९
चत्वारिंशत्सहस्राणि शतान्यष्टौ च विद्युति ।
सप्ततिश्चापि तत्रैव नवति विद्धि निश्चये ।।१८०

अपराह्न के व्यतीपात हो जाने पर जो काल होता है वह सायाह्न कहा जाता है। दश पाँच मुहूर्त से तीन ही मुहूर्त होते हैं ॥ १७३ ॥ दश पच मुहूर्त वाला दिनरात्र म अह कहा गया है। दश पाँच मुहूर्त से रात्रिन्दिन यह कहा गया है ॥ १७४ ॥ दक्षिण और उत्तर अयन मे रात्रि दिन बढता है और ह्रास का प्राप्त होता है। अह रात्रि का ग्रास करता है और रात्रि अह का ग्रास किया करती है। इसी तरह से इन दोनों का ह्रास तथा वर्धन हुआ करता है ॥ १७५ ॥ शरद और वसन्त के मध्य म वह विषुवत् विभावित होता है। अहोरात्र और कला म त इसको सोम समशन किया करता है ॥ १७६ ॥ उसी प्रकार से प द्रह दिन का पक्ष कहा जाता है। दो पक्षों का एक मास होता है और दो मासो के अ तर में एक ऋतु होता है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है और दो अयनो का एक वर्ष कहा जाया करता है ॥ १७७ ॥ दश और पाँच अर्थात् पन्द्रह कला का निमेषादि कृत काल होता है। तीस कला का काष्ठ और अशीति (अस्सी) इसकी मात्रा होती है ॥ १७८ ॥

शतघ्नैकोनका विंशतषट् उत्तर वाली मात्रा बासठ के भजन वाली तेईस मात्रा में चल होती है ॥ १७६ ॥ चालीस सहस्र सौ और आठ विद्युति सत्तर और वहाँ ही नब्बे निश्चय में जानो ॥ १८० ॥

चत्वार्येव शतान्याहुर्विद्युतौ वैधसंयुगे ।
चरांशो ह्येष विज्ञेयो नालिका चात्र कारणम् ॥१८१
संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मानविकल्पिताः ।
निश्चयः सर्वकालस्य युग इत्यभिधीयते ॥१८२
संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ।
पञ्चमो वत्सरस्तेषां कालस्तु परिसंज्ञितः ॥१८३
विंशशतं भवेत्पूर्णं पर्वणां तु रवेर्युगम् ।
एतान्यष्टादशत्रिंशदुदयो भास्करस्य च ॥१८४
ऋतवस्त्रिंशतः सौरा अयनानि दशैव तु ।
पञ्चत्रिंशत् शतं चापि षष्टिर्मासाश्च भास्करः ॥१८५
त्रिंशदेव त्वहोरात्रं स तु मासश्च भास्करः ।
एकषष्टिस्त्वहोरात्रा दनुरेको विभाव्यते ॥१८६
अह्नान्तु त्र्यधिकाशीतिः शतं चाप्यधिकं भवेत् ।
मान तच्चित्रभानोस्तु विज्ञेयं भुवनस्य तु ॥१८७

वैधसंयुग विद्युति में चारसौ ही कहते हैं । यहाँ चरांश जानना चाहिए । यहाँ पर नालिका कारण है ॥ १८१ ॥ सम्वत्सर आदि पाँच चार मान से विकल्पित होते हैं । समस्त काल का निश्चय युग ऐसा कहा जाता है ॥ १८२ ॥ प्रथम सम्वत्सर होता है, दूसरा परिवत्सर होता है, तीसरा इद्वत्सर और चौथा अनुवत्सर तथा पांचवाँ वत्सर होता है । इस प्रकार से उनका काल परिसंज्ञित होता है ॥ १८३ ॥ बीस सौ पर्वों का पूर्ण रवि का युग होता है। ये अठारह तीस भास्कर का उदय है ॥ १८४ ॥ सौर ऋतुऐं तीस और दश ही अयन होते हैं । पैंतीस और सौ तथा साठ मास भास्कर है ॥ १८५ ॥ तीस ही अहोरात्र का वह भास्कर मास होता है। इकसठ अहोरात्र

एक दनु विभावित होता है ॥ १८६ ॥ दिनो के तिरासी और सौ अधिक होते हैं । वह चित्रभानु भुवन का मान समझना चाहिए ॥ १८७ ॥

सौरसौम्य तु विज्ञेय नक्षत्रं सावन तथा ।
नामान्येतानि चत्वारि यै पुराण विभाव्यते ॥१८८
ये तस्योत्तरतश्चैव शृङ्गवान्नाम पर्वत. ।
त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणि स्पृशन्तीव नभस्तलम् ॥१८९
तैश्चापि शृङ्गवान्नाम सर्वतश्चैव विश्रुत. ।
एकमार्गश्च विस्तारो विष्कम्भश्चापि कीर्तितः ॥१९०
तस्य वै सर्वत शृङ्ग मध्यमन्तद्धिरण्मयम् ।
दक्षिण राजतश्चैव शृङ्ग तु स्फटिकप्रभम् ॥१९१
सर्वरत्नमय चैक शृङ्गमुत्तरमुत्तमम् ।
एव कूटैस्त्रिभि. शैलै. शृङ्गवानिति विश्रुत. ॥१९२
यत्ताद्विषुवत शृङ्गन्तदर्क. प्रतिपद्यते ।
शारदग्रसन्तयोर्मध्ये मध्यमा गतिमास्थितः ।
अहस्तुल्यामथो रात्रि करोति तिमिरापह ॥१९३
हरिताश्च हया दिव्यास्ते नियुक्ता महारथे ।
अनुलिप्ता इवाभान्ति पद्मरक्तै र्गभस्तिभि ॥१९४
मेषान्ते च तुलान्ते च भास्करोदयत स्मृता. ।
मुहूर्त्ता दश पञ्चैव अहोरात्रिश्च तावती ॥१९५

सौर, सौम्य, नक्षत्र और सावन इन्हे समझ लेना चाहिए । ये चार नाम हैं जिनसे पुराण विभावित होता है ॥ १८८ ॥ आकाश मे उसके उत्तर मे शृङ्गवान् नाम का एक पर्वत है उसके तीन शिखर हैं जो कि इतने ऊँचे हैं कि मानों वे आकाश तल का स्पर्श करते हैं ॥ १८९ ॥ उन्हीं से शृङ्गवान् यह नाम सब ओर विश्रुत होता है । एक मार्ग और विस्तार और विष्कम्भ भी कहा गया है ॥ १९० ॥ उसके शिखर सब ओर है उनमे जो मध्यम शृङ्ग है वह हिरण्मय होता है । दक्षिण शिखर राजत (चादी का) है जो कि स्फटिक की प्रभा वाला है ॥ १९१ ॥ उत्तर की ओर जो शिखर है वह समस्त रत्नो से

परिपूर्ण एक उत्तम शिखर है। इस प्रकार से तीन कूटों के शैलों से यह शृङ्गवान् इस नाम से प्रख्यात है ॥ १९२ ॥ जो विषुवत शृङ्ग है उसको अर्क प्रतिपन्न होता है। शरत् और बसन्त के मध्य में मध्यम गति में आस्थित होता है। तिमिर अर्थात् अन्धकार अपहरण करने वाला सूर्य दिन के तुल्य रात्रि को कर देता है ॥ १९३ ॥ दिव्य हरित अश्व महारथ में नियुक्त होते हैं। पद्म के समान रक्त किरणों से अनुलिप्त की भाँति शोभित होते हैं ॥ १९४ ॥ मेष के अन्त में और तुला के अन्त में भास्करोद्यत कहे गये हैं। पन्द्रह मुहूर्त की उतनी ही अहोरात्रि होती है ॥ १९५ ॥

कृत्तिकानां यदा सूर्यः प्रथमांशगतो भवेत् ।
विशाखानां तथा ज्ञेयश्चतुर्थांशे निशाकरः ॥१९६
विशाखायां यदा सूर्यश्चरतेंऽशं तृतीयकम् ।
तदा चन्द्रं विजानीयात् कृत्तिकाशिरसि स्थिरम् ॥१९७
विषुवन्तं तदा विद्यादेवमाहुर्महर्षयः ।
सूर्येण विषुव विद्यात् कालं सोमेन लक्षयेत् ॥१९८
समा रात्रिरहश्चैव यदा तद्विषुवद्भवेत् ।
तदा दानानि देयानि पितृभ्यो विषुवत्यपि ।
ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण मुख मेतत्तु दैवतम् ॥१९९
ऊनरात्राधिमासौ च कलाकाष्ठामुहूर्त्तकाः ।
पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च ।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥२००
तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात् ।
नभो नभस्योऽथ इषुः सहोर्जः ।
सहःसहस्याविति दक्षिणं स्यात् ॥२०१
संवत्सरास्ततो ज्ञेयाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः ।
तस्मात्तु ऋतवो ज्ञेया ऋतवो ह्यन्तरा स्मृताः ॥२०२

जिस प्रकार कृत्तिकाओं का सूर्य प्रथमांशगत होता है तब विशाखाओं के चतुर्थांश में निशाकर होता है ॥ १९६ ॥ विशाखा में जब सूर्य तृतीय अंश में

धरण किया करता है तब चन्द्रमा को कृत्तिका के सिर मे स्थित जानना चाहिए ॥ १९७ ॥ उस समय देव को विपुवान् समझना चाहिए ऐसा ऋषि लोग कहते हैं। सूर्य का विपुव समझे और काल को सोम के साथ लक्षित करे ॥ १९८ ॥ जब रात्रि और दिन समान होवे और जब विपुवद् होवे तब विपुवान् म भी पितरो को दान देने चाहिय और विशेष करके ब्राह्मणो को देवे क्योकि ये देवताओ का मुख हुआ करता है ॥ १९९ ॥ उन रात्र और अधिमास, कला काष्ठा और मुहूर्त पौर्णमासी तथा अमावस्या जाननी चाहिए। सिनीवाली कुहू रा॰ा और अनुमति जाननी चाहिये ॥ २०० ॥ तप और तपस्या, मधु और माधव, शुक्र और शुचि उत्तर अयन होता है। नभ और नभस्य इषु महोज और सह तथा महस्य दक्षिण अयन जान लेवे ॥ २०१ ॥ इसके पश्चात् सम्वत्सर जाने जो कि पञ्च अब्द ब्रह्मा के सुत हैं। उससे ऋतु जाने, जो अ तर होते हैं वे ऋतु कहे गये हैं ॥ २०२ ॥

तस्म दनुमुखा ज्ञेया अमावास्यास्य पर्वण ।
तस्मात्तु विपुव ज्ञेय पितृदैवहित सदा ॥२०३
एव ज्ञात्वा न मुह्येत दैवे पित्र्ये च मानव ।
तस्मात् स्मृत प्रजाना वै विपुवत्सर्वग सदा ॥२०४
आलोकान्त स्मृतो लोको लोकान्तो लोक उच्यते ।
लोकपाला स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यत ॥२०५
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ।
सुधामा चैव वैराज कर्दम शङ्कुपस्तथा ।
हिरण्यरोमा पर्जन्य केतुमान् जातनिश्चय ॥२०६
निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहा ।
लोकपाला स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥२०७
उत्तर यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम् ।
पितृयाण स वै पन्था वैश्वानरपथाद्बहि ॥२०८
तत्रासते प्रजावन्तो मुनयो ह्यग्निहोत्रिण ।
लोकस्य सन्तानकरा पितृयाणे पथिस्थिता ॥२०९

इससे इस पर्व की अमावस्या को अनुमुखा जाननी चाहिए। उससे पितर और देवों के हित वाला विषुव सदा जान लेना चाहिए ॥ २०३ ॥ मान का इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके फिर दैव तथा पितर सम्बन्धी कार्य में मोह नहीं करना चाहिये। इससे समस्त में गमन करने वाला सदा प्रजाओं का विषुवत् कहा गया है ॥ २०४ ॥ आलोकान्त लोक कहा गया है और लोकान्त लोक कहा जाता है वहाँ पर लोकालोक के मध्य में लोकपाल स्थित होते हैं ॥ २०५ ॥ वहाँ चार महान् आत्मा वाले भूतसंप्लव पर्यन्त रहा करते हैं। सुधामा, वैराज, कर्द्दम, शङ्कर, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, केतुमान, जातनिश्चय, निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निस्तन्त्र, निष्परिग्रह—ये लोकालोक में चारों दिशाओं में लोकपाल स्थित हैं ॥ २०६–२०७ ॥ अगस्त्य के उत्तर में और अजवीथी के दक्षिण में वैश्वानर पथ से बाहिर वह पितृगण पन्था होता है ॥ २०८ ॥ वहाँ पर अग्निहोत्र करने वाले प्रजावान् मुनिगण लोक के सन्तान कहने वाले पितृयाण के मार्ग में स्थित होते हैं ॥ २०९ ॥

भूतारम्भ कृतं कर्म आशिषा ऋत्विगुच्यते ।
प्रारभन्ते लोककामास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः ।।२१०
चलितन्ते पुनर्द्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे ।
सन्तत्या तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ।।२११
जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमाधां गृहेषु च ।
पश्चिमाश्चैव जायन्ते पूर्वेषां निधनेष्वपि ।
एवमावर्त्तमानास्ते तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ।।२१२
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनां गृहमेधिनाम् ।
सवितुर्द्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ।
क्रियावतां प्रसङ्ख्येया ये श्मशानानि भेजिरे ।।२१३
लोकसंव्यवहारेण भूतारम्भकृतेन च ।
इच्छाद्वेषप्रवृत्त्या च मैथुनोपगमेन च ।।२१४
तथा कायकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च ।
एतैस्तैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानि हि भेजिरे ।
प्रजैषिणस्ते मुनयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ।।२१५

नागवीथ्युत्तरे यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम् ।
उत्तरः सवितुः पन्था देवयानस्तु स स्मृतः ॥२१६

भूतारम्भ कृत कर्म आशीष से ऋत्विग कहा जाता है। लोक की कामना वाले प्रारम्भ किया करते हैं उनका वह दक्षिण पन्था होता है ॥ २१० ॥ वे चलित हो जाने वाले धर्म को फिर युग-युग में स्थापित किया करते हैं और वह सन्तति से, तप से मर्यादाओं में और श्रुत के द्वारा ही किया करते हैं ॥ २११ ॥ पश्चिमो के गृहों मे पूर्व जायमान होते हैं, और पश्चिम पूर्वों के निधन होने पर उत्पन्न हुआ करते हैं। इस प्रकार से आवर्त्तमान वे भूतसम्प्लव तक ठहरा करते हैं ॥ २१२ ॥ अठ्ठासी सहस्र गृहमेधी मुनियों का सविता का दक्षिण मार्ग है जिसमे वे आश्रित रहते हैं और जब तक चन्द्रमा तथा तारागण स्थित हैं तब तक रहते हैं, और क्रिया वालों की प्रसंख्या करनी चाहिए जो कि श्मशानों के सेवन किया करते थे ॥ २१३ ॥ लोक के सव्यवहार से और भूतारम्भ कृत से, इच्छा और द्वेष की प्रवृत्ति से, मैथुन के उपगम से तथा वहाँ पर कायकृत से और विषय के सेवन से इतने ये कारण हैं जिन से सिद्ध लोग श्मशानों के सवन किया करते थे। वे मुनिगण प्रजाओं के इच्छा वाले यहाँ द्वापरो मे उत्पन्न हुए ॥ २१४-२१५ ॥ नागवीथी के उत्तर मे और जो सप्तर्षियों के दक्षिण मे उत्तर सविता का पन्था है वह देवयान कहा गया है ॥ २१६ ॥

यत्र ते वासिनः सिद्धा विमला ब्रह्मचारिणः ।
सततन्ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युर्जितस्तु तैः ॥२१७
अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्द्ध्वरेतसाम् ।
उदक्पन्थानमर्यम्णः श्रिता ह्याभूतसम्प्लवात् ॥२१८
इत्येतैः कारणैः शुद्धास्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे ।
आभूतसम्प्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते ॥२१९
त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार्गगामिनः ।
ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पुण्यपापकृतोऽपरम् ।
आभूतसम्प्लवान्ते तु क्षीयन्ते ह्यूर्द्ध्वरेतसः ॥२२०
ऊर्द्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रास्ति वै स्मृतम् ।
एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ॥२२१

तत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाधकाः ॥२२२

यहाँ पर जो निवास करने वाले हैं वे विमल, सिद्ध और ब्रह्मचारी हैं। वे निरन्तर जुगुप्सा करते हैं इससे उन्होंने मृत्यु को जीत लिया है ॥ २२७ ॥ उन ऊर्द्ध्वरेताओं के अठ्ठासी सहस्र हैं जो अर्यमा के उदक् पन्था का आश्रय वाले हैं और भूतसंप्लव अर्थात् महाप्रलय पर्यन्त वहाँ आश्रित रहते हैं ॥ २१८ ॥ इन सब कारणों से जो कि शुद्ध हैं वे अमृतत्व का सेवन करते थे। और भूतसंप्लव तक स्थित रहने वालों का अमृतत्व विभावित होता है ॥ २१९ ॥ अयममार्गगामिका यह त्रैलोक्य की स्थिति का काल है। ब्रह्म हत्या और अश्वमेधों से पुण्य, पाप कृत अपर है। भूतसंप्लव के अन्त में ऊर्द्ध्वरेता भी क्षीण हो जाते हैं। ऊर्द्ध्वोत्तर ऋषियों के लिये जहाँ ध्रुव है वह कहा गया है। यह व्योम में भास्वर तीसरा दिव्य विष्णु पद होता है जहाँ जाकर किसी प्रकार शोक नहीं करते हैं वही विष्णु का परम पद होता है। वहाँ धर्म ध्रुवादिक ठहरा करते हैं जहाँ वे लोक के साधक होते हैं ॥ २२२ ॥

॥ प्रकर्ण ३४—ज्योतिष प्रचार (२) ॥

स्वायम्भुवे निसर्गे तु व्याख्यातान्युत्तराणि तु ।
भविष्याणि च सर्वाणि तेषां वक्ष्याम्यनुक्रमम् ॥१
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पप्रच्छुर्लोमहर्षणम् ।
सूर्याचन्द्रमसोश्चारं ग्रहाणाञ्चैव सर्वशः ॥२
भ्रमन्ते कथमेतानि ज्योतींषि दिवि मण्डलम् ।
तिर्यग्व्यूहेन सर्वाणि तथैवासङ्करेण च ।
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् ॥३
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।
भूतसम्मोहनन्त्वेतच्छ्रोतुमिच्छा प्रवर्त्तते ॥४
भूतसम्मोहनं ह्येतद् ब्रुवतो मे निबोधत ।
प्रत्यक्षमपि दृश्यं यत्तद् संमोहयते प्रजाः ॥५

योऽसौ चतुर्दिशं पुच्छे शिशुमारे व्यवस्थित ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ॥६
स हि भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥७

श्री सूत जी ने कहा—स्वायम्भुव विषय में जो उत्तर थे उनकी व्याख्या कर दी गई है। भविष्य में जितने सब हैं उनका अनुक्रम बतलाया जायगा ॥१॥ यह सुनकर मुनिगण ने लोमहर्षण से पूछा कि सूर्य, चन्द्रमा का चार और सब ग्रहों का चार कैसा होता है? ॥२॥ ऋषियों ने कहा—दिविमण्डल में ये ज्योतियाँ किस प्रकार से भ्रमण किया करती हैं। ये सब तिर्यक् व्यूह से तथा असंद्वार में भ्रमण किया करते हैं? और उनको कौन भ्रमण कराया करता है अथवा ये स्वयं ही भ्रमण किया करते हैं? ॥ ३ ॥ हे सत्तम! हम सभी लोग इस बात को जानना चाहते हैं सो आप कृपा करके हमको सब बतलाइये। हम भूत सम्मोहन के सुनने की इच्छा हमें होती है ॥ ४ ॥ श्री सूत जी ने कहा—अब मैं इस भूत सम्मोहन को ही बतलाता हूँ सो आप सब जान लेवें। जो यह प्रत्यक्ष में देखने के योग्य है वही प्रजा का सम्मोहन किया करता है ॥ ५ ॥ जो यह चारों दिशाओं में शिशुमार पुच्छ में व्यवस्थित है वह राजा उत्तानपाद का मेढीभूत पुत्र दिव में ध्रुव है ॥ ६ ॥ वह ही स्वयं भ्रमण करता हुआ ग्रहों के साथ चन्द्र और आदित्य दोनों को भ्रमण कराया करता है और उस भ्रमण करते हुए के पीछे नक्षत्र अनुगमन चक्र की भाँति किया करते हैं ॥ ७ ॥

ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते भगणः स्वयम् ।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ॥८
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ।
तथा योगश्च भेदाश्च कालचारस्तथैव च ॥९
अस्तोदयौ तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे ।
विषुवद्ग्रहवर्णाश्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्तते ॥१०
वर्षा घर्मो हिमं रात्रिः सन्ध्या चैव दिनं तथा ।
शुभाशुभं प्रजानाञ्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्तते ॥११

ध्रुवेणाधिकृतांश्चैव सूर्योऽपावृत्य तिष्ठति ।
तदेष दीप्तकिरणः स कालाग्निर्दिवाकरः ॥१२
परिवर्त्त क्रमाद्विप्रा भाभिरालोकयन् दिशः ।
सूर्यः किरणजालेन वायुयुक्तेन सर्वशः ।
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विजसत्तमाः ॥१३
आदित्यपीत सूर्याग्नेः सोमं संक्रमते जलम् ।
नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकाधानं प्रवर्त्तते ॥१४

ध्रुव के मन से यह भगण स्वयं भ्रमण किया करता है और सूर्य- चन्द्र और तारागण नक्षत्रों तथा ग्रहों के साथ सर्पण किया करते हैं ॥ ८ ॥ वे सब वातानीकपूर्ण बन्धनों से ध्रुव में बँधे हुए हैं। उनका योग भेद और कालचार होता है ॥ ९ ॥ अस्त, उदय तथा दक्षिणोत्तर अयन में अन्य उत्पात एवं विषुवद् ग्रह वर्ण यह सभी ध्रुव से ही प्रवृत्त हुआ करता है ॥ १० ॥ वर्षा, घाम, हिम, रात्रि, सन्ध्या तथा दिन और प्रजाओं का शुभ एवं अशुभ यह सभी कुछ ध्रुव से ही प्रवृत्त होता है ॥ ११ ॥ ध्रुव के द्वारा अधिकृत जो हैं उनको अपावृत करके सूर्य स्थित है इसी से यह दीप्त किरणों वाला—कालाग्नि और दिवाकर होता है ॥ १२ ॥ हे विप्रो ! हे द्विज सत्तमो ! सूर्य परिवृत्त क्रम से प्रभाओं से दिशाओं में आलोक करता हुआ जो कि सब ओर वायु से युक्त किरणों के जाल के द्वारा आलोक दिया करता है समस्त जगत् के जल का ग्रहण कर लेता हैं ॥ १३ ॥ सूर्याग्नि के आदित्य पीत जल को सोम संक्रामित किया करता है। वायुयुक्त नाड़ियों से लोकाधान प्रवृत्त हुआ करता है ॥ १४ ॥

यत्सोमात् स्रवते सूर्यस्तदभ्रेष्ववतिष्ठते ।
मेघा वायुनिघातेन विसृजन्ति जलम्भुवि ॥१५
एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते च पुनर्जलम् ।
नानाप्रकारमुदकन्तदेव परिवर्त्तते ॥१६
सन्धारणार्थं भूतानां मायैषा विश्वनिर्मिता ।
अनया मायया व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१७
विश्वेशो लोककृद्देवः सहस्रांशुः प्रजापतिः ।
धाता कृत्स्नस्य लोकस्य प्रभुर्विष्णुर्दिवाकरः ॥१८

सर्वलौकिकमम्भो वै यत्सोमात्प्रभस सृतम् ।
सोमाधार जगत्सर्वमेतत्तथ्यं प्रकीर्तितम ॥१९

सूर्यादुष्ण निस्रवते सोमाच्छीत प्रवर्त्तते ।
शीतोष्णवीर्यौ द्वावेतौ युक्तौ धारयतो जगत् ॥२०

सोमाधारा नदी गङ्गा पवित्रा विमलोदका ।
सोमपुत्रपुरोगाश्च महानद्यो द्विजोत्तमा. ॥२१

सोम स जो स्रवित होता है उसके आगे मे सूर्य अवस्थित रहता है। मेघ वायु के निघात प्राप्त कर उनमे ही भूमि पर जल का त्याग किया करते है ॥ १५ ॥ इस प्रकार से यह जल उत्क्षिप्त होता है और फिर गिरा करता है। वही जल अनेक प्रकार का परिवर्तित हुआ करता है ॥१६॥ प्राणियो को सन्धारण करने के लिये यह विश्वनिर्मिता माया है और इस माया से यह सचराचर त्रैलोक्य व्याप्त हो रहा है ॥ १७ ॥ इस समस्त विश्व का स्वामी, लोको की रचना को करने वाला देव, सहस्र किरणो वाला, प्रजापति समस्त लोक का धाता, प्रभु और विष्णु दिवाकर है ॥ १८ ॥ समस्त लौकक जल सोम से आकाश से स्रुत होता है। यह समस्त जगती तल ही सोम के आधार वाला है। यह बिल्कुल तथ्य ही कहा गया है ॥ १९ ॥ सूर्य से उष्णता का निस्रवण हुआ करता है। सोम से शीत की प्रवृत्ति होती है। ये दोनो शीतोष्ण वीर्य वाले हैं और दोनो ही युक्त होते हुये इस जगत को धारण किया करते हैं ॥२०॥ गङ्गा परम पवित्र नदी और विमल जल वाली सोम धारा है। हे द्विजोत्तमा! ये समस्त महानदियाँ सोम पुत्र के आगे जाने वाली होती हैं ॥ २१ ॥

सर्वभूतशरीरेषु आपो ह्यनुगताश्च या ।
तेष सन्दह्यमानेषु जङ्गमस्थावरेषु च ।
धूमभूतास्तु ता आपो निष्क्रामन्तीह सर्वश ॥२२

तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमत्राम्भसा स्मृतम् ।
आर्कन्तेजो हि भूतेभ्यो ह्यादत्ते रश्मिभिर्जलम् ॥२३

समुद्राद्वायुसयोगाद्वहन्त्यापो गभस्तय. ।

यतस्त्वृतुवशात् काले परिवर्त्तो दिवाकरः ।
यच्छत्यपो हि मेघेभ्यः शुक्लाः शुक्लगभस्तिभिः ।।२४
अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ।
सर्वभूतहितार्थाय वायुभिश्च समन्ततः ।।२५
ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायव्य स्तनितश्चैव वैद्युतञ्चाग्निसंभवम् ।।२६
मेहनाच्च मिहेर्द्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ति यतस्त्वापस्तदभ्र कवयो विदुः ।।२७
मेघानां पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते ।
आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च पृथग्विधाः ।
त्रिधा घनाः समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि सम्भवम् ।।२८

समस्त प्राणियों के शरीरों में जो जल अनुगत होता है उनके जल जाने पर जंगम और स्थावरों में सर्वत्र ही उस जल का दग्धीभाव हुआ करता है फिर वही जल धूमभूत होकर सब ओर निकलता है ।। २२ ।। उससे फिर बादलों की रचना होती है ये जल का स्थान ही कहा गया है । सूर्य का तेज ही किरणों के द्वारा भूतों से जल का आदान किया करता है ।। २३ ।। समुद्र से वायु के संयोग से किरणें जल का वहन किया करती हैं । क्योंकि फिर ऋतु के वश से काल में दिवाकर परिवर्त्त हो जाता है । शुक्ल किरणों के द्वारा मेघों से शुक्ल जल को देता है ।। २४ ।। अभ्रों में रहने वाले जल वायु से समुदीरित होते हुये नीचे गिरा करते हैं ये जल समस्त प्राणियों के हित के लिये ही वायु के द्वारा भूमि पर प्रपतित हुआ करते हैं ।। २५ ।। फिर समस्त प्राणियों के हित सम्पादन करने के लिये छै मास तक यह जल भूमि पर वर्षता रहता है । और यह वायव्य, स्तनित, वैद्युत तथा अग्नि सम्भव होता है ।। २६ ।। मेहन करने के कारण से यह मिहि धातु से मेघत्व को प्रकट किया करता है । यह जलों को भ्रंशित नहीं किया करता है इसलिये कवि लोग इसे अभ्र कहा करते हैं ।।२७।। पुनः मेघों की उत्पत्ति का स्थान तीन प्रकार का बताया गया है । आग्नेय,

ब्रह्मज और पक्षज, ये पृथक् प्रकार वाले होते है। घन तीन प्रकार वाले कहे गये हैं अब उनका सम्भव बतलाया जाता है ॥ २८ ॥

आग्नेयास्त्वर्णजा. प्रोक्तास्तेषां तस्मात् प्रवर्त्तनम् ।
शीतदुर्दिनवाता ये स्वगुणास्ते व्यवस्थिताः ॥२६
महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गगामिन. ।
भूत्वा धरणिमभ्येत्य विचरन्ति रमन्ति च ॥३०
जीमूता नाम ते मेघा एतेभ्यो जीवसम्भवा ।
विद्युद्गुणविहीनाश्च जलधाराविलम्बिन ॥३१
मूका घना महाकाया प्रवाहस्य वशानुगा ।
क्रोशमात्राच्च वर्षन्ति क्रोशार्द्धादपि वा पुनः ॥३२
पर्वताग्रनितम्बेषु वर्षन्ति च रमन्ति च ।
बलाकागर्भदाश्चैव बलाकागर्भधारिण ॥३३
ब्रह्मजानाम ते मेघा ब्रह्मनि श्वाससम्भवा ।
ते हि विद्युद्गुणोपेता स्तनयन्ति स्वनप्रिया ॥३४
तेषा शब्दप्रणादेन भूमि स्वाङ्गरुहोद्गमा ।
राज्ञी राज्ञाभिषिक्तेव पुनर्यौवनमश्नुते ।
तेष्विय प्रीतिमासक्ता भूताना जीवितोद्भवा ॥३५

जो आग्नेय मेघ होते है वे अवर्णज होते हैं और उनका उससे प्रवर्त्तन होता है। शीत दुर्दिन वात जो ये उसमे अपने गुण हैं वे व्यवस्थित होते हैं ॥ २६ ॥ महिष वराह और मत्त मातङ्गगामी होकर धरणी मे आकर विचरण किया करते हैं तथा रमण किया करते हैं ॥ ० ॥ जीमूत नाम वाले वे मेघ इनमे ही जीव सम्भूत होते हैं। ये विद्युद्गण से रहित और जल धारा के विलम्बी होते हैं ॥ ३१ ॥ मूक अर्थात् गर्जन न करने वाले घन अर्थात् अत्यधिक गहरे, महान काया अर्थात् आकार वाले और प्रवाह के वश म अनुगमन करने वाले ये एक कोश मात्र से अथवा आधे कोश से भी वर्षा किया करते हैं ॥ ३२ ॥ ये मेघ पर्वताग्र निवम्बो मे वर्षते हैं और रमण किया करते हैं। बलाकाओ के गर्भ के प्रदान करने वाले और बलाकाओं के गर्भधारी हुआ करते

हैं ॥ ३३ ॥ जो ब्रह्मज मेघ होते हैं वे ब्रह्मा के निश्वास से उत्पत्ति वाले हुआ करते हैं। वे विद्युद्गण से युक्त तथा स्वन (शब्द) प्रिय होते हैं और गर्जना किया करते हैं ॥ ३४ ॥ उनके शब्द प्रमाण से ही भूमि अपने अङ्कुरहों के उद्गम वाली हो जाती है। राजा के द्वारा अभिषिक्त की हुई रानी के समान ही फिर यौवन की प्राप्ति कर लेती है। उनमें यह भूमि प्रीति को प्राप्त हुई अत्यन्त आसक्त होकर प्राणियों के जीवन को उत्पन्न करने वाली हो जाती है ॥ ३५ ॥

जीमूता नाम ते मेघास्तेभ्यो जीवस्य सम्भवः ।
द्वितीयं प्रवहं वायुं मेघास्ते तु समाश्रिताः ॥३६
एते योजनमात्राच्च सार्द्धार्द्धान्निष्कृतादपि ।
वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धारासाराः प्रकीर्त्तिताः ।
पुष्करावर्त्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः ॥३७
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना ये पर्वतानां महौजसाम् ।
कामगानां प्रवृद्धानां भूतानां शिवमिच्छता ॥३८
पुष्करा नाम ते मेघाः बृहन्तस्तोय मत्सराः ।
पुष्करावर्त्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ॥३९
नानारूपधराश्चैव महाघोरतराश्च ते ।
कल्पान्तवृष्टेः स्रष्टारः संवर्त्ताग्नेर्नियामकाः ॥४०
वर्षन्त्येते युगान्तेषु तृतीयास्ते प्रकीर्त्तिताः ।
अनेकरूपसंस्थानाः पूरयन्तो महीतलम् ।
वायुं परं वहन्तः स्युराश्रिताः कल्पसाधकाः ॥४१
यान्यस्याण्डकपालस्य प्राकृतस्याभवंस्तदा ।
तस्माद्ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयम्भुवः ।
तान्येवाण्डकपालस्य सर्वे मेघाः प्रकीर्त्तिताः ॥४२

जीमूत नाम वाले वे मेघ होते हैं जिनसे जीवों का जन्म हुआ करता है। वे मेघ द्वितीय प्रवह वायु के समाश्रित हुआ करते हैं। ये सार्द्धार्द्ध निष्कृत योजन मात्र से भी उस प्रकार का उनका वृष्टि सर्ग होता है कि उसे धारासार कहा गया

है। पुष्कर और आवर्त्त नाम वाले पक्षसम्भव मेघ होते हैं ॥ ३७ ॥ स्वेच्छा से गमन करने की इच्छा वाले, प्रवृद्ध प्राणियो की हितेच्छा से इन्द्र ने महान् ओज से युक्त पर्वतो के पक्षो का छेदन कर दिया था॥ ३८ ॥ पुष्कर नाम वाले जो मेघ हैं वे बहुत बड़े और जल की मत्सरता रखने वाले होते हैं। इसी कारण से वे पुष्करावर्त्तक इस नाम से शाब्दिक हुए हैं॥ ३९ ॥ अनेक प्रकार के रूपो को धारण करने वाले और महान् घोरतर तथा कल्पान्त वृष्टि के करने वाले एव सवर्त्ताग्नि के नियामक होते है ॥ ४० ॥ ये युग के अन्त मे वर्षा किया करते हैं और वे तृतीय वहे गय हैं। अनेक रूप और सस्थान वाले तथा इस महीतल को पूर देने वाले हैं और पर वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक उसी पर आश्रित रहा करते हैं ॥ ४१ ॥ जो इस प्राकृत अण्ड के कपाल से उस समय मे हुए थे जब चारो मुखो वाला स्वयम्भुव ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। ये ही अण्ड कपाल क सब मेघ प्रकीर्तित हुए है॥ ४२ ॥

तेपामाप्यायन धूम सर्वेपामविशेपतः।
तेपा श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥४३
गजाना पर्वतानाञ्च मेघाना भोगिभि॰ सह।
कुलमेक पृथग्भूत योनिरेका जल स्मृतम् ॥४४
पजन्या दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवा।
तुपारवृष्टि वर्षन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ॥४५
श्रेष्ठ परिवहो नाम तेपा वायुरपाश्रय।
योऽसौ धरत्ति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम्।
दिव्यामतिजला पुण्या त्रिधा स्वर्गपथ स्थिताम् ॥४६
तस्या विप्पन्दजन्तोय दिग्गजा पृथुभि॰ करै।
शा सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥४७
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृत।
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे।
पुण्ड्र नाम समाख्यात नगर तत्र वै स्मृतम् ॥४८
तस्मिन्निपतित वर्ष यत्तुपारसमुद्भवम्।

ततस्त दावहो वायुर्हिमशैलाद् समुद्वहन् ।
आनयत्यात्मयोगेन सिञ्चमानो महागिरिम् ॥४९

उस सब का भी अयन अविशेष रूप से धूम ही होता है। उनमें परम श्रेष्ठ पर्जन्य होता है और चारों दिग्गज होते हैं ॥ ४३ ॥ गजों का, मेघों का और पर्वतों का भोगियों के साथ पृथक् भूत एक ही कुल होता है और इनकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थल एक जल ही कहा गया है ॥ ४४ ॥ पर्जन्य और दिग्गज हेमन्त में शीत से जन्म ग्रहण करने वाले हैं। ये सब प्रकार के सस्यों की वृद्धि के लिये तुषार वृष्टि किया करते हैं ॥ ४५ ॥ परिवह नाम वाला श्रेष्ठ होता है जिसका अपाश्रय वायु होता है। जो यह भगवान् आकाश में दिखाई देने वाली, दिव्य, अत्यधिक जल से युक्त, पुण्या, त्रिपथा और स्वर्ग के मार्ग में स्थिति करने वाली गङ्गाधारण करते हैं ॥ ४६ ॥ उसके जल को विष्यन्दित करते हुए दिग्गज अपने पृथुकरों के द्वारा सीकर का मुंचन करते हैं वह नीहार कहा जाता है ॥ ४७ ॥ दक्षिण दिशा में जो गिरि है वह हेमकूट कहा जाता है। हिमाचल के पहाड़ के उत्तर और दक्षिण में पुण्ड्र नाम का नगर कहा गया है। वह नगर बहुत ही प्रसिद्ध है ॥ ४८ ॥ उसमें पड़ी हुई जो वर्षा है वह तुषार से समद्भूत है। उससे उसका वहन करने वाला वायु हिमशैल से समुद्वहन करता हुआ आत्मयोग से महागिरि को सिञ्चन करता हुआ लाता है ॥ ४९ ॥

हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम् ।
इहाभ्येति ततः पश्चादपरान्तविवृद्धये ॥५०
मेघाश्चाप्यायतश्चैव सर्वमेतत् प्रकीर्त्तितम् ।
सूर्य एव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते ॥५१
ध्रुवेणा वेष्टितः सूर्यस्ताभ्यां वृष्टिः प्रवर्त्तते ।
ध्रुवेणावेष्टितो वायुर्वृ ष्टि संहरते पुनः ॥५२
ग्रहान्निःसृत्य सूर्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।
वारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण परिवेष्टितम् ॥५३
अतः सूर्यरथस्याथ सन्निवेशं निबोधत ।
संस्थितेनैकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना ॥५४

एवमर्थ वशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु ।
तथा सयोगभागेन ससिद्धो भास्वरो रथ ॥६७
तेनासौ तरणिर्देवस्तरसा सर्पति दिवि ।
युगाक्षकोटिसम्बद्धौ रश्मी द्वौ स्यन्दनस्य हि ॥६८
ध्रुवेण भ्रमतो रश्मी विचक्रयुगयोस्तु वै ।
भ्रमतो मण्डलानि स्यु खेचरस्य रथस्य तु ॥६९
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु ।
ध्रुवेण सगृहीते वै द्विचक्रश्वेतरज्जुवत् ।७०

सात अश्वो के रूप मे रहने वाले छन्द हैं जो वामभाग से धुरा को वहन करते हैं। वे सात छन्द गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती, पंक्ति, बृहती और सातवाँ उष्णिक् है। अक्ष में चक्र निबद्ध है और वह अक्ष ध्रुव में समर्पित होता है ॥६४॥६५॥ चक्र के साथ अक्ष भ्रमण करता है और अक्ष के साथ मे ध्रुव घूमता है। चक्र के साथ ही ध्रुव से प्रेरित होता हुआ यह अक्ष भ्रमण किया करता है ॥६६॥ इस प्रकार से अर्थ के वश से उसके रथ का यह सन्निवेश किया गया है और उस प्रकार से सयोग के भाव मे सम्यक्तया सिद्ध उसका भास्वर रथ होता है ॥६७॥ उस रथ के द्वारा ही यह सूर्यदेव दिव मे वेग के साथ सर्पण किया करते हैं। उसके रथ के युगाक्ष कोटी से सम्बद्ध दो रश्मियाँ होती हैं ॥६८॥ विचक्र युगो की दोनो रश्मियाँ ध्रुव के द्वारा भ्रमण किया करती हैं। भ्रमण करने वाले आकाशगामी रथ के मण्डल होते हैं ॥६९॥ उस स्यन्दन के दक्षिण युगाक्ष कोटी ध्रुव के द्वारा द्विचक्रेश्वर रज्जु की भाँति सगृहीत होती है ॥७०॥

भ्रमन्तमनुगच्छेता ध्रुव रश्मी तु तावुभौ ।
युगाक्ष कोटी ते तस्य वातोर्मी स्यन्दनस्य तु ॥७१
कीलासक्तो यथा रज्जुर्भ्रमते सर्वतो दिशम् ।
ह्रसतस्तस्य रश्मी तौ मण्डलेषूत्तरायणे ॥७२
वर्द्धेते दक्षिणे चैव भ्रमतो मण्डलानि तु ।
ध्रुवेण सगृहीतौ तु रश्मी वै नयतो रविम् ॥७३

आकृष्येते यदा तौ वै ध्रुवेण समधिष्ठितौ ।
तदा सोऽभ्यन्तरं सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।।७४
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन् ।
ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु ।।७५
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।
उद्वेष्टयन् स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति ।।७६

भ्रमण करने वाले ध्रुव के पीछे वे दोनों रश्मियाँ अनुगमन किया करती हैं । उस स्यन्दन (रथ) की युगाक्ष कोटी वे वातोर्मी होती हैं ।।७१।। जिस प्रकार से कील में आसक्त रज्जु सब दिशाओं में भ्रमण किया करती है रास को प्राप्त होने वाली उसकी वे दोनों रश्मियाँ उत्तरायण के मण्डलों में रहती हैं ।।७२।। दक्षिण में मण्डलों का भ्रमण करने वाले उसकी ध्रुव के द्वारा संग्रहीत वे रश्मियाँ रवि को ले जाती हैं ।।७३।। जिस समय में ध्रुव के द्वारा समधिष्ठित वे दोनों आकृष्यमाण होती हैं उस समय में सूर्य मण्डलों के अन्दर भ्रमण किया करते हैं । वह वेग के साथ उद्वेष्टित करते हुए मण्डलों को चले जाते हैं ।।७६।।

।। प्रकर्ण ३५—ध्रुवचर्या

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ।।१
एते वसन्ति वै सूर्ये द्वौ, द्वौ मासौ क्रमेण तु ।
धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ।।२
उरगो वासुकिश्चैव सङ्कीर्णारश्च तावुभौ ।
तम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ ।।३
क्रतुस्थल्यप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थली ।
ग्रामणी रथकृच्छ्रश्च तपोर्ध्वश्चैव तावुभौ ।।४
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुदाहृतौ ।
मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे ।।५
वासन्तौ ग्रैष्मिकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह ।

अत्रिरत्रिर्वसिष्ठश्च तक्षको रम्भ एव च ॥६
मेनका सहजन्या च गन्धर्वौ च हहा हुहू ।
रथस्वनश्च ग्रामण्यो रथचित्रश्च तावुभौ ॥७
पौरुषेयो धवश्चैव यातुधानावुदाहृतौ ।
एतेवसन्ति वै सूर्ये मासयो शुचिशुक्रयो ॥८

श्रीसूतजी ने कहा—वह सूर्य का रथ देव आदित्य और ऋषियों के द्वारा अधिष्ठित होता है। इसी प्रकार से गन्धर्व अप्सराएँ, ग्रामणी, सर्प और राक्षसों के द्वारा भी अधिष्ठित रहा करता है ॥१॥ ये सब सूर्य में दो दो, मासतक निवास किया करते हैं और क्रम से इनका वहाँ वास होता। भास्कर में जिनका निवास है उनका परिगणन किया जाता है, धाता, अर्यमा, पुलस्त्य, पुलह, प्रजापति, उरग वासुकि और सङ्कीर्णार ये दोनों गायन करने वाले श्रेष्ठ तुम्बरु और नारद गन्धर्व, क्रतुस्थली अप्सरा, पुञ्जिकस्थली, ग्रामणी, रथकृच्छ्र और तपार्य ये दोनों रक्ष, हेति, प्रहेति दो यातुधान और मधु माधव के मासों में यह गण भास्कर में वास करते हैं ॥२॥३॥४॥५॥ वासन्त और ग्रैष्मिक दो—दो, मास हैं उनमें मित्र, वरुण, अत्रि और वसिष्ठ ऋषि, तक्षक रम्भ-मेनका, और सहजन्या तथा हहा, हुहू दो गन्धर्व, रथस्वन, , ग्रामण्य, और रथचित्र ये दोनों, पौरुषेय और धव दो यातुधान ये शुचि शुक्रमासों में सूर्य में निवास करते हैं ॥६॥७॥८॥

ततः सूर्ये पुनस्त्वन्या निवसन्तीह देवता ।
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ॥६
एलापर्णस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च तावुभौ ।
विश्वावसूग्रसेनौ च प्रातश्चैवारुणश्च ह ॥१०
प्रम्लोचेति च विख्याता निम्लोचेति च ते उभे ।
यातुधानस्तथा सर्पो व्याघ्रः श्वेतश्च तावुभौ ।
नभोनभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे ॥११
शरद्दतौ पुनः शुभ्रा वसन्ति मुनि देवता ।
पर्जन्यश्चाथ पूषा च भरद्वाज सगौतम ॥१२

विश्वावसुश्च गन्धर्वास्तथ व सुरिभिश्च यः ।
विश्वाची च घृताची च उभे ते शुभलक्षणे ॥१३
नाग ऐरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः ।
सेनाजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥१४
आपो वातश्च तावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ ।
वसन्त्येते तु वै सूर्ये भासयोश्च इषोर्जयोः ॥१५

इसके अनन्तर फिर यहाँ सूर्य में अन्य देवता निवास करते हैं जिनमें इन्द्र, विवस्वान्, अङ्गिरा, भृगु, एलापर्ण, सर्प और शङ्खपाल वे दोनों, विश्वा-वसु-उग्र-सेन, प्रातः अरुण-विख्यात प्रम्लोचा और निम्लोचा वे दोनों, यातुधान तथा सर्प, व्याघ्र और श्वेत वे दोनों, यह गण नभ और नभस्थ इन दो मासों में भास्कर में वास करते हैं ॥९॥१०॥११॥ शरद ऋतु में फिर शुभ्र मुनि और देवता वास किया करते हैं। पर्जन्य और पूषा, गौतम के साथ भरद्वाज, विश्वावसु, गन्धर्व और इसी भाँति सुरभि, विश्वाची और घृताची ये दोनों शुभ लक्षणों से से युक्त, नाग और ऐरावत, विश्रुत और धनञ्जय-सेनजित और सुषेण-सेनानी और ग्रामणी वे दोनों- जल और वात वे दोनों यातुधान कहे गये हैं ये सब निश्चय ही इष और ऊर्ज मासों में सूर्य में निवास करते हैं ॥१२॥१३॥ ॥१४॥१५॥

हैमन्तिककौ तु द्वौ मासौ वसन्ति तु दिवाकरे ।
अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च ऋतुश्च ह ॥१६
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा ।
चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ ॥१७
उर्वशी विप्रचित्तिश्च तथैवाप्सरसौ शुभे।
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥१८
विद्युत्स्फूर्जश्च तावुग्रौ यातुधानावुदाहृतौ ।
सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे ॥१९
ततः शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसन्ति वै ।
त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च ॥२०

काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतरावुभौ ।
गन्धर्वो धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चास्तथैव च ॥२१
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा ।
ऋतुजित्सजिश्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ ॥२२
ब्रह्मोपेतस्यथा दक्षो यज्ञोपेतश्च स स्मृत ।
एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ मासौ तु क्रमेण तु ॥२३

हैमन्तिक अर्थात् हेमन्त ऋतु के दो मासो मे तो निम्न लोग अर्थात् अधोगणित लोग सूर्य मे वास करते है—अश और भग ये दोनों कश्यप और ऋतु भुजङ्ग महापद्म सर्प तथा कर्कोटक गन्धर्व और ऊर्णाय ये दोनो, उर्वशी और विप्रचिति ये दोनो शुभ अप्सराऐं-तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि दो सेनानी और ग्रामणी-विद्युत और स्फूर्ज ये दोनो उग्र यातुधान कहे गये हैं। सह और सहस्य मास मे ये सब दिवाकर मे बसते हैं ॥१६॥१७॥१८॥१६॥ इसी प्रकार से शिशिर ऋतु के दो मासो मे त्वष्टा-विष्णु-जमदग्नि विश्वामित्र-कम्बल और अश्वतर ये दोनों काद्रवेय नाग-गन्धर्व धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा-अप्सरा तिलोत्तमा—देवी रम्भा मनोरमा-ऋतचित् लोक मे प्रसिद्ध ग्रामणी-ब्रह्मोपेत तथादक्ष और जो यज्ञोपेत कहा गया है। इतने ये देवगण दो मास तक सूर्य क्रम से निवास किया करते है ॥२०॥२१॥२२॥२३॥

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तका ।
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ॥२४
ग्रथितैस्तैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ॥२५
ग्रामणीयक्षभूतास्तु कुर्वते भीमसग्रहम् ।
सर्पा वहन्ति सूर्यञ्च यातुधानानुयान्ति च ।
वालखिल्या नयन्त्यस्त परिचार्योदयाद्रविम् ॥२६
एते यामेव, देवाजर, मघ्याहीर्य, मघ्यसतप:.।,
यथायोग यथासत्व यथाधर्म यथाबलम् ॥२७

यथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषां सिद्धस्तु तेजसा ।
इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥२८
ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसाङ्गणाः ।
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च भूरिशः ॥२९
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ।
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिताः ॥३०

ये सब द्वादश और सात गण स्थान के अभिमानी होते हैं। ये सूर्य को भी तेज से उत्तम तेज द्वारा आप्यायित किया करते हैं । २४ ॥ वे मुनिगण प्रथित वचनों के द्वारा रवि का स्तवन किया करते हैं तथा गन्धर्व और अप्सरायें गीतों एवं नृत्यों के द्वारा सूर्य की उपासना किया करते हैं ॥ २५ ॥ ग्रामणी और यक्ष, भूत भीम संग्रह किया करते हैं। सर्प सूर्य का वहन करते हैं और यातुधान अनुयान किया करते हैं। वालाखिल्यादि उदय से परिचर्या करके उस रवि को अस्ताचल में ले जाया करते हैं ॥ २६ ॥ इन देवों के यथा वीर्य, यथातप, यथायोग तथा सत्य के अनुसार धर्म और बल के अनुसार जैसे यह सूर्य तपता है उनके तेज से सिद्ध होता है । इतने ये सब दो-दो मास पर्यन्त दिवाकर में यहाँ निवास किया करते हैं ॥ २७-२८ ॥ ऋषि लोग, गन्धर्व देव, पन्नग और अप्सराओं के गण, ग्रामणी लोग तथा यक्ष, यातुधान बहुत सारे। ये तपते हैं, वर्षते हैं, दीप्त होते हैं, तान करते हैं और सृजन करते हैं एवं प्राणियों के जो यहाँ पर अशुभ कर्म होते हैं उनका व्यपोह किया करते हैं इस प्रकार के कहे गये हैं । २९-३० ॥

मानवानां शुभं ह्येते हरन्ति दुरितात्मनाम् ।
दुरितं हि प्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित् ॥३१
विमानेऽवस्थिता दिव्ये कामगा वातरंहसः ।
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगाः ॥३२
वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः ।
गोपायन्ति तु भूतानि सर्वानीहामनुक्षयात् ॥३३
स्थानाभिमानिनामेतत् स्थानं मन्वन्तरेषु वै ।

अतीतानागताना ये वर्त्तन्ते साम्प्रतन्तु ये ॥३४
एव वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्द्दिशम् ।
चतुर्द्दशसु सर्गेषु गणा मन्वन्तरेषु च ॥३५
ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्चमाना घर्मं हिमञ्च वपञ्च दिन निशाञ्च ।
कालेन गच्छत्यृतुवशात् परिवृत्तरश्मिर्देवान् पितॄ ञ्च मनुजाञ्च तर्पयन् वै॥३६
प्रीणाति देवानमृतेन सूयः सोम सुषुम्नेन विवर्द्ध यित्वा ।
शुक्ले तु पूर्णं दिवसक्रमेण दा कृष्णपक्षे विबुधा पिबन्ति ॥३७

ये मानवों के शुभ कर्मों का तथा पापात्माओं के अच्छे कर्मों का हरण किया करते हैं । कहीं कहीं पर प्रचारों के दुरित का व्यपोह किया करते हैं ॥ ३१ ॥ दिव्य विमान में अवस्थित काम के अनुसार गमन करने वाले वात रंहस ये सूर्य के साथ ही दिन में अनुगमन करने वाले होते हुए भ्रमण किया करते हैं ॥ ३२ ॥ वपण करते हुए तपते हुए और प्रजा को आह्लादित करते हुए यहाँ पर अनुक्षय में समस्त प्राणियों की रक्षा किया करते हैं ॥ ३३ ॥ स्थानाभिमानियों के मन्वन्तरों में यह स्थान है अतीत और अनागतों तथा जो साम्प्रत हैं वर्तित होते हैं । ३४ ॥ इस प्रकार से ये सप्तक चारों दिशाओं में सूर्य में वास किया करते हैं जो चौदह सर्गों में और मन्वन्तरों में गण बसते हैं ॥ ३५ ॥ ग्रीष्म काल में, हिम में और वर्षाओं में घाम, हिम तथा वर्षा का मुञ्चन करते हुए एवं दिन और रात्रि को बनाते हुए समय से ऋतु के कारण परिवृत्त रश्मियों वाला देव पितर और मनुष्यों को तृप्त करते हुए जाते हैं ॥ ३६ ॥ सूर्य देवताओं को अमृत के द्वारा प्रसन्न करता है और चन्द्रमा को सुषुम्ना के द्वारा विशेष रूप से वर्धन करके प्रसन्न किया करता है । शुक्लपक्ष में तो पूर्ण और दिनों के क्रम से कृष्णपक्ष में उसको देवता लोग पान करते हैं ॥ ३७ ॥

पीतन्तु सोमं द्विकालावशिष्ट कृष्णक्षये रश्मिभिस्ता क्षरन्तम् ।
सुधामृत तत्पितर. पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव कव्यम् ॥३८
सूर्येण गोभिस्तु समुद्धताभिरद्भि पुनश्चैव समुद्धताभिः ।
वृष्ट्यातिवृद्धाभिरथौषधीभिर्मर्त्या क्षुधन्त्वन्नपानैर्जयन्ति ॥३९

अमृतेन तृप्तिस्त्वर्द्ध मासं सुराणां मासार्द्ध तृप्तिः स्वधया पितृणाम् ।
अन्नेन शश्वत् दधाति मर्त्यान् सूर्यः स्वयं तच्च बिभर्ति गोभिः ॥४०
अयं हरिस्तैर्हरि भिस्तुरङ्गमैरयन्हि चापो हरतीति रश्मिभिः ।
विसर्गकाले विसृजंश्च ताः पुनर्बिभर्ति शश्वत् सविता चराचरम् ॥४१
हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरङ्गमैः पिवत्यथापो हरिभिः सहस्रधा ।
ततः प्रमुञ्चत्यपि तास्तवसौ हरिः स मुह्यमानो हरिभिस्तुरङ्गमैः ॥४२
इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्ण रथेन तु ।
भद्रैस्तैरक्षतैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिवि क्षये ॥४३
अहोरात्राद्रथेनासौ एकचक्रेण तु भ्रमन् ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तां सप्तभिः सप्तभिर्हयैः ।.४४

द्विकाला वशिष्ठ पीत सोम को कृष्णक्षय में रश्मियों के द्वारा क्षरण करते हुए उस सुधामृत को पितर पान किया करते हैं । देव और सौम्य उसी प्रकार से कव्य का पान किया करते हैं ॥ ३८ ॥ सूर्य की किरणों से जो कि समुद्भूत हैं और फिर समुद्धृत जलों से, वृष्टि से अत्यन्त बढ़ी हुई ओषधियों से मनुष्य क्षुधा को अन्न पानों से जीता करते हैं ॥ ३९ ॥ अमृत से देवों की तृप्ति आधे मास तक होती है और सुधा से पितरों की मासार्द्ध तृप्ति हुआ करती है । मनुष्यों को अन्न से सर्वदा तृप्ति होती है अतः सूर्य स्वयं किरणों द्वारा उसका भरण किया करता है ॥ ४० ॥ यह हरि है जो उन हरि तुरङ्गमों के द्वारा जाता हुआ रश्मियों से जलों का हरण किया करता है और जब उनके त्याग का समय आता है तो पुनः उनका विसर्जन करता हुआ सविता निरन्तर चराचर का भरण किया करता है ॥ ४१ ॥ हरि हरित् तुरङ्गमों से ह्रियमाण होते हैं और सहस्रों प्रकार से हरियों के द्वारा जल का पान किया करते हैं । फिर इसके अनन्तर उनको यह हरि त्यागते हैं वह हरि हरि तुरङ्गमों से मुह्यमान होते हैं ॥ ४२ ॥ इस तरह से सूर्य एक चक्र (पहिया) वाले रथ के द्वारा उन भद्र अक्षत अश्वों से दिव में क्षय में सर्पण किया करता है अर्थात् दौड़ लगाता रहता है ॥ ४३ ॥ यह इस रथ से जो कि एक ही चक्र वाला है एक अहोरात्र में सात-सात अश्वों से सात द्वीप वाले समुद्रों के अन्त तक भ्रमण करता है ॥ ४४ ॥

छन्दोभिरश्वरूपैस्तैर्यतश्चक्रन्ततः स्थितैः ।
कामरूपै. सकृद्युक्तै रमितैस्तैर्मनोजवैः ॥४५
हरितैरव्ययैः पिङ्गै रीश्वरैर्ब्रह्मवादिभि ।
अशीति मण्डलशत भ्रमन्त्यब्देन ते हयाः ॥४६
बाह्यमभ्यन्तरञ्चैव मण्डलं दिवसक्रमात् ।
कल्पादौ सम्प्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसम्प्लवात् ।
आवृता वालखिल्यैस्ते भ्रमन्ते रात्र्यहानि तु ॥४७
प्रथितैर्वचोभिरग्र्यं स्तूयमानो महर्षिभिः ।
सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वैरप्सरोगणैः ।
पतङ्गः पतगैरश्वैर्भ्रममाणो दिवस्पति ॥४८
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी ।
ह्रासवृद्धी तथैवास्य रश्मीना सूर्यवत् स्मृते ॥४९
त्रिचक्रोभयपार्श्वस्थो विज्ञेय शशिनो रथः ।
अपा गर्भसमुत्पन्नो रथ साश्व ससारथि ।
शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्त शुक्लैर्हयोत्तमैः ॥५०
दशभिस्तु कृशैर्दिव्यैरसगैस्तैर्मनाजवै ।
सकृद्युक्ते रथे तस्मिन् वहन्ते चायुगक्षयात् ॥५१

वन छन्द रूप अश्वो से जहाँ चक्र है वहाँ ही स्थित और काम रूप वाले, एकवार युक्त किये हुए, अमित मनोवेगो से युक्त, हरित, अव्यय, पिङ्ग, ब्रह्मवादी ईश्वर के अश्व हैं जो अब्द मे असी मण्डलो का भ्रमण किया करते हैं ॥ ४५-४६ ॥ दिनों के क्रम से बाह्य और अभ्यन्तर मण्डल को कल्प के आदि में सम्प्रयुक्त वे भूत सप्लव तब वहन किया करते हैं। वालखिल्यो से आवृत हुए वे रात्रि और दिन वहन किया करते हैं ॥ ४७ ॥ परम प्रथित एव उत्तम वचनों से महर्षियों के द्वारा स्तूयमान तथा गन्धर्व और अप्सराओ के द्वारा गीत एव नृत्यो से सेव्यमान होते हैं। दिवसपति पतङ्ग पतग अश्वों के द्वारा भ्रममाण होते हुए रहते हैं ॥ ४८ ॥ तथा चन्द्रमा वीथी के आश्रय स्वरूप नक्षत्रों का चरण किया करता है। सूर्य की भाँति इसकी किरणो का ह्रास

और वृद्धि उसी प्रकार से कही गई है ॥ ४९ ॥ तीन चक्र वाला उभय पार्श्वों में स्थित चन्द्रमा का रथ समझना चाहिए जो जल के गर्भ से अश्वों तथा सारथि के सहित उत्पन्न हुआ है । एक सौ अर वाला, तीन चक्रों से युक्त और शुक्ल अश्वों के सहित होता है ॥ ५० ॥ सङ्ग से रहित, कृश, दिव्य और मन के तुल्य वेग वाले दश अश्वों से एकबार उस रथ में युक्त करके युग के क्षय पर्यन्त उसका वहन होता है ॥ ५१ ॥

संगृहीते रथे तस्मिन् श्वेतश्चक्षुःश्रवास्तु वै ।
अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शंखवर्चसम् ॥५२
ययुश्च त्रिमनाश्चैव वृषो राजीवलो हयः ।
अश्वो वामस्तुरण्यश्च हंसो व्योमी मृगस्तथा ॥५३
इत्येते नामभिः सर्वे दश चन्द्रमसो हयाः ।
एते चन्द्रमसं देवं वहन्ति दिवसक्षयात् ॥५४
देवैः परिवृतः सौम्यः पितृभिश्चैव गच्छति ।
सोमस्य शुक्ल पक्षादौ भास्करे पुरतः स्थिते ।
आपूर्यते पुरस्यान्तः सततं दिवसक्रमात् ॥५५
देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययति नित्यदा ।
पीतं पञ्चदशाहन्तु रश्मिनैकेन भास्करः ॥५६
आपूरयन् सुषुम्नेन भागं भागमहःक्रमात् ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य शुक्ला वर्द्धन्ति वै कलाः ॥५७
तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णे शुक्ल आप्याययन्ति च ।
इत्येवं सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ॥५८

उस संग्रहीत रथ में श्वेत चक्षुश्रवा एक वर्ण वाले अश्व उस शङ्ख वर्चस रथ का वहन किया करते हैं ॥ ५२ ॥ उनके नामों का यहाँ परिगणन किया जाता है । ययु, त्रिमना, वृष, राजीवल, हय, अश्व वाम, तुरण्य, हंस, व्योमी, मृग ये दश इन नामों वाले चन्द्रमा के अश्व हैं । ये चन्द्र देव दिवस के क्षय से वहन किया करते हैं ॥ ५३ ॥ देवों तथा पितरों के द्वारा परिवृत एवं सौम्य चन्द्र गमन करते हैं । शुक्लपक्ष के आदि में भास्कर के आगे स्थित होने पर

चन्द्रमा के पुर का अ तर्मा। दिवस के क्रम से सतत आपूरित होता है ॥ ५५ ॥ क्षय म न्वो के द्वारा पीत सोम को नित्य ही अ प्याप्ति करता है। प द्रह दिन तक वह पीत होता है और भास्कर अपनी एक ही रश्मि से वह क्रम के अनुसार भाग भाग को आपूरित सुषुम्ना से करते हुए रहते है और सुषुम्ना से आप्यायमान च द्र की शुक्ल कलाऐ बढ़ा करती हैं ॥ ५६-५७ ॥ उसम कृष्ण पक्ष मे ह्रसित होती हैं और शुक्ल मे आप्यायित हुआ करती है। इस प्रकार स सूय के वीय से चन्द्रमा का शरीर आप्यायित हुआ करता है ॥ ५८ ॥

पौर्णमास्या स दृश्येत शुक्ल सम्पूर्णमण्डल ।
एवमाप्यायित साम शुक्लपक्षे दिनक्रमात् ॥५९
ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी ।
अपा सारमयस्यन्दा रमम त्रात्मकस्य च ।
पिबन्त्यम्बुमय देवा मधु सौम्य सुधामयम् ॥६०
सम्भृतश्चार्द्धमासेन अमृत सूर्यतेजसा ।
भक्षार्थममृता सौम्य पौर्णमास्यामुपासते ॥६१
एकरात्र सुरै सर्वे पितृभिश्च महर्षिभि ।
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च ॥६२
प्रक्षीयते परस्या त पीयमाना कला क्रमात् ।
क्षाय त तस्मात कृष्णे या शुक्ल ह्याप्याययन्तिता ॥६३
एव दिनक्रम पीत विबुधास्तु निशाकरम् ।
पीत्वार्द्ध मासङ्गच्छन्ति अमावास्या सुरोत्तमा ।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्या निशाकरम् ॥६४
तत पञ्चदश भाग किञ्चिच्छिष्टे कलात्मक ।
अपराह्ने पितृगणजघन्य पर्युपासते ॥६५

पौर्णमासी तिथि म सम्पूर्ण म डल शुक्ल दिखलाई देता है। इस प्रकार स साम (चन्द्र) शुक्लपक्ष म दिनो क क्रम म आप्यायित हुआ करता है ॥ ५९ ॥ फिर इसक उपरान्त में द्वितीया तिथि से चतुर्दशी तक जलो के सार पूर्ण इन्दु का जो कि रस मात्रात्मक ही होता है उसके अम्बुमय मधु सौम्य

और अमृतमय को देवता लोग पान किया करते हैं ॥ ६० ॥ सूर्य के तेज से अर्ध मास में वह अमृत पुनः सम्भृत हो जाता है। सौम्य जो अमृत है उसका भक्षण करने के लिये पूर्णमासी तिथि में उपासना की जाती है ॥ ६१ ॥ भास्कर के अभिमुख में स्थित चन्द्रमा की कृष्णपक्ष के आदि में एक रात्रि में देवता, समस्त पिता और महर्षियों के द्वारा पीई गयीं कलाऐं क्रम से पुर के अन्दर क्षीण हो जाया करती है। जो शुक्लपक्ष में आप्यायित होती हैं वे सब कृष्णपक्ष में क्षीण हो जाया करती हैं ॥ ६२ ॥ इस प्रकार से दिनों के क्रम के अतीत होने पर विबुध लोग निशाकर का पान करके अमावस्या तिथि में सुरोत्तम अर्द्ध का आसङ्ग मन किया करते हैं। अमावस्या में पितृगण निशा करके उपस्थान को करते हैं। ६३-६४ ॥ इसके अनन्तर कलात्मक पन्द्रहवें भाग के कुछ शेष रहने पर अपराह्न में जघन्य वह पितृगणों के द्वारा पर्युपासित किया जाता है ॥ ६५ ॥

पिबन्ति द्विकलाकालं शिष्टा तस्य तु या कला ।
निःसृत तदमावास्याङ्गभस्तिभ्यः स्वधामृतम् ।
तां स्वधां मासतृप्त्यै तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम् ॥६६
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्तास्तथैव च ।
कव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सर्व एव ते ॥६७
संवत्सरास्तु वै कव्याः पञ्चाब्दा ये द्विजैः स्मृताः ।
सौम्यास्तु ऋतवो ज्ञेया मासा बर्हिषदः स्मृताः ।
अग्निष्वात्तार्तवश्चैव पितृसर्गा हि वै द्विजाः ॥६८
पितृभिः पीयमानस्य पंचदश्यां कला तु वै ।
यावन्न क्षीयते तस्य भागः पंचदशस्तु सः ॥६९
अमावस्यान्तदा तस्य अन्तमापूर्यते परम् ।
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्यां शशिनः स्मृतौ ॥७०
एवं सूर्यनिमित्तैषा क्षयवृद्धिर्निशाकरे ।
ताराग्रहाणां वक्ष्यामि स्वर्भानोश्च रथं पुनः ॥७१
तोयतेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वै रथः ।

युक्तो हयै पिशङ्गैस्तु अष्टाभिर्वातरंहसैः ॥७२

उसकी जो कला शिष्ट होती है उसे दो कला के काल तक पान किया करते हैं। अमावस्या मे किरणों के द्वारा जो स्वधामृत निःसृत होता है उस स्वधामृत को वे एक मास की तृप्ति के लिए पान कर जाते हैं ॥ ६६ ॥ सौम्य, बर्हिपद अग्निष्वात्त और कव्य जो ये कहे गये हैं वे सभी पितर होते हैं ॥६७॥ सम्वत्सर कव्य होते हैं जो द्विजों ने पाँच अब्द बतलाये हैं। सौम्य ऋतुऐं जाननी चाहिए और मास बर्हिषद कहे गये हैं। अग्निष्वात्त आर्तव होते हैं। हे द्विजो ! ये सब पितृगण का सर्ग होता है ॥ ६८ ॥ पितृगणों के द्वारा पीयमान चन्द्र की पचदशी (अमावस्या) में जब तक पचदश भाग क्षीण नहीं होता है तब तक अमावस्या मे उसके अन्दर पर आपूरित हो जाता है। शशि के षोडशी में पक्ष के आदि मे वृद्धि और क्षय कहे गये हैं ॥ ७० ॥ इस प्रकार से निशाकर मे जो भी क्षय एवं वृद्धि होती है सूर्य के निमित्त वाली ही हुआ करती है। ताराग्रहों को और स्वर्भानु के रथ को फिर बतलाया जायगा ॥ ७१ ॥ सोम पुत्र का रथ तोय (जल) और तेज मे परिपूर्ण होता है और शुभ्र वर्ण वाला होता है। और वह रथ आठ वायु के तुल्य वेग वाले एवं पिशङ्ग अश्वों से युक्त होता है ॥ ७२ ॥

सवरूथः सानुकर्षः युक्तो दिव्यो रथो महान् ।
सोपासङ्गपताकस्तु सध्वजो मेघसन्निभः ॥७३
भार्गवस्य रथः श्रीमान्स्तेजसा सूर्यसन्निभः ।
पृथिवीसम्भवैर्युक्तो नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥७४
श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः पीतो विलोहितः ।
कृष्णश्च हरितश्चैव पृषतः पृष्णिरेव च ।
दशभिस्तैर्महाभागैरकृशैर्वातवेगितैः ॥७५
अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान् भौमस्यापि रथोऽभवत् ।
असगैर्लोहितैरश्वैः सर्वगैरग्निसम्भवैः ।
सर्पतेऽसौ कुमारो वै ऋजुवक्रानुवक्रगः ॥७६
ततस्त्वाङ्गिरसो विद्वान् देवाचार्यो बृहस्पतिः ।

शोणैरश्वैः कांचनेन स्यन्दनेन प्रसर्पति ।।७७
युक्तस्तु वाजिभिर्दिव्यैरष्टाभिर्वातसम्मितैः ।
नक्षत्रेऽब्दन्निवसति सवेगस्तेन गच्छति ।।७८
ततः शनैश्चरोप्यश्वैः शबलैर्व्योमसम्भवैः ।
कार्ष्णायसं समारुह्य स्यन्दनं याति वै शनैः ।।७९

उस रथ में वरुथ के सहित, अनुकर्ष से युक्त महान्, दिव्य सूत होता है। और वह उपासङ्ग एवं पताका से अन्वित एव ध्वजा के सहित मेघ के तुल्य होता है ।। ७३ ।। भार्गव का रथ तेज से सूर्य के सदृश होता है। वह पृथ्वी में जन्म लेने वाले नाना प्रकार के वर्ण वाले उत्तम अश्वों से युक्त होता है ।। ७४ ।। अब उन अश्वों के नामों की यहाँ परिगणना की जाती है। श्वेत, पिशङ्ग, सारङ्ग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित पृशत और पृष्णि ये दश अकृश वायु के वेग वाले महाभाग अश्वों से युक्त रथ होता है ।। ७५ ।। आठ अश्वों वाला सुवर्ण का बना हुआ शोभा से युक्त सोम का रथ था। सर्वत्र जाने वाले, सङ्ग से रहित, अग्नि से समुत्पन्न लोहित अश्वों के द्वारा ऋजु और वक्र चक्र का अनुग यह कुमार सर्पण किया करता है।। ७६ ।। इसके आगे आङ्गिरस, देवों के आचार्य परम विद्वान बृहस्पति शोण अश्वों से युक्त सुवर्णमय रथ से प्रसर्पण करते हैं ।। ७७ ।। दिव्य और वायु के सदृश आठ अश्वों से युक्त होता हुआ नक्षत्र पर एक अब्द तक निवास किया करता है फिर वेग के साथ उससे हट जाता है ।।७८।। फिर इसके अनन्तर शनैश्चर व्योम से समुत्पन्न शबल अर्थात् रङ्ग-बिरंगे अश्वों से युक्त काले लोह से निर्मित रथ में चढ़कर धीरे से जाया करता है ।। ७९ ।।

स्वर्भानोस्तु तथवाश्वाः कृष्णा ह्यष्टौ मनोजवाः ।
रथन्तमोमयन्तस्य सकृद्युक्ता वहन्त्युत ।।८०
आदित्यान्निःसृतो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु ।
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेपु पर्वसु ।।८१
अथ केतुरथस्याश्वा अष्टाष्टौ वातरंहसः ।
पलालधूमसङ्काशाः शबला रासभारुणाः ।।८२

एते वाहा ग्रहाणा वै मया प्रोक्ता रथै- सह ।
सर्वे ध्रुवनिबद्धास्ते प्रबद्धा वातरश्मिभि ॥८३
एते वै भ्राम्यमाणास्तु यथा योग भ्रमन्ति वै ।
वायव्याभिरदृश्याभि प्रबद्धा वातरश्मिभि ॥८४
परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति ध्रुवन्ते ज्योतिषा गणा- ॥८५
यथा नद्युदके नौस्तु सलिलेन सहोह्यते ।
तथा देवालया ह्येते उह्यन्ते वातरश्मिभिः ।
तस्मात्सर्वेण दृश्यन्ते व्योम्नि देवगणास्तु ते ॥८६

स्वर्भानु के अश्व भी उसी प्रकार के होते हैं । वे काले और आठ होते हैं जिनका मन के तुल्य वेग होता है । उसके अन्धकारमय रथ मे एक बार युक्त होते हुए उसका वहन किया करते हैं ॥ ८० ॥ आदित्य से निकला हुआ राहु पर्वों मे चन्द्रमा को चला जाता है । पुन और पर्वों मे सोम से निकलकर आदित्य मे जाया करता है ॥ ८१ ॥ इसके अनन्तर केतु के रथ के भी आठ अश्व होते हैं जिनका वेग वायु के तुल्य हुआ करता है । इनका रग पलाल के धूँआँ के समान होता है, शबल और रासभारुण होता है ॥ ८२ ॥ ये ग्रहों के वाहन मैंने रथों के सहित बतला दिए हैं । ये सब ध्रुव से निबद्ध और वात रश्मियो से प्रबद्ध होते हैं ॥ ८३ ॥ य भ्राम्यमाण होते हुए योग के अनुसार ही भ्रमण किया करते हैं । अदृश्य वायव्याओ मे वातरश्मियो प्रबद्ध हैं ॥ ८४ ॥ उसमे बद्ध चन्द्र, सूर्य और ग्रह दिव मे परिभ्रमण किया करते हैं । भ्रमण करते हुए ध्रुव के पीछे ज्योतियो के गण अनुगमन किया करते हैं ॥ ८५ ॥ जिस प्रकार से नदी के जल मे नौका सलिल के साथ ही उह्यमान होती है उसी प्रकार से ये देवालय भी वातरश्मियों से उह्यमान हुआ करते हैं । इसी से वे देवगण आकाश में सबके द्वारा दिखलाई दिया करते हैं ॥ ८६ ॥

यावन्त्यश्चैव तारास्तु तावन्तो वातरश्मय- ।
सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति तम् ॥८७

तैलपीडाकरं चक्रं भ्रमद्भ्रामयते यथा ।
तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः ।।८८
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु ।
तस्माज्ज्योतींषि वहते प्रवहस्तेन स स्मृतः ।।८९
एवं ध्रुवनिबद्धोऽसौ सर्पते ज्योतिषां गणः ।
सैष तारामयो ज्ञेयः शिशुमारो ध्रुवो दिवि ।
यदह्ना कुरुते पापं दृष्ट्वा तं निशि मुच्यते ।।९०
यावत्यश्चैव तारास्ताः शिशुमाराश्रिता दिवि ।
तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवन्त्यभ्यधिकानि तु ।।९१
शाश्वतः शिशुमारोऽसौ विज्ञेयः प्रविभागशः ।
उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयो ह्युत्तरो हनुः ।।९२
यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्द्धानमाश्रितः ।
हृदि नारायणः साध्यः अश्विनौ पूर्वपादयोः ।।९३

आकाश मण्डल में जितने तारागण है उतनी ही बात रश्मियाँ भी हैं । ये सभी ध्रुव के द्वारा निबद्ध होती हुई स्वयं भ्रमण किया करती हैं और उसको भ्रमण कराया भी करती हैं ।। ८७ ।। तैल पीड़ाकर चक्र (पहिया) जिस तरह भ्रमता हुआ भ्रमण कराया करता है उसी प्रकार सब ओर से बातबद्ध होकर ज्योतियाँ भी भ्रमण करती हैं ।। ८८ ।। बात चक्र मे ईरित होकर अलात के चक्र की भाँति ये जाया करते हैं । इससे वह ज्योतियों को प्रवहन करता हुआ स्वयं बहना है, ऐसा कहा गया है ।। ८९ ।। इस प्रकार से ध्रुव के द्वारा निबद्ध होता हुआ ज्योतियों का गण सर्पण किया करता है । वह यह दिव में तारामय शिशुमार ध्रुव जानना चाहिए । जो कि दिन में पाप किया करता है और उसको रात में देखकर उस पाप से छुटकारा पा जाता है ।। ९० ।। जितने ही वे तारा दिवि में शिशुमार के आश्रित होते हैं उतने ही अधिक वर्ष जीवित रहा करते हैं ।। ९१ ।। प्रविभाग से इस शिशुमार को शाश्वत जानना चाहिए । वह उत्तान पाद का उत्तर हनु हो ।। ९२ ।। यज्ञ को अधर और धम को मूर्द्धा का आश्रय लेने वाला जानना चाहिए । हृदय में भगवान् नारायण को साध्य करना चाहिए, अश्विनीकुमारों का पूर्वपादों में साधन करना चाहिए ।। ९३ ।।

वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनि ।
शिश्न सव सरस्तस्य मित्रोऽपाने समाश्रित ॥९४
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचि. कश्यपो ध्रुव. ।
तारका. शिशुमारश्च नास्तमेत चतुष्टयम् ॥९५
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणं सह ।
उन्मुखाभिमुखा सर्वे चक्रीभूताश्रिता दिवि ॥९६
ध्रुवणाधिष्ठिता सर्वे ध्रुवमेव प्रदक्षिणम् ।
प्रयान्तीह वर श्रेष्ठमेधीभूत ध्रुवन्दिवि ॥९७
ध्रुवाग्निकश्यपानान्तु वरश्चासौ ध्रुव स्मृत ।
एक एव भ्रमत्येष मेरुपर्वतमूर्द्धनि ॥९८
ज्योतिषाञ्चक्रमेतद्धि सदा कर्षत्यवाङ्मुख ।
मेरुमालोकयत्येष प्रयातीह प्रदक्षिणम् ॥९९

उसके पश्चिम सक्थि में वरुण तथा अर्यमा का साधन करना चाहिए। उसका शिश्न समर है। मित्र अपान मे समाश्रित रहता है ॥ ९४ ॥ पुच्छ म अग्नि, महेन्द्र, मरीचि कश्यप और ध्रुव-तारक और शिशुमार यह चतुष्टय अस्त नहीं होते हैं ॥ ९५ ॥ नक्षत्र, चन्द्र सूर्य, ग्रह, तारागणों के साथ उन्मुख तथा अभिमुख सब दिवि मे चक्रीभूत होकर स्थित रहते हैं ॥ ९६ ॥ ये सब ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित हैं और ध्रुव ही प्रदक्षिण है। यहाँ वर-श्रेष्ठ और एकीभूत ध्रुव को दिवि में प्रमाण किया करते है ॥ ९७ ॥ ध्रुव, अग्नि और कश्यप इन तीनों मे ध्रुव ही श्रेष्ठ कहा गया है। यह एक ही मेरु पर्वत के मूर्द्धा मे भ्रमण किया करता है। यह ज्योतियो का चक्र अवाङ्मुख होता हुआ सदा कर्षण किया करता है। यह मरु को देखता है और यहाँ प्रदक्षिण को जाता है ॥ ९८-९९ ॥

॥ प्रकर्ण ३५—ज्योतिमण्डल का विस्तार ॥

एतच्छ्रुत्वा तु मुनय पुनस्ते संशयान्विता ।
पप्रच्छुरुत्तर भूयस्तदा ते लोमहर्षणम् ॥१

यदेतद्युक्तम्भवता गृहाण्येतानि विश्रुतम् ।
कथं देवगृहाणिस्युः कथं ज्योतींषि वर्णय ।।२
एतत्सर्वं समाचक्ष्व ज्योतिषाञ्चैव निश्चयम् ।
श्रुत्वा तु वचनं तेषां तदा सूतः समाहितः ।।३
अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं ज्ञानबुद्धिभिः ।
तद्वोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्भवम् ।
यथा देवगृहाणीह सूर्याचन्द्रमसोर्गृहम् ।।४
अतः परं त्रिविधाग्नेर्वक्ष्येऽहन्तु समुद्भवम् ।
दिव्यस्य भौतिकस्याग्नेरथाग्नेः पार्थिवस्य च ।।५
व्युष्टायान्तु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
अव्याकृतमिदन्त्वासीन्नैशेन तमसावृतम् ।।६
चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन् पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते ।
यश्चादौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्तु स स्मृतः ।।७

श्री शांशपायन ने कहा—मुनिगण ने यह सुनकर पुनः संशय से युक्त होकर अपने प्रश्न का लोमहर्षण से उत्तर पूछा ।।१।। ऋषियों ने कहा—आपने जो यह कहा कि ये विश्रुत ग्रह हैं तो देवग्रह किस प्रकार से हैं और ज्योतियाँ किस तरह से हैं ? कृपा कर यह वर्णन करिये ।। २ ।। यह सब ज्योतियों का निश्चय बताइये । यह उनका वचन सुनकर उस समय सूत जी समाहित हुए और उन्होंने ऋषियों से कहा—।। ३ ।। महान् पण्डित तथा ज्ञान और बुद्धि वाले आप ने इस विषय में जो कुछ कहा है वह अब मैं आपसे सूर्य, चन्द्र का जन्म कहता हूँ । यहाँ पर जिस प्रकार से देवगृह सूर्य, चन्द्र के ग्रह हैं ।। ४ ।। इसके आगे मैं तीन प्रकार की अग्नि का समुद्भव भी कहूँगा । दिव्य अग्नि, भौतिक अग्नि और पार्थिव अग्नि—इन तीनों प्रकार की अग्नियों की उत्पत्ति भलीभाँति बतलाई जाती है ।। ५ ।। व्युष्ट रात्रि में अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा को यह निशा के अन्धकार से आवृत अव्याकृत था ।। ६ ।। चार भूतों से अवशिष्ट इसमें वह पार्थिव अग्नि कहा जाता है । जो आदि में सूर्य में ताप देता है वह शुचि अग्नि कहा गया है ।। ७ ।।

वैद्युताग्न्यस्तु विज्ञेयस्तेषां वक्ष्येऽथ लक्षणम् ।
वैद्युतो जाठरः सौरो ह्यपाङ्गर्भाश्रयोऽनल ।
तस्मादपः पिबन् सूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ दिवि ॥८
वैद्युतेन समाविष्टो वार्क्षो नाद्भिः प्रशाम्यति ।
मानवानाञ्च कुक्षिस्थो नाद्भिः शाम्यति पावकः ॥९
अर्चिष्मान् परमः सोऽग्नि प्रभवो जाठरः स्मृत ।
यश्चाय मण्डली शुक्लो निरूष्मा सम्प्रकाशते ॥१०
प्रभा हि सौरी पादेन ह्यस्त याति दिवाकरे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात् प्रकाशते ॥११
उद्यन्त च पुन सूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशन् ।
पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ ॥१२
प्रकाशश्च तथौष्ण्य च सौराग्नेये तु तेजसी ।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥१३
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तस्मादस्मिश्च दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति पुन सूर्ये रात्रिराविशते त्वप ।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥१४

जो अग्नि वैद्युत–इस नाम वाला होता है उसका लक्षण बताया जायगा। तीन प्रकार की अग्नि होती हैं। एक वैद्युत, दूसरा जाठर और तीसरा अपाङ्गर्भ होता है। इससे जलों का पान करता हुआ सूर्य आकाश में किरणों से दीप्त हुआ करता है ॥ ८ ॥ वैद्युत से समाविष्ट अग्नि जलों से कभी शान्त नहीं करता है। जो मानवों की कुक्षि में स्थित रहने वाला जाठर अग्नि होता है वह भी जल से शमन को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥ ९ ॥ वह अग्नि परम अर्चियों वाला होता है जिसका प्रभव जाठर कहा गया है। जो यह मण्डली, शुक्ल और बिना ऊष्मा वाला सम्प्रकाशित होता है ॥ १० ॥ सौरी प्रभा पाद से दिवा करके अस्ताचलगामी हो जाने पर अग्नि में आविष्ट हो जाती है। रात्रि में वह दूर से प्रकाश देती है ॥ ११ ॥ वह आग्नेय उष्णता उगते हुए सूर्य में पुनः आविष्ट हो जाया करती है। पाद से पार्थिव अग्नि में है अतएव यह अग्नि ताप दिया

करती है ॥ १२ ॥ प्रकाश और उष्णता सौर तथा आग्नेय तेज रात-दिन परस्पर में अनुप्रवेश पाकर आप्यायित हुआ करते हैं ॥ १३ ॥ उत्तर के भूमि के अर्ध भाग में और उससे इस दक्षिण में पुनः सूर्य के उत्थित होने पर रात्रि अप में अर्थात् जल में प्रवेश करती है। इसी से जल ताम्र वर्ण वाले हो जाते हैं क्योंकि दिन और रात्रि में उनका प्रवेशन होता है ॥ १४ ॥

अस्तं याति पुनः सूर्ये अहर्वै प्रविशत्यपः ।
तस्मान्नक्तं पुनः शुक्ला आपो विश्यन्ति भास्करे ॥१५
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ।
उदयास्तमये नित्यमहोरात्रं विशत्यपः ॥१६
यश्चासौ तपते सूर्ये पिबन्नम्भो गभस्तिभिः ।
पार्थिवो हि विमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः ॥१७
सहस्रपादः सोऽग्निस्तु वृत्तः कुम्भनिभः शुचिः ।
आदत्ते तत्तु रश्मीनां सहस्रेण समन्ततः ॥१८
नादेयीश्चैव सामुद्रीः कौप्याश्चैव सधान्वनीः ।
स्थावरा जङ्गमाश्चैव यश्च सूर्यो हिरण्मयः ।
तस्य रश्मिसहस्रन्तु वर्षशीतोष्णनिःस्रवम् ॥१९
तासांचतुःशता नाड्यो वर्षन्ति चित्रमूर्त्तयः ।
वन्दनाश्चैव वन्द्याश्च ऋतना नूतनास्तथा ।
अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ॥२०
हिमवाहाश्च ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिशताः पुनः ।
दृश्या मेध्याश्च वाह्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः ॥२१
चन्द्रास्ता नामतः सर्वाः पीताभास्तु गभस्तयः ।
शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ॥२२

पुनः सूर्य के अस्ताचलगामी होने पर दिन जल में प्रवेश किया करता है। इसी से रात्रि में शुक्ल जल भास्कर में आविष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ इस क्रम के योग से दक्षिणोत्तर भूमि के अर्द्ध में उदयास्तमय में नित्य ही दिन-रात जल में प्रवेश किया करते हैं ॥ १६ ॥ जो यह सूर्य जलों का अपनी

किरणो के द्वारा पान करता हुआ तपता है यह निश्चय ही पार्थिव और विमिश्र दिव्य शुचि है—ऐसा कहा गया है ॥ १७ ॥ सहस्र चरणों वाला वह अग्नि कुम्भ के सदृश शुचि हो गया है जो कि सहस्र रश्मियों से सब ओर से उसे ग्रहण किया करता है ॥ १८ ॥ वे जल नादेयी, सामुद्री, कौप्य, तथान्वर्नी, स्थावर और जङ्गम होते हैं और जो सूर्य है वह हिरण्मय होता है। उसकी सहस्र रश्मियाँ, वर्षा, शीत और उष्णता का निःस्रव करने वाली होती हैं ॥ १९ ॥ उनकी चित्रमूर्त्ति वाली चार सौ नाडी वर्षती हैं। चन्दना, मन्द्या, ऋतना, नूतना, अमृता इन नामो वाली होती हैं। ये सब रश्मियाँ वृष्टि के सर्जन करने वाली हैं ॥ २० ॥ उनसे भी अन्य तीन सौ हिमवाहा रश्मियाँ होती है। ये दृश्या, मेघ्या, वाह्या, ह्लादिनी, हिमसर्जना और चन्द्रा नामो वाली हैं। ये सब पीत आभा वाली गभस्तियाँ (किरणें) होती हैं। शुक्ला, ककुभ, गाव, विश्वभृत होती हैं ॥ २२ ॥

> शुक्लास्ता नामत सर्वास्त्रिशता घर्मसर्जना ।
> सम विभर्ति ताभिस्तु मनुष्यपितृदेवता ॥२३
>
> मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितृनपि ।
> अमृतेन सुरान् सर्वांस्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ ॥२४
>
> वसन्ते चैव ग्रीष्मे च स स तं मुनपते त्रिभिः ।
> वर्षास्वथो शरदि चतुर्भि सम्प्रतर्पति ॥२५
>
> हेमन्ते शिशिरे चैव हिम स सृजते त्रिभि. ।
> ओषधीषु बलन्धत्ते स्वधया च पितृनपि ।
> सूर्याऽमरत्वममृतनयत्त्रिषु नियच्छति ॥२६
>
> एव रश्मिसहस्रन्तत् सौर लोकार्थ साधकम् ।
> भिद्यते ऋतुमासाद्य जलशीतोष्णनि स्रवम् ॥२७
>
> इत्येतन्मण्डल शुक्ल भास्वर सूर्यसञ्ज्ञितम् ।
> नक्षत्रग्रहसोमाना प्रतिष्ठायोनिरेव च ।
> नक्षत्रचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेया सूर्यसम्भवाः ॥२८

नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः ।
शेषाः पञ्चग्रहा ज्ञेया ईश्वराः कामरूपिणः ॥२६

जो नाम से शुक्ल है वे सब तीन सौ हैं और धर्म का सर्जन करने वाली हैं। उनसे समान रूप से मनुष्य, पितर और देवों का भरण किया जाता है ॥२३॥ यहाँ मनुष्यों को औषध से, स्वधा से पितरों और अमृत से देवों को इन सब तीनों को यह तीनों से तृप्त किया करता है ॥२४॥ बसन्त और ग्रीष्म में वह तीनों से भली प्रकार तपा करता है। वर्षा और शरद में चारों से अच्छी प्रकार से प्रकर्षण किया करता है ॥२५॥ हेमन्त और शिशिर में वह तीनों से हिम का सृजन किया करता है। औषधियों में बल धारण करता है, स्वधासे पितरों को भी सूर्य तीनों में अमृतत्व अमरत्व को दिया करता है ॥२६॥ इस प्रकार से सूर्य सम्बन्धी सहस्र रश्मियाँ लोक के अर्थ की साधक होती हैं। ऋतु को प्राप्तकर जल, शीत और उष्णता के स्रवण का भेदन करती हैं ॥२७॥ इतना यह मण्डल शुक्ल एवं भास्वर सूर्य की संज्ञा वाला है और नक्षत्र, ग्रह और चन्द्र की प्रतिष्ठा का जन्म स्थान ही है। ऋक्ष-चन्द्रमा और ग्रह ये सब सूर्य से ही उत्पन्न होने वाले होते हैं—ऐसा जान लेना चाहिए ॥२८॥ नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा है और ग्रहों का राजा सूर्य होता है। शेष पाँच ग्रह कामरूपी ईश्वर जानने चाहिए ॥२९॥

पठ्यते चाग्निरादित्य औदकश्चन्द्रमाः स्मृतः ।
शेषाणां प्रकृतिं सम्यग्वर्ण्यमानां निबोधत ॥३०
सुरसेनापतिः स्कन्दः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः ।
नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदो विदुः ॥३१
रुद्रो वैवस्वतः साक्षाद्धर्मो प्रभुः स्वयम् ।
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठो मन्दगामी शनैश्चरः ॥३२
देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ ।
प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती ।
दैत्यो महेन्द्रश्च तयोराधिपत्ये विनिर्मितौ ॥३३
आदित्यमूलमखिलं त्रिलोकं नात्र संशयः ।

भवत्यस्य जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ॥३४
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्रास्त्रिदिवौकसाम् ।
द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्ना यत्तेज सार्वलौकिकम् ॥३५
सर्वात्मा सर्वलोकेशो मूलं परमदैवतम् ।
ततः संजायते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते ॥३६

आदित्य अग्नि पढ़ा जाता है और चन्द्रमा औदक कहा गया है। शेषों की प्रकृति को जोकि भली भाँति वर्णन की जाने वाली है समझलो ॥३०॥ देवताओं की सेना का स्वामी स्कन्द है और अङ्गारक ग्रह पढ़ा जाता है। बुध को नारायण कहते हैं और देव को ज्ञान के वेत्ता जानते हैं ॥३१॥ रुद्रवैवस्वत है जो लोक में साक्षात् धर्म एवं स्वयं प्रभु हैं। द्विजो मे श्रेष्ठ मन्दगमन करने वाला महाग्रह शनैश्चर है ॥३२॥ देवासुरगुरु (अर्थात् बृहस्पति और शुक्र) ये दोनों भानुमान् महाग्रह होते हैं। य दोनो प्रजापति के पुत्र शुक्र और बृहस्पति नाम वाले हैं। दैत्य और महेन्द्र इन दोनों के आधिपत्य में विनिर्मित हुए हैं ॥३३॥ यह समस्त त्रैलोक्य आदित्य के मूल वाला है, इसमे कुछ भी संशय नहीं है। सम्पूर्ण जगत् देव, असुर और मानवों के सहित इसका होता है ॥३४॥ हे विप्रेन्द्र वृन्द। रुद्र इन्द्र उपेन्द्र चन्द्र देवों को जोकि द्युतिमान् है, समस्त द्युति और सार्वलौकिकतेज है उन सब की आत्मा समस्त लोकों के ईश मूल परम दैवत है अर्थात् सूर्य ही मूल और सबसे बड़ा देवता है। उससे ही सब उत्पन्न होता है सब कुछ उसी मे प्रलीन हुआ करता है ॥३५॥३६॥

भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ।
जगज्ज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान् सुग्रहो रविः ॥३७
यत्र गच्छन्ति निधनं जायन्ते च पुनः पुनः ।
क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशा पक्षाश्च कृत्स्नशः ।
मासा संवत्सराश्चैव ऋतवोऽब्दयुगानि च ॥३८
तदादित्यादृते तेषां कालसंख्या न विद्यते ।
कालादृते न नियमो न दीक्षा नाह्निकक्रमः ॥३९

ऋतुनामविभागश्च पुष्पमूलफलं कुतः ।
कुतः सस्याभिनिष्पत्तिर्गुणौषधिगणादि वा ।।४०
अभावो व्यहाराणां देवानां दिवि चेह च ।
जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम् ।।४१
स एव कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः ।
तपत्येष द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।४२

समस्त लोकों के भाव और अभाव पहिले आदित्य से निकले थे । हे विप्रो ! यह जगत् ग्रह समझना चाहिए और दीप्तिमान रवि को सुग्रह जानना चाहिए ।।३७।। जहाँ पर क्षण, मुहूर्त-दिवसनिशा, पूर्णतया पक्ष, मास, सम्वसर, ऋतु, अयन और युग निधन को प्राप्त होते हैं अर्थात् समाप्त होते हैं और बार-बार उत्पन्न हुआ करते हैं ।।३८।। उस समय आदित्य के बिना उनकी काल संख्या नहीं होती है । काल के बिना नियम नहीं होता है, न दीक्षा होती है और न कोई आह्निक क्रम ही होता है ।।३९।। जब ऋतुओं का कोई विभाग ही नहीं है तो फिर पुष्प-मूल और फल कहाँ से कैसे हो सकते हैं ? सस्य की अभिनिव्यक्ति, गुण और औषधिगणआदि भी कैसे हो सकेंगे ? ।।४०।। दिव और देवों का और यहाँ पर भी सभी व्यवहारों का अभाव हो जायगा । वारि के तस्कर अर्थात् अपहरण करने वाले भास्कर के बिना जगत का प्रतापन हो जायगा ।।४१।। हे द्विजश्रेष्ठो ! वह ही काल और अग्नि प्रजापति द्वादश स्वरूप वाला है । यह त्रैलोक्य में समस्त चराचर को तपता है ।।४२।।

स एष तेजसां राशिः समस्तः सार्वलौकिकः ।
उत्तमं मार्गमास्थाय वायोर्भाभिरिदञ्जगत् ।
पार्श्वमूर्द्धमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः ।।४३
रवेरश्मिसहस्रं यत् प्राङ्मया समुदाहृतम् ।
तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ।।४४
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च ।
विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः सम्पद्वसुरतः परम् ।
अर्वावसुः पुनश्चान्यो मया चात्र प्रकीर्त्तितः ।।४५

सुषुम्न सूर्य रश्मिस्तु क्षीण शशिनमेधयन् ।
तिर्यगूर्द्धप्रभावोऽसौ सुषुम्न. परिकीर्त्यते ॥४६
हरिकेश' पुरस्त्वाद्या ऋक्षयोनि. प्रकीर्त्यते ।
दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिर्वर्द्धयते बुधम् ॥४७
विश्वश्रवास्तु य. पश्चात् शुक्रयोनि स्मृतो बुधै. ।
सम्पद्वसुश्च यो रश्मि. सा योनिर्लोहितस्य च ॥४८
षष्ठस्त्वोवसू रश्मिर्योनिस्तु स बृहस्पते ।
शनैश्चर पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट् ॥४९

यह यह ही समस्त एव सार्वलौकिक तेजो की राशि है । वायु के उत्तम मार्ग मे आश्रित होकर अपनी प्रभाओ से इस जगत् को पार्श्व मे-ऊपर की ओर अधोभाग मे सब ओर से यह ताप देता है ॥४३॥ सूर्य की सहस्र रश्मियाँ जो आड्मय समुदाहृत हुई हैं उनमे भी फिर श्रेष्ठ ग्रहो की जन्मभूमि सात रश्मियाँ होती हैं ॥४४॥ अब यहाँ कुछ रश्मियो के नाम और उनके काम बतलाये जाते हैं । सुषुम्ना,हरिकेश विश्वकर्मा विश्वश्रवा-फिर अन्य परम सम्पद्वसु रत , अर्वावसु-ये रश्मियाँ प्रकीर्तित की गई हैं ॥४५॥ सुषुम्ना नाम वाली जो सूर्य की रश्मि है वह क्षीण शशि की वृद्धि करती है । इसका प्रभाव तिर्यक् और ऊर्द्ध्व की हुआ करता है इसी लिये यह सुषुम्ना कही जाती है ॥४६॥ हरिकेश नामक रश्मि आद्यारश्मि है और यह नक्षत्रो का जन्म स्थान कही जाती है । विश्वकर्मा नाम वाली जो रश्मि है वह दक्षिणमे बुध का वर्धन किया करती है ॥४७॥ विश्वश्रवा नामक रश्मि जो है वह बुध के द्वारा पश्चात् शुक्र की योनि कही गई हैं । सम्पद्वसु जो रश्मि है वह लोहित की योनि होती है ॥४८॥ षष्ठ रश्मि अर्वावसु होती है वह बृहस्पति का जन्म स्थान होती है । और स्वराट् रश्मि फिर शनैश्चर को आप्यायित किया करती है ॥४९॥

एव सूर्यप्रभावेण ग्रहनक्षत्रतारका. ।
वर्द्धन्ते विदिता: सर्वा विश्वञ्चेद पुनर्जगत् ।
न क्षीयन्ते पुनस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ॥५०

क्षेत्राण्येतानि वै पूर्वमापतन्ति गभस्तिभिः ।
तेषां क्षेत्राण्यथादत्ते सूर्यो नक्षत्रताङ्गतः ॥५१
तीर्णानि सुकृतेनेह सुकृतान्ते ग्रहाश्रयात् ।
ताराणां तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः ॥५२
दिव्यानां पार्थिवानाञ्च नैशानाञ्चैव सर्वशः ।
आदानान्नित्यमादित्यस्तमसां तेजसां महान् ॥५३
सुवति स्पन्दनार्थे च धातुरेष विभाव्यते ।
सवनात्तेजसोऽपाञ्च तेनासौ सविता मतः ॥५४
बह्वर्थश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरिष्यते ।
शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते ॥५५
सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे ।
ज्वलत्तेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे ॥५६

इस प्रकार से सूर्य के प्रभाव से सब ग्रह-नक्षत्र और तारागण बढ़ते हैं । यह सर्व विदित है । यह विश्व और यह जगत् भी सूर्य के प्रभाव से ही वर्द्धित होता है । फिर वे क्षीण नहीं होते हैं इसी से नक्षत्रता कही गई है ॥५०॥ पहिले ये क्षेत्र गभस्तियों से आपतित होते हैं । उनके क्षेत्रों को सूर्य नक्षत्रता को प्राप्त हुआ ले लेता है ॥५१॥ इस संसार में सुकृत से तीर्ण और सुकृत के अन्त में ग्रहों के आश्रय से ताराओं में ये तारक हैं और शुक्ल होने से ही तारक होते हैं ॥५२॥ दिव्य-पार्थिव और नैश अर्थात् रात्रि में होने वाले अन्धकारों को तेजों के आदान करने से ही यह महान् अदित्य हुआ है अर्थात् आदान से आदित्य नाम पड़ा है ॥५६॥ स्पन्दन अर्थ में सुवति यह धातु विभावित होती है । तेजों के और जलों के सवन करने से यह सविता इस नाम वाला कहा गया है ॥५४॥ चन्द्र, यह बहुत अर्थ वाला है । ह्लादन में धातु होता है शुक्लत्व-अमृतत्व और शीतत्व में वह विभावित होता है ॥५५॥ सूर्य और चन्द्रमा के दिव्य आकाश व गमन करने वाले भास्वर मण्डल हैं, ये ज्वलन्त, तेजोमय, शुक्ल शुभ और वृत्त कुम्भ के तुल्य होते हैं ॥५६॥

घनतोयात्मकं तत्र मण्डलं शशिनः स्मृतम् ।

घनतेजोमयं शुक्लं मण्डलं भास्करस्य तु ॥५७॥
विशन्ति सर्वदेवास्तु स्थाना न्येतानि सर्वशः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रयाः ॥५८
तानि देवगृहाण्येव तदाख्यास्ते भवन्ति च ।
सौरं सूर्यो विशत्स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च ॥५६
शौक्रं शुक्रो विशत्स्थानं षोडशार्चिः प्रतापवान् ।
बृहद्बृहस्पतिश्चैव लोहितश्चैव लौहितं ।
शानैश्वरं तथा स्थानं देवश्चैव शनैश्चरः ॥६०
आदित्यरश्मिसंयोगात् सम्प्रकाशात्मिकाः स्मृताः ।
नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ॥६१
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः ।
द्विगुणं सूर्यविस्ताराद्विस्तारं शशिनः स्मृतः ॥६२
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाधस्तात् प्रसर्पति ।
उद्धृत्य पार्थिवच्छाया निर्मितो मण्डलाकृतिः ॥६३

यहाँ घन तोयात्मक शशि का मण्डल कहा गया है और भास्कर का मण्डल घन तेजोमय शुक्ल कहा गया है ॥५७॥ समस्त देवता लोग सब ओर से इन स्थानों में प्रवेश किया करते हैं। समस्त मन्वन्तरों में नक्षत्र-सूर्य और ग्रहों के आश्रय होते हैं ॥५८॥ ये देवों के ग्रह ही हैं और उस आख्या अर्थात् नाम से वे होते हैं। सूर्य सौर-विशत्स्थान है और सोम सौम्य-विशत्स्थान होता है ॥५६॥ सोलह अर्चि वाला प्रताप से युक्त शुक्र शौक्र का प्रवेश स्थान है। बृहद् (बड़ा) बृहस्पति और लौहित हो लोहित तथा देव शनैश्चर शानैश्चर विशत्स्थान होता है ॥६०॥ ये सब आदित्य के रश्मियों के संयोग से सम्प्रकाशात्मिक कहे गये हैं। सविता का विष्कम्भ नौ सहस्र योजन वाला होता है—ऐसा कहा गया है ॥६१॥ उसका विस्तार तिगुना और प्रमाण से मण्डल होता है। सूर्य के विस्तार से दुगना शशि का विस्तार कहा गया है ॥६२॥ इन दोनों के तुल्य स्वर्भानु हो कर अधोभाग से प्रसर्पण किया करता है। पार्थिव अर्थात् पृथ्वी की छाया का उद्धरण करके यह मण्डल की आकृति वाला निर्मित हुआ करता है ॥६३॥

स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानन्निर्मितं यत्तमोययम् ।
आदित्यात्तञ्च निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु ॥६४
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सोमञ्च पर्वसु ।
स्वर्भासा नुदते यस्मात्ततः स्वर्भानुरुच्यते ॥६५
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते ।
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रान् प्रमाणतः ॥६६
भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः ।
बृहस्पतेः पादहीनौ कुजसौरावुभौ स्मृतौ ।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः ॥६७
तारानक्षत्ररूपाणि स्वपुष्मन्तीह यानि वै ।
बुधेन समतुल्यानि विस्तारान्मण्डलादथ ॥६८
प्रायशश्चन्द्रयोगानि विद्यादृक्षाणि तत्ववित् ।
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ॥६९
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने ।
पूर्वापरनिकृष्टानि तारकामण्डलानि तु ।
योजनान्यर्द्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ॥७०

स्वर्भानु का वृहत् स्थान जोकि तमोमय निर्मित हुआ है वह आदित्य से निकल कर पर्वो में चला जाया करता है ॥६४॥ सोम से आदित्य में आता है और फिर पर्वो में सोम को जाया करता है । अपनी दीप्ति से नुदन किया करता है इसी कारण से यह स्वर्भानु- ऐसा कहा जाया करता है ॥६५॥ चन्द्रमा का सोलहवां भाग भृगुका होता है जोकि विषकम्भ-मण्डल और योजनाग्र के प्रमाण से होता है ॥६६॥ भार्गव से एक पाद हीन बृहस्पति को जानना चाहिए और बृहस्पति से एक पाद कम वाले कुज और सौर दोनों कहे गये हैं । विस्तार और मण्डल से उन दोनों से एक पाद हीन बुध को कहा गया है ॥६७॥ यहाँ जो अपने वपु वाले तारा नक्षत्र रूप से युक्त है वे सब विस्तार तथा मण्डल से बुध के समान ही होते हैं ॥६८॥ तत्ववेत्ता को चाहिए कि प्रायः इन्हें चन्द्र के योग वाले जानें । तारा नक्षत्र रूप वाले परस्पर में हीन हैं ॥६९॥ सौ-पाँच-

चार तीन और दो योजन तारकमण्डल पूर्वापर में निकृष्ट होते हैं। उनमें आधे योजन से छोटा कोई भी नहीं होता है ॥७०॥

उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः ।
सौरोऽङ्गिराश्चवक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः ॥७१
तेभ्योधस्तात् चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः ।
सूर्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः ॥७२
यावन्त्यस्तारकाः कोटयस्तावदृक्षाणि सर्वशः ।
वीथीनां नियमाच्चैवमृक्षमार्गो व्यवस्थितः ॥७३
गतिस्तास्त्वेव सूर्यस्य नीचोच्चत्वेऽयनक्रमात् ।
उत्तरायणमार्गस्थो यदा पर्वसु चन्द्रमाः ।
वीथ वीथोऽथ स्वर्भानुः स्वर्भानो स्थानमास्थितः ॥७४
नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशन्त्युत ।
गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम् ॥७५
कल्पादौ सम्प्रवृत्तानि निर्मितानि स्वयम्भुवा ।
स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥७६
मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवतायतनानि वै ।
अभिमानिनोऽवतिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥७७

उनमें ऊपर से तीन यह दूर सर्पी अर्थात् दूरतक सर्पण करने वाले होते हैं। और अङ्गिरा तथा वक्र य मन्दचारी जानने के योग्य होते हैं ॥७१॥ उनके नीचे फिर चार य य महाग्रह होते हैं जो शीघ्र गमन करने वाले हैं य सूर्य सोम-बुध और भार्गव होते हैं ॥७२॥ जितने करोड़ तारका हैं उतने ही सब ओर नक्षत्र होते हैं। वीथियों के नियम से ही नक्षत्रों का मार्ग व्यवस्थित होता है ॥७३॥ सूर्य की वह गति नीच, उच्च अयन के क्रम से ही होती है। जब चन्द्रमा उत्तरायण मार्ग में स्थित पर्वों में होता है तब वीथ वीथ का और स्वर्भानु स्वर्भानु के स्थान में आस्थित होता है ॥७४॥ समस्त नक्षत्र,नक्षत्रों में प्रवेश किया करते हैं। ये सब ज्योतियाँ सुकृत आत्मा के गृह होते हैं ॥७५॥ कल्प के आदि में सम्प्रवृत्त स्वयम्भू के द्वारा निर्मित ये स्थान हैं और भूत सम्प्लव पर्यन्त रहते

हैं ॥७६॥ समस्त मन्वन्तरों में देवताओं के आयत अभिमान वाले जब तक भूत संप्लव होता है अवस्थित हुआ करते हैं ॥७७॥

अतीतैस्तु सहातीता भाव्याभाव्यैः सुरासुरैः ।
वर्त्तन्ते वर्त्तमानैश्च स्थानानि स्वैः सुरैः सह ॥७८
अस्मिन् मन्वन्तरे चैव ग्रहा वैमानिकाः स्मृताः ।
विवस्वानदितेः पुत्रः सुर्यो वैवस्वतेऽन्तरे ॥७६
त्विषिमान्धर्मपुत्रस्तु सोमदेवो वसुः स्मृतः ।
शुक्रो देवस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरराजकः ॥८०
बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्योऽङ्गिरः सुतः ।
बुधो मनोहरश्चैव त्विषिपुत्रस्तु स स्मृतः ॥८१
अग्निर्विकल्पात् सजज्ञे युवाऽसौ लोहिताधिपः ।
नक्षत्रऋक्षागामिन्यो दाक्षायण्यः स्मृतास्तु ताः ॥८२
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसन्तापनोऽसुरः ।
सोमर्क्ष ग्रहसूर्ये तु कीर्तितास्त्वभिमानिनः ॥८३
स्थानान्येतान्यथोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः ।
शुक्लमग्निमयं स्थानं सहस्रांशोर्विवस्वतः ॥८४
सहस्रांशोस्त्विषः स्थानमम्मयं शुक्लमेव च ।
अथ श्यामं मनोज्ञस्य पञ्चरश्मेर्गृहं स्मृतम् ॥८५
शुक्रस्याप्यम्मयं स्थानं सद्म षोडशरश्मिवत् ।
नवरश्मेस्तु यूनो हि लोहितस्थानमम्मयम् ॥८६
हरिश्चाप्यं बृहच्चापि द्वादशांशोर्बृहस्पतेः ।
अष्टरस्मेर्गृहं प्रोक्तं कृष्णं वृद्धस्य अम्मयम् ॥८७

अतीतों के साथ अतीत और भाव्यों के साथ भाव्य ये सुरासुर वर्त्तमानों के साथ अपने सुरों के साथ वर्त्तमान स्थान होते हैं ॥७८॥ इस मन्वन्तर में ग्रह वैमानिक कहे गये हैं। वैवस्वत अन्तर में सूर्य अदिति का पुत्र कहा गया है ॥७६॥ त्विषिमान् धर्म का पुत्र और सोमदेव वसु कहा गया है शुक्रदेव असुरराज भार्गव जानना चाहिए ॥८०॥ अङ्गिरा के

पुत्र बृहत् तेज वाला देव बृहस्पति देवाचार्य कहा गया है। मनोहर बुध त्विषि पुत्र कहा गया है ॥८१॥ अग्नि विकरा से उत्पन्न हुआ जोकि लोहिताधिप है। नक्षत्र ऋक्ष मे गमन करने वाली वे दाक्षायणी कही गई हैं ॥८२॥ स्वर्भानु सिंहिका का पुत्र है जोकि प्राणियों को सन्ताप देने वाला असुर होता है। सोम ऋक्ष ग्रह सूर्य तो अभिमानी कीर्तित किये गये हैं ॥८३॥ ये सब स्थान जैसे बताये गये हैं और स्थानीय देवता जो बताये गये हैं उनमें विवस्वान् सूर्य का स्थान शुक्ल एव अग्निमय स्थान होता है ॥८४॥ त्विषि सहस्रांश का स्थान जलमय और शुक्ल होता है। इसके अनन्तर पञ्चरश्मि मनोज्ञ का श्याम गृह कहा गया है ॥८५॥ शुक्र का भी स्थान जलमय तथा षोडश रश्मि के हृदय मय होता है। नवरश्मि पुत्रकवा लपमय लोहित स्थान होता है ॥८६ द्वादशांश बृहस्पति का हरि-आभ और बृहत् स्थान होता है। अष्टरश्मि बुध का गृह कृष्ण और अवमय कहा गया है ॥८७॥

स्वर्भानोस्तामस स्थान भूतसन्तापनालयम्।
विज्ञेयास्तारका. सर्वास्त्वम्मयास्त्वेकरश्मय ॥८८

आश्रया पुण्यकीर्त्तिना सुशुक्लाश्चैव वर्णत:।
घनतोयात्मिका ज्ञेया: कल्पादौ वेदनिर्मिता ॥८९

उच्चत्वाद्दृश्यते शीघ्रमभिव्यक्तैर्गभस्तिभि.।
तथा दक्षिणमार्गस्थो नीचवीथ्यासमाश्रित: ॥९०
भूमिलेखावृत. सूर्य पूर्णमावास्ययोस्तथा।
न दृश्यते यथाकाल शीघ्रतोऽस्तमुपैति च ॥९१
तस्मादुत्तरमागस्थो ह्यमावास्या निशाकर'।
दृश्यते दक्षिणे मार्गे नियमाद्दृश्यते न च ॥९२
ज्योतिषा गतियोगेन सूर्याचन्द्रमसावुभौ।
समानकालास्तमयो विषुवत्सु समोदयौ ॥९३
उत्तरासु च वीथीषु व्यन्तरास्तमयोदयो।
पूर्णमावास्ययोर्ज्ञेयो ज्योतिश्चक्रानुवर्त्तिनौ ॥९४

स्वर्भानु का स्थान तामस होता है जोकि भूतों के सन्ताप देने वाला घर होता है। समस्त तारका जो हैं वे एक रश्मि वाले और अपमय जानने के योग्य होते हैं ॥८८॥ जो पुण्य कीर्त्ति होते हैं उनके आश्रय अच्छे वर्ण से शुक्ल हुआ करते हैं और वे घन–तोयात्मक होते हैं और उन्हें कल्पके आदि में ही वेद निर्मित जानना चाहिए ॥८९॥ उच्च होने से गभस्तियों के द्वारा अभिव्यक्ति होने के कारण शीघ्र दिखलाई दिया करते हैं तथा दक्षिण मार्ग में स्थित नीचि वीथी में समाश्रित होता है ॥९०॥ पूर्णिमा और अमावस्या में सूर्य भूमि लेखा से आवृत होता है। वह यथाकाल दिखलाई नहीं देता है और शीघ्र ही अस्तता को प्राप्त हो जाया करता है ॥९१॥ इससे उत्तर मार्ग में स्थित अमावस्या में निशाकर दक्षिण मार्ग में दिखाई देता है और नियम से दिखलाई नहीं दिया करता है ॥९२॥ ज्योतियों के ग्रह योग से सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों समान काल में अस्तमय तथा विषुवत् में समान काल में उदय वाले होते हैं ॥९३॥ उत्तरा वीथियों में अन्तर अस्त और उदय वाले होते हैं। पूर्णिमा और अमावस्या में इन्हें ज्योतिश्चक्र के अनुवर्त्ती जानना चाहिए ॥९४॥

दक्षिणायनमार्गस्थो यदा भवति रश्मिवान् ।
तदा सर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति ॥९५
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्द्ध्वञ्चरते शशी ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्द्ध्वं प्रसर्पति ॥९६
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्द्ध्वं बुधादूर्द्ध्वं बृहस्पतिः ।
तस्माच्छनैश्चरश्चोर्द्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम् ।
ऋषीणाञ्चैव सप्तानां ध्रुव ऊर्द्ध्वं व्यवस्थितः ॥९७
द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च ।
ताराग्रहान्तराणि स्युरुपरिष्टाद्यथाक्रमम् ॥९८
ग्रहाश्च चन्द्रसूर्यौ तु दिवि दिव्येन तेजसा ।
नित्यमृक्षेषु युज्यन्ति गच्छन्ति नियमक्रमात् ॥९९
ग्रहनक्षत्रसूर्यास्तु नीचोच्चमृद्वव्यवस्थिताः ।
समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत् प्रजाः ॥१००

परस्परस्थिताः ह्य ते युज्यन्ते च परस्परम् ।
असङ्करेण विज्ञेयस्तेषा योगस्तु वै बुधैः ॥१०१

जिस समय रश्मिमान् दक्षिणायन मार्ग मे स्थित होता है उस समय वह सूर्य समस्त ग्रहो के अधोभाग मे प्रसर्पण किया करता है ।।६५।। मण्डल को विस्तीर्ण करके उसके ऊर्द्धभाग मे चन्द्रमा सञ्चारण किया करता है । समस्त नक्षत्र मण्डल चन्द्र से ऊपर प्रसर्पण किया करता है ।।६६।। नक्षत्रो से ऊपर बुध और बुध स भी ऊर्ध्वभाग मे बृहस्पति चरण किया करता है । उससे ऊपर शनैश्चर और उससे ऊर्ध्वभाग मे सप्तर्षियो का मण्डल चरण करता है । सातो ऋषियो के ऊपर ध्रुव व्यवस्थित है ।।६७।। दो सौ सहस्र योजनो के ऊपर यथाक्रम ताराग्रहो के अन्तर हैं ।।६८।। समस्त ग्रह, चन्द्र और सूर्य दिव मे दिव्य तेज से नित्य ही ऋक्षो मे युक्त होते हैं और नियम के क्रम से जाते हैं ।।६६।। ग्रह नक्षत्र और सूर्य नीच-उच्च और मृदु व्यवस्थित होते हैं । ये समागम मे और भेद मे एकसाथ प्रजा को देखते हैं ।।१००।। परस्पर स्थित ये परस्पर मे युज्यमान होते है । विद्वान पुरुषों के द्वारा उन का योग असङ्कर रूप से जानना चाहिए ।।१०१।।

इत्येष सन्निवेशो व पृथिव्या ज्योतिषस्य च ।
द्वीपानामुदधीना च पर्वताना तथैव च ।।१०२
वर्षाणा च नदानाञ्च येषु तेषु वसन्ति वै ।
एते चैव ग्रहा पूर्वं नक्षत्रेषु समुत्थिता ।।१०३
विवस्वानदिते पुत्र सूर्यो वै चाक्षुषेऽन्तरे ।
विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणा प्रथमो ग्रह ।।१०४
त्विषिमान् धर्म्मपुत्रस्तु सोमो विश्वावसुस्तथा ।
शीतरश्मि समुत्पन्न कृत्तिकासु निशाकर ।।१०५
षोडशार्चिर्भृगो पुत्र शुक्र सूर्यादनन्तरम् ।
ताराग्रहाणा प्रवरस्तिष्यक्षेत्रे समुत्थित ।।१०६
ग्रहश्चाङ्गिरस पुत्रो द्वादशार्चिर्बृहस्पतिः ।
फाल्गुनीषु समुत्पन्न सर्वासु च जगद्गुरु ।।१०७

नवार्चिर्लोहिताङ्गस्तु प्रजापतिसुतो ग्रहः ।
आषाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इति श्रुतिः ॥१०८

इतना यह आपका पृथिवी में सन्निवेश और ज्योतिष का सन्निवेश है। इसी प्रकार से द्वीपों का, समुद्रों का, पर्वतों का तथा वर्षो का और नदियों का है जिनमें वास किया करते हैं। ये सब ग्रह पहिले नक्षत्रों में समुस्थित होते हैं। ॥१०२॥१०३॥ चाक्षुष अन्तर में विवस्वान् सूर्य अदिति का पुत्र है और यह विशाखाओं में उत्पन्न हुआ है तथा समस्त ग्रहों में प्रथम ग्रह कहा जाता है ॥१०४॥ त्विषिमान् धर्म का पुत्र है और सोम विश्वावसु उसी प्रकार से है। यह शीतरश्मि निशाकर कृत्तिकाओं में समुत्पन्न हुआ है ॥१०५॥ षोड़शार्चि भृगुका पुत्र है अनन्तर में सूर्य से शुक्र है जो ताराग्रहों में प्रकट है और तिष्य में समुस्थित हुआ है ॥१०६॥ द्वादशार्चि बृहस्पति अङ्गिरा का पुत्र है और फाल्गुनी में उत्पन्न हुआ है तथा समस्त देवों में यह जगद्गुरु हैं ॥१०७॥ नवार्चि लोहिताङ्ग ग्रह प्रजापति का पुत्र है और यह पूर्वाषाढ में समुत्पन्न हुआ है ऐसा श्रुति है ॥१०८॥

रेवतीष्वेव सप्तार्चि स्तथा सौरशनैश्चरः ।
रोहिणीषु समुत्पन्नौ ग्रहौ चान्द्रार्कमर्द्दनौ ॥१०६
एते ताराग्रहाश्चैव बोद्धव्या भार्गवादय ।
जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतांयतः ।
स्पृशन्ते तेन दोषेण ततस्ता ग्रहभक्तिषु ॥११०
सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते ।
ताराग्रहाणां शक्रस्तु केतुनाञ्चैव धूमवान् ॥१११
ध्रुवः कालो ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम् ।
नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम् ॥११२
वर्षाणाञ्चापि पञ्चानामाद्यः संवत्सरः स्मृतः ।
ऋतूनां शिशिरञ्चापि मासानां माघ एव च ॥११३
पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु तिथीनां प्रतिपत्तथा ।
अहोरात्रिविभागानामहश्चापि प्रकीर्तितम् ॥११४

मुहूर्तानां तथैवादिर्मुहूर्तो रुद्रदैवतः ।
अक्षणोश्चापि निमेषादिः कालः कालविदो मतः ॥११५

सप्तार्चि शनैश्चर सौर है और रेवती में ही समुत्पन्न हुआ है तथा चन्द्रार्क मर्दन ये दो ग्रह रोहिणी में समुत्पन्न हुए हैं ॥१०९॥ ये मार्गादि सब ताराग्रह जानने के योग्य हैं क्योंकि ये जन्म नक्षत्र पीड़ाओं में विगुणता को प्राप्त किया करते हैं। इसके पश्चात् ग्रहभक्ति में वे उस दोष से स्पर्श करते हैं ॥११०॥ इन समस्त ग्रहों में आदित्य आदि कहा जाता है। ताराग्रहों में शुक्र और केतुओं में धूमकेतु है ॥१११॥ चारों दिशाओं में विभक्त ग्रहों का ध्रुव काल होता है, नक्षत्रों का श्रविष्ठा और अयनों का उत्तर होना है ॥११२॥ पाँचों वर्षों में आद्य सम्वत्सर कहा गया है। समस्त ऋतुओं में शिशिर और सम्पूर्ण मासों में माघमास आद्य होता है ॥११३॥ पक्षों में शुक्ल पक्ष, तिथियों में प्रतिपत् और अहोरात्र के विभागों में अह आदि कहा गया है ॥११४॥मुहूर्तों में आदि मुहूर्त रुद्र दैवत होना है तथा अक्षियों में निमेष और कालविदों में काल माना गया है ॥११५॥

श्रवणान्तं श्रविष्ठादियुगं स्यात् पञ्चवार्षिकम् ।
भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत् परिवर्तते ॥११६
दिवाकरः स्मृतस्तस्मात्कालस्तं विद्धि चेश्वरम् ।
चतुर्विधानां भूतानां प्रवर्तकनिवर्तनः ॥११७
इत्येष ज्योतिषामेव सन्निवेशोऽर्थनिश्चयात् ।
लोकसव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मितः ॥११८
उत्पन्नः श्रवणनासौ सक्षिप्तश्च ध्रुवे तथा ।
तर्गतोऽन्तेषु विस्तीर्णो वृक्षाकार इति स्थिति ॥११९
बुद्धिपूर्वं भगवता कल्पादौ सम्प्रकीर्तितः ।
साश्रयः सोऽभिमानी च सर्वस्य ज्योतिरात्मकः ।
विश्वरूपः प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः ॥१२०
नैव शक्यं प्रसंख्यातुं याथातथ्येन केनचित् ।
गतागतं मनुष्येषु ज्योतिषां मांसचक्षुषा ॥१२१

आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः ।
परीक्ष्य निपुणं भक्त्या श्रद्धातव्यं विपश्चिता ॥१२२
चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यं गणितं बुद्धिसत्तमाः ।
पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्यतिर्गणविचिन्तने ॥१२३

श्रविष्ठा के आदि से लेकर श्रवण के अन्त तक पाँच वर्ष का युग होता है। भानु की गति की विशेषता से चक्र की भाँति परिवर्तित होता है ॥११६॥ दिवाकर को काल कहा गया है और उस को ईश्वर जानो। चार प्रकार के प्राणियों का यह प्रवर्त्तक तथा निवर्त्तक होता है।।११७॥ यह इतना अर्थ के निश्चय से ज्योतियों का ही सन्निवेश है और इसे लोक के सम्यक् प्रकार से व्यवहार के लिये ईश्वर ने निर्मित किया है॥११८॥ यह श्रवण से उत्पन्न तथा ध्रुव में संक्षिप्त सब ओर से अन्तों में विस्तीर्ण वृक्ष के आकार जैसी इसकी स्थिति होती है॥११९॥ भगवान् ने कल्प के आदि में वृद्धि के साथ इसे सम्प्रकोत्तित किया है। यह आश्रय के सहित—अभिमानी और सब का ज्योतिरात्मक है। विश्वरूप वाला यह प्रधान का एक अद्भुत परिणाम है॥१२०॥ यह किसी के भी द्वारा यथार्थ रूप से प्रसंख्यात नहीं किया जा सकता है। मनुष्यों में ज्योतियों के गतागत को मांस-चक्षु से देखा भी नहीं जा सकता है॥१११॥ आगम से—प्रत्यक्षमान से और उपपत्ति से विद्वान पुरुष को भलीभाँति परीक्षण करके भक्ति से श्रद्धा करनी चाहिए।।१२२॥ चक्षु-शास्त्र-जल--लेख्य और गणित-बुद्धिसत्तमो ! ये पाँच हेतु ज्योतियों के गण के विचिन्तन में जानने के योग्य हैं ॥१२३॥

॥ प्रकर्ण ३२—नीलण्ठकस्तुति ॥

कस्मिन् देशे महापुण्यमेतदाख्यानमुत्तमम् ।
वृत्तं ब्रह्मपुरोगाणां कस्मिन् काले महाद्युते ।
एतदाख्याहि नः सम्यग् यथा वृत्तं तपोधनः ॥१
यथा श्रुतं मया पूर्व वायुना जगदायुना ।
कथ्यमानं द्विजश्रेष्ठः सत्रे वर्षसहस्रके ॥२

नीलता येन कण्ठस्य देवदेवस्य शूलिनः ।
तदहं कीर्तयिष्यामि शृणुध्वं शंसितव्रताः ॥३
उत्तरे शैलराजस्य सरांसि सरितोह्रदाः ।
पुण्योद्यानेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च ।
गिरिशृङ्गेषु तुङ्गेषु गह्वरोपवनेषु च ॥४
देवभक्ता महात्मानो मुनयः शंसितव्रताः ।
स्तुवन्ति च महादेवं यत्र यत्र यथाविधि ॥५
ऋग्यजुः सामवेदैश्च नृत्यगीतार्च्चनादिभिः ।
ओङ्कारेण नमस्कारैरर्च्चयन्ति सदा शिवम् ॥६
प्रवृत्ते ज्योतिषां चक्रे मध्यव्याप्ते दिवाकरे ।
देवता नियतात्मानः सर्वे तिष्ठन्ति ता कथाम् ।
अथ नियमप्रवृत्ताश्च प्राणशेषव्यवस्थिताः ॥७

ऋषि लोग बोले किस देश में महान् पुण्य वाला यह उत्तम आख्यान हुआ ? हे महान् द्युतिवाले ! ब्रह्म-पुरोगों का यह आख्यान किस काल में हुआ है ? तपोधन ! यह सब हमसे भलीभाँति कहिए जैसे भी हुआ हो ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो ! एक सहस्र वर्ष वाले सत्र में इस जगत् की आयु वायु के द्वारा कथ्यमान पहले जैसा भी मैंने सुना है ॥२॥ जिसके द्वारा देवों के भी देव भगवान् शूली के कण्ठ की नीलता हुई उसे मैं अब कहता हूँ आप शंसित व्रत वाले उसे श्रवण करो ॥३॥ शैलराज के उत्तर में सरित्-सर और ह्रद हैं। पुण्योद्यानों में—तीर्थों में—देवताओं के आयतनों में पर्वतों के शिखरों में जो कि बहुत ऊँचे हैं और गह्वरउपवनों में देव के भक्त शमित व्रत वाले महान् आत्मा वाले मुनि लोग जहाँ-जहाँ यथाविधि महादेव की स्तुति किया करते हैं ॥४॥५॥ ऋक् यजु और साम वेदों के द्वारा, नृत्य, गीत और अर्चन आदि से ओङ्कार से और नमस्कार से सदाशिव की अर्चा किया करते हैं ॥६॥ ज्योतियों के चक्र के प्रवृत्त होने पर दिवाकर के मध्य में व्याप्त हो जाने पर नियत आत्मा वाले देवगण सब उस कथा को कहते हैं। इसके अनन्तर नियमों में वे प्रवृत्त होते हैं कि उनके केवल प्राण ही शेष व्यवस्थित होते हैं ॥७

नमस्ते नीलकण्ठाय इत्युवाच सदागतिः ।
तच्छ्रुत्वा भावितात्मानो मुनयः शंसितव्रताः ।
वालखिल्येति विख्याताः पतङ्गसहचारिणः ।।८
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीना मूर्द्धरेतसाम् ।
तस्मात् पृच्छन्ति वै वायु वायुपर्णाम्बुभोजनाः ।।९
नीलकण्ठेति यत् प्रोक्त त्वया पवनसत्तम ।
एतद्गुह्य पवित्राणां पुण्यं पुण्यकृतां वराः ।।१०
तद्वयं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्प्रसादात्प्रभञ्जन ।
नीलता येन कण्ठस्य कारणेनाम्बिकापतेः ।।११
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक् तव वक्त्राद्विशेषतः ।
यावद्वाचः प्रवर्त्तन्ते सार्थास्ताश्च त्वयेरिताः ।।१२
वर्णस्थानगते वायौ वाग्विधिः संप्रवर्तते ।
ज्ञानं पूर्वमथोत्साहस्त्वत्तो वायो प्रवर्तते ।।१३
त्वयि निष्पन्दमाने तु शेषा वर्णप्रवृत्तयः ।
यत्र वाचो निवर्तन्ते देहबन्धाश्च दुर्लभाः ।।१४

सदागति अर्थात् वायु ने 'नीले कण्ठ वाले आपके लिये नमस्कार है'—यह कहा । यह सुनकर शसित व्रत वाले भावितात्मा मुनिगण जो कि वालखिल्य इस नाम से विख्यात हैं और पतङ्ग (सूर्य) के सहचारी हैं और ऊर्द्धरेता मुनियों में अट्ठासी सहस्र हैं तथा केवल वायु, पत्ते और जल के भोजन करने वाले थे वे सब वायु से पूछते हैं ।। ८-९ ।। ऋषियों ने कहा—हे पवन सत्तम ! आपने अभी 'नीलकण्ठ'—यह जो कहा है—वह गुह्य विषय है जो पवित्रों का, पुण्यकृतों का पुण्य एवं श्रेष्ठ है । हे प्रभञ्जन ! इसे हम आपकी कृपा से सुनने की इच्छा करते हैं जिस कारण से अम्बिका के पति के कण्ठ की नीलता हुई थी, आपके मुख से विशेष रूप से उसे भली-भाँति श्रवण करने की इच्छा रखते हैं । जितनी भी वाणी प्रवृत्त होती है वह आपके द्वारा ईरित होती हुई सार्थ हुआ करती है ।। १०-११-१२ ।। वायु के वर्ण और स्थान पर जाने पर वाग् की विधि संप्रवृत्त होती है । हे वायो ! पहिले ज्ञान और इसके उपरान्त उत्साह

आपसे प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥ आपके निष्पन्दमान होने पर ही शेष वर्णों की प्रवृत्ति हुआ करती है। जहाँ वाणी निवृत्त हो जाती है वहाँ देहबन्ध दलभ होता है ॥ १४ ॥

तथापि तेऽस्ति सद्भाव सर्वगस्त्व सदानिल ।
नान्य सर्वगतो देवस्त्वहतेऽस्ति समीरण ॥१५
एष वै जीवलोकस्ते प्रत्यक्ष सर्वतोऽनिल ।
वेत्थ वाचस्पति देव मनोनायकमीश्वरम् ॥१६
ब्रूहि तत्कण्ठदेशस्य किं कृता रूपविक्रिया ।
श्रुत्वा वाक्यन्ततस्तेषामृषीणां भावितात्मानाम् ।
प्रत्युवाच महातजा वायुर्लोक नमस्कृत ॥१७
पुरा कृतयुगे विप्रो वेदनिर्णयतत्पर ।
वसिष्ठो नाम धर्मात्मा मानसो वै प्रजापते ॥१८
प्रपच्छ कार्तिकेय वै मयूरवरवाहनम् ।
महिषासुरनारीणां नयनाञ्जनतस्करम् ॥१९
महासेन महात्मान मेघस्तनितनि स्वनम् ।
उमामल प्रहर्षण बालक छद्मरूपिणम् ॥२०
क्रौञ्चजीवितहर्तारं पार्वतीहृदि नन्दनम् ।
वसिष्ठ पृच्छते भक्त्या कार्तिकेय महाबलम् ॥२१

वहाँ पर भी आपका सद्भाव रहता है हे अनिल ! आप सदा सर्वत्र गमन करने वाले हैं। हे समीरण ! आपके बिना अन्य कोई भी देव सर्वगत नहीं है ॥ १५ ॥ हे अनिल ! यह जीवों का लोक सब ओर से आपके लिये प्रत्यक्ष ही है। आप वाणी के पति और मन के नायक देव ईश्वर को जानते हैं ॥ १६ ॥ आप बतलाइये उनके कण्ठ देश के रूप की विक्रिया किस कारण से हुई है। इसके अनन्तर भावित आत्मा वाले उन ऋषियों के इस वचन को सुनकर लोकों के द्वारा नमस्कृत महान् तेज से युक्त वायुदेव कहने लगे ॥ १७ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—पहिले समय में कृतयुग में वेद के निर्णय करने में परायण वसिष्ठ नाम वाले ब्राह्मण बहुत ही धर्मात्मा तथा प्रजापति के मानस पुत्र थे

॥ १८ ॥ मयूर के श्रेष्ठ वाहन वाले कार्त्तिकेय से वसिष्ठ ने पूछा था जो कि महिषासुर की स्त्रियों के नयनों के अञ्जन के चुराने वाले तस्कर थे। जो महासेन—महात्मा और मेघ के गर्जित के समान ध्वनि वाले थे। उमा के मन के प्रहर्ष से बालक रूप वाले एवं छद्म रूपी थे तथा क्रौञ्च के जीवन का हरण करने वाले और पार्वती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले थे। ऐसे महान् बल वाले स्वामी कार्त्तिकेय से वसिष्ठ मुनि पूछते हैं और भक्ति के भाव के साथ पूछते हैं ॥ १९-२०-२१ ॥

नमस्ते हरनन्दाय उमागर्भ नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते अग्निगर्भाय गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते ॥२२
नमस्ते शरगर्भाय नमस्ते कृत्तिकासुत ।
नमो द्वादशनेत्राय षण्मुखाय नमोऽस्तु ते ॥२३
नमस्ते शक्तिहस्ताय दिव्यघण्टापताकिने ।
एवं स्तुत्वा महासेनं पप्रच्छ शिखिवाहनम् ॥२४
यदेतद्दृश्यते वर्णं शुभ्रं शुभ्राञ्जनप्रभम् ।
तत्किमर्थं समुत्पन्नं कण्ठे कुन्देन्दुसंप्रभे ॥२५
एतदाप्ताय भक्ताय दान्ताय ब्रूहि पृच्छते ।
कथां मङ्गलसंयुक्तां पवित्रां पापनाशिनीम् ।
मत्प्रियार्थं महाभाग वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥२६
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
प्रत्युवाच महातेजाः सुरारिबलसूदनः ॥२७
शृणुष्व वदतां श्रेष्ठ कथ्यमानं वचो मम ।
उमोत्सङ्गनिविष्टेन मया पूर्वं यथाश्रुतम् ॥२८

वसिष्ठ जी ने कहा—महादेव को आनन्द प्रदान करने वाले हे उमागर्भ ! आपको हमारा नमस्कार है। अग्निगर्भ आपके लिये हे गङ्गागर्भ ! हमारा नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे कृत्तिका सुत ! शरगर्भ ! आपके लिये नमस्कार है। द्वादश नेत्रों वाले तथा षट् मुखों वाले आपके लिये नमस्कार है। शक्ति को हाथ में रखने वाले तथा दिव्य घण्टा और पताका वाले आपके लिये नमस्कार

है। इस प्रकार से स्तवन करके शिखी के वाहन वाले महासेन से पूछा ॥ २३-२४ ॥ जो यह शुभ्र अञ्जन की प्रभा के समान शुभ वर्ण है वह कुन्द एवं इन्दु के सदृश प्रभा वाले कण्ठ में नीलता कैसे उत्पन्न हुई है ॥२५॥ यह आप्त-भक्त-दान्त तथा मङ्गल से संयुक्त पवित्र और पापों के नाश करने वाली कथा के पूछने वाले मुझे बतलाइये। हे महाभाग! मेरे प्रिय के लिये आप सम्पूर्ण रूप से कहने के योग्य होते हैं ॥२६॥ इसके अनन्तर महात्मा उस वशिष्ठ के वचन को सुनकर सुरों के शत्रुओं के बल के नाशक महान् तेज से युक्त वायु ने कहा है ॥२७॥ हे बोलने वालों में श्रेष्ठ! कहे जाने वाले मेरे वचन का श्रवण करो जोकि उमा के गोद में बैठे हुए मैंने पहिले जैसा भी कुछ सुना है ॥२८॥

पार्वत्या सह संवादं शर्वस्य च महात्मनः ।
तदहं कीर्तयिष्यामि त्वत्प्रियार्थं महामुने ॥२९
विशुद्धमुक्तामणिरत्नभूषिते शिलातले हेममये मनोरमे ।
सुखोपविष्टं मदनाङ्गनाशनं प्रोवाच वाक्यं गिरिराजपुत्री ॥३०
भगवन् भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन ।
तव कण्ठे महादेव भ्राजतेऽम्बुदसन्निभम् ॥३१
नात्युल्बणं नातिशुभ्रं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
किमिदं दीप्यते देव कण्ठे कामाङ्गनाशन ॥३२
को हेतुः कारणं किञ्च कण्ठे नीलत्वमीश्वर ।
एतत्सर्वं यथान्यायं ब्रूहि कौतूहलं हि मे ॥३३
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्याः पार्वत्याः पार्वतीप्रियः ।
कथां मङ्गलसंयुक्तां कथयामास शङ्करः ॥३४
मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीरोदे सुरदानवैः ।
अग्रे समुत्थितं तस्मिन् विषं कालानलप्रभम् ॥३५
तं दृष्ट्वा सुरसङ्घाश्च दैत्याश्च वरानने ।
विषण्णवदना सर्वे गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥३६

विशुद्ध मुक्ता और मणियों तथा रत्नों से भूषित-हेममय एवं परम सुन्दर शिलातल पर सुखपूर्वक विराजमान मदन के अंग को दग्ध करने वाले

शम्भु से गिरिराज पुत्री बोली ॥२९॥ देवी ने कहा—हे भगवान् ! हे भूत भव्येश ! हे गो वृषाङ्कित शासन ! हे महादेव ! आपके कण्ठ में अम्बुद के तुल्य भ्राजमान होता है। हे काम के अङ्ग के नाशन। यह न तो अत्यन्त उल्वण ही है और न शुभ्र ही है—यह नीले अञ्जन के ढेर के समान हे देव ! क्या कण्ठ दीप्यमान हो रहा है ॥३०-३१॥ हे ईश्वर ! मैं नीलत्व होने का क्या हेतु है और क्या कारण है ? यह सभी यथान्याय बतलाइये, मुझे इस बात के सम्बन्ध में बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥३२॥ इसके उपरान्त पार्वती के प्रिय ने उस अपनी प्रिया पार्वती का यह वचन सुनकर शङ्कर भगवान् ने मङ्गल से संयुक्त कथा को कहना आरम्भ किया था ॥३३॥ पहिले समय में देव और दानवों के द्वारा क्षीर समुद्र के मथ्यमान होने पर अर्थात् अमृत के लिये उसका मन्थन किये जाने पर प्रथम उसमें कालि अनल के प्रभा के समान विष उत्पन्न हुआ था ॥३४॥ हे वर आनन वाली। उसको देख कर देवों के समुदाय और दैत्यों के समूह भी सभी बहुत ही विषाद से युक्त मुख वाले हो कर ब्रह्मा जी के समीप में गये ॥३५॥३६॥

दृष्ट्वा सुरगणान् भीतान् ब्रह्मोवाच महाद्युतिः ।
किमर्थं भो महाभागा भीता उद्विग्नचेतसः ॥३७

मयाष्टगुणमैश्वर्यं भवतां सम्प्रकल्पितम् ।
केन व्यावर्त्तितैश्वर्या यूयं वै सुरसत्तमाः ॥३८

त्रैलोक्यस्येश्वरा यूयं सर्वे वै विगतज्वराः ।
प्रजासर्गे न सोऽस्तीह आज्ञां यो मे निवर्त्तयेत् ॥३९

विमानगामिनः सर्वे सर्वे स्वच्छन्दगामिनः ।
अध्यात्मे चाधिभूते च अधिदैवे च नित्यशः ।
प्रजाः कर्मविपाकेन शक्ता यूयं प्रवर्त्तितुम् ॥४०

तत्किमर्थं भयोद्विग्ना मृगाः सिंहार्दिता इव ।
किं दुःखं केन सन्तापः कुतो वा भयमागतम् ।
एतत्सर्वं यथान्यायं शीघ्रमाख्यातुमर्हथ ॥४१

उस समय में समस्त देवो के गणो को बहुत ही भीत देख कर श्रीब्रह्मा-जी जो कि महान् द्युति वाले थे बोले—हे महान् भाग वालो । आप लोग किस लिये इतने भयभीत (डरे हुए) और उद्विग्न चित्त वाले हो रहे हैं ।।२७।। मैंने आप लोगो को आठ गुण वाला ऐश्वर्य सम्प्रकल्पित किया है । अब किसके द्वारा वह ऐश्वर्य व्यावर्तित कर दिया गया है जो आप उससे रहित से हो रहे हैं । ।।३०।। आप सब तीनो लोको के ईश्वर हैं हे सुरश्रेष्ठो ! इस समय समस्त प्रकार के दुःख से रहित हैं । इस प्रजा की सृष्टि मे कोई भी ऐसा नहीं है जो कि मेरी आज्ञा को निवर्त्तन कर देवे ।।३८।। आप सब तो वायु मे उड कर जाने वाले विमानो से गमन करने वाले हैं और अत्यन्त स्वच्छन्द रूप से गमन करने वाले हैं । आप समस्त प्रजा को आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधि दैविक मे नित्य ही कर्मों के विपाक मे प्रवृत्त करने के लिये समर्थ हैं । ।।३९। फिर आप किस कारण से सिंह के द्वारा सताये गये मृगों के समान इस भय से उद्विग्न हो रहे हैं ? क्या दुःख है ? जिसके द्वारा सन्ताप प्राप्त हो रहा है ? भय कहाँ से प्राप्त हो रहा है ? यह सभी बात न्यायानुसार शीघ्र आप लोग बताने को योग्य होते हैं ।।४०।।४१।।

श्रुत्वा वाक्य ततस्तस्य ब्रह्मणो वै महात्मन ।
ऊचुस्ते ऋषिभि सार्द्धं सुरदैत्येन्द्रदानवा ।।४२
सुरासुरैर्मथ्यमाने पायोधौ च महात्मभि ।
भुजङ्गभृङ्गसङ्काश नीलजीमूतसन्निभम् ।
प्रादुर्भूत विष घोर सवर्ताग्निसमप्रभम् ।।४३
कालमृत्युरिवोद्भूत युगान्तादित्यवर्चसम् ।
त्रैलोक्यात्सादि सूर्गाभ प्रस्फुरन्त समन्तत ।।४४
विषेणोत्तिष्ठपानेन कालानलसमत्विषा ।
निर्दग्धा रक्तगौराङ्ग इतकृष्णो जनार्दनः ।।४५
दृष्ट्वा त रक्तगौराङ्गं इतकृष्ण जनार्दनम् ।
भाता सर्वे वय देवास्त्वामेव शरणं गता ।।४६
सुराणामसुराणाञ्च श्रुत्वा वाक्य पितामह ।

प्रत्युवाच महातेजा लोकानां हितकाम्यया ॥४७
शृणुध्वं देवताः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ।
यत्तदग्रे समुत्पन्नं मथ्यमाने महोदधौ ॥४८
विषं कालानलप्रख्यं कालकूटेति विश्रुतम् ।
येन प्रोद्भूतमात्रेण कृतकृष्णो जनार्दनः ॥४९

इस प्रकार से महान् आत्मा वाले ब्रह्मा जी के इस वाक्य को सुनकर उस समय ऋषियों के साथ में रहने वाले देव-असुर और दानव सभी ने कहा ॥४२॥ महात्मा देव और असुरों के द्वारा पाथोधि के मन्थन किये जाने पर कृष्णसर्प तथा भौंरा के समान एवं नील वर्ण वाले मेघ के तुल्य सम्वर्ताग्नि की प्रभा वाला घोर विष उसमें से प्रादुर्भूत हुआ है ॥४३॥ काल मृत्यु की भाँति उद्भूत वह है जोकि युग के अन्त समय में आदित्य के वर्चस के समान वर्चसवाला, त्रैलोक्य को उत्सादित करने वाले चारों ओर से प्रस्फुरित सूर्य की आभा वाला, है ॥४४॥ उस कालानल के समान कान्ति वाले उत्तिष्ठमान विष से निर्दग्ध रक्त और अङ्ग वाले जनार्दन कृतकृष्ण हो गये हैं ॥४५॥ उन रक्त और अङ्ग से युक्त जनार्दन को कृष्णीभूत देखकर हम सभी भीत होते हुए देवगण इस समय आपकी शरण में आये हुए हैं ॥४६॥ तब तो पितामह श्रीब्रह्माजी ने सुर तथा असुरों के इस बचन को सुनकर महान् तेज से युक्त लोकों के हित की कामना से कहा—॥ ४७ ॥ हे समस्त देवताओं और हे तप के ही धन वाले समस्त ऋषिगणों ! सुनिये, जो सबसे पहिले समुद्र मन्थन करने पर उत्पन्न हुआ करता है वह काले अनल के समान विष कालकूट विश्रुत है जिसके उत्पन्न होने मात्र से ही जनार्दन कृत कृष्ण हो गये हैं ॥४८॥४९॥

तस्य विष्णुरहञ्चापि सर्वे ते सुरपुङ्गवाः ।
न शक्नुवन्ति वै सोढुं वेगमन्ये तु शङ्करात् ॥५०
इत्युक्त्वा पद्मगर्भाभः पद्मयोनिरयोनिजः ।
ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥५१
ततः प्रीतो ह्यहं तस्मै ब्रह्मणे सुमहात्मने ।
ततोऽहं सूक्ष्मया वाचा पितामहमथाब्रुवम् ॥५२

भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ।
किं कार्यं ते मया ब्रह्मन् कर्त्तव्य वद सुव्रत ॥५३
श्रुत्वा वाक्य ततो ब्रह्मा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षण ।
भूतभव्यभवन्नाथ श्रूयता कारणन्त्वर ॥५४
सुरासुरैर्मथ्यमाने पयोधावम्बुजेक्षण ।
भगवन्मेघ सङ्काश नीलजीमूतसन्निभम् ॥५५
प्रादुर्भूत विषन्घोर सवर्त्ताग्निसमप्रभम् ।
कालमृत्युरिवोद्भूत युगान्तादित्यवर्च्चसम् ॥५६
त्रैलोक्योत्सादि सूर्याभ विस्फुरन्त समन्तत. ।
अग्र समुत्थित तस्मिन् विषङ्कालानलप्रभम् ॥५७

उसके इस महान् वेग को भगवान् विष्णु—मैं और सभी सुरो मे श्रेष्ठ और लोग कोई सहन करने में समर्थ नहो है केवल शङ्कर हो उसे सहन कर सकते हैं ॥५०॥ यह कह कर पद्मगर्भ की आभा वाले-अयोनिज और पद्मयोनि लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने स्तुति करने का आरम्भ कर दिया ॥५१॥ इसके अनन्तर उन सुमहात्मा ब्रह्मा पर मैं परम प्रसन्न हो गया और सूक्ष्म वाणी से मैंने पितामह से कहा ॥५२॥ हे भगवन् ! हे भूत और भव्य के स्वामिन् ! हे लोको के नाथ ! हे जगत् के पति ! हे ब्रह्मन् ! आपको मुझसे क्या कराना है यह सुव्रत ! अब आप मुझे बतादेवें ॥५३॥ कमल के समान नेत्रो वाले ब्रह्मा जी ने मेरे इस वाक्य को सुन कर फिर कहा—॥५४॥ सवर्त्ताग्नि के समान प्रभा वाला महाघोर विष प्रादुर्भूत हो गया है। वह विष कालमृत्यु की भाँति उद्भूत हुआ है जो युग के अन्त मे हो जाने वाले आदित्य के तुल्य वर्चस वाला और त्रैलोक्य के उत्सादन करने वाले सूर्य की आभावाला है, जोकि सभी ओर विशेष रूप से स्फुरित है। वह कालानल के समान प्रभा वाला सबसे आगे समुत्थित है ॥५५॥५६॥५७॥

तं दृष्ट्वा तु वय सर्वे भीता. सम्भ्रान्तचेतसः ।
तत् पिबस्व महादेव लोकाना हितकाम्यया ।
भवानग्रयस्य भोक्ता वै भवाश्चैव वरः प्रभुः ॥५८

त्वामृतेऽन्यो महादेव विषं सोढुं न विद्यते ।
नास्तिकश्चित् पुमान् शक्तस्त्रैलोक्येषु च गीयते ।।५९
एवं तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
बाढमित्येव तद्वाक्यं प्रतिगृह्य वरानने ।।६०
ततोऽहं पातुमारब्धो विषमन्तकसन्निभम् ।
पिबतो मे महाघोरं विषं सुरभयंकरम् ।
कण्ठः समभवत्तूर्ण कृष्णो मे वरवर्णिनि ।।६१
तं दृष्ट्वोत्पलपत्राभं कण्ठे सक्तमिवोरगम् ।
तक्षकं नागराजानं लेलिहानमिव स्थितम् ।।६२
अथोवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
शोभसे त्वं महादेव कण्ठेनानेन सुव्रत ।।६३
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मया गिरिवरात्मजे ।
पश्यतां देवसङ्घानां दैत्यानाञ्च वरानने ।।६४
यक्षगन्धर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम् ।
धृतं कण्ठे विषं घोरं नीलकण्ठस्ततो ह्यहम् ।।६५

उसे देख कर हम सब सम्भ्रान्त चित्त वाले डरे हुए हैं सो उसे हे महादेव ! आप लोकों की हितकामना से पान कर जाइये । आप सबसे पूर्व में निकलने वाले का भोग करने वाले हैं और आप ही प्रभु वरदान हैं ।।५८।। हे महादेव । आपको छोड़कर अन्य किसी की भी सामर्थ्य नहीं है जो उस विषको सहन कर सके । इस त्रैलोकी में ऐसा शक्तिशाली कोई पुरुष नहीं बताया जाता है ।।५९।। हे वरानने ! परमेष्ठी ब्रह्माजी के इस प्रकार के वचन को सुनकर 'बहुत अच्छा'—यही वचन कह कर मैंने स्वीकार कर लिया था ।।६०।। उस अन्तिक-सन्निभ विष को पीना आरम्भ कर दिया था । उस महान् घोर सुरों को भी भय देने वाले विष को पान करते हुए मेरा कण्ठ हे वर वर्णिनी ! तुरन्त ही कृष्ण हो गया था ।।६१।। उत्पल की आभा वाले-कण्ठ में संसक्त उरग की भाँति-चाटते हुए नागराज तक्षक के समान स्थित उस को देख कर पितामह बोले।।६२।। इसके उपरान्त महान् तेज से युक्त लोक पितामह ब्रह्माजी ने कहा— हे सुव्रत !

महादेव ! आप इस नील वर्ण वाले कण्ठ से परम शोभा को प्राप्त होते हैं ॥६३॥ हे गिरिवर की आत्मजे ! इसके पश्चात् मैंने उनके इस वचन को सुन कर देवों के समूह—दैत्य—यक्ष—गन्धर्व भूत—पिशाच-उरग और राक्षस आदि सब के देखते हुए फिर उस महाविष को कण्ठ में ही धारण कर लिया था। तब से ही मैं नीलकण्ठ हो गया हूँ ॥६५॥

॥ प्रकर्ण ३७ - लिङ्गोद्‌भव स्तुति ॥

गुणकर्मप्रभावैश्च कोऽधिको वदतां वर ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यगाश्चर्य गुणविस्तरम् ॥१
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
महादेवस्य माहात्म्यं विभुत्वञ्च महात्मनः ॥२
पूर्वं त्रैलोक्यविजये विष्णुना समुदाहृतम् ।
वलिं बद्धा महोजास्तु त्रैलोक्याधिपतिं पुरा ॥३
प्रणष्टेषु च दैत्येषु प्रहृष्टे च शचीपतौ ।
अथाजग्मुः प्रभुं द्रष्टुं देवाः सवासवाः ॥४
यत्रास्ते विश्वरूपात्मा क्षीरोदस्य समीपतः ।
सिद्धब्रह्मर्षयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ॥५
नागा देवर्षयश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः ।
अभिगम्य महात्मानं स्तुवन्ति पुरुषं हरिम् ॥६
त्वं धाता त्वञ्च कर्त्ताऽस्य त्वं लोकान् सृजसि प्रभो ।
त्वत्प्रसादाच्च कल्याणं प्राप्तं त्रैलोक्यमव्ययम् ।
असुराश्च जिताः सर्वे वलिर्बद्धश्च वै त्वया ॥७

ऋषियों ने कहा—बोलने वालों में श्रेष्ठ गुण कर्म और प्रभाव से कौन अधिक है। इन गुणों के विस्तार वाले आश्चर्य को हम सुनना चाहते हैं ॥१॥ श्रीसूतजी ने कहा—यहाँ पर इस पुरातन इतिहास का उदाहरण देते हैं जिसमें महादेव का माहात्म्य और उन महान आत्मा वाले का विभुत्व वर्णित होता है ॥२॥ पहिले त्रैलोक्य के विजय में भगवान् विष्णु ने समुदाहृत किया

है। ओज से युक्त त्रैलोक्य के अधिपति ने पहले समय में बलिराजा को बाँधकर ही यह उदाहृत किया था।३। समस्त दैत्यों के नष्ट हो जाने पर शची के पति इन्द्रदेव के परम प्रसन्न होने पर इसके उपरान्त इन्द्र के सहित समस्त देवगण प्रभु के दर्शन करने के लिये आये थे ।।४।। वह विश्वरूपात्मा क्षीरसागर के समीप में जहाँ पर थे वहाँ सिद्ध—ब्रह्मर्षि—यक्ष—गन्धर्व—अप्सराओं के समूह-नाग-देवर्षि नदी-समस्त पर्वत आकर महान् आत्मा वाले पुरुष हरि का स्तवन करते हैं ।।५।। ।।६।। हे प्रभो ! इस समस्त विश्व के आप ही धाता है-आप ही कर्त्ता हैं और आप ही इन लोकों का सृजन किया करते हैं। आपके प्रसाद से ही यह अव्यय त्रैलोक्य कल्याण को प्राप्त होता है। आपने समस्त असुरों को जीत लिया है है और असुरों के राजा बलि को भी बद्ध कर लिया है ।।७।।

एवमुक्तः सुरैर्विष्णुः सिद्धैश्च परमर्षिभिः ।
प्रत्युवाच ततो देवान् सर्वांस्तान् पुरुषोत्तमः ।।८
श्रूयतामभिधास्यामि कारणं सुरसत्तमाः ।
यः स्रष्टा सर्वभूतानां कालः कालकरः प्रभुः ।।९
येन हि ब्रह्मणा सार्द्धं सृष्टा लोकाश्च मायया ।
तस्यैव च प्रसादेन आदौ सिद्धत्वमागतम् ।।१०
पुरा तमसि चाव्यक्ते त्रैलोक्ये ग्रासिते मया ।
उदरस्थेषु भूतेषु लोकेऽहं शयितस्तदा ।।११
सहस्रशीर्षा भूत्वा च सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
शङ्खचक्रगदा पाणिः शयितो विमलेऽम्भसि ।।१२
एतस्मिन्नन्तरे दूरात् पश्यामि ह्यमितप्रभम् ।
शतसूर्यप्रतीकाशं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ।।१३
चतुर्वक्त्रं महायोगं पुरुषं काञ्चनप्रभम् ।
निमेषान्तरमात्रेण प्राप्तोऽसौ पुरुषोत्तमः ।।१४

इस प्रकार से कहे हुए सुर-सिद्ध और वह महर्षियों के द्वारा स्तुत भगवान् विष्णु पुरुषोत्तम समस्त देवों से कहने लगे ।।८।। हे सुरसत्तमो ! इसका कारण मैं बताऊँगा आप सब सुनिये। जो समस्त प्राणियों का सृजन करने

वाला है वह काल को भी करने वाला प्रभु काल है ॥९॥ जिस ब्रह्मा के साथ माया से लोकों का सृजन किया गया है उसी के प्रसाद से आदि में सिद्धत्व को आया ॥१०॥ पहिले अव्यक्त तम से मेरे द्वारा त्रैलोक्य के ग्रसित होने पर उस समय समस्त प्राणियों के उदरस्थ होने पर मैं लोक में शयन करने वाला था ॥११॥ मैं उस समय सहस्र शीर्षों वाला-सहस्र नेत्रों से युक्त तथा सहस्र चरणों वाला शंख-चक्र गदा हाथों में लिये हुए विमल जल में शयन करता था। ॥१२॥ इसी बीच में दूर से अमित प्रभा वाले तथा एक शत सूर्यों के प्रतीकाश अपने ही तेज से ज्वलन्त होते हुए चारमुखों वाले-महान् योग से युक्त सुवर्ण के जैसी प्रभा से परिपूर्ण कृष्ण मृग चर्मधारी-कमण्डलु से भूषित देव पुरुष को देखता हूँ जोकि एक निमिष में ही यह पुरुषोत्तम प्राप्त हो गया ॥१४॥

ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा सर्वलोके नमस्कृत ।
कस्त्वं कुतो वा किञ्चेह तिष्ठसे वद मे विभो ॥१५
अहं कर्त्तास्मि लोकानां स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः ।
एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाहमुवाच तम् ॥१६
अहं कर्त्ता च लोकानां संहर्त्ता च पुनः पुनः ।
एवं सम्भाषमाणाभ्यां परस्परजयैषिणाम् ।
उत्तरां दिशमास्थाय ज्वाला दृष्टाप्यधिष्ठिता ॥१७
ज्वालान्ततस्तामालोक्य विस्मितौ च तदानयोः ।
तेजसा चैव तेनाथ सर्वं ज्योतिःकृतं जलम् ॥१८
वर्द्धमाने तदा वह्नावत्यन्तपरमाद्भुते ।
अतिदुद्राव तां ज्वालां ब्रह्मा चाहञ्च सत्वरः ॥१९
दिवं भूमिञ्च विष्टभ्य तिष्ठन्तं ज्वालमण्डलम् ।
तस्य ज्वालस्य मध्ये तु पश्यावो विपुलप्रभम् ॥२०
प्रादेशमात्रमव्यक्तं लिङ्गं परमदीपितम् ।
न च तत्काञ्चनं मध्ये न शैलं न च राजतम् ॥२१

इसके अनन्तर समस्त लोकों के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्दित ब्रह्मा जी ने मुझसे कहा —हे विभो ! आप कौन हैं-कहाँ से और क्यों यहाँ स्थित हैं, मुझे

बतलाइये ॥१५॥ मैं तो समस्त लोकों का कर्त्ता हूँ और विश्वतोमुख स्वयम्भू हूँ। इस प्रकार से उस ब्रह्मा के द्वारा कहे गये मैंने उनसे कहा—॥१६॥ इन समस्त लोकों का सृजन करने वाला तथा संहार करने वाला और बार-बार ऐसा ही करते रहने वाला मैं हूँ। इस तरह से आपस में सम्भाषण करने वाले दोनों के, जोकि परस्पर में जय प्राप्त करने की इच्छा वाले थे उत्तर दिशा में आस्थित होकर अधिष्ठित ज्वाला देखी गई ॥१७॥ ज्वाला के मध्य से उसको देखकर विस्मित हुए। तब इनके तेज से सब जल ज्योतिकृत होगया ॥१८॥ उस समय अत्यन्त एवं परम अद्भुत वह्नि के बढ़जाने पर ब्रह्मा और मैंने शीघ्रता से उस ज्वाला का अति द्रवण किया ॥१९॥ दिव और भूमि को विष्टबन करके स्थित रहने वाले उस ज्वालाओं के मण्डल के मध्य में एक विपुल प्रभा वाले पुरुष को हम दोनों देखते हैं ॥२०॥ वह प्रादेश मात्र अत्यन्त दीपित अव्यक्त लिङ्ग था। न तो कंचन था, मध्य में न राजत (चाँदी का) शैल ही था ॥२१॥

अनिर्द्देश्यमचिन्त्यञ्च लक्ष्यालक्ष्यं पुनः पुनः।
महौजसं महाघोरं वर्द्धमानं भृशं तदा।
ज्वालामालायतं न्यस्तं सर्वभूतभयङ्करम् ॥२२
अस्य लिङ्गस्य योऽन्तं वै गच्छते मन्त्रकारणम्।
घोर रूपिणमत्यर्थं भिन्दन्तमिव रोदसी ॥२३
ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा अधो गच्छ त्वतन्द्रितः।
अन्तमस्य विजानीमो लिङ्गस्य तु महात्मनः ॥२४
अहं मूर्द्ध्वं गमिष्यामि यावदन्तोऽस्य दृश्यते।
तदा तौ समयं कृत्वा गतावूर्द्ध्वमधश्च ह ॥२५
ततो वर्षसहस्रन्तु अहं पुनरधोगतः।
न च पश्यामि तस्यान्तं भीतश्चाहं न संशयः ॥२६
तथा ब्रह्मा च श्रान्तश्च न चान्तन्तस्य पश्यति।
समागतो मया सार्द्धं तत्रैव च महाम्भसि ॥२७
ततो विस्मयमापन्नावुभौ तस्य महात्मनः।
मायया मोहितौ तेन नष्टसंज्ञौ व्यवस्थितौ ॥२८

वह अनिर्देश्य और न चिन्तन करने के योग्य तथा बार बार लक्ष्य लक्ष्य था। महान् क्षोभ से युक्त महाघोर और उस समय बहुत ही अधिक बढ़ने वाला था। ज्वालामाला जैसा आयत एवं प्रदत्त तथा समस्त प्राणियों को महा भयङ्कर था ॥२२ इस लिङ्ग के जो अन्त तक जाता है उसका कारण म श ही है। वह अत्यन्त घोर रूप धारी ऐसा था मानों रोदसी का भेदन करता हुआ हो ॥२३॥ इस के अनन्तर ब्रह्मा ने मुझसे कहा कि आप अतन्द्रित होते हुए नीचे की ओर जावें। इस महात्मा लिङ्ग का अन्त हम जान लवें ॥२४॥ मैं ऊपर के भाग मे जाता हूँ जब तक कि इसका अन्त दिखाई देता है। तब उस समय इस प्रकार से वायदा करके ऊर्ध्वभाग में तथा अधोभाग मे गये ॥२५॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्ष तक मैं वहाँ नीचे के भाग मे गया था। वहाँ मैंने उसक कही अन्त नही देखा और मैं भीत हो गया—इसमे कुछ भी संशय नही है ॥२६॥ उसी प्रकार स ब्रह्मा भी श्रान्त हो गये और वह भी उसका अन्त नही देखते हैं और मेरे साथ उसी महाजल मे वापिस आगये थे ॥२७॥ तब हम दोनों उस महात्मा के विषय में परम आश्चय को प्राप्त हुए और उसके द्वारा माया से मोहित हो गये एवं नष्ट संज्ञा वाले होकर व्यवस्थित हो गये थे ॥२८॥

ततो ध्यानगतन्तत्र ईश्वरं सर्वतोमुखम् ।
प्रभवं निधनञ्चैव लोकानां प्रभुमव्ययम् ॥२६
ब्रह्माञ्जलिपुटो भूत्वा तस्मै शर्वाय शूलिने ।
महाभैरवनादाय भीमरूपाय द ष्ट्रिणे ।
अव्यक्ताय महान्ताय नमस्कारं प्रकुर्महे ॥३०
नमोऽस्तु ते लोकसुरेश देव नमोऽस्तु ते भूतपते महाश्च ।
नमोऽस्तु ते शाश्वत सिद्धयोने नमोऽस्तु त सर्वजगत्प्रतिष्ठ ॥३१
परमेष्ठी परं ब्रह्म अक्षरं परमं पदम्
श्रेष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्रः स्कन्दः शिवः प्रभुः ॥३२
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परं पदम् ।
स्वाहाकारो नमस्कारः सस्कारः सर्वकर्मणाम् ॥३३
स्वधाकारश्च जाप्यश्च व्रतानि नियमास्तथा ।

वेदा लोकाश्च देवाश्च भगवानेव सर्वशः ॥३४
आकाशस्य च शब्दस्त्वं भूतानां प्रभवाव्ययम् ।
भूमेर्गन्धो रसश्चापां तेजोरूपं महेश्वर ॥३५

इसके अनन्तर वहाँ पर सर्वतोमुख ईश्वर के ध्यानगत हुए जो लोकों के प्रभव तथा निधन एवं अव्यष्ट प्रभु थे ॥२६॥ तब ब्रह्माजी अञ्जलिपुट वाले होकर उन शर्व—शूलधारण करने वाले—महान् भैरवनाद वाले—भीम रूप धारी-दंष्ट्रा वाले-अव्यक्त और महान्त के लिये नमस्कार करते हैं ॥३०॥ हे लोक सुरेश ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है । हे भूतों के पति । हे महान् ! आपके लिये नमस्कार है । हे शाश्वत ! हे सिद्धयोनि ! आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥३१॥ आप परमेष्ठी-परब्रह्म-अक्षर और परम पद हैं । आप श्रेष्ठ हैं । वामदेव-रुद्र-स्कन्द-शिव और प्रभु हैं ॥३२॥ आप यज्ञ हैं-वषटकार हैं-ओङ्कार हैं और परम पद हैं । आप ही स्वाहाकार हैं । नमस्कार हैं । जाप्य हैं-आप ही व्रत हैं और नियम रूप हैं । वेद और लोक तथा देव और सब प्रकार से भगवान् ही आप हैं ॥३४॥ आप इस आकाश के शब्द हैं और आप प्राणियों के प्रभव तथा अव्यय हैं । भूमि के गन्ध,जलों के रस और तेज के रूप ! हे महेश्वर ! यह सब आप ही हैं ॥३५॥

वायोः स्पर्शश्च देवश्च वपुश्चन्द्रमस स्तथा ।
बुद्धौ ज्ञानश्च देवेश प्रकृतौ बीजमेव च ॥३६
त्वं कर्त्ता सर्वभूतानां कालो मृत्युर्यमोऽन्तकः ।
त्वं धारयसि लोकांस्त्रींस्त्वमेव सृजसि प्रभो ॥३७
पूर्वेण वदनेन त्वमिन्द्रत्वञ्च प्रकाशसे ।
दक्षिणेन च वक्त्रेण लोकान् संक्षीयसे प्रभो ॥३८
पश्चिमेन तु वक्त्रेण वरुणत्वं करोषि वै ।
उत्तरेण तु वक्त्रेण सौम्यत्वञ्च व्यवस्थितम् ॥३९
राजसे बहुधा देव लोकानां प्रभवाव्ययः ।
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनौ सुतौ ॥४०
साध्या विद्याधरा नागाश्चारणाश्च तपोधनाः ।

वालखिल्या महात्मानस्तप. सिद्धाश्च सुव्रता ॥४१
त्वत्तः प्रसूता देवेश ये चान्ये नियतव्रताः ।
उमा सीता सिनी वाली कुहूर्गायत्रिरेव च ॥४२
लक्ष्मीः कीर्त्तिर्धृ तिर्मेधा लज्जा क्षान्तिर्वपु: स्वधा ।
तुष्टिः पु ष्टिः क्रिया चैव वाचां देवी सरस्वती ।
त्वत्त. प्रसूता देवेश सन्ध्या रात्रिस्तथैव च ॥४३

वायु का स्पर्श, देव तथा चन्द्रमा का वपु आप ही हैं। बुध-ज्ञान और प्रकृति में बीज भी हे देवेश । आप ही हैं । ॥३६॥ आप समस्त प्राणियों के कर्त्ता काल मृत्यु-यम और अन्तक आप ही हैं। आप इन तीनों लोकों को धारण किया करते हैं और हे प्रभो ! आप ही इनका सृजन भी किया करते हैं॥३७॥ आप पूर्व वदन से इन्द्रत्व का प्रकाश करते हैं, दक्षिण वक्त्र से हे प्रभो ! आप लोकों का सक्षय किया करते हैं तथा पश्चिम वक्त्र से वरुणत्व को करते हैं और आप अपने उत्तर वक्त्र से सौम्यत्व की व्यवस्था करते हैं ॥३८॥३९॥ हे देव ! बहुधा लोकों का प्रभवाव्यय आदित्य-वसु-मरुत और अश्विनी सुत हैं ॥४०॥ तथा साध्य-विद्याधर-नाग-चारण, तपोधन वालखिल्य-महात्मा-तप-सिद्ध और सुव्रत ये सब हे देवेश ! तथा अन्य नियम व्रत वाले आपसे ही प्रसूत हुए हैं। उमा-सीता सिनीवाली कुहू-गायत्री-लक्ष्मी-कीर्ति-धृति मेधा-लज्जा-वपु-स्वधा-तुष्टि-पुष्टि-क्रिया और वाणियों की देवी सरस्वती-सन्ध्या तथा रात्रि ये सभी हे देवेश ! आप से ही प्रसूत हैं ॥४१॥४२॥४३॥

सूर्यायुतानामयुतप्रभा च नमोऽस्तु ते चन्द्रसहस्रगोचर ।
नमोऽस्तु ते पर्वतरूपधारिणे नमोऽस्तु ते सर्वगुणा कराय ॥४४
नमोऽस्तु ते पट्टिशरूपधारिणे नमोऽस्तु चर्मविभूतिधारिणे ।
नमोऽस्तु ते रुद्रपिनाकपाणये नमोऽस्तु ते सहायकचक्रधारिणे ॥४५
नमोऽस्तु ते भस्मविभूपिताङ्ग नमोऽस्तु ते कामशरीरनाशन ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाससे नमोऽस्तु ते देव हिरण्यबाहवे ॥४६
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरूप नमोस्तु ते देव हिरण्यनाभ ।
नमोऽस्तु ते नेत्रसहस्रचित्र नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरेतः ॥४७

नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्ण नमोऽस्तु ते देव हिरण्यगर्भ ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यचीर नमोऽस्तु ते देव हिरण्यदायिने ॥४८
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यमालिने नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाहिने ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्मने नमोऽस्तु ते भैरवनादनादिने ॥४९
नमोऽस्तु ते भैरववेगवेग नमोऽस्तु ते शङ्कर नीलकण्ठ ।
नमोऽस्तु ते दिव्यसहस्रबाहो नमोऽस्तु ते नर्त्तनवादनप्रिय ॥५०

हे चन्द्रसहस्र गोचर ! अयुत सूर्यो जैसी अयुत प्रभा है आपके लिये नमस्कार है । पर्वत के रूप को धारण करने वाले तथा समस्त के आकर आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है ॥४४॥ पट्टिश रूप के धारी तथा चर्म और विभूति के धारण करने वाले आपके लिये नमस्कार है । रुद्र पिनाकपाणि के लिये नमस्कार है तथा सारे भस्म से विभूषित अङ्गों वाले हे देव ! हे हिरण्यनाभ ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे काम के शरीर को नाश करने वाले ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे देव ! हे नेत्र सहस्रचित्र ! हे हिरण्यरेतः ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है ॥४६॥४७॥ हे हिरण्यवर्ण ! हे हिरण्यगर्भ ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है । हे हिरण्य चीरदेव ! हिरण्य के देने वाले आपके लिये नमस्कार है ॥४८॥ हिरण्य की माला वाले और हिरण्यवाही आपके लिये हे देव ! हमारा नमस्कार है । भैरवनाद के नादी तथा हिरण्यवर्त्मा आपके लिये हे देव ! हमारा नमस्कार है ॥४९॥ हे भैरव वेग ! हे नीलकण्ठ ! आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है । हे दिव्य सहस्रबाहु वाले ! हे नृत्य और वादन पर प्यार करने वाले ! आप के लिये नमस्कार है ॥५०॥

एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महामतिः ।
भाँतिदेवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभः ॥५१
अभिभाष्यस्तदा हृष्टो महादेवो महेश्वरः ।
वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवापरम् ॥५२
एकग्रीवस्त्वेकजटो नानाभूषणभूषितः ।
नानाचित्रविचित्राङ्गो नानामाल्यानुलेपनः ॥५३

पिनाकपाणिर्भगवान् वृषभासनशूलधृक् ।
दण्डकृष्णाजिनधर कपाली घोररूपधृक् ॥५४
व्यालयज्ञोपवीती च सुराणामभयङ्कर ।
दुन्दुभिस्वननिर्घोषपर्जन्यनिनदोपम ।
मुक्तो हासस्तदा तेन नभ सर्वं मपूरयत् ॥५५
तेन शब्देन महता वय भीता महात्मन ।
तदोवाच महायोगी प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ ॥५६
पश्येतान्च महामाया भय सर्वं प्रमुच्यताम् ।
युवां प्रसूतौ गात्रेषु मम पूर्वसनातनौ ॥५७

इस प्रकार भली भाँति स्तुति किये जाने वाले महामति व्यक्त हो कर महायोगी और करोडों सूर्य के समान प्रभावाले देव शोभा देते हैं ॥५१॥ उस समय में प्रसन्न महेश्वर महादेव अभिभाषण करने के योग्य थे। उस समय वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे सहस्रों करोड मुखो से अम्बर को ग्रसमान हो रहे हों ॥५२॥ एक ग्रीवा वाले एक जटाधारी अनेक भूषित-नाना चित्रों से विचित्र अङ्गों वाले और अनेक प्रकार की माल्य तथा अनुलेपन से युक्त पिनाक को हाथ मे लिये हुए- वृषभ के आसन पर शूल को धारण करने वाले तथा दण्ड और कृष्ण अजिन को धारण करने वाले, कपाली और घोर रूप को रखने वाले शिव हैं ॥५३॥५४॥ व्याल के यज्ञोपवीत को पहिने हुए और देवों को अभय का दान देने वाले तथा दुन्दुभि की ध्वनि के समान शब्द वाले एवं मेघ की गर्जना के सदृश ध्वनि से युक्त उन शिवने उस समय हास छोडा था जिससे समस्त आकाशमण्डल पूरित हो गया था ॥५५॥ उस समय में उस हास के महान् शब्द से जोकि उन महात्मा ने किया था हम सब डर गये। तब महायोगी बोले हे सुर सत्तमो ! मैं आपसे प्रसन्न हूँ ॥५६॥ महामाया को देखो और समस्त भय का त्याग करदो। तुम दोनों सनातन मेरे गात्रों में प्रसूत हुए हो ॥५७॥

अयं मे दक्षिणो बाहुर्ब्रह्मा लोकपितामह ।
वामो बाहुश्च मे विष्णुर्नित्य युद्धेषु तिष्ठति ।
प्रीतोऽहं युवयो सम्यग्वर दद्मि यथेप्सितम् ॥५८

ततः प्रहृष्टमनसौ प्रणतौ पादयोः पुनः ।
ऊचतुश्च महात्मानौ पुनरेव तदानघौ ॥५९
यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ ।
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर ॥६०
एवमस्तु महाभागौ सृजतां विविधाः प्रजाः ।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥६१
एवमेष मयोक्तो वः प्रभावस्तस्य योगिनः ।
तेन सर्वमिदं सृष्टं हेतुमात्रा वयन्त्विह ॥६२
एतद्धि रूपमज्ञातमव्यक्तं शिवसंज्ञितम् ।
अचिन्त्यं तदहश्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥६३
तस्मै देवाधिपत्याय नमस्कारं प्रयुङ्क्त ह ।
येन सूक्ष्ममचिन्त्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥६४

यह लोकपितामह ब्रह्मा मेरा दक्षिण बाहु है । विष्णु मेरा बाँया बाहु है जोकि नित्य ही युद्धों में वर्त्तमान रहा करते हैं । मैं आप दोनों से परम प्रसन्न हूँ और आपको यथोचित वरदान देता हूँ ॥५८॥ इसके अनन्तर दोनों ही प्रहृष्ट मन प्रणत हुए और फिर चरणों में गिरगये महान् आत्मा वाले और पाप रहित उन दोनों ने फिर कहा—॥५९॥ हे सुरेश्वर ! हे देव ! यदि आपके हृदय में हमारे प्रति प्रीति उत्पन्न हो गई है और हम दोनों को वरदान देना है तो हम यही चाहते हैं कि हम दोनों की आपके चरणों में नित्य भक्ति होवे ॥६०॥ श्रीभगवान् ने कहा—हे महान् भाग वाले ! ऐसा ही होवे । अब आप दोनों अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन करो । ऐसा कह करके भगवान् वहीं पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥६१॥ इस प्रकार से मेरे द्वारा उन योगी का प्रभाव आपके सामने कहा गया है । उसने ही यह सब सृजन किया है, हम तो केवल हेतुमात्र ही हैं ॥६२॥ यह शिव इस संज्ञा वाला रूप अव्यक्त एवं अज्ञात होता है । वह रूप चिन्तन करने के योग्य नहीं है और अदृश्य भी है । ज्ञान के चक्षुवाले ही उसे देखा करते हैं ॥६३॥ उस देवों के अधिपति के लिये नमस्कार का प्रयोग करते हैं जिससे ज्ञान की चक्षु वाले उस सूक्ष्म तथा चिन्तन न करने के लिये योग्य को देखा करते हैं ॥६४॥

महादेव नमस्तेऽस्तु महेश्वर नमोऽस्तु ते ।
सुरासुरवर श्रेष्ठ मनोहस नमोऽस्तु ते ॥६५
एतच्छ्रुत्वा गता सर्वे सुरा स्व स्व निवेशनम् ।
नमस्कार प्रयुञ्जाना शङ्कराय महात्मने ॥६६
इम स्तव पठेद्यस्तु ईश्वरस्य महात्मन ।
कामाश्च लभते सर्वान् पापेभ्यस्तु विमुच्यते ॥६७
एतत्सर्वं सदा तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
महादेवप्रसादेन उक्त ब्रह्म सनातनम् ।
एतद्व सर्वमाख्यात मया माहेश्वर बलम् ॥६८

हे महादेव ! हे महेश्वर ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे सुरासुर वर ! हे श्रेष्ठ ! हे मनोह स ! आपके लिये नमस्कार है ।।६५।। श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके समस्त देवगण अपने अपने निवास स्थान को चले गये और जाने के समय में सब महात्मा शङ्कर के लिये नमस्कार करते हुए गये थे ॥६६॥ महान् आत्मा वाले ईश्वर के इस स्तव को जो कोई पढता है वह समस्त कामनाओ को प्राप्त किया करता है और सम्पूर्ण पापो से छुटकारा पा जाता है ॥६७॥ उन सर्व सदा तत प्रभविष्णु ने महादेव के प्रसाद से सनातन ब्रह्म कहा है । यह सब माहेश्वर के बल से आपसे मैंने कह दिया है ॥६८॥

॥ प्रकर्ण ३८—पितर-वर्णन ॥

अगात्कथममावास्या मासि मासि दिव नृप ।
एल पुरूरवा सूत कथ वाऽतर्पयत् पितॄन् ॥१
तस्य चाह प्रवक्ष्यामि प्रभाव शाशपायन ।
ऐलस्यादित्यसयोग सोमस्य च महात्मन ॥२
अपासारमयस्येन्दो पक्षयो शुक्लकृष्णयो ।
ह्रासवृद्धी पितृमत पक्षस्य च विनिर्णय ॥३
सोमाच्चैवामृतप्राप्ति पितॄणा तर्पण तथा ।
कव्याग्नेश्चात्तसोमाना पितॄणाञ्चैव दर्शनम् ॥४

यथा पुरूरवाश्चैलस्तर्पयामास वै पितॄन् ।
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि पर्वाणि च यथाक्रमम् ॥५
यदा तु चन्द्रसूर्यौ तौ नक्षत्रेण समागतौ ।
अमावास्यान्निवसत एकरात्रं कमण्डले ॥६
सगच्छति तदा द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ ।
अमावस्याममावास्यां मातामहपितामहौ ।
अभिवाद्य तदा तत्र कालपेक्षः प्रतीक्ष्यते ॥७

श्री शांशपायन ने कहा—हे सूतजी ! राजा ऐल पुरुरवा मास-मास में अमावस्या में दिव में कैसे गया और किस प्रकार से वहाँ पितरों को तृप्त किया था । सूतजी ने कहा—हे शांशपायन ! मैं उसके प्रभाव को बतलाऊँगा। ऐल का आदित्य के साथ तथा महात्मा चन्द्र के साथ जो संयोग हुआ वह भी बताया जायगा ।।२।। जलों का सारमय जो चन्द्रमा है उसका कृष्ण और शुक्ल पक्षों में ह्रास और वृद्धि हुआ करती है । यह पक्ष का विशेष निर्णय पितृमत है ।।३।। सोम से ही अमृत की प्राप्ति हुआ करती है तथा पितरों का दर्शन होता है ।।४।। इस प्रकार से पुरूरवा ऐल राजा पितरों की तृप्ति किया करता था । यह सब और क्रम के अनुसार पर्वों को मैं बतलाऊँगा ।।५।। जिस समय वे दोनों चन्द्र और सूर्य नक्षत्र से समागत होते हैं तो अमावस्या में एक रात्रि तक मण्डल में निवास किया करते हैं ।।६।। उस समय वह दिवाकर और निशाकर का दर्शन प्राप्त करने के लिये जाता हैं । अमावस्या में माता-मह और पिता मह को अभिवादन करके उस समय वहाँ पर कालकी अपेक्षा वाला प्रतीक्षा किया जाया करता है ।।७।।

प्रसीदमानात् सोमाच्च पित्रर्थं तत्परिस्रवात् ।
ऐलः पुरूरवा विद्वान् मासि मासि प्रयत्नतः ।
उपास्ते पितृमन्तं तं ससोमं स दिवास्थितः ॥८
द्विलवं कुहुमात्रं तु ते उभे तु विचार्य सः ।
सिनीवालीप्रमाणेन सिनीवालीमुपासकः ॥९
कुहूमात्रां कलाञ्चैव ज्ञात्वोपास्ते कुहुं पुनः ।
स तदा भानुमत्येक कालावेक्षी प्रपश्यति ॥१०

सुधामृतं कुतः सोमात् प्रस्रवेन्मासतृप्तये ।
दशभिः पञ्चभिश्चैव सुधामृतपरिस्रवैः ॥११
कृष्णपक्षे तदा पीत्वा दुह्यमानं तथांशुभिः ।
सद्य पक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः ॥१२
निर्वापणार्थं दत्तेन पित्र्येण विधिना नृपः ।
सुधामृतेन राजेन्द्रस्तर्पयामास वै पितॄन् ।
सौम्या वर्हिषद काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥१३
ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स नु संवत्सरो मतः ।
जज्ञिरे ह्यृतवस्तस्मादृतुभ्यश्चार्त्तवाश्च ये ॥१४

प्रसीदमान अर्थात् प्रसन्नता प्राप्त हुए सोम से पितरों के लिये उसके परिस्रव से ऐल पुरुरवा विद्वान् मास-मास में प्रयत्न के साथ वह दिव में आविस्थत होता हुआ ससोम पितृमान् उस की उपासना करता है ॥८॥ दो लव कुहूमात्र ये दोनो विचार करके वह सिनीवाली प्रमाण से सिनीवाली का उपासक होता है ॥६॥ कुहूमात्रा और कला को जानकर फिर कुहू की उपासना करता है। वह उस समय मे भानुमान में एक काल की अपेक्षा करने वाला प्रकर्ष रूप से देखता है ॥१०॥ मास तृप्ति के लिये वहाँ सोम से सुधामृत का प्रस्रव होता है। दश और पाँच सुधामृत परिस्रवों से प्राप्त करता है ॥११॥ उस समय कृष्ण पक्ष मे अशुओं से दुह्यमान को पीकर सद्य वह उस सौम्य मधु से पक्षरत होता है ॥१२॥ वह राजा पित्र दिये हुए से जोकि निर्वापण के लिये ही दिया गया है, विधिपूर्वक राजेन्द्र सुधामृत के द्वारा पितरों को तृप्त किया करता था। उसमें सौम्य-वर्हिषद-काव्य और अग्निष्वात्त ये सभी हैं ॥१३॥ ऋतु अग्नि जो कहा गया है, उससे ऋतुएँ उत्पन्न हुई और ऋतुओं से ये आर्तव उत्पन्न हुए हैं ॥१४॥

आर्त्तवा ह्यर्द्धमासाख्या पितरो ह्यब्दसूनवः ।
ऋतु पितामहा मासा ऋतुश्चैवाब्दसूनवः ॥१५
प्रपितामहास्तु वै देवा. पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुता. ।
सौम्यास्तु सौम्यजा ज्ञेयाः काव्या ज्ञेया. कवेः सुताः ॥१६

उपहूताः स्मृताः देवाः सोमजाः सोमपास्तथा ।
आज्यपास्तु स्मृताः काव्यास्तृप्यन्ति पितृजातयः ॥१७
काव्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ।
गृहस्था ये च यज्वाना ऋतुर्बर्हिषदो ध्रुवम् ॥१८
गृहस्थाश्चापि यज्वाना अग्निष्वात्तास्तथार्त्तवाः ।
अष्टकापतयः काव्याः पञ्चाब्दास्तान्निबोधत ॥१९
एषां संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः ।
सोम इद्वत्सरः प्रोक्तो वायुश्चैवानुवत्सरः ॥२०

जो आर्त्तव हैं वे अर्धमास नाम वाले हैं। पितर अब्द के पुत्र हैं। ऋतु के पितामह मास हैं और ऋतु अब्द सूनु हैं ॥१५॥ इनके प्रपितामह तो ब्रह्मा के पुत्र देव पञ्जा अब्द हैं। जो सौम्य हैं वे सौम्यज जानने चाहिए और जो काव्य हैं वे कवि के पुत्र समझने चाहिए ॥१६॥ उपहूत देव सोमज तथा सोमज कहे गये हैं। जो आज्य है वे काव्य कहे गये हैं। ये पितृ जातियाँ हैं जोकि तृप्त हुआ करती हैं ॥१७॥ वे काव्य बर्हिषद और अग्नि ष्वात्त तीन प्रकार के हुआ करते हैं। जो यज्वान गृहस्थ होते हैं उनका बर्हिषद ऋतु होता है। गृहस्थ यज्वान जो होते हैं अग्निष्वात्त उनके आर्त्तव होते हैं। अष्टका पति काव्य हैं। उनको पञ्चब्द जानना चाहिए ॥१८॥१९॥ इनका सम्वत्सर अग्नि है और सूर्य परिवत्सर होता है। सोम इद्वत्सर कहा गया है और वायु ही अनुवत्सर होता है ॥२०॥

रुद्रस्तु वत्सरस्तेषां पञ्चाब्दा ये युगात्मकाः ।
लेखाश्चैवोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृताः ॥२१
एते पिबन्त्यमावास्यां मासि मासि सुधां दिवि ।
तांस्तेन तर्पयामास यावदासीत् पुरूरवाः ॥२२
यस्मात् प्रस्रवते सोमान्मासि मासि निबोधत ।
तस्मात् सुधामृतं तद्वै पितॄणां सोमपायिनाम् ॥२३॥
एवं तदमृतं सौम्यं सुधा च मधु चैव ह ।
कृष्णपक्षे यथा चेन्दोः कलाः पञ्चदश क्रमात् ॥२४

पिवन्त्यम्बुमयीर्देवास्त्रयस्त्रिंशत्तु छन्दजा ।
पीत्वा च मास गच्छन्ति चतुर्दश्या सुधामृतम् ॥२५
इत्येव पीयमानस्तु दैवतैश्च निशाकर ।
समागच्छदमावास्या भागे पञ्चदशे स्थित ॥२६
सुषुम्नाप्यायातिञ्चैव अमावास्या यथाक्रमम् ।
पिबन्ति द्विकल काल पितरस्ते सुधामृतम् ॥२७
तत पीतक्षये सोमे सूर्योऽसावेकरश्मिना ।
आप्याययत्सुषुम्नेन पितृणा सोमपायिनाम् ॥२८

रुद्र उनका वत्सर होता है मैं युगात्मक पञ्चाब्द होते हैं । वे लेखा उष्मपा और दिव्याकीर्त्या कहे गये हैं ॥२१। ये अमावस्या म मास-मास में दिवि में सुधा का पान किया करते हैं । उसस पुरूरवा जब तक है उनका तर्पण करता था ॥२२॥जिससे मास मास मे सोमो का प्रस्रवण करता है उसे जान लो । उससे सुधामृत सोमपायी पितरो का होता है ॥२३॥ इस प्रकार से वह सौम्य अमृत-सुधा और मधु होता है । जिस प्रकार से कृष्ण पक्ष मे चन्द्रमा की क्रम से पन्द्रह कलाएँ होती हैं ॥२४॥ देव अम्बुमयी का पान करते हैं और तेतीस छन्दज होते हैं और चतुर्दशी मे मास तक सुधामृत को पाकर चले जाते हैं ॥२५॥ इस प्रकार से देवों के द्वारा पीयमान निशाकर अमावस्या को पञ्चदश भाग मे स्थित आ गया था ॥२६॥ सुषुम्ना से आप्यायित अमावस्या को यथाक्रम द्विकल काल तक पितर सुधामृत का पान करते हैं ॥२७॥ इसके अनन्तर पीत होने से क्षय वाले सोम के होने पर यह सूर्य एक रश्मि से सुषुम्ना के द्वारा सोमपायी पितरों को आप्यायित करता है ॥२८॥

नि शेषाया कलायान्तु सोममाप्याययत् पुन. ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य भाग भाग महः क्रमात् ।
कला क्षीयन्ति ता कृष्णा शुक्लाश्चाप्याययन्ति च॥ २९
एव सूर्यस्य वीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनु ।
दृश्यते पौर्णमास्या वै शुक्ल सम्पूर्णमण्डल ।

संसिद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।।३०
इत्येष पितृमान् सोमः स्मृत इद्वत्सरः क्रमात् ।
क्रान्तः पंचदशैः सार्द्धं सुधामृतपरिस्रवैः ।।३१
अतः पर्वाणि वक्ष्यामि पर्वणां सन्धयस्तथा ।
ग्रन्थिमन्ति यथा पर्वाणीक्षुवेण्वोर्भवन्त्युत ।।३२
तथार्द्ध मासपर्वाणि शुक्लकृष्णानि वै विदुः ।
पूर्णामावास्ययोर्भेदैर्ग्रन्थियां सन्धयश्च वै ।
अर्द्धमासास्तु पर्वाणि तृतीयाप्रभृतीनि तु ।।३३
अग्न्याधानक्रिया यस्मात् क्रियते पर्वसन्धिषु ।
सायाह्ने प्रतिपच्चैव स कालः पौर्णमासिकः ।।३४
व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखोर्द्धन्तु युगान्तरे ।
युगान्तरोदिते चैव लेखोर्द्धं शशिनः क्रमात् ।।३५

कला के निःशेष होने पर भी फिर सोम को आप्यापित करता है। सुषुम्ना से आप्यायमान की भाग-भाग महा के क्रम से वे कृष्ण कलाक्षीण हो जाती हैं और शुक्ल को आप्यायित किया करती हैं ।।२६।। इस प्रकार से सूर्य के वीर्य से चन्द्र का शरीर भी आप्यायित होता है। पौर्णमासी में शुक्ल सम्पूर्ण मण्डल दिखलाई दिया करता है इस प्रकार से शुक्ल कृष्ण पक्षों में सोम की संसिद्ध होती है ।।३०।। यह पितृमान् सोम क्रम से इद्वत्सर कहा गया है। पन्द्रह सुधामृत परिस्रवों के साथ क्रान्त होता है ।।३१।। इस के आगे अब मैं पर्वों को तथा पर्व सन्धियों को बताऊँगा। जिस प्रकार से इक्षु वेणुओं के पर्व ग्रन्थिमान् होते हैं ।।३२।। उसी प्रकार से अर्धमास के पर्व शुक्ल कृष्ण जानने चाहिए। पूर्णिमा और अमावस्या के भेदों से जो ग्रन्थि और जो सन्धियाँ हैं। अर्धमास तृतीया प्रभृति हैं ।।३३।। जिसमें पर्वोपर अग्न्याधान की क्रिया की जाती है। सायाह्नमें प्रतिपद् ही वह पौर्णमासिक काल होता है ।।३४।। सूर्य के व्यतीपात में स्थित होने पर युगान्तर में लोखोद्र्ध्व होता है और युगान्तर में उदित होने पर क्रम से लेखोद्र्ध्व शशि का होता है ।।३५।।

पौर्णमासे व्यतीपाते यदीक्षेते परस्परम् ।
यस्मिन्काले स सीमान्ते स व्यतीपात एव तु ॥३६
काल सूर्यस्य निर्देश दृष्ट्वा सङ्ख्या तु सर्पति ।
स वै पथ क्रियाकाल कालात्सद्यो विधीयते ॥३७
पूर्णेन्दो पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा ।
यस्मात्तामनुपश्यन्ति पितरो दैवतैः सह ।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता ॥३८
अत्यर्थं भ्राजते यस्मात् पौर्णमास्यान्निशाकर. ।
रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदु ॥३९
अमा वसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ ।
एका पञ्चदशी रात्रिममावास्या तत स्मृता ॥४०
ततोऽपरस्य तैर्ध्यक्त पौर्णमास्या निशाकर. ।
यदीक्षते व्यतीपाते दिवा पूर्णे परस्परम् ।
चन्द्रार्कावपराह्णे तु पूर्णात्मानौ तु पूर्णिमा ॥४१
विच्छिन्नाताममावास्या पश्यतश्च समागतौ ।
अन्योन्य चन्द्रसूर्यौ तौ यदा तद्दर्श उच्यते ॥४२

पौर्णमास व्यतीपात में जो परस्पर में देखते हैं जिसकाल मे वह सीमान्त में है वह व्यतीपात नही है ॥३६॥ सूर्य काल के निर्देश को देख कर सख्या सर्पण किया करती है वह ही निश्चय रूप से क्रिया का काल से तुरन्त ही पथ का विधान किया करता है ॥३७॥ पूर्ण चन्द्र के पूर्ण पक्ष मे रात्रि की सन्धियों म पूर्णिमा है जिससे देवों के साथ पितर उसे देखते हैं। इससे अनुमति नाम वाली प्रथम पूर्णिमा कही गई ॥३८॥ जिससे पौर्णमासी में निशाकर अत्यधिक रूप से भ्राजमान होता है। चन्द्र के रञ्जन करने से पूर्णिमा की रात्रि का नाम राका-यह पड गया है जिसे कवि लोग जानते हैं ॥३९॥ अमा ऋक्ष मे वास करती है जब कि चन्द्र और दिनकर दोनो एक पञ्चदशी की रात्रि को वास किया करते हैं। इसी से अमावस्या ही कही गई है ॥४०॥ फिर दूसरे का उनके द्वारा पौर्णमासी में निशाकर व्यतीपात मे पूर्ण दिन में परस्पर में

दीखता है। अपराह्न में तो चन्द्र और सूर्य स्वरूप वाले होते हैं इसीलिये पूर्णिमा यह कही जाती है ।।४१।। समागत वे दोनों उस अमावस्या को विच्छिन्न देखते हैं। वे दोनों चन्द्र और सूर्य अन्योन्य में जब देखते हैं तो वह दर्श ऐसा कहा जाता ।।४२।।

द्वौ द्वौ लवावमावास्यां यः कालः पर्वसन्धिषु ।
द्वाक्षरं कुहुमात्रं तु एवं कालस्तु स स्मृतः ।
नष्टचन्द्राप्यमावास्या मध्यसूर्येण सङ्गता । ४३
दिवसार्द्धेन राञ्यर्द्धं सूर्यं प्राप्त तु चन्द्रमाः ।
सूर्येण सहसा मुक्तिं गत्वा प्रातस्ततोत्सवौ ।
द्वौ कालौ सङ्गमश्चैव मध्याह्ने निष्पतेद्रवि. ।।४४
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्यमण्डलात् ।
निर्मुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु वै ।।४५
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया ।
एतद्दलुमुखं ज्ञेयममावास्यस्य पर्वणः ।।४६
दिवा पर्वण्यमावास्यां क्षीणेन्दौ बहुले तु वै ।
तस्माद्दिवा ह्यमावास्यां गृह्यतेऽसौ दिवाकरः ।
गृह्यते वै दिवा ह्यस्मादमावास्यां दिविक्षयैः ।।४७
कलानामपि वै तासां बहुमान्याजडात्मकैः ।
तिथीनां नाम धेयानि विद्वद्भिः संज्ञितानि वै ।।४८
दर्शयेतामथान्योन्यं सूर्याचन्द्रमसावुभौ ।
निष्क्रामत्यथ तेनैव क्रमशः सूर्यमण्डलात् ।।४९

अमावस्या में दो-दो लव पर्वसन्धियों में जो काल होता है वह द्वाक्षर कुहुमात्र इस प्रकार से काल कहा गया है। नष्ट चन्द्र वाली भी अमावस्या मध्य सूर्य के साथ सङ्गत होती है ।।४३।। दिवसार्ध के साथ रात्रि के अर्ध को चन्द्रमा सूर्य को प्राप्त कर, सूर्य से सहसा छुटकारा पाकर प्रातः कालीन उत्सव वाले दो काल हैं और सङ्गम है। मध्याह्न में सूर्य का निष्पतन होता है ।।४४।। शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् को चन्द्रमा सूर्य मण्डल से

उन निर्मुंच्यमान मण्डलों के मध्य में होता है ॥४५॥ उस समय में वह आहृति का काल तथा दर्श की वषट्क्रिया होती है। इस पर्व की अमावस्या यह ऋतु मुख जानना चाहिए ॥४६॥ दिवा पर्व में अमावस्या को अधिक चन्द्र के क्षीण हो जाने पर इससे दिवा में अमावस्या को यह दिवाकर ग्रहण किया जाता है। दिवा ग्रहण किया जाता है इससे दिविक्षयों से अमावस्या होती है ॥४७॥ उन कलाओं की भी नक्षत्रमासों के द्वारा बाहुमान्या होती है। विद्वानों ने तिथियों के भी नामों की सज्ञा की है ॥४८॥ सूर्य और चन्द्रमा दोनों अन्योन्य को देखते हैं और क्रम से उसी के साथ सूर्य मण्डल में निकलता ॥४९॥

द्विलवेन ह्यहो रात्र भास्कर स्पृशते शशी।
स तदा ह्याहुते. कालो दर्शस्य च वषट् क्रिया ॥५०
कुहेति कोकिलेनोक्तो यः कालः परिचिह्नितः।
तत्काल स ज्ञिता यस्मादमावास्या कुहू स्मृता ॥५१
सिनीवालीप्रमाणेन क्षीणशेषो निशाकर।
अमावास्या विशत्यर्कं सिनीवाली ततः स्मृता ॥५२
पर्वण पर्वकालस्तु तुल्यौ वै तु वषट् क्रिया।
चन्द्रसूर्यव्यतीपाते उभे ते पूर्णिमे स्मृते ॥५३
प्रतिपत्पञ्चदश्योश्च पर्वकालो द्विमात्रकः।
काल कुहूसिनीवाल्यो समुद्रो द्विलवः स्मृत ॥५४
अर्काग्निमण्डले सोमे पर्व काल कलाश्रय।
एव स शुक्लपक्षो वै रजन्या पर्वसन्धिषु ॥५५
सम्पूर्णमण्डल. श्रीमाश्चन्द्रमा उपरज्यते।
यस्मादाप्यायते सोम पञ्चदश्यान्तु पूर्णिमा ॥५६

अहोरात्र में चन्द्रमा दो लव भास्कर का स्पर्श किया करता है। उस समय यह आहृति का तथा दर्श की वषट् क्रिया काल होता है ॥५०॥ कोकिल से उक्त जो काल कुहू ऐसा परिचिह्नत होता है उसकाल से ज्ञात वाली अमावस्या कुहू कही जाती है ॥५१॥ सिनीवाली के प्रमाण से क्षीण शेष निशाकर अमावस्या के दिन सूर्य में प्रवेश किया करता है इसी से सिनीवाली कही गई है।

॥५२॥ पर्वका पर्व काल तो वषट क्रिया के तुल्य ही होता है। चन्द्र और सूर्य के व्यतीपात में वे दोनों पूर्णिमा कही गई हैं ॥५३॥ प्रतिपद् और पञ्चदशी का पर्वकाल द्विमात्रिक ही होता है। सिनीवाली और कुहू का समुद्र द्विलव कहा गया है ॥५४॥ सोम के अर्काग्नि मण्डल में पर्व का काल कला के आश्रय वाला होता है। इस प्रकार से पर्व की सन्धियों में रात में शुक्ल पक्ष होता है ॥५५। सम्पूर्ण मण्डल वाला श्रीमान् चन्द्र उपर्ज्जित होता है जिस से पञ्चदशी में सोम आप्यायित होता है इससे पूर्णिमा होती है ॥५६॥

दशभिः पञ्चभिश्चैवः कलाभिर्दिवसक्रमात् ।
तस्मात् कला पञ्चदशी सोमे नास्ति तु षोडशी ।
तस्मात्सोमस्य भवति पञ्चदश्यां महाक्षयः ॥५७
इत्येते पितरो देवाः सोमपाः सोमवर्द्धनाः ।
आर्त्तवा ऋतवो यस्मात्ते देवाः भावयन्ति च ॥५८
अतः पितॄन् प्रवक्ष्यामि मासश्राद्धभुजस्तु ये ।
तेषां गतिञ्च सत्वञ्च गतिं श्राद्धस्य चैव हि ॥५९
न मृतानां गतिः शक्या विज्ञातुं पुनरागतिः ।
तपसापि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा ॥६०
श्राद्धदेवान् पितॄनेतान् पितरो लौकिकाः स्मृताः ।
देवाः सौम्याश्च यज्वानः सर्वे चैव ह्ययोनिजाः ॥६१
देवास्ते पितरः सर्वे देवास्तान् भावयन्त्युत ।
मनुष्याः पितरश्चैव तेभ्योऽन्ये लौकिकाः स्मृताः ॥६२
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
यज्वानो ये तु सोमेन सोमवन्तस्तु ते स्मृताः ॥६३

दश और पाँच कलाओं से दिवसों के क्रम से पन्द्रह कला सोम में होती हैं सोलहवीं नहीं होती है। इससे सोम का पञ्चदशी में महान् क्षय होता है। ॥५७॥ इतने ये पितर देव सोमप और सोमवर्द्धन हैं। जिससे आर्त्तक और ऋतुएँ हैं, वे देव भावित किया करते हैं ॥५८॥ इसलिये पितृगण को बताऊँगा जोकि मास श्राद्ध के भोजी होते हैं। उनकी गति और सत्त्व तथा श्राद्धकी गति

को भी बताया जायगा ॥५६॥ तृमनुष्यों की गति तथा पुनरागति बताई नहीं जा सकती है। यह प्रसिद्ध तप से भी नहीं बता सकते हैं इन माँस चक्षुओं की बात ही क्या है। ६०॥ श्राद्धदेव व इन पितरों को लौकिक पितर कहा गया है। देवसोम्य और यज्वान ये सब आयोनिज होते हैं ॥६१॥ वे सब देव पितर हैं और उनको देव ही भावित किया करते हैं। मनुष्य और पितर उनसे अन्य लौकिक कहे गये हैं ॥६२॥ पिता-पितामह और प्रपितामह जो सोम के द्वारा यज्वान होते हैं वे सोमवन्त कहे गये हैं ॥६३॥

ये यज्वान स्मृतास्तेषा ते वै बर्हिषदः स्मृता।
कर्मस्वेतेषु युक्तास्ते तृप्यन्त्यादेहसम्भवात् ॥६४
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्तेषा होमिनो याज्ययाजिनः।
ये वाप्याश्रमधर्मेण प्रस्थानेषु व्यवस्थिताः ॥६५
अन्ते च नैव सीदन्ति श्रद्धायुक्तेन कर्मणा।
ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया च वै ॥६६
श्रद्धया विद्यया चैव प्रदानेन च सप्तधा।
कर्मस्वेतेषु ये युक्ता भवन्त्या देहपातनात् ॥६७
देवैस्तैः पितृभिः सार्द्धं सूक्ष्मकैः सोमपायकैः।
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्तमुपासते ॥६८
प्रजावता प्रशंसैव स्मृता सिद्धा क्रियावताम्।
तेषा निवापदत्तान्न तत्कुलीनैश्च बान्धवैः ॥६९
मास श्राद्धभुजस्तृप्तिं लभन्ते सोमलौकिका।
एते मनुष्याः पितरो मासि श्राद्धभुजस्तु ते ॥७०

जो यज्वान कहे गये हैं उनके वे बर्हिषद कहे गये हैं। इन कर्मों में युक्त वे देह सम्भव तक तृप्त होते हैं ॥६४॥ उनके याज्ययाजी होमी अग्निष्वात्त कहे गये हैं। अथवा जो भी आश्रम धर्म से प्रस्थानों में व्यवस्थित हैं ॥६५॥ श्रद्धा से युक्त कर्म के द्वारा अन्त समय में दुःखी नहीं होते हैं। इसी प्रकार जो ब्रह्मचर्य-तप-यज्ञ और प्रजा से युक्त होते हैं वे भी दुःखी नहीं होते

हैं ।।६६।। श्रद्धा से विद्या से और प्रदान से सात प्रकार से इन कर्मों में जो युक्त होते हैं और अपने देह के पातन तक इसी प्रकार से रहते हैं वे उन देवों के-पितरों के और सूक्ष्मक सोमपायकों के साथ स्वर्ग में गये हुए मोदयुक्त होते हैं तथा दिवि में पितृमान् की उपासना किया करते हैं ।।६८।। प्रजा वालों की प्रशंसा ही कही गई है और क्रिया वालों की वह सिद्ध है। उनके निवाप दत्त अन्न को जो कि तत्कुलीनों के द्वारा एवं बान्धवों के द्वारा दिया गया है मास पर्यन्त श्राद्ध भोजी सोम लौकिक तृप्ति को प्राप्त किया करते हैं। ये जोकि मास में श्राद्ध-भोजी होते हैं वे मनुष्य पितर हैं ।।७०।।

तेभ्योऽपरे तु ये चान्ये सङ्कीर्णाः कर्मयोनिषु ।
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेभ्यः स्वधास्वाहाविवर्जिताः ।।७१
भिन्नदेहा दुरात्मनः प्रेतभूता यमक्षये ।
स्वकर्माण्येव शोचन्ति यातनास्थानमागताः ।।७२
दीर्घायुषोऽन्शुष्काश्च विवर्णाश्च विवाससः ।
क्षुत्पिपासापरीताश्च विद्रवन्ति इतस्ततः ।।७
सरित्सरस्तडागानि वापिश्चैव जलेप्सवः ।
परान्नानि च लिप्सन्ते कम्पमानास्ततस्ततः ।।७४
स्थानेषु पाच्यमानाश्च यातायातेषु तेषु वै ।
शाल्मलौ वैतरण्याञ्च कुम्भीपाकेषु तेषु च ।।७५
करम्भवालुकायाश्च असिपत्रवने तथा ।
शिलासम्पेषणे चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः ।।७६
तत्र स्थानानि तेषां वै दुःखानामप्यनाकवत् ।
लोकान्तरस्थानां विविधैर्नामगोत्रतः ।।७७

उनसे ऊपर जो अन्य हैं वे कर्मयोनियाँ सङ्कीर्ण हैं और आश्रमों के धर्मों से भ्रष्ट हुए स्वाहा तथा स्वधा से विवर्जित होते हैं ।।७१।। भिन्न देह वाले दुष्ट आत्मा से युक्त और यमक्षय में प्रेत भूत यातना के स्थानों में आये हुए अपने किये हुए कर्मों को ही शोचा करते हैं ।।७२।। दीर्घ आयुवाले, अत्यन्त शुष्क, विवर्ण और बिना वस्त्र वाले भूख और प्यास से परीत हुए इधर-उधर

विद्रवण किया करते हैं ॥७३॥ प्यास से व्याकुल जल प्राप्त करने को इच्छा वाले नदी सरोवर-तालाब और बावडी तथा पराये अन्न को इधर-उधर कांक्षते हुए चाहा करते हैं ॥७४॥ उन यातायातों के स्थानों में पाच्यमान-शाल्मली में और वैतरणी में और उन कुम्भीपाकों में-करम्भ व लुरा में-असिपत्र वन में और शिल सम्पेषण में अपने कर्मों के द्वारा गिराये हुए होते हैं ॥७५॥७६॥ अनाक की भाँति वहाँ पर उन दुःखों के स्थान, अन्य लोकों में स्थित उनके विविध नाम और गोत्र से होते हैं ॥७७॥

भूम्यामपसव्यदर्भेषु दत्त्वा पिण्डत्रयन्तु वै ।
पति तास्तर्पयन्ते च प्रेतस्थानेष्वधिष्ठिता ॥७८
अप्राप्ता यातनास्थान सृष्टा ये भुव प चधा ।
पश्वादिस्थावरान्तेषु भूताना तेषु कर्मसु ॥७६
नानारूपासु जातीषु तिर्यग्योनिषु जानिषु ।
यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु ।
तस्मिस्तस्मिस्तदाहार श्राद्धदत्तोपतिष्ठति ॥८०
काले न्यायागत पात्र विधिना प्रतिपादितम् ।
प्राप्नोत्यन्न यथा दत्त जन्तुर्यत्रावतिष्ठते ॥८१
यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा श्राद्धे तदिष्टाना मन्त्र. प्रापयते पितृ.न् ॥८२
एव ह्यविकल श्राद्धमदत्तन्तु मन्त्रतः ।
सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ।
गतागतिज्ञ प्रेताना प्राप्तश्राद्धस्य चैव हि ॥८३
वल्मीकाश्चोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्चिव ते स्मृता ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषा शुक्ल स्वप्नाय शर्वरी ॥८४

भूमि से अपसव्य दर्भों में तीन पिण्ड देकर प्रेत स्थानों में अधिष्ठित उन पतितों का तर्पण किया करते हैं ॥७८॥ जो यातना के स्थान में अप्राप्त भूमि में सृष्ट हैं वे पाँच प्रकार के होते हैं। पशु आदि स्थावरान्तों में प्राणियों के उन-कर्मों में नाना प्रकार की जातियों में तिर्यग्योनियों में यताहार होते हैं। उस-

इसमें उनका आहार श्राद्ध में दिया हुआ उपस्थित होता है ॥७६॥ ॥८०॥ काल में न्याय से आया हुआ पात्र विधि से प्रतिपादित तथा दत्त अन्न को प्राप्त किया करता है जहाँ कि बन्धु अवस्थित होता है ॥८१॥ जिस तरह से गायों के प्रविष्ट होने पर वत्स माता का लाभ किया करता है उसी प्रकार से श्राद्ध में तद्दिष्टों का मन्त्र पितरों को प्राप्त करता है ॥८२॥ मन्त्र से दिया हुआ श्राद्ध अविकल श्राद्ध होता है, इस बात को दिव्य चक्षु से देखते हुए सनत्कुमार ने कहा था जोकि गतागति के ज्ञान रखने वाले तथा प्रेतों के प्राप्त श्राद्ध के ज्ञाता थे ॥८३॥ बह्लीक-उष्मया औ दिवाकीर्त्य वे कहे गये हैं। उनका कृष्ण पक्ष दिन होता है और शुक्ल पक्ष तो स्वप्न के लिये शर्वरी (रात्रि) होती है ॥८४॥

इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै ।
ऋतार्त्तवा अनेके तु अन्योन्यपितरः स्मृताः ॥८५
एते तु पितरो देवा मानुषाः पितरश्च ये ।
प्रीतेषु तेषु प्रीयन्ते श्रद्धायुक्तेन कर्मणा ॥८६
इत्येवं पितरः प्रोक्ताः पितॄणां सोमपायिनाम् ।
एतत् पितृमतत्वं हि पुराणे निश्चयो मतः ॥८७
इत्यर्क पितृ सोमानामैलस्य च समागमः ।
सुधामृतस्य चावाप्तिः पितॄणांचैव तर्पणम् ॥८८
पूर्णिमावास्ययोः कालः पितॄणां स्थानमेव च ।
समासात्कीर्त्तितं स्तुभ्यमेष सर्गः सनातनः ॥८९
वैश्वरूप्यन्तु सर्वस्य कथितं चैकदेशिकम् ।
न शक्यं परिसङ्ख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता ॥९०
स्वायम्भुवस्य हीत्येष सर्गः क्रान्तो मयात्र वै ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ॥९१

ये इतने पितर-देव और देव और पितर तथा ऋतार्तव ऐसे अनेक अन्योन्य पितर कहे गये हैं ॥८५॥ ये पितर देव और ये मानुष पितर हैं। श्रद्धा से युक्त कर्म के द्वारा उनके प्रसन्न होने पर प्रसन्नतायुक्त होते हैं ॥८६॥ इस

प्रकार से पितर कहे गये हैं। सोमपायी पितरो का यह पितृमतत्व निश्चय रूप से पुराण मे माना गया है ॥८७॥ यह अर्क पितृ सोमो का तथा एल का समागम और सुधामृत की अवाप्ति और पितरो का तर्पण पूर्णिमा और अमावस्या का काल और पितरो का स्थान ये सभी का सक्षेप से तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया है। यही सनातन अर्थात् सर्वदा से चले आने वाला सर्ग है ॥८८॥ ॥८६॥ सबका वैरूप्य और क्षेत्रिक कह दिया है। यह परिसख्या वाला नही हो सकता है। भूतियो चाहने वाले को श्रद्धा करने के योग्य होता है ॥६०॥ यह मैने स्वायम्भुव का सर्ग कहा है फिर आगे विस्तार के तथा आनुपूर्वी के साथ मे क्या वर्णन करूँ ? ॥६१॥

॥ प्रकर्ण ३६—यज्ञप्रथा वर्णन ॥

चतुर्युगानि यान्यासन् पूर्वं स्वायम्भुवेन्तरे ।
तेषा निसर्गं तत्त्वच श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ॥१
पृथिव्यादिप्रसङ्गेन यन्मया प्रागुदाहृतम् ।
तेषाश्चतुर्युग ह्येतत् प्रवक्ष्यामि निबोधत ॥२॥
सङ्ख्येह प्रसङ्ख्याय विस्ताराच्चैव सर्वश ।
युग च युगभेद च युगधर्मान्तथैव च ॥३॥
युगसन्ध्य शक चैव युगसन्धानमेव च ।
षट्प्रकारयुगाख्याना प्रवक्ष्यामीह तत्त्वत ॥४
लौकिकेन प्रमाणेन विप्रुद्धोऽन्दस्तु मानुष ।
तेनाब्देन प्रसङ्ख्याय वक्ष्यामीह चतुर्युगम ॥५
निमेषकाल काष्ठा च कालाश्चापि मुहूर्त्तका ।
निमेषकालतुल्य हि विद्याल्लघ्वक्षर चयत ॥६
काष्ठा निमेषा दश पच चैव त्रिशच्च काष्ठा गणयेत् कलास्ता:
त्रिशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तास्तैस्त्रिशता रात्र्यहनी समेते ॥७॥

ऋषियो ने कहा—स्वायम्भुव अन्तर मे पहिले जो चार युग थे उनका निसर्ग और तत्त्व विस्तार पूर्वक हम श्रवण करना चाहते है ॥१॥ श्री सूतजी ने

कहा—पृथिवी आदि के प्रसङ्ग से जो मैंने पहिले उदाहृत किया है उनका यह चतुर्युग अब बतलाऊँगा, उसे भली भाँति समझलो ॥२॥ यहाँ संख्या से प्रसंख्यान करके और सब प्रकार से एवं विस्तार से युगसन्ध्यंशक तथा युग सन्धान ऐसे इन छः प्रकार के युग नाम वालों को मैं तत्वपूर्वक अच्छी तरह बतलाऊँगा ॥३॥४॥ लौकिक प्रमाण से विबुद्ध अब्द तो मानुष होता है। उस अब्द से प्रसंख्या करके चतुर्युग को यहाँ बतलाया जावेगा ॥५॥ निमेष काल-काष्ठा-कला और मुहूर्त्तक होते हैं। निमेष काल के समान ही जो लघ्वक्षर होता है उसे जानना चाहिए ॥६॥ पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा है और तीस काष्ठा की एक कला गिननी चाहिए। तीस कला का मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्त की रात्रि और दिन होते हैं ॥७॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके।
तत्राहः कर्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्प्यते ॥८
पित्र्ये राज्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः।
कृष्ण पक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥९
त्रिशच्च मानुषा मासाः पित्र्यो मासश्च स स्मृतः।
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥१०
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत्।
पितॄणां त्रीणि वर्षाणि सङ्ख्यातानीह तानि वै।
चत्वारश्चाधिका मासाः पित्रे चैवेह कीर्त्तिताः ॥११
लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः।
एतद्दिव्यमहोरात्रं शास्त्रेऽस्मिन् निश्चयो मतः ॥१२
दिव्ये राज्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥१३
ये ते राज्यहनी दिव्ये प्रसङ्ख्याते तयोः पुनः।
त्रिंशद्यानि वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ॥१४

मानुष और दैविक अहोरात्र का सूर्य ही विभाग किया करता है। उस मे दिन तो कर्मों की चेष्टा के लिये और रात्रि स्वप्न के लिये कल्पित की जाती है ॥८॥ पितृ और रात्रि और दिन तथा मास उनका पुन. विभाग होता है। उनका दिन कृष्ण पक्ष होता है और मास का शुक्ल पक्ष रात्रि होती है जो शयन के लिये ही है ॥९॥ मानुषका तीस मास और पित्र्य अर्थात् पितरो का वह एक मास कहा गया है। तीन सौ साठ मासो का पितरो का सम्वत्सर यह मानुष से विभावित किया जाता है ॥१०॥ मानुष मान से ही वर्षों का जो संकलन होना है वे पितरो के यहाँ पर तीन वर्ष संख्यात होने हैं। यहाँ पर चार अधिक मास पितृ के लिये ही कहे गये हैं ॥११॥ लौकिक मान से ही जो मानुष अब्द कहा गया है यह दिव्य अहो रात्र होता है। यह इस शास्त्र मे निश्चय माना गया है ॥१२॥ दिव्य रात्रि और दिन और फिर उन दोनो का प्रविभाग कहते हैं। वहाँ उत्तरायण दिन होता है और दक्षिणायन रात्रि हुआ करती है ॥१३॥ जो ये रात्रि और दिन दिव्य प्रसंख्यात किये गए हैं उन दोनो के फिर तीस वे वर्ष दिव्य मास कहा गये हैं ॥१४॥

मानुष च शत विद्धि दिव्यमासास्त्रयस्तु ते।
दश चैव तथाहानि दिव्यो ह्येष विधि स्मृत ॥१५
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि च।
दिव्य सवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्त्तितः ॥१६
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणत।
त्रिशद्यानि तु वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सर ॥१७
नव यानि सहस्राणि वर्षाणा मानुषाणि तु।
अन्यानि नवतिश्चैव क्रौञ्चः सवत्सरः स्मृत ॥१८
षट्त्रिशत्तु सहस्राणि वर्षाणा मानुषाणि तु।
वर्षाणान्तु शत ज्ञेय दिव्यो ह्येष विधि स्मृत ॥१९
त्रीण्येव नियुतान्येव वर्षाणा मानुषाणि च।
षष्टिश्चैव सहस्राणि सङ्ख्यातानि तु सङ्ख्यया।
दिव्यवर्षसहस्रन्तु प्राहु सङ्ख्याविदो जनाः ॥२०

इत्येवमृषिभिर्गीतं दिव्या सङ्ख्ययान्वितम् ।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्याप्रकल्पनम् ॥२१

मानुष वर्ष तो सौ होते हैं किन्तु वे सौ वर्ष तीन दिव्यमास हुआ करते हैं और दश दिन यह दिव्य विधि कही गई है ॥१५॥ तीन सौ साठ वर्ष जो होते हैं यह दिव्य सम्वत्सर मानुष के द्वारा कीर्तित किया गया है ॥१६॥ मानुष प्रमाण से तीन सहस्र वर्ष और तीस जो वर्ष होते हैं वह सप्तर्षियों का वत्सर माना गया है ॥१७॥ मानुष के नौ सहस्र जो वर्ष होते हैं और नब्बे होते हैं वह क्रौंच सम्वत्सर कहा गया है ॥१८॥ मानुष छत्तीस हजार वर्षों का दिव्य वर्षों का एक सैंकड़ा होता है यह विधि कही गई है ॥१९॥ मानुष के तीन नियुत वर्ष तथा साठ हजार वर्ष जो संख्या के संख्यात होते हैं उनको संख्या के ज्ञाता लोग दिव्य सहस्र वर्ष कहते हैं ॥२०॥ इसी प्रकार से दिव्य संख्या से अन्वित ऋषियों के द्वारा भी गया गया है । दिव्य प्रमाण से ही युग संख्या का प्रकल्पन होता है ॥२१॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः ।
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ।
द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतानि कल्पयेत् ॥२२
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ।
तत्र तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥२३
इत रासु च सन्ध्यासु सन्ध्यांशेषु च वै त्रिषु ।
एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥२४
त्रेता त्रीणि सहस्राणि सङ्ख्यैव परिकीर्त्यते ।
तस्यास्तु त्रिशती सन्ध्यांशश्च तथाविधिः ॥२५
द्वापरं द्वे सहस्रे तु युगमाहुर्मनीषिणः ।
तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥२६
कलिं वर्षसहस्रन्तु युगमाहुर्मनीषिणः ।
तस्याप्येकशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥२७

एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या परिकीर्तिता ।
कृत त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैव चतुष्टयम् ॥२८

भारतवर्ष में कविगण चार युग बतलाते हैं। पहिले कृतयुग अर्थात् सतयुग होता है इसके पश्चात् त्रेता का विधान किया जाता है। फिर द्वापर और कलियुग से युग कल्पित किये जाने चाहिए ॥२२॥ चार सहस्र वर्षों का कृतयुग होता है किन्तु यहाँ वर्ष दिव्य ही माने गये हैं। वहाँ पर उतनी ही शती सन्ध्या की होती है और सन्ध्यांश भी उसी प्रकार का हुआ करता है॥२३॥ इतर सन्ध्याओं में तथा तीन सन्ध्यांशों में एकापाय से सहस्र और शत होते हैं। ॥२४॥ त्रेता की संख्या तीन सहस्र संख्यात कर परिकीर्तित की जाती है। उसकी त्रिशती सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश भी हुआ करता है ॥२५॥ मनीषी लोग द्वापर को दो सहस्र वर्षों का युग कहते हैं। उसकी द्विशती सन्ध्या तथा सन्ध्यांश के बराबर ही सन्ध्यांश होता है ॥२६॥ कलियुग को एक सहस्र वाला मनीषी गण कहा करते है। उसकी भी सहस्र के हिसाब से एकशत वाली सन्ध्या होती है और सन्ध्या के तुल्य ही सन्ध्यांश होता है॥२७॥ यह बारह सहस्र की युगाख्या कही गई है इसमें कृत त्रेता द्वापर और कलियुग ये चार युग होते हैं ॥२८॥

अत्र संवत्सरा सृष्टा मानुषेण प्रमाणत ।
कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणां तत्प्रमाणत ॥२९
सहस्राणां शतान्यत्र चतुर्दश तु संख्यया ।
चत्वारिंशत् सहस्राणि कालिकालयुगस्य तु ॥३०
एवं संख्यातकालश्च कालेष्विह विशेषत ।
एवं चतुर्युगं कालो विना सन्ध्यांशकं स्मृत ॥३१
चत्वारिंशत्त्राणि चैव नियुतानि च संख्यया ।
विंशतिश्च सहस्राणि ससन्ध्यांशश्चतुर्युग ॥३२
एवं चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः ।
कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥३३

मन्वन्तरस्य संख्यातुवर्षाग्रेण निबोधत ।
त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण प्रकीर्तिताः ॥३४
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु ।
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकां विना ॥३५

यहाँ पर मानुष के द्वारा प्रमाण से संवत्सरों का सृजन किया गया है। तत्र तक कृत युग के वर्षों को उस प्रमाण से बतलाया जाता है ॥२६॥ सौ हजार चौदह संख्या से चालीस सहस्र कलि के युग का काल होता है ॥३०॥ यहाँ कालों में विशेष रूप से इस प्रकार का संख्यात काल है। इस तरह बिना सन्ध्यांश के चारों युगों का काल कहा गया है ॥३१॥ संख्या से तेतालीस नियुत बीस सहस्र चारों युगों का सन्ध्यांश होता है ॥३२॥ इस प्रकार से चारों युगों की नाम वाली इकहत्तर साधिका हैं। कृत और त्रेता आदि से युक्त वह मनु का अन्तर कहा जाता है ॥३३॥ मन्वन्तर की संख्या वर्षाग्र से जाननी चाहिए। मानुष के द्वारा तीस करोड़ वर्ष कहे गये हैं ॥३४॥ सड़सठ नियुत अन्य अधिक और बीस सहस्र का यह काल साधिका के बिना होता है ॥३५॥

मन्वन्तरस्य संख्यैषा संख्याविद्भिर्द्विजैः स्मृता ।
मन्वन्तरस्य कालोऽयं युगैः सार्द्धं प्रकीर्तितः ॥३६
चतुः सहस्रयुक्तं वै प्रथमन्तत् कृतं युगम् ।
त्रेतावशिष्टं वक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ॥३७
युगपत्समवेतार्थो द्विधा वक्तुं न शक्यते ।
क्रमागतं मया ह्येतत्तुभ्यं प्रोक्तं युगद्वयम् ।
ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथैव च ॥३८
तत्र त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ते ।
श्रौतं स्मार्त्तञ्च धर्मञ्च ब्रह्मणा च प्रचोदितम् ॥३९
दाराग्निहोत्रसंयोगमृग्यजुः सामसंज्ञितम् ।
इत्यादिलक्षणं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥४०
परम्परागतं धर्मं स्मार्त्तंश्चाचारलक्षणम् ।

वर्णाश्रमाचारयुत मनु स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥४१
सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा च वै।
तेषा सुतप्तपसामार्षेयेण क्रमेण तु ॥४२

सन्ध्या के विद्वान् ब्राह्मणों ने मन्वन्तर की यह सन्ध्या बतलाई है। मन्वन्तर का यह काल युगों के साथ प्रकीर्तित किया गया है ॥३६॥ चार सहस्र से युक्त प्रथम वह कृत युग है। त्रेता द्वापर कलि जो अवशिष्ट है उसे बतलाया जायेगा ॥३७॥ एक साथ सपवेग अब दो प्रकार से कहा नहीं जा सकता है। क्रम से आया हुआ यह मैंने तुम से दो युग कह दिये हैं। ऋषियों के प्रसङ्ग से व्याकुल होने से उसी प्रकार से कहे हैं ॥३८॥ वहाँ पर त्रेता युग के आदि में मनु और वे सप्तर्षि थे। श्रौत और स्मार्त धर्म था जो कि ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित किया गया था ॥३९॥ दारादिहोम सत्यो ऋग यजु और साम संज्ञा से युक्त-इत्यादि लक्षण वाले श्रौत धर्म को सप्तर्षियों ने कहा था ॥ ४० ॥ परम्परा से आया हुआ आचार के लक्षण से युक्त तथा वर्णों और आश्रमों के आचार वाले स्मार्त धर्म को स्वायम्भुव मनु ने कहा था ॥४१॥ सत्य ब्रह्मचर्य-श्रुति और तप से भलीभाँति तप करने वाले उनके आर्षेय क्रम से कहा गया है ॥४२॥

सप्तर्षीणा मनोश्चैव आद्ये त्रेतायुगस्य तु।
अबुद्धिपूर्वक तेषाम् क्रियापूर्व मेव च ॥४३
अभिव्यक्तास्तु ते मन्त्रास्तारकाद्यैर्निदर्शनैः।
आदिकल्प तु देवाना प्रादुर्भूतास्तु ते स्वयम् ॥४४
प्रणाशे त्वथ सिद्धिनामभ्यासाच्च प्रवर्तनम्।
आसन् मन्त्रा व्यतीतेषु ये कल्पेषु सहस्रश ।
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषा प्रतिभाससमुत्थिता ॥ ४५
ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्राश्चाथर्वणानि च।
सप्तर्षिभिस्तु ते प्रोक्ता स्मार्त धर्म मनुर्जगौ ॥४६
त्रेतादौ सहिता वेदा केवला धर्मसेतव ।

संरोधादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरेषु ते ।।४७
ऋषयस्तपसा देवाः कलौ च द्वापरेषु वै ।
अनादिनिधना दिव्याः पूर्व सृष्टाः स्वयम्भुवा ।। ४८
सधर्माः सप्रजाः साङ्गा यथाधर्मं युगे युगे ।
विक्रीडन्ते समानार्था वेदवादा यथायुगम् ।। ४९
आरम्भयज्ञा क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशाम्पतेः ।
परिचार यज्ञाशूद्रास्तु जपयज्ञा द्विजोत्तमाः ।। ५०

त्रेता युग आद्य में सप्तर्षियों के और मनु के उनके अबुद्धि पूर्वक तथा अक्रिया पूर्वक ही कहा गया है ।।४३।। तारकाद्य निदर्शनों से वे मन्त्र अभिव्यक्त हुए हैं. देवों के आदि कल्प मे तो वे स्वयं ही प्रादुर्भूत हुए थे ।।४४।। इसके अनन्तर सिद्धियों के प्रणाश होने पर और इनका प्रवर्त्तन हुआ। व्यतीत कल्पों में जो सहस्रों मन्त्र थे वे मन्त्र पुनः उनके प्रतिमास से समुत्थित हुए हैं। ।।४५।। ऋग्-यजु साम और अथर्व के मन्त्रों को सप्तर्षियों ने कहा था और स्मार्त धर्म को मनु ने कहा था ।।४६।। त्रेता के आदि में केवल वेद संहिता थी धर्मक्षेप से ओर आयु के संरोध से वे द्वापर में व्यस्तमान होते हैं ।।४७।। कलियुग में और द्वापर में तप से ऋषिगण देव अनादि निधन अर्थात् आदि और निधान (मृत्यु) न होने वाले एवं दिव्य पहिले स्वयम्भू ने सृष्ट किये थे ।।४८।। धर्म के सहित प्रजा के सहित और सङ्गों के सहित युग युग में धर्म के अनुसार यथायुग वेद वाद समान अर्थ वाले विशेष क्रीड़ा किया करते हैं ।।४९। आरम्भयज्ञ क्षत्रिय-हविर्यज्ञ वाले वैश्य-परिचार के यज्ञ वाले शूद्र और जप के ही यज्ञ वाले ब्राह्मण थे ।।५०।।

तथा प्रामुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्मपालिताः ।
क्रियावन्तः प्रजावन्तः समृद्धाः सुखिनस्तथा ।।५१
ब्राह्मणाननुवर्त्तन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियान् विशः ।
वैश्यान् वर्तिनः शूद्राः परस्परमनुव्रताः ।।५२
शुभाः प्रवृत्तयस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमास्तथा ।
सङ्कल्पित तेन मनसा वाचोक्तेन स्वकर्मणा ।

त्रेतायुगे त्वविकलः कर्म्मारम्भः प्रसिद्धयति ॥५३
आयुर्मेधा बलं रूपमारोग्यं धर्मशीलता ।
सर्वसाधारणा ह्येते त्रेतायां वै भवन्त्युत ॥५४
वर्णाश्रमव्यवस्थानं तेषां ब्रह्मा तथाकरोत् ।
पुनः प्रजास्तु ता मोहात्तान् धर्मान् ह्यपालयन् ॥५५
परस्परविरोधेन मनुन्ता पुनरन्वयुः ।
मनुः स्वायम्भुवो दृष्ट्वा याथातथ्यं प्रजापतिः ॥५६
धाता तु शतरूपायां पुमांन् स उदपादयत् ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रथमन्तौ महीपती ॥५७

त्रेता युग में सभी वर्ण बहुत ही इस तरह प्रमुदित थे और धर्म से पालित थे। सभी क्रिया वाले प्रजा से युक्त, समृद्ध और सुखी थे ॥५१॥ क्षत्रिय लोग सबदा ब्राह्मणों का अनुवर्त्तन किया करते थे और वैश्य लोग सदा क्षत्रियों का अनुवर्तन करते थे तथा शूद्र परस्पर में एक दूसरे का अनुवर्त्तन करते थे ॥५२॥ उनकी जितनी और जो भी प्रवृत्तियाँ थी उनके धर्म वर्ण और आश्रम सभी शुभ थे और सङ्कुलित मन से तथा वाचोक्त कर्म से त्रेतायुग में अविकल कर्मों का आरम्भ प्रसिद्ध होता है। ॥५३॥ आयु मेधा बल रूप आरोग्य धर्म शीलता ये गुण त्रेता में सब साधारण थे अर्थात् सामान्य रूप से ही सब में रहा करते थे ॥५४॥ ब्रह्मा जी ने उनकी वर्ण और आश्रम की ऐसी व्यवस्था करदी थी तो भी फिर इस प्रजा ने उन धर्मों को मोह से पूर्ण तथा ॥५५॥ परस्पर में विरोध से वे फिर मनु को अन्वित हुई। प्रजापति स्वायम्भुव मनु ने उनके याथातथ्य का देखा था ॥५६॥ धाता ने शतरूपा से वह पुमान् उत्पन्न कराया था। प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दो प्रथम महीपति थे ॥५७॥

ततः प्रभृति राजानः उत्पन्ना दण्डधारिणः ।
प्रजानां रञ्जनाच्चैव राजानस्त्वभवन्नृपाः ॥५८
प्रच्छन्नपापा ये जेतुमशक्या मनुजा भुवि ।
धर्मसंस्थापनार्थाय तेषां शास्त्रे तपो मया ॥५९

वर्णानां प्रविभागाश्च त्रेतायां संप्रकीर्तिताः ।
संहिताश्च ततो मन्त्रा ऋषिभिर्ब्राह्मणैस्तु ते ॥६०
यज्ञः प्रवर्तितश्चैव तदा ह्येवन्तु दैवतैः ।
यामैः शुक्लैर्जपैश्चैव सर्वसम्भारसंवृतैः ॥६१
सार्द्धं विश्वभुजा चैव देवेन्द्रेण महौजसा ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे देवैर्यज्ञास्ते प्राक् प्रवर्तिताः ॥६२
सत्यं जपस्तपो दानं त्रेतायां धर्म उच्यते ।
क्रियाधर्मश्च ह्रसते सत्यधर्मः प्रवर्त्तते ॥६३
प्रजायन्ते ततः शूराः आयुष्मन्तो महाबलाः ।
न्यस्तदण्डमहाभागा यज्वानो ब्रह्मवादिनः ॥६४
पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथूरस्काः सुसंहिताः ।
सिंहान्तका महासत्त्वा मत्तमातङ्गगामिनः ॥६५
महाधनुर्द्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्तिनः ।
सर्वलक्षणसम्पन्नान्यग्रोधपरिमण्डलाः ॥६६

तब से लेकार दण्डधारी राजा लोग उत्पन्न हुए थे प्रजाओं के रञ्जन करने के कारण से ही नृप राजा हुए थे अर्थात् (राजा)-इस शब्द से नृपों को कहा जाने लगा था ॥५८॥ जो भूतमण्डल में प्रच्छन्न पाप वाले मनुष्य थे । उन के धर्म की संस्थापना करने के लिये शास्त्र में मैंने तप किया था ॥५९॥ त्रेता में वर्णो का प्रविभाग किया हुआ कीर्त्तित है । ऋषियों के तथा ब्राह्मणों के द्वारा वे संहिता और मन्त्र बतलाते हैं ॥६०॥ उस समय में यज्ञ इस प्रकार के सम्भार से संवृत याम शुक्ल और जपों के द्वारा तथा दैवतों से यज्ञ की प्रवर्त्तितता हुई ॥६१॥ विश्वभुज के और महान् ओज वाले देवेन्द्र के साथ स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवों ने वे यज्ञ पहिले प्रवर्तित किये थे ॥६२॥ त्रेता युग में सत्य-जप-तप-दान-धर्म कहा जाता था । क्रिया धर्म का ह्रास होता है और सत्य धर्म प्रवृत्त होता है । ६३॥ इसके अनन्तर आयुष्मान्-महाबल से युक्त शूर उत्पन्न होते हैं । न्यस्त दण्ड वाले महाभाग ब्रह्मवादी यज्वान-पद्मपत्र के समान नेत्रों वाले-पृथु वक्षः स्थल से युक्त-सुसंहित-सिंहान्तक महान् सत्व

वाले मत्त मातङ्ग पर चढ़कर गमन करने वाले महान् धनुर्धारी ऐसे विशेष गुणों से भूषित समस्त शुभ एवं सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न एवं न्यग्रोध परिमण्डल वाले त्रेता युग मे चक्रवर्ती राजा थे ॥६४॥६५॥६६॥

न्यग्रोधौ तौ स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते।
व्यामेनैवोच्छ्रयो यस्य सम ऊर्द्ध्वन्तु देहिनः।
समुच्छ्रय परीणाहो ज्ञेयो न्यग्रोधमण्डलः ॥६७
चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वा गजास्तथा।
सप्तातिशयरत्नानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ॥६८
चक्रं रथो मणि खड्गं धनू रत्नञ्च पञ्चमम्।
केतुं निधिश्च सप्तैते प्राणहीना प्रकीर्तिताः ॥६९
भार्या पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्च य।
मन्त्र्यश्व: कलभश्चैव प्राणिनः सम्प्रकीर्तिताः ॥७०
रत्नान्येतानि दिव्यानि स सिद्धानि महात्मनाम्।
चतुर्दश विशेषानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ॥७१
विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेषु वै ॥७२
भूतभव्यानि यानीह वर्त्तमानानि यानि च।
त्रेतायुगादिके त्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिनः ॥७३

वे दोनों न्यग्रोध बाहु कहे गये हैं और जो व्याम है वह न्यग्रोध कहा जाता है। जिस देहधारीका नाम से ही उच्छ्रय से ऊर्द्ध्व सम है। समुच्छ्रय परीणाह न्यग्रोध मण्डल जानने के योग्य होता है ॥६७। चक्र रथ-मणि खड्ग धनु यह पाँचवा रत्न था। केतु और निधिये सात रत्न प्राणों से हीन कहे गये हैं ॥६८॥६९॥ भार्या-पुरोहित सेनानी और रथकृत्-मन्त्री अश्व कलभ ये सात प्राण वाले अर्थात् प्राणधारी रत्न कहे गये हैं जोकि सर्वातिशय रत्न चक्रवर्तियों के होते थे ॥७०॥ ये दिव्य रत्न महान् आत्मा वालों के स सिद्ध होते थे। और समस्त चक्रवर्त्तियों के ये चौदह वेशेष थे ॥७१॥ समस्त मन्वन्तरों मे जो अतीत हैं तथा अनागत है पृथिवी मे चक्रवर्त्ती विष्णु भगवान् के अंश से ही उत्पन्न

हुआ करते हैं ॥ ७२ ॥ भूत-भव्य और जो वर्त्तमान हैं यहाँ त्रेता युगादि में चक्रवर्त्ती उत्पन्न होते हैं ।७३॥

भद्राणीमानि तेषां वै भवन्तीह महीक्षिताम् ।
अद्भुतानि च चत्वारि बलं धर्मः सुखं धनम् ॥७४
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते वै नृपैः समम् ।
अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च ॥७५
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्त्या तथैव च ।
अन्येन तपसा चैव ऋषीनभिभवन्ति च ।
बलेन तपसा चैव देवदानवमानुषान् ॥७६
लक्षणैश्चापि जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः ।
केशस्थिता ललाटोर्णा जिह्वा चास्यप्रमार्जनी ।
ताम्रप्रभोष्ठदन्तोष्ठाः श्रीवत्साश्चोर्द्ध्वरोमशाः ॥७७
आजानुबाहवश्चैव जालहस्ता वृषाङ्किताः ।
न्यग्रोधपरिणाहाश्च सिंहस्कन्धाः सुमेहनाः ।
गजेन्द्रगतयश्चैव महाहनव एव च ॥७८
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मौ तु हस्तयोः ।
पञ्चाशीतिसहस्राणि ते भवन्त्यजरा नृपाः ॥७९
असङ्गा गतयस्तेषां च चतस्रश्चक्रवर्त्तिनाम् ।
अन्तरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्वतेषु च ॥८०

यहाँ उन राजाओं के ये परम भद्र और अत्यन्त अद्भुत चार बल-धर्म-सुख और धन होते हैं ॥७४॥ नृपों के द्वारा अन्योन्य के अविरोध से समान रूप में प्राप्त किये जाते हैं वे अर्थ-धर्म-काम-यश और विजय हैं ॥७५॥ वे अणिमादि ऐश्वर्य से तथा प्रभुशक्ति से और अन्य तप से ऋषियों का भी अभिभव किया करते हैं। बल और तप से समस्त देव दानव और मानवों को अभिभूत किया करते हैं ॥७६॥ शरीर में रहने वाले जो लक्षण होते हैं, उनसे भी युक्त वे उत्पन्न होते हैं। ये लक्षण भी ऐसे हैं जोकि अमानुषी हैं अर्थात् मनुष्यों में

नहीं होने वाले होते हैं। पैरों पर स्थित ऊर्ण ललाट वाले और इसकी प्रमा-र्जन करने वाली जिह्वा थी। ताम्र के समान प्रभा वाले ओष्ठ एवं दन्तोष्ठ वाले श्रीवत्स तथा उद्‌र्ध्व रोमश थे ।।७७।। आनुपूर्व्य बाहुओं वाले जाल हस्त तथा वृषाङ्कित-न्यग्रोध के समान परिणाह से युक्त सिंह के सदृश स्कन्ध वाले और सुमेहन थे। गजेन्द्र के समान गति वाले तथा महद् हनु (ठोढ़ी) वाले थे ।।७८।। जिनके पैरों में चक्र एवं मत्स्य के चिन्ह थे तथा हाथों में शङ्ख और पद्म के चिन्ह थे ऐसे पिच्चासी सहस्र वे अजर अर्थात् वृद्धता से रहित नृप थे। ।।७९।। उन चक्रवर्त्तियों की चारों गतियाँ असङ्ग थी ? अन्तरिक्ष में समुद्र में पाताल में और पर्वतों में सर्वत्र उनकी गति थी।।८०।।

इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्म उच्यते ।
तदा प्रवर्त्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः । ८१
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्त्तते ।
हृष्टपुष्टाः प्रजाः सर्वा ह्यरोगाः पूर्णमानसाः ।।८२
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः ।।८३
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण तु ।
एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासन्ध्यौ निबोधत ।।८४
त्रेतायुगस्वभावस्तु सन्ध्यापादेन वर्त्तते ।
सन्ध्यायां वै स्वभावस्तु युगपादेन तिष्ठति ।।८५
कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्त्तनम् ।
पूर्वं स्वायम्भुवे सर्गे यथावत्तद्‌ब्रवीहि मे ।।८६
अन्तर्हितायां सन्ध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन वै ।
कलाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा ।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृतवन्तास्त्र वै पुनः ।।८७

इज्या दान-तप और सत्य ये चारों बातें त्रेता युग में धर्म कही जाती हैं। उस समय में वर्ण और आश्रमों के प्रविभाग से धर्म प्रवृत्त होता था ।।८१।। मर्यादा की स्थापना करने के लिये ही दण्डनीति की प्रवृत्ति होती है। समस्त

प्रजाजन परम प्रसन्न एवं पुष्ट, रोगों से रहित और पूर्ण मानस वाले थे ।।८२।। त्रेतायुग की विधि में चतुष्पाद एक वेद कहा गया है। उस समय में मानव तीन सहस्र वर्षों तक जीवित रहा करते हैं ।।८३।। पुत्र और पौत्रों से पूर्ण जब वह समाकीर्ण हो जाते थे तब क्रम से मृत्युगत हुआ करते थे। इस प्रकार से त्रेतायुग का यह धर्म है। अब त्रेता की सन्धि में जो धर्म था उसे जानलो। त्रेता युग का स्वभाव सन्ध्या पाद से होता है और सन्ध्या में स्वभाव युगपाद से रहता है ।। ८४ ।। ८५ ।। श्री शांशपायन ने कहा त्रेतायुग के मुख में यज्ञ का प्रवर्त्तन कैसे होता था ? पहिले स्वायम्भुव सर्ग में जिस प्रकार से है वह मुझे बतलाइये ।।८६।। कृत युग के साथ सन्ध्या के अन्त हित हो जाने पर उस समय में त्रेता युग के प्राप्त होने पर कलाख्या अर्थात् काल नाम वाली के प्रवृत्त होने पर फिर वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था की थी ।।८७।।

सम्भारांस्तांश्च सम्भृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः ।
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत्सूतः श्रूयतां शांशपायन ।।८८
यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम् ।
ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ।
प्रतिष्ठितायां वार्तायां गृहाश्रमपुरेषु च ।।८९
वर्णाश्रम व्यवस्थानं कृत्वा मन्त्रांश्च संहिताम् ।
मन्त्रान् संयोजयित्वाथ इहामुत्रेषु कर्मसु ।।९०
तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्तदा ।
दैवतैः सहितः सर्वैः सर्वसम्भारसम्भृतम् ।।९१
अथाश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ।
यजन्ते पशुभिर्मेध्यैर्हुत्वा सर्वे समागताः ।।९२
कर्मव्यग्रेषु ऋत्विक्षु सततो यज्ञकर्मणि ।
सम्प्रगीतेषु तेष्वेवमागमेष्वथ सत्वरम् ।।९३
परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युवृषभेषु च ।
आलब्धेषु च मेध्येषु तथा पशुगणेषु वै ।।९४

हविष्यग्नौ हूयमाने देवाना देवहोतृभिः ।
आहूतेषु च देवेषु यज्ञभाक्षु महात्मसु ॥६५
य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभाजस्तथा तु ये ।
तान् यजन्ते तदा देवा. कल्पादिषु भवन्ति ये ॥६६

उन सम्भारों को सम्भृत करके यज्ञ किस प्रकार से प्रवृत्त हुआ था यह बतलाइये । यह सुनकर श्री सूतजी बोले हे शांशपायन ! अब तुम मुझ से श्रवण करो ॥८८॥ जिस प्रकार से त्रेता युग के मुख में यज्ञ की प्रवृत्ति थी । वृष्टि के सर्जन होने से ओषधियों के उत्पन्न होने पर गृह और आश्रम तथा पुरों में वार्ता के प्रतिष्ठित होने पर वर्ण और आश्रमों की पूर्ण व्यवस्था करके तथा मन्त्रों और संहिता का संस्थित बनाकर एवं यहाँ और परलोक के कर्मों में मन्त्रों का संयोजन करके तब विश्व का भोग करने वाले इन्द्र ने यज्ञ को प्रवृत्त कराया था जोकि समस्त देवों के साथ समस्त सम्भारों से सम्भृत था ॥८९॥९०॥९१॥ इसके अनन्तर अश्वमेध के वितत होने पर महर्षिगण समागत हुए थे । और सबने समागमन करके मेध्यजपमों तन्त्रों के द्वारा यजन किया था ॥९२॥ सतत होने वाले यज्ञो के कर्म-ऋत्विकों के कर्म करने में व्यस्त होने पर और सत्वर ही उन समस्त आगमों के सम्प्रणीत होने पर तथा सघु अध्वर्यु और वृषभों के परिक्रान्ति होने पर तथा मेध्यों के आलभन होजाने पर एवं अग्नि में हवियों के हूयमान हो जाने पर और देव होताओं के द्वारा देवों के आहूत किये जाने पर जोकि महान् आत्मा वाले देव यज्ञों के भाग को ग्रहण करने वाले थे, जो इन्द्रियात्मक देव यज्ञ के भाग लेने वाले थे उस समय जो कल्पादि में होते हैं उनका ही यजन किया करते हैं ॥९३॥९४॥ ॥९६॥

अध्वर्यवः प्रैषकाले व्युत्थिता ये महर्षयः ।
महर्षयस्तु तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणान् स्थितान् ।
पप्रच्छुरिन्द्र सम्भूय कोऽयं यज्ञविधिस्तव ॥९७
अधर्मो बलवानेष हिंसाधर्मेप्सया तव ।
नेष्टाः पशुवधस्त्वेष तव यज्ञे सुरोत्तम ॥९८

अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया ।
नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते ।।९९
आगमेन भवान् यज्ञं करोतु यदिहेच्छसि ।
विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणाव्यहेतुना ।
यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ येषु हिंसा न विद्यते ।।१००
त्रिवर्षपरमं कालमुषितैरप्ररोहिभिः ।
एष धर्मो महानिन्द्र स्वयम्भुविहितः पुरा: ।।१०१
एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
जङ्गमैः स्थावरैर्वेति कैर्यष्टव्यमिहोच्यते ।।१०२
ते तु खिन्ना विवादेन तत्त्वयुक्ता महर्षयः ।
सन्धाय वाक्यमिन्द्रेण प्रपच्छुश्चेश्वरं वसुम् ।।१०३
महाप्राज्ञ कथं दृष्टस्त्वया यज्ञविधिर्नृप :
उत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं छिन्धि नः प्रभो ।।१०४

प्रेष्ट काल में जो महर्षि अध्ययन् व्युत्स्थित हुए थे तो उस समय में उन दीन एवं स्थित पशुगणों को देख कर महर्षियों ने सम्भूत हो कर इन्द्र से पूछा था कि यह आपके यज्ञ की क्या विधि है ? ।।९७।। आपकी हिंसा धर्म की इच्छा से यह बड़ा जबर्दस्त अधर्म किया जाता है ! हे सुरोत्तम ! आपके यज्ञ में यह पशुओं का वध तो इष्ट नहीं है ।।९८।। आपने पशुओं के द्वारा धर्म का नाश करने के लिये यह अधर्म आरम्भ कर दिया है । यह तो धर्म नहीं हैं । यह तो अधर्म ही है । हिंसा कभी धर्म नहीं कहा जाया करता है आप यदि चाहते ही हैं तो आगम के द्वारा यज्ञ करियेगा । हे सुरश्रेष्ठ ! धर्म मव्यय का हेतु विधिदृष्ट यज्ञसे तथा यज्ञ-बीजों के द्वारा यजन होना चाहिए जिसमें हिंसा न हो वे ।।१००। हे इन्द्र ! तीन वर्ष तक परमकाल में अप्ररोहियों के द्वारा उषित रहने हुए यह धर्म महान् स्वयभू के द्वारा विहित है जोकि पहिले किया गया है ।।१०१।। इस प्रकार से विश्वभुक इन्द्र देव तत्त्व के द्रष्टा महर्षियों के द्वारा कहा जाता है कि स्थावरों से ही हमको यजन करना चाहिए ।।१०२।। वे तत्त्वों से युक्त महर्षिगण विवाद से बहुत ही खिन्न

हुए और इन्द्र के द्वारा वाक्य का सन्धान करके ईश्वर वसु से उन्होंने पूछा था ॥१०३॥ ऋषियों ने कहा—हे महा प्राज्ञ ! हे नृप ! आपने यह कैसी और क्या यज्ञ की विधि देखी है ? उत्तान पाद के विषय में बताइए हे प्रभो ! हमारे इस संशय का छेदन करिये ॥१०४॥

श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषामविचार्य बलाबलम् ।
वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ।
यथोपदिष्टं यष्टव्यमिति ह्येवाच पार्थिव । १०५
यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ बीजैः फलैस्तथा ।
हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शयत्यसौ ॥१०६
यथेह संहितामन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभिः ।
दीर्घेण तपसा युक्तैर्दर्शनैस्तारकादिभिः ।
तत्प्रामाण्यान्मया चोक्तं तस्मान्मा मन्तुमर्हथ ॥१०७
यदि प्रमाणं तान्येव मन्त्रवाक्यानि वै द्विजाः ।
तदा प्रावर्त्तता यज्ञो ह्यन्यथा नोऽनृतं वचः ।
एवं कृतोत्तरास्ते वै युक्तात्मानस्तपोधनाः ॥१०८
अधश्च भवनं दृष्ट्वा तमर्थं वाग्यतो भव ।
मिथ्यावादी नृपो यस्मात् प्रविवेश रसातलम् ॥१०९
इत्युक्तमात्रे नृपतिः प्रविवेश रसातलम् ।
ऊर्द्ध्वचारी वसुर्भूत्वा रसातलचरोऽभवत् ॥११०
वसुधातलवासी तु तेन वाक्येन सोऽभवत् ।
धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधोगतः ॥१११
तस्मान्न वाच्यमेकेन बहुज्ञेनापि संशयः ।
बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्माद्दूरमुपागतिः ॥११२
तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्मः शक्यस्तु केनचित् ।
देवानृषीनुपादाय स्वायम्भुवमृते मनुम् ॥११३
तस्मान्न हिंसाधर्मस्य द्वारमुक्तं महर्षिभिः ।
ऋषिकोटिसहस्राणि स्वैस्तपोभिर्दिवं ययुः ॥११४

इसके अनन्तर उनके वाक्य को सुनकर और बलाबल का विचार न कर के तथा वेद शास्त्र का अनुसरण करके यज्ञ के तत्व को बतलाया था। पार्थिव ने कहा जैसा भी उपदिष्ट है उसी से यजन करना चाहिए ॥१०५॥ मेध्य पशुओं द्वारा, बीजों के द्वारा और फलों के द्वारा यजन करना चाहिए। मुझे यह दिखलाई देता है कि यज्ञ का हिंसा स्वभाव होता है ॥१०६॥ यहाँ पर जैसा संहिता के मन्त्र हैं जिनका कि लिङ्ग ही हिंसा है दीर्घ तप से युक्त महर्षियों ने और तारिकादि दर्शनों ने कहा है। उसी के प्रामाण्य से मैंने कहा है इसलिए इस विषय में मुझे मत मानो। अर्थात् मुझे ही मानने के योग्य नहीं होते हैं ॥१०७॥ हे द्विज गणो! यदि वे ही मन्त्र वाक्य प्रमाण हैं तो यज्ञ को प्रवृत करो अन्यथा हमारा वचन असत्य है। इस प्रकार से युक्तात्मा वे तपो धन हृतोत्तर हो गये अर्थात् चुप हो गये थे ॥१०८॥ नीचे भवन को देखकर उसके लिये वग्यत अर्थात् मौन हो जाओ। जिससे मिथ्यावादी नृप ने रसातल में प्रवेश किया था ॥१०६॥ इतना केवल कहने पर राजा ने रसातल में प्रवेश किया था और ऊर्ध्वचारी बसु होकर रसातल में चरण करने वाला हो गया था ॥११०॥ उस वाक्य से वह वसुधा तल का वासी हो गया था। धर्मों के संशय का छेदन करने वाला राजा बसु इसके अनन्तर आगया ॥१११॥ इसलिये चाहें बहुत कुछ जानने वाला भी क्यों न हो कभी भी किसी एक को संशय का निराकरण नहीं बोलना चाहिए। बहुत उद्धार वाले धर्म की सूक्ष्मता से दूर उपागति होती है ॥११२॥ इस कारण से किसी के द्वारा निश्चय पूर्वक धर्म का विषय बोला नहीं जा सकता है। केवल देवों को और ऋषियों को लेकर स्वायम्भुव मनु ही हो धर्म को जानते हैं। इनको छोडकर अन्य कोई नहीं जान सकता है ॥११३॥ इसलिये महर्षियों ने हिंसा को धर्म का द्वार नही कहा है। सहस्त्रों करोड़ ऋषि अपने कर्म्मों से स्वर्ग को गये थे ॥११४॥

तस्मान्न दानं यज्ञं वा प्रशंसन्ति महर्षयः।
तुच्छं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः।
एवं दत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः ॥११५

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तप ।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोश क्षमा धृतिः।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद्दुरासदम् ॥११६
धर्ममन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्चानशनात्मकम् ।
यज्ञेन देवानाप्नोति वैराग्य तपसा पुन ॥११७
ब्राह्मण्य कर्मसन्यासाद्वैराग्यात् प्रेक्षते लयम् ।
ज्ञानात् प्राप्नोति कैवल्य पञ्चैता गतय स्मृता ॥११८
एव विवाद सुमहान यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तने ।
ऋषीणा देवतानाञ्च पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥११९
ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वा वाद्भुत वर्त्म बलेन तु ।
वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागता ॥१२०
गतेषु देवसङ्घेषु देवा यज्ञमथाप्नुयु ।
श्रूयन्ते हि तप सिद्धा ब्रह्मक्षत्रमया नृपा ॥१२१

इससे महर्षिगण दान अथवा यज्ञ की प्रशंसा नहीं किया करते हैं। तपोधन अर्थात् तपस्वी लोग तुच्छ मूल फल शाक और उदक का पात्र देकर इस प्रकार से विभव से स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होते हैं ॥११५॥ अद्रोह लोभ न करना दम-प्राणियो पर दया-तपस्या ब्रह्मचर्य सत्य अनुक्रोश क्षमा धृति यह सब सनातन धर्म को दुरासद (दुर्लभ) मूल होता है ॥११६॥ धर्म मन्त्रात्मक यज्ञ होता है। और अनशन स्वरूप वाला तप होता है। यज्ञ से देवों को प्राप्त किया करता है और फिर तप से वैराग्य का लाभ करता है ॥११७॥ कर्मों के सन्यास (त्याग) से ब्रह्मण्य को और वैराग्य से लय को प्रेक्षण किया करता है। ज्ञान से कैवल्य (अपवर्ग) को प्राप्त करता है ये पाँच ही गतियाँ कही गई हैं ॥११८॥ पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर मे इस प्रकार से देवताओं का और ऋषियों का यज्ञ के प्रवर्त्तन मे बहुत बड़ा विवाद हुआ था ॥११९॥ इसके अनन्तर ऋषिगण बल से अद्भुत मार्ग देख कर और वसु के वाक्य का अनादर करके जैसे आये थे वैसे ही वे चले गये थे ॥१२०॥ देवों के सङ्घ के चले जाने पर देवो ने यज्ञ को प्राप्ति की और तप से सिद्ध ब्रह्मक्षत्रमय नृप श्रूयमाण होते हैं ॥१२१॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः ।
सुमेधा विरजाश्चैव शङ्खपाद्रज एव च ।
प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्द्धानादयो नृपाः ॥१२२
एते चान्ये च बहवो नृपाः सिद्धा दिवं गता ।
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वेषु कारणैः ।
ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा ॥१२४
तस्मान्नात्येति तद्यज्ञं तपोमूलमिदं स्मृतम् ।
यज्ञप्रवर्त्तनं ह्येवमतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ततःप्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सह व्यवर्त्तत ॥१२५

प्रियव्रत-उत्तान वाद-ध्रुव-मेधातिथि-वसु-सुमेधा- विरजा-शंख वाद रज-प्रस्वीनबर्हि पर्जन्य और हविर्धानि आदि राज-ये नृप तथा अन्य बहुत से राजा सिद्ध थे और वे स्वर्ग को गये थे। ये राजपिगण महान् सत्त्व से युक्त थे जितनी कि कीर्त्ति प्रतिष्ठित है ॥१२३॥ इसलिये सबमें कारणों के द्वारा तप यज्ञ से विशिष्ट हुआ करता है। पहले श्री ब्रह्माजी ने तप से ही इस जगत् तथा विश्व को सृष्ट किया था ॥१२४॥ इसलिये वह यज्ञ अधिक नहीं होता है। यह तप के मूल वाला कहा गया है इस प्रकार से स्वयम्भुव मन्वन्तर में यज्ञ का प्रवर्त्तन हुआ था। तब से लेकर यह यज्ञ युगों के साथ विशेष रूप से हुआ था ॥१२५॥

॥ प्रकर्ण ४० —चारों युगों का आख्यान ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः ।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ॥१
द्वापरादौ प्रजानान्तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या ।
परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततः सा संप्रणश्यति ॥२
ततः प्रवर्त्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः ।
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ॥३
सम्भेदश्चैव वर्णानां कार्याणाञ्चा विनिर्णयः ।
यज्ञौषधेः पशौर्दण्डो मदो दम्भोऽक्षमा बलम् ।

एषा रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता ॥ ४ ॥
आद्ये कृते च धर्मोऽस्ति त्रेतायां सम्प्रपद्यते ।
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यन्ति कलौ युगे ॥ ५ ॥
वर्णानां विपरिध्वंसः संकीर्त्यते तथाश्रमः ।
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिन् श्रुतौ स्मृतौ ॥ ६ ॥
द्वैधात् श्रुतेः स्मृतेश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते ।
अनिश्चयाधिगमनाद्धर्मतत्त्वं निगद्यते ।
धर्मतत्त्वे तु भिन्नानां मतिभेदो भवेन्नृणाम् ॥ ८ ॥

श्री सूतजी ने कहा—इसके आगे पुनः द्वापर की विधि को कहूँगा। वहाँ पर त्रेतायुग के क्षीण हो जाने पर द्वापर युग प्रतिपन्न होता है ॥ १ ॥ प्रजा जनों को त्रेतायुग में जो सिद्धि थी वह द्वापर के आदि में युग के परिवृत्त हो जाने पर उस द्वापर में वह फिर प्रनष्ट हो जाती है ॥ २ ॥ द्वापर में फिर उन प्रजाओं के लोभ, अधृति, वणिग्युद्ध, तत्त्वों का अविनिश्चय, वर्णों का सम्भेद, कार्यों का अविनिर्णय, यज्ञोपधि पशु का दण्ड, मद, दम्भ, अक्षमा, बल से सब प्रवृत्त होते हैं और इनकी रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त द्वापर में प्रवृत्ति कही गई है ॥ ४ ॥ आद्य कृत युग में धर्म है त्रेता में वह सम्प्रपन्न होता है और द्वापर में व्याकुली भूत होकर कलियुग में प्रनष्ट हो जाया करता है ॥ ५ ॥ वर्णों का विशेष रूप से परिध्वंस संकीर्त्तित किया जाता है। उस युग में श्रुति स्मृति में आश्रम भी उसी प्रकार से द्वैध भाव को प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥ श्रुति के और स्मृति के द्वैध भाव से किसी भी निश्चय का अधिगम नहीं किया जाता है। अनिश्चय के अधिगमन से धर्म का तत्त्व कहा जाया करता है। धर्म के तत्त्व में भिन्न मनुष्यों का मतभेद हो जाता है ॥ ७ ॥

परस्परविभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण च ।
अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाभिगम्यते ॥ ८ ॥
कारणानाञ्च वैकल्यात् कारणस्याप्यनिश्चयात् ।
मतिभेदे च तेषां वै दृष्टीनां विभ्रमो भवेत् ॥ ९ ॥

ततो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते ॥ १० ॥
सरोधादायुषश्चैव दृश्यते द्वापरेषु च ।
वेदव्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ॥ ११ ॥
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ॥ १२ ॥
संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः ।
सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित्क्वचित् ॥ १३ ॥
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च ।
अन्ये तु प्रहितास्तीर्थैः केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः ॥ १४ ॥

परस्पर में विभिन्न उन मनुष्यों के द्वारा और दृष्टियों के विभ्रम के होने से—'यह धर्म है और यह धर्म नहीं है' यह निश्चय नहीं किया जाता है कि वस्तुतः धर्म क्या है ॥ ८ ॥ कारणों के वैकल्प होने से और कारण का भी निश्चय नहीं होने से और उन के मतिभेद होने से दृष्टियों का विभ्रम हो जाया करता है ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् दृष्टि से विभिन्न उनके द्वारा यह शास्त्र कुल किया गया है । इस त्रेता में यहाँ एक वेद चार पादों वाला विधान किया जाता है ॥ १० ॥ हृदयों में आपके संरोध से दिखलाई देता है । द्वापरादि में वेद व्यास के द्वारा चार प्रकार से व्यस्यमान किया जाता है ॥ ११ ॥ ऋषियों के पुत्रों के द्वारा दृष्टि के विभ्रमों से वेदों के पुनः भेद किये जाया करते हैं मन्त्र और ब्राह्मण भाग के विन्यासों के द्वारा तथा स्वर वर्ण के विपर्ययों के द्वारा भेद किये जाते हैं ॥ १२ ॥ ऋग्-यजु और साम वेदों की संहिता कहीं-कहीं पर दृष्टि से भिन्न श्रुतर्षियों के द्वारा सामान्य तथा वैकृत रूप से संहन्यमान होती हैं ॥ १३ ॥ ब्राह्मण, कल्पसूत्र और मन्त्र प्रवचन अन्य तीर्थों के द्वारा प्रहित हैं । कुछ लोग उनके प्रति अवस्थित हैं ॥ १४ ॥

द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते भिन्नवृत्ताश्रमा द्विजाः ।
एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद्द्वैधं पुनस्ततः ॥ १५ ॥
सामान्यविपरीतार्थैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
आध्वर्यवस्य प्रस्तावैर्बहुधा व्याकुलं कृतम् ॥ १६ ॥

तथैवाथर्वऋक्सामनां विकल्पैश्चाप्यसक्षयं ।
व्याकुल द्वापरे भिन्ने क्रियते भिन्नदर्शनै. ॥ १७ ॥
तेषा भेदाः प्रभेदाश्च विकल्पैश्चाप्यसक्षयाः ।
द्वापरे सम्प्रवर्तन्ते विनश्यन्ति पुन. कलौ ॥ १८ ॥
तेषा विपर्ययाश्चैव भवन्ति द्वापरे पुनः ।
अवृष्टिर्मरणञ्चैव तथैव व्याद्युपद्रवा. ॥ १९ ॥
वाङ् मनः , कर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते पुन. ।
निर्वेदाज्जायते तेषा दुःखमोक्ष विचारणा ॥ २० ॥
विचारणाच्च वैराग्य वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।

दोषाणा दर्शनञ्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः ॥ २१ ॥

द्वापर मे भिन्न वृत्त और आश्रमों वाले द्विज प्रवर्तित होते हैं । एक पहिले आध्वर्यव था वह फिर द्वैध हो गया ॥ १५ ॥ सामान्य और विपरीत अर्थों से यह शास्त्र कुल किया गया है । आध्वर्यव के प्रस्तावो से बहुधा व्याकुल कर दिया है ॥ १६ ॥ उसी प्रकार मे अथर्व ऋक् और सामो के असक्षय विकल्पो मे भी भिन्न द्वापर में भिन्न दर्शनों से व्याकुल किया जाता है ॥ १७ ॥ उनके भेद और प्रभेद और विकल्पो से भी असक्षय द्वापर मे सम्प्रवृत्त होते हैं और फिर कलियुग मे विनष्ट हो जाया करते हैं ॥ १८ ॥ द्वापर मे फिर उन के विपर्यय भी होते है । अवृष्टि मृत्यु और इसी प्रकार से व्याधियो के उपद्रव होते हैं ॥ १९ ॥ वाणी मन और कर्म से उत्पन्न दुःखो से फिर निर्वेद (वैराग्य) हो जाता है । निर्वेद हो जाने से उनको दुःख मे छुटकारा पाने की विचारणा होती है ॥ २० ॥ विचारणा से वैराग्य होता है और वैराग्य से सासारिक वस्तुओ मे दोषों का दर्शन होने लगता है और दोषो के देखने से द्वापर मे ज्ञान की उत्पत्ति होती है ॥ २१ ॥

तेषाञ्च मानिना पूर्वमाद्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
उत्पद्यन्ते हि शास्त्राणा द्वापरे परिपन्थिन. ॥ २२ ॥

आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानां ज्योतिषस्य च ।
अर्थशास्त्रविकल्पश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥ २३ ॥
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्च प्रस्थानानि पृथक् पृथक् ।
द्वापरेष्वभिवर्त्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ॥ २४ ॥
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्रा द्वार्त्ता प्रसिद्धयति ।
द्वापरे सर्वभूतानां कायक्लेशपुरस्कृता ॥ २५ ॥
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ।
वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां संकर स्तथा ॥ २६ ॥
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते रोगो लोभो वधस्तथा ।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च ॥ २७ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तथा नृणाम् ।
निःशेषे द्वापरे तस्मिन् तस्य सन्ध्या तु पादतः ॥ २८ ॥

पहले आद्य स्वायम्भुव मन्वन्तर में उन मानी शास्त्रों के द्वापर में परिपन्थी उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥ अङ्गों के और ज्योतिष के आयुर्वेद विकल्प हैं। अर्थशास्त्र विकल्प और हेतुशास्त्र विकल्प हैं ॥ २३ ॥ स्मृतिशास्त्र के प्रभेद पृथक् पृथक् प्रस्थान हैं। द्वापर में उस प्रकार से मनुष्यों के मतिभेद अभिवर्तित होते हैं ॥ २४ ॥ मन से, वाणी से, कर्म से, कष्ट से वार्त्ता प्रसिद्ध होती है। द्वापर में समस्त प्राणियों की वार्ता कायक्लेश से पुरस्कृता होती है ॥ २५ ॥ लोभ, अधैर्य, वणिग्युद्ध, तत्त्वों का निश्चय न होना, वेद शास्त्रों का प्रणयन और धर्मों का सङ्कट, रोग, लोभ, वध, वर्णों और आश्रमों का परिध्वंस, काम और द्वेष ये सब द्वापर में प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ मनुष्यों की परमायु पूर्ण दो सहस्र वर्ष होती है। उस द्वापर के नि.शेष होने पर उसकी सन्ध्या एक पाद से होती है ॥ २८ ॥

प्रतिष्ठते गुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु ।
तथैव सन्ध्यापादेन अंशस्तस्यावतिष्ठते ॥ २९ ॥
द्वापरस्य च वर्षे या तिष्यस्य तु निबोधत ।
द्वापरस्यांशशेषेतु प्रतिपत्तिः कलेरतः ॥ ३० ॥

हिंसामूयानृत माया वधश्चैव तपस्विनाम् ।
एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयन्ति च वै प्रजाः ॥ ३१ ॥
एष धर्म कृत कृत्स्नो धमश्च परिहीयते ।
मनसा कर्मणा स्तुत्या वार्ता सिद्धयति वा न वा ॥ ३२ ॥
कलौ प्रमारको रोग सतत क्षुद्भयानि वै ।
अनावृष्टिभय घोरं देशानाञ्च विपर्ययम् ॥ ३३ ॥
न प्रमाण स्मृतेरस्ति तिष्ये लोके युगे युगे ।
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थथापरः ।
स्थाविरे मध्यकौमारे म्रियन्ते च कलौ प्रजा ॥ ३४ ॥
अधार्मिकास्त्वनाचारास्तीक्ष्ण कोपाल्पतेजस ।
अनृतब्रुवश्च सतत तिष्ये जायन्ति वै प्रजा ॥ ३५ ॥

द्वापर का वह धर्म गुणो स हीन प्रतिष्ठित होता है। उसी प्रकार से सन्ध्यापाद से उसका अंग अवस्थित होता है ॥ २६ ॥ द्वापर के वर्ष में जो तिष्य की है उसे समझ लो । द्वापर के अश शेष म इसमे कलियुग की प्रतिपत्ति हो जाती है ॥ ३० ॥ हिंसा, असूया अनृत, माया और तपस्वियो का वध य स्वभाव तिष्य के हुआ करते हैं। उस समय प्रजा इनका साधन किया करती है ॥ ३१ ॥ यह किया हुआ पूर्ण धर्म है और धर्म परिहीन हो जाता है। मन स, कर्म से और वाणी से (वाणी का ही पर्याय स्तुति है) वार्ता सिद्ध होती है और नही भी होती है ॥ ३२ ॥ कलियुग मे जो रोग होता है वह प्रकर्ष रूप से मारक हुआ करता है और निरन्तर क्षुधा के शान्त करने का भय बना रहा करता है। वर्षा के बिल्कुल न होने का भय तथा घोर देशान एव विपर्यय होता है ॥ ३३ ॥ तिष्य लोक मे युग युग मे स्मृति का प्रमाण नही होता है। कोई गर्भ म स्थिति ही मर जाता है और दूसरा पूर्ण यौवनावस्था म स्थित हो मृत्युगत हो जाता है। कलियुग मे स्थाविर म मध्य कौमार प्रजा मर जाया करती है ॥ ३४ ॥ तिष्य म प्रजा अधार्मिक, अनाचार स युक्त, तीक्ष्ण कोप वाली, अल्प तेज से युक्त और मिथ्या बोलने वाली निरन्तर उत्पन्न हुआ करती है ॥ ३५ ॥

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ।
विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भवम् ॥ ३६ ॥
हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाक्षमानृतम् ।
तिष्ये भवन्ति जन्तूनां रागो लोभश्च सर्वशः ॥ ३७ ॥
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ।
नाधीयन्ते तदा वेदा न यजन्ते द्विजातयः ।
उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्रियाः सविशः क्रमात् ॥ ३८ ॥
क्षुद्राण मन्त्ययोनैस्तु सम्बन्धा ब्राह्मणैः सह ।
भवन्तीह कलौ तस्मिन् शयनासनभोजनैः ॥ ३९ ॥
राजानः शूद्रभूयिष्ठा पाषण्डानां प्रवर्तकाः ।
भ्रूणहत्याः प्रजास्तत्र प्रजा एवं प्रवर्त्तते ॥ ४० ॥
आयुर्मेधा बलं रूपं कुलञ्चैव प्रहीयते ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ॥ ४१ ॥
राजवृत्ते स्थिताश्चौराश्चौरवृत्ताश्च पार्थिवाः ।
भृत्याश्च नष्टसुहृदो युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ४२ ॥

बुरे इष्ट वाले, बुरा अध्ययन करने वाले, बुरे आचार वाले और बुरे आगम वाले ब्राह्मणों के इन कर्म दोषों से प्रजा जनों को भय उत्पन्न हुआ करता है ॥ ३६ ॥ हिंसा, माया, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, अक्षमा, अनृत, राग और लोभ तिष्य में सब ओर से जन्तुओं को हुआ करते हैं ॥ ३७ ॥ कलियुग प्राप्त करके जीवों को अत्यन्त संक्षोभ हुआ करता है। उस कलि के समय में द्विजाति वेदों को नहीं पढ़ा करते हैं और न वे भजन ही किया करते हैं। इससे मनुष्य और वैश्यों के सहित क्षत्रिय क्रम से उत्पीड़ित हुआ करते हैं ॥ ३८ ॥ क्षुद्रों का और अन्य योनि का सम्बन्ध ब्राह्मणों के साथ इस कलियुग में शयन, आसन और भोजन के द्वारा हुआ करते हैं ॥ ३९ ॥ राजा लोग शूद्रों की अधिकता वाले प्रायः हुआ करता है और पापण्डों के प्रवर्त्तक होते हैं। उनमें प्रजा ऐसी होती है जो भ्रूण हत्या वाली होती है ॥ ४० ॥ आयु, मेधा, बल, रूप और कुल परिहीन होता है। जो शूद्र होते हैं उनके तो ब्राह्मणों जैसे आचार होते हैं और जो ब्राह्मण होते हैं उनके शूद्रों के समान आचार हुआ करते हैं

॥ ४१ ॥ राजा के वृत्त में चोर रहा करते हैं और चोर वृत्त वाले राजा लोग होते हैं। युगान्त के पर्युपस्थित होने पर जो भृत्य होते हैं वे सौहार्द को खोने वाले हुआ करते हैं ॥ ४२ ॥

अशीलिन्योऽव्रतादचापि स्त्रियो मद्यामिषप्रियाः ।
मायामात्रा भविष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते ॥ ४३ ॥
श्वापदप्रबलत्वञ्च गवाञ्चैवाप्युपक्षय ।
साधूनां विनिवृत्तिश्च विद्यात्तस्मिन् कलौ युगे ॥ ४४ ॥
तदा सूक्ष्म महोदर्को दुर्लभो भोगिनां तथा ।
चतुराश्रमशैथिल्याद्धर्मं प्रविचलिष्यति ॥ ४५ ॥
तदा ह्यल्पफला देवी भवेद्भूमिर्महीयसी ।
शूद्रास्तपश्चरिष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते ॥ ४६ ॥
त्र्यहाह्नकाहिको धर्मो द्वापरे पक्ष मासिक ।
त्रेताया वत्सरस्यश्च एकाहादतिरिच्यते ॥ ४७ ॥
अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवा ।
युगान्तेषु भविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणा ॥ ४८ ॥
अक्षत्रियाश्च राजानो विप्र शूद्रोपजीविन ।
शूद्राभिवादिन सर्वे युगान्ते द्विजसत्तमा ॥ ४९ ॥

कलियुग में युगान्त के प्रत्युपस्थित होने पर स्त्रियाँ शील से रहित, बिना व्रत वाली और मद्य तथा माँस से प्यार करने वाली, माया से परिपूर्ण हो जायगी ॥ ४३ ॥ श्वापदों की प्रबलता तथा गौओं का उपक्षय उस कलियुग में साधुओं की विनिवृत्ति हो जायगी ऐसा जान लेना चाहिए ॥ ४४ ॥ उस समय सूक्ष्म में भोगियों का महोदर्क दुर्लभ होगा। चारों आश्रमों की शिथिलता से धर्म प्रविचलित हो जायगा ॥ ४५ ॥ यह महीयसी देवी भूमि भी अल्प फल देने वाली होगी। युगान्त के उपस्थित होने पर जो शूद्र वर्ण वाले व्यक्ति हैं वे तपस्या करेंगे ॥ ४६ ॥ जो धर्म द्वापर युग में मासिक या वह कलियुग के समय में एकाहिक अर्थात् एक दिन में पूर्ण होने वाला है यही धर्म त्रेता में एक वर्ष में होने वाला होता था जो कि प्रमाद से अतिरिक्त हुआ करता है।

॥ ४७ ॥ युगान्तों में राजा लोग प्रजा की रक्षा न करने वाले और अपने ही संग्रक्षण में परायण रहने वाले केवल बलि भाग के हरण करने वाले होंगे ॥४८॥ राजा लोग अक्षत्रिय अर्थात् क्षत्रिय वर्ण के न रहने वाले तथा वैश्य शूद्रों से अपनी रोजी कमाने वाले होंगे तथा युगान्त में श्रेष्ठ द्विज भी शूद्रों को अभिवादन करने वाले होंगे ॥ ४९ ॥

पतयश्च भविष्यन्ति बह्वोऽस्मिन् कलौ युगे ।
चित्रवर्षी तदा देवो यदा स्यात्तु युगक्षयः ॥ ५० ॥
सर्वे वाणिजकाश्चापि भविष्यन्त्यधमे युगे ।
भूयिष्ठं कूटमानैश्च पण्यविक्रीततेजनैः ॥ ५१ ॥
कुशीलचर्या पाषण्डैर्वृथारूपैः समावृतम् ।
पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ५२ ॥
बहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम् ।
क्रव्यादनः क्रूरवाक्यो नार्जवो नानसूयकः ॥ ५३ ॥
न कृते प्रतिकर्ता च क्षीणो लोको भविष्यति ।
अशङ्का चैव पतिते तद्यु गान्तस्य लक्षणम् ॥ ५४ ॥
नरशून्या वसुमती शून्या चैव भविष्यति ।
मण्डलानि भवन्त्यत्र देशेषु नगरेषु च ॥ ५५ ॥
अल्पोदका चाल्पफला भविष्यति वसुन्धरा ।
गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यन्त्यशासनाः ॥ ५६ ॥

इस कलियुग में बहुत-से पति होंगे । उस समय में देव भी चित्र-वर्षा वाला होगा, जबकि युगक्षय होगा ॥ ५० ॥ इस अधम युग में सभी वाणिजक अर्थात् वाणिज्य करने वाले होंगे जो कि अधिकता से कूट-मान और पण्य विक्रीत तेजनों से जीविकोपार्जन किया करेंगे ॥ ५१ ॥ कुशीलचर्या होगी और वृथा रूप पाषण्डों से समावृत थोड़े पुरुष तथा अधिक स्त्रियों से युक्त समाज युगान्त के पर्युपस्थित काल में हो जायगा ॥५२॥ लोक बहुत से याचकों से परिपूर्ण आपस में हो जायगा । मांसभोजी, क्रूर वचन बोलने वाले असरल और निन्दा करने वाले लोग होंगे ॥५३॥ किये हुए उपकार का प्रतिकर्त्ता न होकर

क्षीण-लोक हो जायगा। युगान्त का यह लक्षण है कि पतित मे अशङ्का हुआ करती है ॥५४॥ वसुमती नरों मे रहित एव शून्य हो जायगी। देशों मे और नगरो में यहाँ मडल होगे ॥५५॥ वसुन्धरा यह थोडे जल वाली और थोडा ही फल देने वाली हो जायगी। जो रक्षा करने वाले हैं वे ही अरक्षक और शासन रहित होगे ॥५६॥

हर्त्तारः पररत्नाना परदारप्रधर्षकाः।
कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधर्मात् साहसप्रियाः ॥ ५७ ॥
अनष्टचेतना. पुन्सो मुक्तकेशास्तु चूलिकाः।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ॥ ५८ ॥
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डा· काषायवाससः।
शूद्रा धर्मंश्चरिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ५६ ॥
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलाभिमर्शनाः।
चौराश्चौरस्य हर्त्तारो हन्तुर्हर्त्तार एव च ॥ ६० ॥
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियताङ्गते।
कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥ ६१ ॥
सुभिक्ष क्षेममारोग्य सामर्थ्यं दुर्लभ भवेत्।
कौशिकाः प्रतिवत्स्यन्ति देशान् क्षुद्भयपीडितान् ॥ ६२ ॥
दु.खेनाभिप्लुतानाञ्च परमायु· शतं भवेत्।
दृश्यन्ते न च दृश्यन्ते वेदा. कलियुगेऽखिलाः ॥ ६३ ॥

दूसरों के रत्नों का हरण करने वाले और पराई स्त्री का प्रधर्षण करने वाले कामात्मा और दुष्ट आत्मा वाले और अधर्म के काम मे साहस दिखाने वाले तथा चेतना नष्ट न होने वाले पुरुष के केश खुले हुए तथा चुटिया खुली रखने वाले और सोलह वर्ष से भी कम उम्र वाले युग के क्षय में उत्पन्न होते हैं ॥५७-॥५८॥ शुक्ल दन्त जिताक्ष-मुण्ड और काषाय वस्त्रो के धारण करने वाले शूद्र युगान्त के पर्युपस्थित होने पर धर्म का आचरण किया करेंगे ॥५६॥ सस्य के चुराने वाले तथा चैल (वस्त्र) के अभिमर्शन करने वाले, चोर के हरण करने वाले चोर तथा हनन करने वाले का हरण करने वाले लोग होगे ॥६०॥ ज्ञान

के कर्म में उपरत लोक में जबकि वह सर्वथा निष्क्रियता को प्राप्त हो जायगा, कीट, मूषक और सर्प मनुष्यों का घर्षण किया करेंगे ॥६१॥ सुभिक्ष-क्षेम और आरोग्य एवं सामर्थ्य यह सब दुर्लभ हो जायेंगे। भूख और प्यास के भय से पीड़ित देशों में कौए निवास किया करेंगे ॥६२॥ दुःख से अभिप्लुत लोगों की परमायु सौ वर्ष की हो जायगी। कलियुग में सम्पूर्ण वेद दिखलाई देते हैं और नहीं भी दिखलाई दिया करते हैं ॥६३॥

उत्सीदन्ति तथा यज्ञाः केवला धर्मपीडिताः।
कषायिणश्च निर्ग्रन्थास्तथा कापालिनश्च ह॥ ६४ ॥
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणोऽपरे।
वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाषण्डाः परिपन्थिनः॥ ६५ ॥
उत्पद्यन्ते तथा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे।
नाधीयन्ते तदा वेदाः शूद्रा धर्मार्थकोविदाः॥ ६६ ॥
यजन्ते नाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः।
स्त्रीवधं गोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्।
उपहन्युस्तदान्योन्यं साधयन्ति तथा प्रजाः॥ ६७ ॥
दुःखप्रचारतोऽल्पायुर्देशोत्सादः सरोगता।
मोहो ग्लानिस्तथासौख्यं तमोवृत्तं कलौ स्मृतम्॥ ६८ ॥
प्रजा तु भ्रूणहत्यायामथ वै सम्प्रवर्त्तते।
तस्मादायुर्बलं रूप कलिं प्राप्य प्रहीयते।
दुःखेनाभिप्लुतानां वै परमायुः नृणाम्॥ ६९ ॥
दृश्यन्ते नाभिदृश्यन्ते वेदाः कलियुऽखिलाः।
उत्सीदन्ते तदा यज्ञाः केवला धर्मपीडिताः॥ ७० ॥

केवल धर्म पीड़ित यज्ञ उत्सन्न होते हैं। कषाय वस्त्रधारी तथा निर्ग्रन्थ कपाली, दूसरे वेदों के बेचने वाले तथा तीर्थों के विक्रय करने वाले और वर्णाश्रमों के पाषण्ड प्रकट करने वाले परिपन्थी लोग इस कलियुग के सम्प्राप्त होने पर उत्पन्न होंगे। उस समय कोई भी वेदों का अध्ययन नहीं किया करेंगे केवल शूद्र ही धर्मार्थ के पण्डित होंगे ॥६४॥६५॥६६॥ शूद्र योनि राजा लोग अश्वमेध

का यजन नहीं किया करते हैं तथा स्त्री का वध-गौ का वध करके और परस्पर में हनन करके तब एक दूसरे का उपहनन करेंगे और इस तरह से प्रजा का साधन किया करते हैं ॥६७॥ दुःखों के प्रचार से अल्प आयु देशोत्साद मोह-सरोगन ग्लानि तथा असौख्य इस तरह से कलियुग में तमोवृत्त कहा गया है ॥६८॥ प्रजा सब भ्रूण हत्या मे सम्प्रवृत्त होती है, इसी से कलियुग को प्राप्त करके आयु बल और रूप सभी कुछ नष्ट हो जाते हैं और सब ओर से दुःखों में डूबे हुए मनुष्यों की आयु सबसे अधिक सौ वर्ष की ही जाती है ।६९॥ समस्त वेद भी इस कलियुग मे दिखलाई देते हैं और नहीं भी दिखलाई दिया करते हैं। उस समय केवल धर्म पीडित यज्ञ उत्पन्न हुआ करते हैं ॥७०॥

तदा त्वल्पेन कालेन सिद्धिं यास्यन्ति मानवाः।
धन्या धर्मञ्चरिष्यन्ति युगान्ते द्विजसत्तमाः ॥ ७१ ॥
श्रुतिस्मृत्युदित धर्मं ये चरन्त्यनसूयकाः।
त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः।
यथाशक्ति चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात् कलौ ॥ ७२ ॥
एषा कलियुगेऽवस्था सन्ध्याशन्तु निबोध मे।
युगे-युगे तु हीयन्ते त्रीस्त्रीन् पादाश्च सिद्धयः ॥ ७३ ॥
युगस्वभावात्सन्ध्यास्तु तिष्ठन्तीमास्तु पादशः।
सन्ध्यास्वभावाच्चांशेषु पादशस्ते प्रतिष्ठिताः ॥ ७४ ॥
एवं सन्ध्याशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके।
तेषां शास्ता ह्यसाधूना भृगूणां निधनोत्थितः ॥ ७५ ॥
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिरुच्यते।
माधवस्य तु सोंऽशेन पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ७६ ॥
समाः स विंशतिं पूर्णा पर्यटन् वै वसुन्धराम्।
आचकर्ष स वै सेना सवाजिरथकुञ्जराम् ॥ ७७ ॥
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः।
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान् हन्ति सहस्रशः ॥ ७८ ॥
स हत्वा सर्वगश्चैव राज्ञस्तान् शूद्रयोनिजान्।
पाषण्डान् स ततः सर्वान्निःशेषान् कृतवान् प्रभुः ॥ ७९ ॥

नात्यर्थं धार्मिका ये च तान् सर्वान् हन्ति सर्वशः ।
वर्णव्यत्यासजातांश्च ये च तानुपजीविनः ॥ ८० ॥

उस युगान्त में जो श्रेष्ठ द्विज धर्म का आचरण किया करते हैं वे मानव अल्प काल में ही सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं । जो अनसूयक अर्थात् असूया न करने वाले लोग श्रुति स्मृति में कहे हुए धर्म का आचरण किया करते हैं । त्रेता में वार्षिक धर्म होता था–द्वापर में वह मासिक कहा गया है और कलियुग में प्राज्ञ तथा शक्ति करता हुआ एक दिन में प्राप्त कर लेता है । ७१॥७२॥ यह तो कलियुग की अवस्था है अब इसका सन्ध्यांश भी समझ लो । युग-युग में तीन-तीन पाद सिद्धियाँ हीन होती हैं ॥७३॥ युग के स्वभाव से ये सन्ध्या पाद से रहा करती हैं । सन्ध्या के स्वभाव से अंशों में पाद में प्रतिष्ठित होते हैं ॥७४॥ इस तरह से युगान्त में सन्ध्यांश काल के सम्प्राप्त होने पर उन असाधु भृगुओं का शास्ता निधन से उत्थित होता है ॥७५॥ गोत्र से चन्द्रमा के नाम से प्रमिति कही जाती है । स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले वह माधव के अंश से होती है ।७६॥ पूरे तीस वर्ष तक इस वसुन्धरा पर पर्यटन करते हुए उसने घोड़े हाथियों से युक्त सेना का आकर्षण किया ।७७॥ आयुध ग्रहण करने वाले विप्रों के द्वारा जो संख्या में सैकड़ों और हजारों थे, उनसे परिवृत होकर हजारों ही म्लेच्छों का हनन करता है ॥७८॥ वह सर्वत्र जाने वाला उन शूद्र योनियों में समुत्पन्न राजाओं को तथा समस्त पाषण्डों को वह प्रभु निःशेष कर देते हैं ॥७९॥ जो अत्यर्थ धार्मिक नहीं है उन सबको सब ओर में मार देते हैं जो भी वर्ण के व्यत्यास से उत्पन्न हुए हैं और अनुताप देने वाले हैं ॥८०॥

उदीच्यान्मध्यदेशांश्च पार्वतीयांस्तथैव च ।
प्राच्यान् प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ॥ ८१ ॥
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ।
गान्धारान् पारदांश्चैव पह्लवान् यवनांस्तथा ॥ ८२ ॥
तुषारान् बर्बराश्चीनान् शूलिकान् दरदान् खसान् ।
लम्पाकानथ केतांश्च किरातानाञ्च जातयः ॥ ८३ ॥
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्विभुः ।

अधृष्य. सर्वभूताना चचाराथ वसुन्धराम् ॥ ८४ ॥
माधवस्य तु सोंशेन देवस्य हि विजज्ञिवान् ।
पूर्वजन्मविधिज्ञैश्च प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ॥ ८५ ॥
गोत्रेण वै चन्द्रमस पूर्वे कलियुगे प्रभुः ।
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्ते विंशति समा ॥ ८६ ॥
विनिघ्नन् सर्वभूतानि मानवानि सहस्रश. ।
कृत्वा वीर्यविशेषान्तु पृथ्वी रूढेन कर्मणा ।
परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मि केनतु ॥ ८७ ॥
स साधयित्वा वृपलान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठा प्राप्त सहानुग ॥ ८८ ॥

उत्तर में रहने वाले मध्य देश वाले पर्वतीय प्राच्य तथा प्रतीच्य अर्थात् पश्चिम मे रहने वाले एव विन्ध्य पृष्ठ परान्तिक, दाक्षिणात्य और सिंहलों के साथ द्रविड-गान्धार पारद-पल्लव तथा यवन-तुषार-वर्वर चीन शूलिक-दरद-खस-लम्पक-केत और किरात जाति वाले इन सबका म्लेच्छो का प्रवृत्त चक्र बलवान् विभु अन्त करने वाले थे जोकि समस्त प्राणियो के अधृष्य थे, उनने इस वसुन्धरा पर चरण किया था ॥८१॥८२॥८३॥८४॥ उसने अपने को माधव देव के अंश से विज्ञप्त किया था। पूर्व जन्म की विधि को जानने वालों के द्वारा वीर्यवान् प्रमिति नाम कहा गया है। पूर्व कलियुग में चन्द्रमा के गोत्र से प्रभु ने बत्तीस वर्ष के अभ्युदित होने पर बीस वर्ष पर्यन्त समस्त प्राणी तथा सहस्रो मानवों का हनन करते हुए रूढ कर्म से पृथ्वी को वीर्यविशेष करके परस्पर निमित्त वाले आकस्मिक कोप से उसमे वृपलो की, जोकि प्राय अधार्मिक थे साधना करके अपने अनुग के साथ गङ्गा यमुना के मध्य में निष्ठा प्राप्त की थी ॥८५॥ ॥८६॥८७॥८८॥ ।

ततो व्यतीते तस्मिंस्तु अमात्ये सत्यसैनिके ।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः ॥ ८९ ॥
तत्र सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ।
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित् ॥ ९० ॥

अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोकचेष्टास्तु वृन्दशः ।
उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रपद्यन्ते परस्परम् ॥ ६१ ॥
अराजके युगवशात् संशये समुपस्थिते ।
प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः ॥ ६२ ॥
व्याकुलाश्च परिश्रान्तास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च ।
स्वान् प्राणान् समवेक्षन्तो निष्ठां प्राप्ताः सुदुःखिता ॥ ६३ ॥
नष्टे श्रौते स्मृते धर्मे परस्परहतास्तदा ।
निर्मर्यादा निराक्रन्दा निःस्नेहा निरपत्रपाः ॥ ६४ ॥
नष्टे वर्षे प्रतिहता ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः ।
हित्वा दारांश्च विषादव्याकुलेन्द्रियाः ॥ ६५ ॥

इसके पश्चात् उस सत्य सैनिक अमात्य के व्यतीत हो जाने पर समस्त पार्थिवों का तथा सहस्रों म्लेच्छों का उत्सादन करके वहाँ सन्ध्यांश काल में युगान्त के सम्प्राप्त होने पर कहीं-कहीं पर अत्यन्त अल्प प्रजाओं के अवशिष्ट रहजाने पर वे इसके अनन्तर प्रग्रह रहित और वृन्दों में लोक चेष्टा से युक्त होकर एक दूसरे को आपस में उपहिंसन करते हैं ॥८६॥६०॥६१॥ युग-वश से अराजकता के संशय के समुपस्थित हो जाने पर वह समस्त प्रजा आपस में भय से परम दुःखित थी ।६२॥ अत्यन्त व्याकुल–परिश्रान्त होते हुए अपनी स्त्रियों को तथा घरों को छोड़कर अपने ही प्राणों को देखते हुए सुदुःखित होते हुए निष्ठा को प्राप्त हुए ॥६३॥ श्रौत तथा स्मार्त्त धर्म के नष्ट हो जाने पर उस समय में परस्पर में हत होते हुए बिना मर्यादा वाले–निराक्रन्द–निःस्नेह और निरपत्रप होगये थे ॥६४॥ वर्ष के नष्ट होने पर प्रतिहत ह्रस्वके तथा पञ्च विंशक अपनी स्त्रियों एवं पुत्रों का त्याग करके विषाद से व्याकुलित इन्द्रियों वाले थे ॥६५॥

अनावृष्टिहताश्चैव वार्त्तामुत्सृज्य दुःखिताः ।
प्रत्यन्तांस्तान्निषेवन्ते हित्वा जनपदान् स्वकान् ॥ ६६ ॥
सरितः सागरान् कूपान् सेवन्ते पर्वतांस्तदा ।
मधुमांसैर्मूलफलैर्वर्त्तयन्ति सुदुःखिताः ॥ ६७ ॥

चीरवस्त्राजिनधरा निष्पन्ना निष्परिग्रहाः ।
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्कर घोरमास्थिताः ॥ ९८ ॥
एता. काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषास्तया प्रजा ।
जराव्याधिक्षुधाविष्टा दु खान्निर्वेदमागमन् ॥ ९९ ॥
विचारणन्तु निर्वेदात् साम्यावस्या विचारणात् ।
साम्या वस्थासु सम्बोधः सम्बोधाद्धर्मशीलता ॥ १०० ॥
तासूपगमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम् ।
अहोरात्र तदा तासा युगन्तु परिवर्त्तते ॥ १०१ ॥
चित्तसम्मोहन कृत्वा तासान्तैः सप्तमन्तु तत् ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्तत. कृतमवर्तत ॥ १०२ ॥
प्रवृत्ते तु पुनस्तस्मिस्ततः कृतयुगे तु वै ।
उत्पन्नाः कलिशिष्टास्तु कार्तयुगः प्रजास्तदा ॥ १०३ ॥

वे सब उस समय में अनावृष्टि से आहत थे और वार्ता का त्याग कर बहुत ही दु खित होरहे थे । अपने-अपने जन पदो को त्याग कर प्रत्यन्वों का सेवन करते थे । नदियाँ—सागर कूप और पर्वतों का सेवन करते थे । अत्यन्त दु खित होते हुए मधुमास तथा मूल फलो से जीवित रहते थे ॥९६॥९७॥ चीर वस्त्र तथा अजिन के धारण करने वाले -निष्पन्न एव निष्परिग्रह वर्णाश्रम से परिभ्रष्ट घोर सकर में आस्थित थे ॥९८॥ ऐसी काष्ठा को प्राप्त होने वाले वह थोड़ी सी बची हुई प्रजा जरा-व्याधि और क्षुधा से आविष्ट होती हुई दु ख से निर्वेद को प्राप्त हुई थी ॥९९॥ निर्वेद से विचारणा हुई और विचारणा से साम्यावस्था हुई । साम्यावस्थाओं मे कुछ सम्बोध हुआ और फिर सम्बोध से धर्मशीलता उत्पन्न हुई ॥१००॥ कलियुग मे अव शिष्ट और उपगम से युक्त उन मे स्वय उस समय अहोरात्र उनके युग परिवर्तित होते हैं ॥१०१॥ उनके चित्त का सम्मोहन करके उनके द्वारा भावी अर्थ के बल से फिर सप्तम कृत हुआ था ॥१०२॥ फिर उसके पश्चात उस कृत युग के प्रवृत्त होने पर उस समय में कलिशिष्ट कार्तयुग प्रजा समुत्पन्न हुई थी ॥१०३॥

तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धाः सुदृष्टा विचरन्ति च ।
सदा सप्तर्षयश्चैव तत्र ते च व्यवस्थिताः ॥ १०४ ॥
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह ।
कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाभवन् ॥ १०५ ॥
तेषां सप्तर्षयो धर्म कथयन्तीतरेषु च ।
वर्णाश्रमाचारयुक्तः श्रौतः स्मार्तो द्विधा तु सः ॥ १०६ ॥
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्त्तन्ते वै प्रजाः कृते ।
श्रौतः स्मार्त्तः कृतानान्तु धर्मः सप्तर्षिदर्शितः ॥ १०७ ॥
तासु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीहायुगक्षयात् ।
मन्वतराधिकारेषु तिष्ठन्ति मुनयस्तु वै ॥ १०८ ॥
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह तपे ऋतौ ।
नवानां प्रथमं दृष्टस्तेषां मूले तु सम्भवः ॥ १०९ ॥
एवं युगाद्युगस्येह सन्तानस्तु परस्परम् ।
वर्त्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः ॥ ११० ॥

यहां पर जो सिद्ध स्थित हैं वे सुदष्ट होते हुए विचरण करने हैं और सदा वे सप्तर्षि लोग भी व्यवस्थित होते हैं ॥१०४॥ ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य तथा शूद्र जो यहाँ बीज के लिये कहे गये हैं वे सब कलि में समुत्पन्न होने वालों के साथ उस समय में निर्विशेष होगये थे ॥१०५॥ उनके धर्म को और इतरों में सप्तर्षि कहते हैं। वर्ण और आश्रम के आचार से युक्त वह धर्म दो प्रकार का था ॥१०६॥ इसके अनन्तर कृत में क्रियावान उनमें प्रजाकृती हैं और सप्तर्षियों के द्वारा दिखाया हुआ श्रौत्व तथा स्मार्त्त धर्म करने वाले हैं ॥१०७॥ यहाँ पर युग के क्षय से उनमे धर्म की व्यवस्था के लिये मन्वन्तराधिकारों में मुनिगण स्थित रहते हैं ॥१०८॥ जिस तरह से दावाग्नि से जले हुए तृणों पर तप ऋतु में उनके मूल में सम्भव नवीन तृणों का प्रथम दिखाई दिया हुआ होता है ॥१०९॥ इसी भाँति यहाँ युग का युग से परस्पर में सन्तान होता है। जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है, तब तक वह अव्यवच्छेद से रहा करता है ॥११०॥

सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च ।
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रीणि पादक्रमेण तु ॥ १११ ॥
ससन्ध्यंशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः ।
इत्येष प्रतिसन्धिर्वै कीर्त्तितस्तु मया द्विजा ॥ ११२ ॥
चतुर्युगानां सर्वेषामेतेनैव प्रसाधनम् ।
एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्रात् प्रवर्त्तते ॥ ११३ ॥
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्च तावती स्मृता ।
अनार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात् ॥ ११४

एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम् ।
एषा चतुर्युगानान्तु गणना ह्येकसप्ततिः ।
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते ॥११५
चतुर्युगे तथैकस्मिन् भवतीह यथाश्रुतम् ।
तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ॥११६
सर्गे सर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु ।
पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा ॥११७

सुख—आयु बल रूप धर्म अर्थ और काम ये सब तीन युगों मे पाद क्रम से हीयमान होते हैं ॥१११॥ ससन्ध्यांशो मे युगों की धर्म सिद्धियाँ हीन होती हैं। हे द्विजो! इस प्रकार से यह आपको प्रतिसन्धि मैंने कीर्त्तित कर दिया है। चारो युगो का इससे ही प्रसाधन होता है। यह चतुर्युगो की आवृति सहस्र पर्यन्त हुआ करती है ॥११२॥ब्रह्मा का वह दिन कहा गया है और उतनी रात्रि भी कही गई है। यहाँ पर प्राणियों का युग क्षय तक जडीभाव होता है ॥११४॥यह ही समस्त युगों का लक्षण कहा गया है। यह चारो युगो की गणना इकहत्तर होती है। क्रम से परिवृत्त यह होती हुई मनु का अन्तर कहा जाता है ॥११५॥ यहाँ एक चतुर्युग मे उस प्रकार से यथाश्रुत होती है। उसी प्रकार से अन्यों में भी वह फिर यथाक्रम हुआ करती है ॥११६॥ सर्ग सर्ग में जिस प्रकार से भेद उत्पन्न होते हैं उस प्रकार से वे पच्चीस की संख्या मे परिमित होते है। न कम हैं और न अधिक ही होते हैं ॥११७॥

तथा कल्पयुगैः सार्द्धं भवन्ति समलक्षणाः ।
मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ॥११८
तथा युगानां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।
तथा न सन्तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः ॥११६॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः ।
अतीतानागतानां वै सर्वमन्वन्तरेष्विह ॥१२०
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ॥१२१
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
व्याख्यातानि विजानीध्वं कल्पे कल्पेन चैव हि ॥१२२
अस्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत ।
देवा ह्यष्टविधा ये च इह मन्वन्तरेश्वराः ॥१२३

उस प्रकार से कल्प युगों के साथ समान लक्षण वाले होते हैं। समस्त मन्वन्तरों का यह ही लक्षण होता है ॥११८॥ उस प्रकार से युगों के परिवर्त्तन युगों के स्वभाव से चिर प्रवृत्त होते हैं। उस प्रकार से यह जीव लोक क्षय एवं उदय से परिवर्तमान होता हुआ नहीं संस्थित रहा करता है ॥११६॥ इतना यह युगों का संक्षेप से लक्षण मैंने कह दिया है जो कि अतीत हो गये हैं, अनागत हैं और यहाँ समस्त मन्वन्तरों में होते हैं ॥१२०॥ जो अनागत हैं और समस्त मन्वन्तरों में जो अतीत एवं अनागत हैं उनमें विज्ञ व्यक्ति को उसी भाँति से तर्क करना चाहिए ॥१२१॥ एक मन्वन्तर से समस्त मन्वन्तरों की व्याख्या करदी गई है। कल्प में कल्प से उसे जान लेना चाहिए ॥१२२॥ इसके अभिमानी सब नाम और रूपों से यहाँ मन्वन्तर में आठ प्रकार के मन्वन्तरेश्वर देव होते हैं ॥१२३॥

ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याः प्रयोजनैः ।
एवं वर्णाश्रमाणान्तु प्रविभागो युगे युगे ॥१२४
युगस्वभावाच्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभुः ।
वर्णाश्रमविभागश्च युगानि युगानि युगसिद्धये ॥१२५

अनुषंगः समाख्यातः सृष्टिसर्गन्निबोधत ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च स्थितिं वक्ष्ये युगेष्विह ।।१२६

ऋषिगण और मुनि वृन्द सब प्रयोजनों से तुल्य ही हुआ करते हैं। इसी प्रकार से युग युग में वर्णों और आश्रमों का प्रविभाग हुआ करता है ।।१२४।। युग के स्वभाव से प्रभु उसी प्रकार का किया करते हैं। वर्णों और आश्रमों का विभाग तथा युग की सिद्धि के लिये युगों को करते हैं ।।१२५।। अनुषङ्ग की तो व्याख्या करदी गई है। अब सृष्टि के सर्ग को समझ लो। मैं विस्तार से तथा अनुपूर्वी से यहाँ पर युगों में जो स्थिति है उसको बतलाऊँगा ।।१२६।।

प्रकर्ण ४१—ऋषिलक्षण

युगेषु यास्तु जायन्ते प्रजास्ता वै निबोधत ।
आसुरी सर्पगोपक्षिपैशाची यक्षराक्षसी ।
यस्मिन् युगे च सम्भूतिस्तासा थावत् जीवितम् ।।१
पिशाचासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
युगमात्रन्तु जीवन्ति ऋते मृत्युवधेन ते ।।२
मानुषाणा पशूनाञ्च पक्षिणां स्थावरैः सह ।
तेषामायु. परिक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः ।।३
अस्थितिस्तु कलौ दृष्टा भूतानामायुषस्तु वै ।
परमायु शतन्त्वेतन्मनुष्याणां कलौ स्मृतम् ।।४
देवासुरप्रमाणात्तु सप्तसप्तयुगं ह्रसत् ।
अगुलाना शत पूर्णमष्टपञ्चाशदुत्तरम् ।।५
देवासुरप्रमाणन्तदुच्छ्राय कलिजैः स्मृतम् ।
चत्वारश्चाप्यशीतिश्च कलिजैरगुलैः स्मृतम् ।६
स्वेनागुलप्रमाणेन ऊर्द्ध्वमापादमस्तकम् ।
इत्येष मानुषोत्सेधो ह्रसतीह युगान्तिके ।।७

श्री सूत जी ने कहा—युगों में जो प्रजा उत्पन्न होती है उनको जानलो। वह प्रजा आसुरी–सर्प-गौ पक्षी-पैशाची और यक्ष राक्षसी हुआ करती है। जिस

युग में जिसकी सम्भूति होती है और उनका जितना भी जीवित काल होता है वह सब बतलाया जाता है ।।१।। पिशाच-असुर-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पन्नग ये सब युग मात्र जीवित रहा करते हैं । मृत्यु वध के बिना ही इनका उक्त जीवन होता है ।।२।। मनुष्यों की पशुओं की और स्थावरों के साथ पक्षियों की इन सबकी आयु सब प्रकार से युग के धर्मों में परिक्रान्त हुआ करती है ।।३।। कलियुग में प्राणियों की आयु की अस्थिति देखी गई है । कलियुग में मनुष्यों की परमायु सौ वर्ष की कही गई है ।।४।। देव और असुरों के प्रमाण से सात-सात अंगुल कम होता हुआ है । एक सौ अट्ठावन पूर्ण प्रमाण होता है ।।५।। देवासुरों का प्रमाण और उनका उच्छ्राय कलि में जन्म लेने वालों के द्वारा कहा गया है । ।।६।। अपने अंगुल के प्रमाण से ऊपर पैरों से मस्तक तक यह मानुष उत्सव होता है किन्तु यहाँ युगान्तिक में यह ह्रासयुक्त होता है ।।७।।

सर्वेषु युगकालेषु अतीतानागतेष्विह ।
स्वेनांगुलप्रमाणेन अष्टतालः स्मृतो नरः ।।८
आपादतो मस्तकं तु नवतालो भवेत्तु यः ।
संहताजानुबाहुस्तु स सुरैरपि पूज्यते ।।९
गवाश्वहस्तिनाञ्चैव महिष स्थावरात्मनाम् ।
क्रमेणैतेन योगेन ह्रासवृद्धी युगे युगे ।।१०
षट्सप्तत्यंगुलोत्सेधः पशूनां ककुदस्तु वै ।
अंगुलाष्टशतं पूर्णमुत्सेधः करिणां स्मृतः ।।११
अंगुलानां सहस्रन्तु चत्वारिंशांगुलं विना ।
पञ्चाशतं हयानाञ्च उत्सेधः शाखिनां स्मृतः १२
मानुषस्य शरीरस्य सन्निवेशस्तु यादृशः ।
तल्लक्षणस्तु देवानां दृश्यते तत्त्वदर्शनात् ।। १३ ।।
बुद्धयातिशययुक्तश्च देवानां कायमुच्यते ।
देवानतिशयञ्चैव मानुषं कायमुच्यते ।। १४ ।।

समस्त युगों के कालों में जो अतीत हैं तथा अनागत हैं अपने अँगुल के प्रमाण से मनुष्य अष्ट ताल कहा गया है ।। ८ ।। जो पैरों से लेकर मस्तक

पर्यन्त नवताल होता है और जो आजानु बाहु वाला होता है वह सुरों के द्वारा भी पूजित हुआ करता है ॥ ६ ॥ गौ-अश्व हस्ती-महिष और स्थावर स्वरूप वालो की क्रम से इस योग से युग-युग में ह्रास और वृद्धि हुआ करती है ॥१०॥ पशुओं की ऊँचाई सडसठ अँगुल और ककुद की होती है। हाथियो का उत्सेध हर एक सौ आठ अँगुल का पूर्ण कहा गया है ॥ ११ ॥ चत्वारिंशत् (चालीस) अँगुल के विना एक सहस्र अँगुल और पश्चात् हयों (अश्वो) का शाखियों (वृक्षो) का उत्सेध कहा गया है ॥ १२ ॥ मनुष्य के शरीर का सन्निवेश जैसा है उसी लक्षण वाला तत्त्व दर्शन से देवों का दिखलाई देता है ॥१३॥ देवो का शरीर बुद्धि के अतिशय से युक्त हुआ करता है—ऐसा कहा जाता है। देवों के अनतिशय वाला मनुष्य-काय कहा जाता है ॥ १४ ॥

इत्येते वै परिक्रान्ता भावा ये दिव्यमानुषाः ।
पशूना पक्षिणाञ्चैव स्थावराणा निबोधत ॥ १५ ॥
गावो ह्यजा महिष्योऽश्वा हस्तिन पक्षिणो नगा ।
उपयुक्ता क्रियास्वेते यज्ञियास्विह सर्वशः ॥ १६ ॥
देवस्थानेषु जायन्ते तद्रूपा एव ते पुन ।
यथाशयोपभोगास्तु देवाना शुभमूर्त्तयः ॥ १७ ॥
तेषा रूपानुरूपैस्तै प्रमाणै स्थाणुजङ्गमैः ।
मनोज्ञैस्तत्त्वभावज्ञैः सुखिनो ह्युपपेदिरे ॥ १८ ॥
अतः शिष्टान् प्रवक्ष्यामि सत. साधू स्तथैव च ।
सदिति ब्रह्मण शब्दस्तद्वन्तो ये भवन्त्युत ।
सायुज्य ब्रह्मणोऽत्यन्त तेन सन्तः प्रचक्ष्यते ॥ १९ ॥
दशात्मके ये विषये कारणे चाष्टलक्षणे ।
न क्रुध्यन्ति न हृष्यन्ति जितात्मानस्तु ते स्मृताः ॥ २० ॥
सामान्येषु च धर्मेषु तथा वैशेषिकेषु च ।
ब्रह्मक्षत्रविशो युक्ता यस्मात्तस्माद्द्विजातय ॥ २१ ॥

ये इतने दिव्य मानुष भाव परिक्रात किये हैं। अब पशुओं का—पक्षियों का और स्थावरो का भाव समझ लो ॥ १५ ॥ गौ अजा (बकरी) महिषी

(भैंस) अश्व-हाथी-पक्षीगण और नग ये क्रियाओं में उपयुक्त होते हैं। यहाँ पर ये सब प्रकार से यज्ञीय कहे जाते हैं ॥ १६ ॥ देवस्थानों में जो उत्पन्न होते हैं वे फिर तद्रूप ही होते हैं। यथाशयोपभोग वाले देवों की ही शुभ मूर्तियाँ होती हैं ॥ १७ ॥ उसके रूप के अनुरूप स्थाणु जङ्गम उन प्रमाणों से जो कि मनोज्ञ और तत्त्वभाव के ज्ञाता हैं सुखी होते हैं ॥ १८ ॥ इससे आगे शिष्टों तथा सत् और साधुओं को बताऊँगा। सत्-पद-ब्रह्म का शब्द है उसके रखने वाले जो होते हैं ब्रह्म का अत्यन्त सायुज्य होता है इसी से वे (सन्त)—ऐसे कहे जाते हैं ॥ १९ ॥ जो दशात्मक विषय में और आठ लक्षणों वाले कारण में न तो क्रोधित होते हैं और न प्रसन्न ही होते हैं वे जितात्म कहे जाते हैं ॥२०॥ सामान्य धर्मों में तथा वैशेषिकों में क्योंकि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य युक्त होते हैं इसी लिए ये द्विजाति कहे जाते हैं ॥ २१ ॥

वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गगोमुखचारिणः !
श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्मः स उच्यते ॥ २२ ॥
विद्यायाः साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः ।
क्रियाणां साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते ॥ २३ ॥
साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः ।
यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात् ॥ २४ ॥
एवमाश्रमधर्माणां साधनात् साधवः स्मृताः ।
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ॥ २५ ॥
न च देवा न पितरो मुनयो न च मानवाः ।
अयं धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवन्तोऽभिन्नदर्शनाः ॥ २६ ॥
धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ ।
कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ ॥ २७ ॥
धारणा धृतिरित्यर्थाद्धातोर्धर्मः प्रकीर्त्तितः ।
अधारणेऽमहत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते ॥ २८ ॥

वर्णाश्रमों में युक्त तथा स्वर्ग गोमुख के चरण करने वाले श्रौतस्मार्त धर्म का ज्ञान होने से वह धर्म कहा जाता है ॥ २२ ॥ विद्या के साधन से

साधु—गुरु का हित ब्रह्मचारी और क्रियाओं के साधन से ही गृहस्थ साधु कहा जाता है ॥ २३ ॥ जङ्गल में तप के साधन से साधु वैखानस कहा गया है। जो यजमान साधु यति योग के साधन से कहा गया है ॥२४॥ इस प्रकार से आश्रम के धर्मों के साधन से साधु कहे गये हैं। गृहस्थ-ब्रह्मचारी-वानप्रस्थ और भिक्षुक ये चार आश्रम हैं ॥ २५ ॥ न देव-न पितृ न मुनिगण और न मानव यह धर्म है और यह नहीं है—यह बोलते हुए अभिन्न दर्शन होते हैं ॥ २६ ॥ यहाँ पर धर्म और अधर्म कहे गये हैं। ये दोनों ही शब्द क्रियात्मक होते हैं। कुशल कर्म धर्म है और अकुशल कर्म अधर्म है ऐसा कहा गया है ॥ २७ ॥ धातु का ध्वनि यह अर्थ होने से धारण धर्म कहा गया है। अधारण और अमहत्त्व होने में यह अधर्म ऐसा कहा जाता है ॥ २८ ॥

अनेष्टप्रापका धर्मा आचार्यैरुपदिश्यते ।
वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भका. ।
सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते ॥ २९ ॥
स्वयमाचरते यस्मादाचार स्थापयत्यपि ।
आचिनोति च शास्त्रार्थान्यमै सन्नियमैर्युत. ॥ ३० ॥
पूर्वेभ्यो वेदयित्वेह श्रौत सप्तर्षयोऽब्रुवन् ।
ऋचो यजूषि सामानि ब्रह्मणोऽङ्गानि च श्रुति. ॥ ३१ ॥
मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वाचार पुनर्जगौ ,
तस्मात्स्मार्त स्मृतो धर्मो वर्णाश्रमविभागज ॥ ३२ ॥
स एप द्विविधो धर्मः शिष्टाचार इहोच्यते ।
शेपशब्दात् शिष्ट इति शिष्टाचारः प्रचक्ष्यते ॥ ३३ ॥
मन्वन्तरेपु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिकाः ।
मनु सप्तर्षयश्चैव लोकसन्तानकारणात् ।
धर्मार्थं ये च शिष्टा वै याथातथ्य प्रचक्ष्यते ॥ ३४ ॥
मन्वादयश्च ये शिष्टा ये मया प्रागुदीरिता ।
तै शिष्टैश्चरितो धर्म सम्यगेव युगे युगे ॥ ३५ ॥

यहाँ पर आचार्यों के द्वारा जो इष्ट के प्रापक है उन्हें धर्म उपदेश

किया जाता है। वृद्ध, अलोलुप आत्मा वाले दम्भ से रहित, भली भाँति विनीत और जो सरल-सीधे होते हैं उनको आचार्य कहते हैं ॥२९॥ स्वयं भी आचरण करता है और आचार की स्थापना भी किया करता है। यज्ञ और अच्छे नियमों से युक्त होता हुआ शास्त्रों के अर्थों का चारों ओर से चयन किया करता है इसी कारण से आचार्य कहा जाता है ॥३०॥ पूर्व में होने वालों से जानकर यहाँ पर सप्तर्षियों ने श्रौत को बतलाया था। ऋग्–यजु–साम–ब्रह्म के अङ्गों को और श्रुति उन्होंने बतलाये थे ॥३१॥ जो मन्वन्तर व्यतीत हो गया उसका स्मरण करके आधार को फिर गाया था। इससे वर्ण और आश्रम के विभाग से जन्मने वाला स्मृत धर्म स्मार्त कहा गया है ॥३२॥ वह यह धर्म दो प्रकार का है। यहाँ पर शिष्टाचार कहा जाता है। शेष शब्द से शिष्ट यह होता है और इससे शिष्टाचार कहा जाता है ॥३३॥ मन्वन्तरों जो शिष्ट हैं यहाँ धार्मिक होते हैं जो कि मनु और सप्तर्षि लोक सन्तान के कारण से होते हैं। धर्म के लिए जो शिष्ट हैं उनका यथातथ्य कहा ॥३४॥ मन्वादि जो शिष्ट हैं और जो मैंने पहिले कहे हैं, उन शिष्टों के द्वारा चरित्र-धर्म युग-युग में अच्छा ही होता है ॥३५॥

त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिज्या वर्णाश्रमास्तथा ।
शिष्टैराचर्यते यस्मान्मनुना च पुनः पुनः ।
पूर्वैः पूर्वगतत्वाच्च शिष्टाचारः स शाश्वतः ॥३६॥
दानं सत्यन्तपोऽलोभो विद्येज्याप्रजनी दया ।
अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥३७॥
शिष्टा यस्माच्चरन्त्येतं मनुः सप्तर्षयश्च वै ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्ततः स्मृतः ॥३८॥
विज्ञेयः श्रवणात् श्रौतः स्मरणात् स्मार्त्त उच्यते ।
इज्या वेदात्मकः श्रौतः स्मार्तो वर्णाश्रमात्मकः ।
प्रत्यङ्गानि च वक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम् ॥३९॥
दृष्ट्वा प्रभूतमर्थं यः पृष्टो वै न निगूहति ।
यथा भूतप्रवादस्तु इत्येतत्सत्यलक्षणम् ॥४०॥

ब्रह्मचर्यं जपो मौन निराहारत्वमेव च ।
इत्येतत् तपसो मूलं सुघोर तद्दुरासम् ॥४१॥
पशूना द्रव्यहविषामृक्सामयजुषा तथा ।
ऋत्विजा दक्षिणानाञ्च सयोगो योग उच्यते ॥४२॥

त्रयी- वार्त्ता—दण्ड नीति—इज्या तथा वर्ण और आश्रम जिस कारण से शिष्टो के द्वारा बार-बार आचरित होते हैं, पूर्वगत होने से पूर्वों के द्वारा वह शाश्वत शिष्टाचार कहा गया है ॥३६॥ दान—सत्य—तप—अलोभ—विद्या,—इज्या-प्रजनी और दया—ये आठ वे चरित्र है जो कि शिष्टाचार का लक्षण होते हैं ॥३७॥ क्योकि इसका शिष्ट चरण करते हैं, मनु और सप्तर्षि गण चरण किया करते है ऐसा सभी मन्वन्तरो मे किया जाता है, इसलिये यह शिष्टाचार कहा गया है ॥३८॥ श्रवण करने से श्रौत जानना चाहिए और स्मरण से स्मार्त कहा जाता है । इज्या वेदात्मक होने से श्रौत है और वर्णाश्रमात्मक स्मार्त होता है । अब उस धर्म का लक्षण और यहाँ प्रत्यङ्गो को बताऊँगा ॥३९॥ बहुत-सा अर्थ देखकर जो पूछा गया है वह कुछ भी छिपाता नही है । जैसा भूत प्रवाह है यही सत्य का लक्षण होता है ॥४०॥ ब्रह्मचर्य-जप-मौन-निराहारत्व यह इतना तपका सुघोर और दुरासद मूल होता है ॥४१॥ पशुओ का, द्रव्य-हवियो का, ऋक्, साम और यजु का, ऋत्विजो का और दक्षिणाओ का जो सयोग होता है वही योग कहा जाता है ॥४२॥

आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हितायाहिताय च ।
समा प्रवर्त्तते दृष्टि कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता ॥४३॥
आक्रुष्टोऽभिहतो वापि नाक्रोशेद्यो न हन्ति वा ।
वाड्मन कर्मभि क्षान्तिस्तितिक्षैषा क्षमा स्मृता ॥४४॥
स्वामिनारक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानाञ्च मृत्सु च ।
परस्वानामनादानमलोभ इह कीर्त्यते ॥४५॥
मैथुनस्यासमाचारो ह्यचिन्तनमकल्पनम् ।
निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं तदच्छिद्रं दम उच्यते ॥४६॥
आत्मार्थं वा परार्थं वा इन्द्रियाणीह यस्य वै ।
न मिथ्या सम्प्रवर्तन्ते शमस्यैं तत्तु लक्षणम् ॥३७॥

दशात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे ।
न क्रुध्येत्तु प्रतिहतः स जितात्मा विभाव्यते ॥४८॥
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनोपागतञ्च येत् ।
तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ॥४६॥

जो हित और अहित के लिये समस्त प्राणियों में अपने ही समान दृष्टि को प्रवृत्त किया करता है वह पूर्ण दया कही गई है ॥४३॥ बुरा-भला कहा जाने वाला और अभिहत अर्थात् मारा-पीटा हुआ भी न तो बुरा-भला कह कर क्रोधित होता है और न मारता ही है, वाणी, मन और कर्म से जो क्षान्ति होती है वह तितिक्षा क्षमा कही गई है ॥४४॥ स्वामी के द्वारा अरक्षित और मिट्टी में यों ही उत्सृष्ट पराये धनों का न ग्रहण करना ही यहाँ पर अलोभ कहा जाता है ॥४५॥ मैथुन का असमाचार, अचिन्तन तथा अकल्पन, निवृत्ति, ब्रह्मचर्य जो होता है वह अछिद्र दम कहा जाता है ॥४६॥ अपने लिये या दूसरे के लिये यहाँ पर जिसकी इन्द्रियाँ प्रवृत्त नहीं होती हैं यही शम का अवसर होता है अर्थात् इसी को शम कहते हैं ।।४७॥ जो दशात्मक विषय में और आठ लक्षण वाले कारण में प्रतिहत होता भी क्रोध नहीं करता है, वह जितात्मा विभावित होता है ॥४८॥ जो-जो इष्टतम द्रव्य और जो न्याय से उपागत हैं वही वह गुणवान् को देना चाहिए यही दान का लक्षण होता है ।।४६॥

दानं त्रिविध मित्येतत् कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम् !
तत्र नैःश्रेयसं ज्येष्ठं कनिष्ठं स्वार्थसिद्धये ।
कारुण्यात्सर्वभूतेभ्यः सुविभागस्तु बन्धुषु ॥५०॥
श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ।
शिष्टाचाराविरुद्धश्च धर्मः सत्साधुसङ्गतः ॥५१॥
अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु तथेष्टानभिनन्दनम् ।
प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता ॥५२॥
संन्यासः कर्मणो न्यासः कृतानामकृतैः सह ।
कुशलाकुशलानाञ्च प्रहाणं त्याग उच्यते ॥५३॥
अव्यक्ताद्योऽविशेषाच्च विकारोऽस्मिन्नचेतने ।
चेतनाचेतान्यत्वविज्ञानं ज्ञानमुच्यते ॥५४॥

प्रत्यङ्गाना तु धर्मस्य इत्येतल्लक्षण स्मृतम् ।
ऋषिभिर्धर्मतत्वज्ञैः पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥५५॥
अत्र वो वर्त्तयिष्यामि विधिर्मन्वन्तरस्य य. ।
इतरेतरवर्णस्य चातुर्वर्णस्य चैव हि ।
प्रतिमन्वन्तरञ्चैव श्रुतिरन्या विधीयते ॥५६॥

दान भी तीन प्रकार का होता है—कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ—ये तीन दान के भेद हैं। उनमे जो दान निश्रेय से सम्बन्धित है वही ज्येष्ठ दान होता है—जो अपने अर्थ की सिद्धि के लिये दिया जाता है वह कनिष्ठ दान होता है। जो करुणा से समस्त प्राणियो के लिये बन्धुओ मे भली भाँति विभाग करना मध्यम दान होता है ॥५०॥ श्रुति और स्मृति के द्वारा विदित वर्णाश्रमात्मक धर्म है। शिष्टाचार से अविरुद्ध सत् एव साधु पुरुषो के द्वारा सङ्गत धर्म है ॥५१॥ अभीष्ट वस्तुओ मे प्रकृष्ट द्वेष का न होना तथा इष्ट वस्तु का विशेष अभिनन्दन न करना—प्रीति, ताप और विपादो से विशेष निवृत्ति विरक्तता होती है ॥५२॥ कर्म का भली भाँति न्यास ही सन्यास होता है। अकृतो के साथ कृतो का, कुशल और अकुशलो का जो प्रहाण होता है वही त्याग कहा जाता है ॥५३॥ जो अव्यय से और अविशेष से इस चेतन मे विकार है तथा चेतना चेतनान्यत्व का विशेष ज्ञान है वही ज्ञान कहा जाता है ॥५४॥ धर्म के प्रत्यङ्गो का यह लक्षण कहा गया है जो कि धर्म तत्व के ज्ञाता पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर म ऋषियो ने कहा है ॥५५॥ यहाँ मैं आपको मन्वन्तर की जो विधि है बताऊँगा। इतरेतर वर्ण का तथा चातुवर्ण का प्रति मन्वन्तर मे अन्य श्रुति का विधान किया जाता है ॥५६॥

ऋचो यजूषि सामानि यथावत् प्रतिदैवतम् ।
आभूत सम्प्लवस्यापि वर्ज्यैक शतरुद्रियम् ॥५७॥
विधिर्होत्र तथा स्तोत्रं पूर्ववत्सम्प्रवर्तते ।
द्रव्यस्तोत्र गुणस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं तथैव च ।
चतुर्थमाभिजनिक स्तोत्रमेतच्चतुर्विधम् ॥५८॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथा देवा भवन्ति ये ।
प्रवर्त्तयति तेषां वै ब्रह्मस्तोत्रं चतुर्विधम् ।
एवं मन्त्रगुणानाञ्च समुत्पत्तिश्चतुर्विधा ॥५९॥
अथर्वयजुषां साम्नां वेदेष्विह पृथक् पृथक् ।
ऋषीणान्तप्यतामुग्रन्तपः परमदुश्चरम् ॥६०॥
मन्त्राः प्रादुर्बभूवुर्हि पूर्वमन्वन्तरेष्विह ।
परितोषाद्भयाद्दुःखात्सुखाच्छोकाच्च पञ्चधा ॥६१॥
ऋषीणां तपःकात्स्र्न्येन दर्शनेन यदृच्छया ।
ऋषीणां यदृषित्वं हि तद्वक्ष्यामीह लक्षणैः ॥६२॥
अतीतानागतानान्तु पञ्चधा ऋषिरुच्यते ।
अतस्त्वृषीणां वक्ष्यामि ह्यार्षस्य च समुद्भवम् ॥६३॥

ऋक्-यजु और साम प्रति दैवत यथावत हैं । आभूत संप्लव का भी एक शतरुद्रिय वर्ज्य होता है ॥५७॥ विधिहोत्र तथा स्तोत्र यह भी पूर्व की भाँति सम्प्रवृत्त होते हैं द्रव्य स्तोत्र—गुण स्त्रोत—कर्म स्त्रोत और चौथा आभिजानिक स्तोत्र इस तरह से यह स्तोत्र चार प्रकार का होता है ॥५८॥ समस्त मन्वन्तरों में जो देव जिस प्रकार से होते हैं उनका चारों प्रकार का ब्रह्म स्त्रोत प्रवृत्त होता है । इस प्रकार से अनन्त गुणों की चार प्रकार की समुत्पत्ति होती है ॥५९॥ अथर्व यजु और साम वेदों में यहाँ पृथक्-पृथक् होती है । तप करते हुए ऋषियों का उग्र तप परम दुश्चर हुआ करता है ॥६०॥ पूर्व मन्वन्तरों में यहाँ मन्त्र प्रादुर्भूत हुये थे । वे परितोष से—भय से—दुःख से—सुख से और शोक से पाँच प्रकार के हैं ॥६१॥ तप की कृत्स्नता से ऋषियों के यदृच्छा से दर्शन से ऋषियों का जो ऋषित्व होता है वह लक्षणों के द्वारा बतलाऊँगा ॥६२॥ अतीत और अनागतों में पाँच प्रकार के ऋषि कहे जाते हैं । इसलिए ऋषियों के आर्ष के समुद्भव को कहूँगा ॥६३॥

गुणसाम्ये वर्त्तमाने सर्वसम्प्रलये तदा ।
अतिचारे तु देवानामतिदेशे तयोर्यया ॥६४॥

अबुद्धिपूर्वक तद्धं चेतनार्थं प्रवर्त्तते ।
तेन ह्यबुद्धिपूर्वं तच्चेतनेन ह्यधिष्ठितम् ॥६५॥
वर्त्तते च यथा तौ तु यथा मत्स्योदके उभे ।
चेतनाधिष्ठित तत्त्व प्रवर्त्तति गुणात्मना ॥६६॥
करणत्वात्तथा कार्यं तदा तस्य प्रवर्त्तते ।
विषये विषयात्वाच्च ह्यर्थेऽर्थित्वात्तथैव च ॥६७॥
कालेन प्रापणीयेन भेदास्तु कारणात्मका: ।
ससिध्यन्ति तदा व्यक्ता क्रमेण महदादय ॥६८॥
महतश्चाप्यहङ्कारस्तस्माद्भूतेन्द्रियाणि च ।
भूतभेदास्तु भेदेभ्यो जज्ञिरे ते परस्परम् ।
ससिद्धिकारण कार्यं सद्य एव विवर्त्तते ॥६९॥
यथोल्मुकस्त्वु टन्नूर्द्ध मेककाल प्रवर्त्तते ।
तथा विवृत्त क्षेत्रज्ञ कालेनैकेन कर्मणा ॥७०॥
यथान्धकारे खद्योत सहसा सम्प्रदृश्यते ।
तथा विवृत्तो ह्यव्यक्ताद् खद्योत इव चोल्वण ॥७१॥

गुणो के साम्य के वर्त्तमान होने पर उस समय मे सबका सम्प्रलय होने पर–देवो के अतिचार होने पर, उन दोनो के अतिदेश होने पर, अबुद्धिपूर्वक वह चेतना के लिए प्रवृत्त होता है। अबुद्धिपूर्वक उस चेतन से अधिष्ठित होता है ॥६५॥ जिस प्रकार से वे दोनो मत्स्य और उदकचेताधिष्ठित तत्त्व को गुणात्मा मे प्रवृत्त होता है ॥६६॥ उस समय करण होने से कार्य प्रवर्त्तित होता है। विषय मे विषयत्व होने से तथा अर्थ मे अर्थित्व होने से प्रवर्त्तित होता है ॥६७॥ प्रापणीय काल से कारणात्मक भेद उस समय मे महदादि व्यक्त होते हुए से सिद्ध होते हैं ॥६८॥ महत् से अहङ्कार और अहङ्कार से भूतेन्द्रिया होते हैं। भूतो के भेद तो भेदो से परस्पर मे उत्पन्न होते हैं। ससिद्धि कारण कार्य तुरन्त ही विवर्त्तित हो जाता है ॥६९॥ जिस प्रकार से ऊपर मे उल्मुक टूटता हुआ एक काल मे प्रवृत्त होता है उसी प्रकार से एक कालीन कर्म से

क्षेत्रज्ञ विवृत्त होता है। जिस तरह खद्योत अन्धकार में सहसा दिखलाई दिया करता है उसी प्रकार से विवृत्त उल्वण खद्योत की भाँति ही होता है ॥७०-७१॥

स महान् सशरीरस्तु यत्रैवाग्रे व्यवस्थितः ।
तत्रैव संस्थितो विद्वान् द्वारशालामुखे स्थितः ॥७२॥
महांस्तु तमसः पारे वैलक्षण्याद्विभाव्यते ।
तत्रैव संस्थितो विद्वांस्तमसोऽन्त इति श्रुतिः ॥७३॥
बुद्धिर्विवर्त्तमानस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा ।
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम् ॥७४॥
सांसिद्धिकान्यथैतानि सुप्रतीकानि तस्य वै ।
महतः सशरीरस्य वैवर्त्यात् सिद्धिरुच्यते ॥७५॥
अत्र शेते च यत्पुर्या क्षेत्रज्ञानमथापि वा ।
पुरीशयत्वात्पुरुषः क्षेत्रज्ञानात् समुच्यते ॥७६॥
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानात् भगवान् मतिरुच्यते ।
यस्माद्बुद्ध्या तु शेते ह तस्माद्बोधात्मकः स वै ।
संसिद्धये परिगत व्यक्ताव्यक्तमचेतनम् ॥७७॥

शरीर के सहित वह महान् जहाँ पर ही आगे व्यवस्थित होता है वहाँ पर ही द्वारशाला के मुख पर विद्वान संस्थित होता है ॥७२॥ महान् तो तम के पार में वैलक्षण्य होने के कारण से विभाजित होता है। वहाँ पर ही विद्वान तम के अन्दर संस्थित होता है—ऐसी श्रुति है ॥७३॥ विवर्त्तमान की बुद्धि चार प्रकार वाली प्रादुर्भूत हुई। ज्ञान—वैराग्य—ऐश्वर्य और धर्म ये उसके चार भेद होते हैं ॥७४॥ सशरीर उस महत् के ये सांसिद्धिक सुप्रतीक हैं। वैवर्त्य से सिद्धि कही जाती है ॥७५॥ यहाँ पर पुरी में जो क्षेत्र ज्ञान शयन करता है वह पुरी में शयन करने से पुरुष क्षेत्र ज्ञान से भली भाँति कहा जाता है ॥७६॥ क्षेत्र के विज्ञान के होने से क्षेत्रज्ञ—भगवान् और मति कहा जाता है। जिस कारण से बुद्धि से शयन करता है उससे वह बोधात्मक निश्चय रूप से होता है। संसिद्धि के लिए अचेतन व्यक्ताव्यक्त के परिगत होता है ॥७७॥

एव निवृत्ति क्षेत्रज्ञा क्षेत्रज्ञे नाभिस हिता।
क्षेत्रज्ञे न परिज्ञातो भोग्योऽय विपयस्त्विति ।।७८।।
ऋपीत्येप गतौ धातु श्रु तौ सत्ये तपस्यथ ।
एतत्सन्नियते तस्मिन् ब्रह्मणा स ऋपि स्मृत ।।७६।।
निवृत्तिसमकाल तु बुद्ध याव्यक्तमृपि स्वयम् ।
पर हि ऋपते यस्मात्परर्मपिस्तत स्मृत ।।८०।।
गत्यर्थादृपतेर्द्धातोर्नामनिवृ त्तिरादित ।
यस्मादेप स्वयम्भू तस्तस्माच्चात्मर्पिता स्मृता ।
ईश्वरा स्वयमुद्भू ता मानसा ब्रह्मण सुता ।।८१।।
यस्मान्न हन्यते मानैर्महान् परिगत पुर ।
य स्मादृपन्ति ये धीरा महान्त सर्वतो गुणै ।
तस्मान्महर्षय प्रोक्ता बुद्धे परमदर्शिन ।।८२।।
ईश्वराणा शुभास्तेपा मानसान्तरसाश्च ते ।
अहङ्कार तमश्चैव त्यक्त्वा च ऋपिताङ्गता ।।८३।।
तस्मात्तु ऋपयस्ते वै भूतादौ तत्त्वदर्शना ।
ऋपिपुत्रा ऋपीकास्तु मैथुनाद्गर्भसम्भवा ।।८४।।

इस प्रकार से क्षेत्रज्ञ में अभिसहित क्षेत्रज्ञा निवृत्ति होती है। क्षेत्रज्ञ के द्वारा परिज्ञात भोगने योग्य जो है वह विपय होता है ।।७८।। ऋपि यह धातु-गति में-श्रुति में-सत्य में और तप में होती है। उसके इस सन्नियत होने पर ब्रह्मा के द्वारा ऋपि कहा गया है ।।७६।। निवृत्ति के समकाल में ऋपि स्वय बुद्धि से अव्यक्त होता है। जिस कारण से पर को ऋप करता है इससे परर्मपि कहा जाता है ।।८०।। गत्यर्थक ऋप धातु से आदि नाम की निवृत्ति होती है। क्योंकि यह स्वयम्भूत है इसलिए आत्मर्पिता कही गई है। ईश्वर स्वय उद्भूत हुए हैं और ये ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं ।।८१।। क्योंकि यह मानों से हन्यमान नहीं होता है, आगे महान् परिगत है। जिस कारण से य धीर सब ओर से गुणों के द्वारा महान् को रिपते है इस कारण से बुद्धि परमदर्शी महर्पि कहे गए हैं ।।८२।। उन ईश्वरों के शुभ वे मानसान्त रस हैं और अहङ्कार तथा तम का

त्याग करके ऋषिता को प्राप्त हो गए हैं ॥८३॥ इससे वे ऋषिगण भूतादि में तत्त्व के देखने वाले हैं। ऋषियों के पुत्र ऋषीक तो मैथुन के धर्म द्वारा गर्भ से उत्पन्न होने वाले होते हैं ॥८४॥

तन्मात्राणि च सत्यञ्च ऋषन्ते ते महौजसः।
सत्यर्षयस्ततस्ते वै परमाः सत्यदर्शनाः ॥८५॥
ऋषीणाञ्च सुतास्ते तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः।
ऋषन्ति वै श्रुतं यस्माद्विशेषांश्चैव तत्त्वतः।
तस्मात् श्रुतर्षयस्तेऽपि श्रुतस्य परिदर्शनाः ॥८६॥
अव्यक्तात्मा महात्मा चाहङ्कारात्मा तथैव च।
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते।
इत्येता ऋषिजातीस्तु नामभिः पञ्च वै शृणु ॥८७॥
भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश।
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः ॥८८॥
प्रवर्त्तन्ते ऋषेर्यस्मान्महांस्तस्मान्महर्षयः।
ईश्वराणां सुतास्त्वेते ऋषयस्तान्निबोधत ॥८९॥
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्चोशनास्तथा।
उतथ्यो वामदेवश्च अयोज्यश्चैशिजस्तथा ॥९०॥
कर्द्दमो विश्रवाः शक्तिर्वालखिल्यस्तथा धराः।
इत्येते ऋषयः प्रोक्ता ज्ञानतो ऋषिताङ्गताः ॥९१॥

वे महान् ओज वाले तन्मात्राओं को और सत्य ऋष करते हैं इस कारण से परम सत्य के देखने वाले सत्यर्षि होते हैं ॥८५॥ ऋषियों के जो पुत्र हैं वे ऋषि-पुत्रक जानने के योग्य होते हैं। क्योंकि श्रुत को ऋष करते हैं और तत्त्व से विशेषों को भी किया करते हैं इस कारण से श्रुत परिदर्शन करने वाले वे श्रुतर्षि भी कहे जाते हैं ॥८६॥ अव्यक्तात्मा—महात्मा—अहङ्कारात्मा—भूतात्मा और इन्द्रियात्मा उनका यह ज्ञान कहा जाता है। इतनी ये ऋषियों की जातियाँ हैं जो नामों से पाँच हैं उन्हें सुनो ॥८७॥ भृगु—मरीचि—अत्रि—अङ्गिरा—पुलह-

क्रतु-मनु-दक्ष-वसिष्ठ और पुलस्त्य ये दश हैं। ये ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं जो ईश्वर से स्वयं उद्भूत हुए थे ॥८८॥ जिस ऋषि से प्रवृत्त होते हैं, महान् हैं इसमे महर्षि होते हैं। ये ऋषि ईश्वरों के पुत्र हैं इन्हें अब जान लो ॥८९॥ काव्य बृहस्पति कश्यप उशना-उतथ्य-वामदेव अयोज्य ऐशिज कर्दम विश्रवा शक्ति, वालखिल्य धरा—ये ऋषि कहे गये हैं और ज्ञान से ऋषिता को प्राप्त हुए थे ॥९०॥९१॥

ऋषिपुत्रानृषिकास्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत ।
वत्सरो नग्नहूश्चैव भारद्वाजस्तथैव च ॥९२॥
बृहदुक्थ शरद्वांश्च अगस्त्यश्चौशिजस्तथा ।
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव बृहदुक्थ शरद्वत ॥९३॥
वाजश्रवा सुवित्तश्च सुवाग्वेपपरायण ।
दधीच शङ्खमाश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा ।
इत्येते ऋषिका प्रोक्तास्ते सत्याद्दृषितां गता ॥९४॥
ईश्वरा ऋषिकाश्चैव ये चान्ये वै तथा स्मृता ।
एत मन्त्रकृत सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत ॥९५॥
भृगु काव्य प्रचेतास्तु दधीचो ह्यात्मवानपि ।
और्वोऽथ जमदग्निश्च विद सारस्वतस्तथा ॥९६॥
आर्ष्टिषेण ह्यरूपश्च वीतहव्य सुमेधस ।
वैन्य पृथुर्दिवोदास प्रश्वारोगृत्समसाभ ।
एकोनविंशदित्येते ऋषयो मन्त्रवादिन ॥९७॥
अङ्गिरा वेधसश्चैव भारद्वाजोऽथ बाष्कलि ।
तथामृतस्थला गार्ग्य शैनी सङ्कृतिरेव च ॥९८॥
पुरुकुत्सोऽथ मान्धाता अम्बरीषस्तथैव च ।
आहार्योयाजमीढश्च ऋषभो वन्हिरेव च ॥९९॥
पृषदश्वो विरूपश्च कण्वश्चैवाथ मुद्गल ।
युवनाश्व पौरुकुत्सस्त्रसद्दस्यु सदस्युमान् ॥१००॥

उतथ्यश्च भरद्वाजस्तथा वाजश्रवा अपि ।
आयाप्यश्च सुवित्तिश्च वामदेवस्तथैव च ।।१०१।।
औगजो बृहदुक्थश्च ऋषिर्दीर्घतपास्तथा ।
कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत् स्मृता अङ्गिरसो वराः ।
एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत ।।१०२।।

ऋषि-पुत्र और ऋषिकों को गर्भ से उत्पन्न समझ लो । वत्सर-नग्रहू-भारद्वाज-बृहद्दुत्थ-शरद्वान्-अगस्त्य-ऐशिज--ऋषि-दीर्घतम--बृहदुक्थ--शारद्वत--वाजश्रवा-सुवित्त-सुवाग्-वेषपरायण-दधीच-शङ्खमान-राजा और वैश्रयण--ये इतने सब ऋषीक कहे गये हैं और वे सत्य से ऋषिता को प्राप्त हुए थे ।।९२।।९३।।९४।। जो इनसे अन्य हैं वे ईश्वर और ऋषीक कहे गये हैं । ये सब मन्त्रकृत हैं उन्हें पूर्ण रूप से जान लेना चाहिए ।।९५।। भृगु-काव्य-प्रचेता-दधीच-आत्मवान्-और्व-जमदग्नि-विद-सारस्वत--अद्रिषेण-अरूप--वीतहव्य--सुमेधस-वैन्य-पृथु--दिवोदास-प्रश्वार, गृत्समाद्-नभ ये उन्नीस मन्त्रवादी हैं ।।९६।।९७।। अङ्गिरा-वेधस-भारद्वाज-- वाष्कलि-- अमृत--गार्ग्य--शेनी-संहृति-- पुरुकुत्स--मान्धाता--अम्बरीष--आहार्य-- आजमीढ़-- ऋषभ-- बलि-- पृषदश्व-- विरूप-कण्व--मुद्गल--युवनाश्व--पौरुकुत्स--त्रसदस्यु--सदस्युमान्--उतथ्य--भरद्वाज---वाजश्रवा--आयाप्य-- सुवित्ति--वामदेव--औगज--बृहदुक्थ--ऋषि-दीर्घतमा--कक्षीवान्---ये तेतीस वर अङ्गिरस कहे गए हैं । ये सब मन्त्रकृत हैं । अब कश्यपों को जान लो ।।९६।।९७।।९८।।--।।९९।।१००।।१०१।।१०२।।

काश्यपश्चैव वत्सारो विभ्रमो रैभ्य एव च ।
असितो देवलश्चैव षडेते ब्रह्मवादिनः ।।१०३।।
अत्रिरर्द्धिसनश्चैव श्यामावांश्चाथ निष्ठुरः ।
बल्गूतको मुनिर्द्धीमांस्तथा पूर्वातिथिश्च यः ।
इत्येते चात्रयः प्रोक्ता मन्त्रकारा महर्षयः ।।१०४।।
वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तथैव च पराशरः ।
चतुर्थ इन्द्रप्रमतिः पञ्चमस्तु भरद्वसुः ।।१०५।।

षष्ठस्तु मैत्रावरुण कुण्डिन सप्तमस्तथा ।
सद्यु म्नश्चाष्टमश्चैव नवमोऽथ बृहस्पति ।
दशमस्तु भरद्वाजो मन्त्रब्राह्मणकारका ॥१०६॥
एते चैवहि कर्तारो विमर्षध्वमकारिण ।
लक्षण ब्रह्मणश्चैतद्विहित सर्वशाखिनाम् ॥१०७॥
हेतुर्हिते स्मृतो धातोर्यद्विहन्त्युदितम्परैः ।
अथ वार्थपरिप्राप्तेर्हिनोतेर्गतिकर्मण ॥१०८॥
तथा निर्वचन ब्रूयाद्वाक्यार्थस्यावधारणम् ।
निन्दा तामाहुराचार्या यद्दोषान्निन्द्यते वच ॥१०९॥
प्रपूर्वाच्छमतेर्धातो प्रशसा गुणवत्तया ।
इदन्त्विदमिद नेदमित्यनिश्चित्य सशय ॥११०॥

काश्यप-वत्सार विभ्रम-रैभ्य-असित देवल—ये छ ब्रह्मवादी होते हैं ॥१०३॥ अत्रि अर्चिसम-श्यामावान्-निष्ठुर-वल्गूलक-मुनि धीमान् पूर्वातिथि—महर्षि मन्त्रकार आत्रय कहे गए हैं ॥१०४॥ वशिष्ठ-शक्ति पाराशर-चौथा इन्द्र प्रमति और पाँचवाँ भरद्वसु-छठा मैत्रावरुण-सातवाँ कुण्डिन-आठवाँ सुद्युम्न-नवम बृहस्पति-दशम् भरद्वाज ये मन्त्र और ब्राह्मण के करने वाले हैं ॥१०५॥१०६॥ ये सब करने वाले और विमर्ष के ध्वस करने वाले हैं। यह ब्रह्म का लक्षण समस्त शाखा वालो म विदित है ॥१०७॥ हिनि धातु से हेतु कहा गया है जो परो के द्वारा उदित का विहनन करते हैं। अर्थ परिप्राप्ति गतिकर्म वाली हिनोत से होता है ॥१०८॥ तथा वाक्यार्थ कर अवधारण निवचन बोलना चाहिए। आचाय लोग, जिस दोष से वचन की निन्दा की जाती है, उसको निन्दा कहते हैं ॥१०९॥ प्रपूर्वक शम धातु मे गुणवत्ता के कारण स प्रशसा होती है अर्थात् प्रशसा कही जाती है। यह है—यह नही है एसा अनिश्चय करके ही सशय होता है ॥११०॥

इदमव विधातव्यमित्यय विधिरुच्यते ।
अन्यस्यान्यस चोक्तत्वाद्बुधै परकृति स्मृता ॥१११॥
यो ह्यत्यन्ततरोक्तश्च पुराकल्प स उच्यते ।
पुराविज्ञान्तवाचित्वात् पुराकल्पस्य कल्पना ॥११२॥

मन्त्रब्राह्मणकल्पैस्तु निगमैः शुद्धविस्तरैः ।
अनिश्चित्य कृतामाहुर्व्यवधारणकल्पनाम् ॥११३॥
यथा हीदं तथा तद्वै इदं वापि तथैव तत् ।
इत्येष ह्य पदेशोऽयं दशमो ब्राह्मणस्य तु ॥११४॥
इत्येतद्ब्राह्मणस्यादौ विहितं लक्षणं बुधः ।
तस्य तद्वृत्तिरुद्दिष्टा व्याख्याप्यनुपदं द्विजैः ॥११५॥
मन्त्राणां कल्पनं चैव विधिदृष्टेषु कर्मसु ।
मन्त्रो मन्त्रयतेर्धातोर्ब्राह्मणो ब्रह्मणोऽवनात् ॥११६॥
अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥११७॥

यही करना चाहिए, इस प्रकार से जो होती है वह विधि कही जाती है। अन्य-अन्य के कथन होने से बुधों के द्वारा परकृति कही जाती है ॥१११॥ जो अत्यन्ततर कहा गया है वह पुराकल्प कहा जाता है। पुरा विक्रान्त वाची होने से पुराकल्प की कल्पना होती है ॥११२॥ मन्त्र ब्राह्मण कल्पों के द्वारा और शुद्ध विस्तर निगमों के द्वारा अनिश्चय करके की हुई को व्यवधारण कल्पना कहते हैं ॥११३॥ जिस प्रकार से यह है वैसे ही वह है। यह अथवा उसी प्रकार से वह है, यह ब्राह्मण का दशम उपदेश है ॥१४४॥ यह आदि में ब्राह्मण का लक्षण बुधों के द्वारा किया गया है। ब्राह्मणों के द्वारा अनुपद व्याख्या भी उसकी वृत्ति उद्दिष्ट की गई है ॥११५॥ विधि दृष्ट- कर्मों में मन्त्रों का कल्पन होता है। मन्त्रयति धातु से मन्त्र होता है और ब्रह्म की रक्षा करने से ब्राह्मण कहा जाता है ॥ ११६॥ सूत्रों के ज्ञाता लोग अल्पाक्षर वाला–असंदिग्ध–सार वाला–विश्वतोमुख–अस्तोभ अनवद्य को सूत्र कहते हैं ॥११७॥

॥ प्रकर्ण ४२—महास्थान तीर्थ वर्णन ॥

ऋषयस्तद्वचः श्रुत्वा सूतमाहुः सुदुस्तरम् ।
कथं वेदाः पुरा व्यस्तास्तन्नो ब्रूहि महामते ॥१॥
द्वापरे तु परावृत्ते मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ब्रह्मा मनुमुवाचेदं तद्वदिष्ये महामते ॥२॥

परिवृत्ते युगे तात स्वल्पवीर्या द्विजातय ।
सवृत्ता युग दोषेण सर्वे नैव यथाक्रमम् ॥३॥
भ्रश्यमान युगवशादल्पशिष्ट हि दृश्यते ।
दशसाहस्रभागेन ह्यवशिष्ट कृतादिदम् ॥४॥
वीर्यं तेजो बल वाक्य सर्वश्चैव प्रणश्यति ।
वेदवेदा हि कार्या स्युर्माभूद्वेदविनाशनम् ॥५॥
वेदे नाशमनुप्राप्ते यज्ञो नाश गमिष्यति ।
यज्ञ नष्टे देवनाशस्तत सर्वं प्रणश्यति ॥६॥
आद्यो वेदश्चतुष्पाद शतसाहस्रसज्ञित ।
पुनर्दशगुण कृत्स्नो यज्ञो वै सर्वकामधुक् ॥७॥

ऋषियो न इस प्रकार के वचनो को सुनकर सूतजी से सुदुस्तर वचन कहा—हे महामते ! वेद पहले किस प्रकार व्यस्त किये गये थे, इस बात का हमको आप बतलाइये ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—हे महामत ! द्वापर के परावृत्त हो जाने पर स्वायम्भुव मन्वन्तर म ब्रह्माजी ने यह मनु से कहा, उसे मै बतलाऊँगा ॥२॥ हे तात ! युग के परिवृत्त हो जाने पर द्विजाति लोग स्वल्प वीय वान हा गये थे। सभी युग के दोष से वे यथाक्रम हीन वीर्य हो गये थे ॥३॥ युग के कारण स सब भ्रश्यमान और अल्प शिष्ट दिखलाई देता है। यह दस हजार के भाग स कृत युग से अवशिष्ट होता है ॥४॥ वीर्य-तेज बल और वाक्य यह सभी नष्ट हा जाते हैं। वेद के ज्ञान वाले सब कार्य होव और वेदा का विनाश न होवे ॥५॥ वेद के नाश होने पर यज्ञ भी नाश को प्राप्त हा जायगा। यज्ञ के नाश होन मे देवो का नाश हागा और देवनाश हो जाने पर सब कुछ प्रनष्ट हो जाता है ॥६॥ आद्य वेद चार पाद वाला है और वह शत सहस्र सज्ञा से युक्त है। फिर वह दस गुना पूर्ण यज्ञ निश्चय ही सब कामनाओ का दोहन करने वाला हुआ है ॥७॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा मनुर्लोकहिते रत ।
वेदमेक चतुष्पाद चतुर्धा व्यभजत्प्रभु ॥८॥
ब्रह्मणो वचनात्तात लोकाना हितकाम्यया ।

तदिदं वर्त्तमानेन युष्माकं वेदकल्पनम् ॥९॥
मन्वन्तरेण वक्ष्यामि व्यतीतानां प्रकल्पनम् ।
प्रत्यक्षेण परोक्षं वै तन्निबोधत सत्तमाः ॥१०॥
अस्मिन् युगे कृतो व्यासः पाराशर्यः परन्तपः ।
द्वैपायन इति ख्यातो विष्णोरंशः प्रकीर्तितः ॥११॥
ब्रह्मणा चोदितः सोऽस्मिन् वेदं व्यस्तुं प्रचक्रमे ।
अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदकारणात् ॥१२॥
जैमिनिञ्च सुमन्तुञ्च वैशम्पायनमेव च ।
पैलन्तेषां चतुर्थन्तु पञ्चमं लोमहर्षणम् ॥१३॥
ऋग्वेदश्रावकं पैलञ्जग्राह विधिवद्द्विजम् ।
यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च ॥१४॥

इस प्रकार से कहा हुआ लोक के हित में रत रहने वाला मनु ने तथास्तु अर्थात् ऐसा ही हो—यह कहकर प्रभु ने चार पाद वाले एक वेद को चार प्रकार से विभाजित किया था ॥८॥ हे तात ! ब्रह्माजी के वचन से लोकों के हित की कामना से आपके वर्त्तमान से यह वेद का कल्पन किया था ॥९॥ अब मैं मन्वन्तर से व्यतीतों के प्रकल्पन को बताऊँगा । हे सत्तमा ! अब आप लोगों को प्रत्यक्ष से परोक्ष को जान लेना चाहिए ॥१०॥ इस युग में किया हुआ व्यास (विस्तार) परन्तप एवं पाराशर्य है । वह द्वैपायन इस नाम से ख्यात हुआ है और भगवान् विष्णु का अंश कहा गया है ॥११॥ ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित होते हुए उसने वेद के व्यस्त करने का उपक्रम किया था । इसके अनन्तर वेद के कारण से उसने चार शिष्यों को ग्रहण किया था ॥१२॥ जैमिनि–सुमन्तु–वैशम्पायन और उनमें चौथा पैल, पाँचवाँ लोमहर्षण था ॥१३॥ ऋग्वेद का श्रावक (सुनने वाला) पैल को ग्रहण किया और पैल द्विज को विधि के साथ स्वीकार किया था । यजुर्वेद के प्रवक्ता वैशम्पायन को ग्रहण किया ॥१४॥

जैमिनिं सामवेदार्थश्रावकं सोऽन्वपद्यत ।
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम् ॥१५॥
इतिहासपुराणस्य वक्तारं सम्यगेव हि ।

माञ्चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वर प्रभु ॥१६॥
एक आसीद्यजुर्वेदस्तञ्चतुर्द्धा व्यकल्पयत् ।
चतुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमकल्पयत् ॥१७॥
आध्वर्यव यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्र तथैव च ।
उद्गात्र सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभि ।
ब्रह्मत्वमकरोद्यज्ञे वेदेनाथर्वणेन तु ॥१८॥
तत स ऋचमुद्धृत्य ऋग्वेद समकल्पयत् ।
होतृक कल्प्यत तत्र यज्ञवाह जगद्धितम् ॥१९॥
सामभि सामवेदश्च तेनोद्गात्रमरोचयत् ।
राज्ञस्त्वथर्ववेदेन सर्वकर्माण्यकारयत् ॥२०॥
आख्यानैश्चाप्युपाख्यै र्गाथाभि कुलकर्मभि ।
पुराणसहिताश्चक्रे पुराणार्थविशारद ॥२१॥

सामवेद के अर्थ का श्रावक उसने जैमिनि को शिष्य ग्रहण किया था। उसी प्रकार से अथर्ववेद का प्रवक्ता ऋषियों में श्रेष्ठ सुमन्तु को शिष्यत्व के रूप में ग्रहण किया था ॥१८॥ इतिहास पुराण का अच्छी प्रकार से प्रवक्ता भगवान् प्रभु ईश्वर ने मुझको ग्रहण किया था ॥१६॥ यजुर्वेद एक ही था, उसको चार प्रकार के भेदों में कल्पित किया था। उसने उसमें यज्ञ की कल्पना की जो कि चतुर्होत्र था ॥१७॥ यजु से आध्वर्यव, ऋक् से उसी प्रकार होत्र, साम से उद्गात्र और अथर्व से ब्रह्मत्व किया। अथर्व वेद से यज्ञ में ब्रह्मत्व किया था ॥१८॥ इसके अनन्तर उसमें ऋक् का उद्धार करके ऋग्वेद की कल्पना की थी। उसके द्वारा होतृक यज्ञवाह जगत हित की कल्पना की जाती है ॥१९॥ सामों से सामवेद को और उससे उद्गात्र को रोचित किया था। राजा के अथर्व वेद से समस्त कर्मों को कराया था ॥२०॥ आख्यानों से तथा उपाख्यानों से गाथाओं के द्वारा और कुल कर्मों से पुराणों के अर्थ के विशारद ने पुराण सहिता की अर्थात् पुराण सहिता की रचना की ॥२१॥

यच्छिष्टन्तु यजुर्वेदे तेन यज्ञमथायुजत् ।
युञ्जान स यजुर्वेदे इति शास्त्रविनिश्चय ॥२२॥

पदानामुद्धृतत्वाच्च यजूंषि विषमाणि वै ।
स तेनोद्धृतवीर्यस्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ।
प्रयुज्यते ह्यश्वमेधस्तेन वा युज्यते त सः ॥२३॥
ऋचो गृहीत्वा पैलस्तु व्यभजत्तद्द्विधा पुनः ।
द्विष्कृत्वा संयुगे चैव शिष्याभ्यामददत्प्रभुः ॥२४॥
इन्द्रप्रमतये चैकां द्वितीयां बाष्कलाय च ।
चतस्रः संहिताः कृत्वा बाष्कलिर्द्विजसत्तमः ।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् हितान् ॥२५॥
बोधन्तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम् ।
पाराशरं तृतीयान्तु याज्ञवल्क्यामथापराम् ॥२६॥
इन्द्रप्रमतिरेकान्तु संहितां द्विजसत्तमः ।
अध्यापयन्महाभागं मार्कण्डेयं यशस्विनम् ॥२७॥
सत्यश्रवसमग्र्यन्तु पुत्रं स तु महायशाः ।
सत्यश्रवाः सत्यहितं पुनरध्यापयद्द्विज ॥२८॥

जो कुछ यजुर्वेद में शिष्ट था उससे इसके पश्चात् यज्ञ को योजित किया था । यजुर्वेद में वह युञ्जान थे यही शास्त्र का विशेष रूप से निश्चय है ॥२२॥ पदों के उद्धृत होने के कारण से यजु विषम हैं । इससे उद्धृत वीर्य उसने वेद के पारगामी ऋत्विगों के द्वारा अश्वमेध को प्रयुक्त किया अथवा वह युज्यमान किया जाता है ॥२३॥ पैल ने तो ऋचाओं को ग्रहण करके उनको दो प्रकार से विभाजित किया था । दो करके प्रभु ने संयुग में शिष्यों के लिये दे दिया था ॥२४॥ एक को इन्द्रप्रमिति के लिये दिया और दूसरी को वाष्कलि के लिये दिया । द्विज श्रेष्ठ बाष्कलि ने चार संहिता करके जो सेवा में अनुराग रखने वाले और परमहित शिष्य थे उनको उनका अध्यापन कर दिया था ॥२५॥ प्रथम शाखा को बोध नामक शिष्य को पढ़ाया और दूसरी शाखा को अग्नि-माठर को पढ़ाया था । तीसरी शाखा को पाराशर को और चौथी शाखा का अध्यापन याज्ञवल्क्य को करा दिया था ॥२६॥ द्विजों में परम श्रेष्ठ इन्द्र प्रमिति ने एक संहिता को अति यशस्वी महान् भाग वाले मार्कण्डेय को पढ़ा दिया

था ॥२७॥ सत्यश्रवा द्विज ने जो कि महान् यश वाला था, सत्य में सत्य-श्रवस अग्य पुत्र को पढ़ाया था ॥२८॥

सोऽपि सत्यतर पुत्र पुनरध्यापयामासद्विभु ।
सत्यश्रिय महात्मान सत्यधर्मपरायणम् ॥२९॥
अभवस्तस्य शिष्या वै त्रयस्तु सुमहौजस ।
सत्यश्रियस्तु विद्वास शास्त्रग्रहणतत्परा ॥३०॥
शाकल्य प्रथमस्तेषा तस्मादन्यो रथ(I)न्तर ।
वाष्कलिश्च भरद्वाज इति शाखाप्रवर्तका. ॥३१॥
देवमित्रस्तु शाकल्यो ज्ञानाहङ्कारगर्वित ।
जनकस्य स यज्ञे वै विनाशमगमद्विज ॥३२॥
कथ विनाशमगमत्स मुनिर्ज्ञानिगर्वित ।
जनकस्याश्वमेधेन कथ वाद वभूव ह ॥३३॥
किमर्थञ्चाभवद्वाद केन सार्द्धमथापि वा ।
सर्वमेतद्यथावृत्तमाचक्ष्व विदितन्तव ।
ऋषीणान्तु वच श्रुत्वा तदुत्तरमथाब्रवीत् ॥३४॥
जनकस्याश्वमेधे तु महानासीत्समागम ।
ऋषीणान्तु सहस्राणि तत्राजग्मुरनेकश: ।
राजर्षेर्जनकस्याथ त यज्ञ हि दिदृक्षव. ॥३५॥

उस विप्र ने भी फिर अपने सत्यतर नामक पुत्र को पढ़ाया था जो कि सत्यश्री वाला, महान आत्मा से युक्त और सत्य धर्म में परायण था ॥२९॥ उसके महान् ओज वाले तीन शिष्य हुए थे। वे सत्यप्रिय परम विद्वान् और शास्त्रों के ग्रहण करने में तत्पर थे ॥३०॥ उनमें पहिला शाकल्य था और उसमें दूसरा रथन्तर था। वाष्कलि और भरद्वाज ये शाखाओं के प्रवर्तक हुए थे ॥३१॥ देवमित्र शाकल्य तो ज्ञान के अहंकार से बड़ा ही गर्व वाला था, वह जनक के यज्ञ में विनाश को प्राप्त हुआ था ॥३२॥ शांशपायन ने कहा—वह ज्ञान के गर्व वाला मुनि किस तरह विनाश को प्राप्त

हुआ ? जनक के अश्वमेध में वाद कैसे हुआ था ? ॥३३॥ और वह वाद किस लिए हुआ था और किसके साथ हुआ था ? यह सब जैसा भी कुछ हुआ था वह समस्त वृतान्त वर्णन करें क्योंकि आपको सभी कुछ विदित है। ऋषियों के इस वचन को सुन कर इसके अनन्तर उसका उत्तर कहने लगे ॥३४॥ श्रीसूत जी ने कहा—जनक के अश्वमेध में बहुत बड़ा समागम हुआ था। सहस्रों की संख्या में अनेक ऋषिगण वहाँ आये थे क्योंकि राजर्षि जनक के उस यज्ञ को सभी देखने की इच्छा वाले थे ॥३५॥

आगतान् ब्राह्मणान् दृष्ट्वा जिज्ञासास्याभवत्ततः ।
को न्वेषां ब्राह्मणः श्रेष्ठः कथं मे निश्चयो भवेत् ।
इति निश्चित्य मनसाबुद्धि चक्रे जनाधिपः ॥३६॥
गवां सहस्रमादाय सुवर्ण मधिकं ततः ।
ग्रामान् रत्नानि दासांश्च मुनीन् प्राह नराधिपः ।
सर्वानहं प्रपन्नोऽस्मि शिरसा श्रेष्ठभागिनः ॥३७॥
यदेतदाहृतं वित्तं यो वः श्रेष्ठतमो भवेत् ।
तस्मै तदुपनीतं विद्यावित्तं द्विजोत्तमाः ॥३८॥
जनकस्य वचः श्रुत्वा मुनयस्ते श्रुतिक्षमाः ।
दृष्ट्वा धनं महासारं धनवृद्ध्या जिवृक्षवः ।
श्रद्धयाञ्चक्रुरन्योन्यं वेदज्ञानमदोल्बणाः ॥३९॥
मनसा गतवित्तास्ते ममेदं धनमित्युत ।
समैवैतन्न वेत्यन्यो ब्रूहि किं वा विकल्प्यते ।
इत्येवं धनदोषेण वादांश्चक्रुरनेकशः ॥४०॥
तथान्यस्तत्र वै विद्वान् ब्रह्मवाहसुतः कविः ।
याज्ञवल्क्यो महातेजातपस्वी ब्रह्मवित्तमः ॥४१॥
ब्रह्मणोऽङ्गात् समुत्पन्नो वाक्यं प्रोवाच सुस्वरम् ।
शिष्यं ब्रह्मविदां श्रेष्ठो धनमेतद्‌गृहाण भो ॥४२॥

आये हुए ब्राह्मणों को देख कर इसके अनन्तर इसकी जिज्ञासा हुई कि इन ब्राह्मणों में कौन सद्‌ब्राह्मण अधिक श्रेष्ठ है—यह निश्चय मुझे कैसे होवे।

मन में ऐसा निश्चय करके उस जनों के स्वामी ने बुद्धि की अर्थात् विचार किया था ।।३६।। सहस्र गौओं को लाकर और बहुत सा सुवर्ण, ग्राम, रत्न, दासों को लाकर वह नराधिप बोला—मैं आप सब श्रेष्ठ भाग वालों को शिरसे प्रपन्न हूँ ।।३७।। जो यह सब धन लाया गया है, आप लोगों में परम श्रेष्ठ द्विज होगा हे उत्तम ब्राह्मणो ! विद्या के धन वाले को यह उपवीत किया जायगा ।।३८।। उन श्रुतिक्षम मुनियों में उस महान् सार वाले धन को देखकर धन की वृद्धि में उस ग्रहण करने की इच्छा वाले होते हुए जनक के उस वचन को सुनकर वद वे ज्ञान के मद में उन्वण वे सब अन्योन्य में श्रद्धा करने लगे ।।३९।। मन में गतचित्त वाला यह मेरा धन है अथवा यह मेरा ही है या यह नहीं अथवा कोई अन्य बोल क्या विकल्प किया जाता है। इस प्रकार से धन के दोष से वहाँ अनेक प्रकार के वाद करने लगे ।।४०।। उस प्रकार से वहाँ पर अति विद्वान् ब्रह्मवाह का पुत्र कवि महान् तेज वाला, तपस्वी और ब्रह्मवित्तम याज्ञवल्क्य जो कि ब्रह्माजी के अङ्ग में समुत्पन्न हुये थे, शिष्य से सुस्वर वाक्य बोले—जो ब्रह्मवत्ताओं में श्रेष्ठ ! आप इस धन को ग्रहण करिये ।।४२।।

नयस्व च गृहं वत्स सर्वतन्नात्र संशय ।
सर्ववेदेष्वहं वक्ता नान्य कश्चित्तु सत्तम ।
यो वा न प्रीयते विप्रा स मे ब्रूयत माऽचिरम् ।।४३।।

ततो ब्रह्मार्णव क्षुब्ध समुद्र इव सम्प्लवे ।
तानुवाच तत स्वस्थो याज्ञवल्क्यो हसन्निव ।।४४।।
क्रोधं माकार्षु विद्वांसो भवन्त सत्यवादिन ।
वदामहे यथायुक्तं जिज्ञासन्त परस्परम् ।।४५।।

ततोऽभ्युपागमस्तेषां वादा जग्मुरनेकश ।
सहस्रधा शुभैरर्थै सूक्ष्मदर्शनसम्भवै ।।४६।।
लोके वेदे तथाध्यात्मे विद्याभ्यानैरलङ्कृता ।
शापोत्तमगुणैर्युक्ता नृपौघपरिवर्जना ।
वादा समभवंस्तत्र धनहेतोर्महात्मनाम् ।।४७।।

ऋषयस्त्वेकतः सर्वे याज्ञवल्क्यस्तथैकतः ।
सर्वोमिति होवाच वादकर्त्तारिमञ्जसा ॥४९॥

हे वत्स ! इसे गृह में ले जाओ, यह सारा धन मेरा ही है, इसमें तनिक-भी संशय नहीं है । समस्त वेदों में मैं वक्ता हूँ और कोई भी मेरे समान यहाँ नहीं है । जो ब्राह्मण इस बात को पसन्द नहीं करता हो वह मेरे साथ शीघ्रता करे । इसके पश्चात् सम्प्लव के समय में समुद्र की ही भाँति उस समय वह ब्राह्मणों का सागर क्षुब्ध हो उठा था । इसके अनन्तर परम स्वस्थ याज्ञवल्क्य हँसते हुए उन सबसे बोले ।।४३।।४४।। आप सब विद्वान और सत्यवादी हैं इस समय क्रोध न करिए । परस्पर में जिज्ञासा रखने वाले हम यथायुक्त वाद करें ॥४५॥ इसके अनन्तर वहाँ उपस्थित होते हुए उनके सहस्रों प्रकार के सूक्ष्म दर्शन से उत्पन्न शुभ अर्थों के द्वारा अनेकों वाद हुए ॥४६॥ लोक में तथा वेद में विद्या स्थानों से विभूषित—शापोत्तम गुणों से युक्त—नृपों के समुदाय से परिवर्जन वाले महात्माओं के वहाँ अनेक वाद हुये थे ॥४७॥ एक तरफ तो समस्त ऋषिगण थे और एक ओर केवल एक याज्ञवल्क्य थे । वे सब मुनिगण धीमान् याज्ञवल्क्य के द्वारा एक-एक करके पूछे गए किन्तु कोई भी उनमें से उनका उत्तर नहीं बोला था ।।४८।। तब उस ब्रह्म की राशि महान् द्युति वाले याज्ञवल्क्य उन समस्त मुनियों को विजित करके वाद के कर्त्ता शाकल्य से अचानक बोले ।।४९।।

शाकल्य वद वक्तव्यं किं ध्यायन्नवतिष्ठसे ।
पूर्णस्त्वत्वं जडमानेन वाताध्मातो यथा दृतिः ।।५०।।
एवं स धर्षितस्तेन रोषात्ताम्रास्यलोचनः ।
प्रोवाच याज्ञवल्क्यं तं पुरुषं मुनिसन्निधौ ।।५१।।
त्वमस्मांस्तृणवत्त्यक्त्वा तथैवेमान् द्विजोत्तमान् ।
विद्याधनं महासारं स्वयंग्राहं जिघृक्षसि ।।५२।।
शाकल्येनैवमुक्तः स्यादाज्ञवल्क्यः समब्रवीत् ।
ब्रह्मिष्ठानां बलं विद्धि विद्यातत्त्वार्थदर्शनम् ।।५३।।

कामदस्यार्थेन सम्बद्धस्तेनार्थं कामयामहे ।
कामप्रश्नधना विप्रा कामप्रश्नान्वदामहे ॥५४॥
पणश्चैषोऽस्य राजर्षेस्तस्मानीतं धनं मया ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शाकल्यः क्रोधमूर्च्छितः ।
याज्ञवल्क्यमथोवाच कामप्रश्नार्थमद्य च ॥५५॥
ब्रूहीदानीं मयोद्दिष्टान् कामप्रश्नान् यथार्थतः ।
ततः समभवद्वादस्तयोर्ब्रह्मविदार्महान् ॥५६॥

हे शाकल्य ! बोलो जो कुछ भी आपका वक्तव्य हो क्या ध्यान करते हुए चुपचाप खड़े हुए हैं ? आप तो जडमात्र से पूर्ण है जैसे वायु से आध्मात दृति होता है ॥५०॥ इस प्रकार से उसके द्वारा धर्षित होते हुए रोष से ताम्र मुख और लोचनों वाले उनने मुनियों की सन्निधि में उस याज्ञवल्क्य पुरुष से कहा ॥५१॥ आप मुझको तिनके की भाँति त्याग करके तथा इन अन्य श्रेष्ठ द्विजों का भी त्याग करके इस महान् सार वाले विद्या धन को स्वयं ही ग्रहण करने की इच्छा रखते हैं ॥५२॥ शाकल्य के द्वारा इस तरह से कहे हुए याज्ञवल्क्य ने उससे कहा—विद्या के तत्त्वार्थ के देखने वाले ब्रह्मिष्ठों के बल को जान लो ॥५३॥ काम की अर्थ में सम्बद्धता होती है इसलिए हम अर्थ की कामना करते हैं। ब्राह्मण काम के प्रश्न धन वाले होते हैं और हम काम के प्रश्नों को बोलते हैं ॥५४॥ राजर्षि का यह प्रण है इससे मैंने धन को लिया है। यह उसका वचन सुनकर शाकल्य क्रोध से मूर्छित होते हुए याज्ञवल्क्य से काम प्रश्न के अर्थ वाले वचन को बोले ॥५५॥ अब मेरे द्वारा उद्दिष्ट काम प्रश्नों को यथार्थ रूप से बोलो। इसके बाद पुनः दोनों ब्रह्म वेत्ताओं का बहुत बड़ा विवाद हुआ था ॥५६॥

साग्रं प्रश्नसहस्रन्तु शाकल्यस्तमचूबुदत् ।
याज्ञवल्क्योऽब्रवीत्सर्वान् ऋषीणां शृण्वतां तदा ॥५७
शाकल्यं चापि निर्वादि यश्चवल्क्यस्तमब्रवीत् ।
प्रश्नमेकं ममापि त्वं वद शाकल्य कामिकम् ।
शापं पणोऽस्य वादस्य अब्रुवन् मृत्युमाव्रजेत् ॥५८

अथ सन्नोदितं प्रश्नं याज्ञवल्क्येन धीमता ।
शाकल्यस्तमविज्ञाय सद्यो मृत्युमवाप्नुयात् ॥५६
एवं मृतः स शाकल्यः प्रश्नव्याख्यानपीडितः ।
एवं वादश्च सुमहानासीत्तेषां धनार्थिभिः ।
ऋषीणां मुनिभिः सार्द्धं याज्ञवल्क्यस्य चैव हि ॥६०
सर्वे पृष्टांस्तु सम्प्रश्नान् शतशोऽथ सहस्रशः ।
व्याख्याय वै मुने तेषां प्रश्नसारं महागतिः ॥६१
याज्ञवल्क्यो धनं गृह्य यशो विख्याप्य चात्मनः ।
जगाम वै गृहं स्वस्थः शिष्यैः परिवृतो वशी ॥६२
देवमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजात्मा द्विजसत्तमः ।
चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तमः ॥६३

इसके अनन्तर शाकल्य ने पहिले एक सहस्र प्रश्न उससे किए थे और याज्ञवल्क्य ने उस समय में समस्त ऋषियों के सुनते हुए सब प्रश्नों के उत्तर दे दिए थे ॥५७॥ जब शाकल्य निर्वाद हो गए तो याज्ञवल्क्य ने उससे कहा—आप मेरा भी एक प्रश्न कामिक बतलाओ । इस वाद का पण शाप बोले वह मृत्यु को जावे ॥५८॥ इसके पश्चात् धीमान् याज्ञवल्क्य के द्वारा सञ्जोहित उस प्रश्न को शाकल्य ने न जानकर मृत्यु को प्राप्त किया ॥५९॥ इस प्रकार से वह प्रश्न के व्याख्यान से पीड़ित शाकल्य मृत हो गया । इस प्रकार से धन के अर्थी मुनियों के साथ उन ऋषियों का और याज्ञवल्क्य का बहुत ही बड़ा वाद हुआ था ॥६०॥ सबके द्वारा सैंकड़ों तथा सहस्रों पूछे गए प्रश्नों की व्याख्या करके और उनके प्रश्नस्तर को समझा करके महामति याज्ञवल्क्य ने धन को ग्रहण करके और अपना यश [illegible] फैरके शिष्यों के द्वारा परिवृत वशी स्वस्थ होता हुआ अपने घर को चले गए ॥६१॥६२॥ पदवित्तय–द्विज श्रेष्ठ–महात्मा और बुद्धिमान देवामित्र शाकल्य ने पाँच संहिता कीं ॥६३॥

तच्छिष्या अभवन् पञ्च मुग्दलौ गोलकस्तथा ।
खालीयश्च तथा मत्स्यः शैशिरेयस्तु पञ्चमः ॥६४

प्रोवाच संहितास्तिस्रः शाकपूर्णरथीतरः ।
निरुक्तञ्च पुनश्चक्रे चतुर्थं द्विजसत्तम ॥६५
तस्य शिष्यास्तु चत्वारः केतवो दालकिस्तथा ।
धर्मशर्मा देवशर्मा सर्वे व्रतधरा द्विजाः ॥६६
शाकल्ये तु मृते सर्वे ब्रह्मघ्नास्ते बभूविरे ।
तदा चिन्तां परां प्राप्य गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥६७
तान् ज्ञात्वा चेतसा ब्रह्मा प्रेषितः पवने पुरे ।
तत्र गच्छत यूयं वै सद्यः पापं प्रणश्यति ॥६८
द्वादशार्कं नमस्कृत्य तथा वै वालुकेश्वरम् ।
एकादश तथा रुद्रान् वायुपुरं विशेषतः ।
कुण्डे चतुष्टये स्नात्वा ब्रह्महत्यां तरिष्यथ ॥६९॥
सर्वे शीघ्रतरा भूत्वा तत्पुरं समुपागताः ।
स्नानं कृतं विधानेन देवानां दर्शनं कृतम् ॥७०॥

उसके पाँच शिष्य हुए थे उनके नाम मुद्गल–गालव–खालीय–मत्स्य–और शैशिरेय पाँचवें थे ॥६४॥ शाकपूर्ण रथीतर ने तीन संहिता बाँची और द्विज-श्रेष्ठ ने फिर चौथा निरुक्त किया ॥६५॥ उसके चार शिष्य हुए थे जिनके नाम केतव–दालकि–धर्म शर्मा–देव शर्मा थे । ये सब ब्राह्मण व्रतधारी थे ॥६६॥ शाकल्य के मृत हो जाने पर वे सब ब्रह्मघ्न हो गये थे । इसके पश्चात् वे सब परम चिन्तित होकर ब्रह्माजी के समीप में गए ॥६७॥ ब्रह्माजी ने उनको चित्त में ही जानकर पवनपुर में प्रेषित किया । उन्होंने कहा—आप सब वहाँ जाओ वहाँ आपका सारा पाप तुरन्त नष्ट हो जायगा ॥६८॥ द्वादश सूर्य को नमस्कार करके तथा वालुकेश्वर को प्रणाम करके और चारों कुण्डों में स्नान करके आप सब इस ब्रह्म हत्या से तर जाओगे ॥६९॥ वे सब शीघ्रगामी होकर उस पुर में आगये । वहाँ उन्होंने विधानपूर्वक स्नान किया और देवों का दर्शन करके पाप मुक्त हो गए ॥७०॥

॥ इति वायु-पुराण (प्रथम खण्ड) ॥